प्रकाशकीय

साधुमार्गी जैन परम्परा में महान् क्रियोद्धारक आचार्यश्री हुक्मीचंदजी म.सा. की पाट–परम्परा में षष्ठम् युगप्रधान आचार्यश्री जवाहरलालजी म.सा. विश्व–विभूतियों में एक उच्चकोटि की विभूति थे। अपने युग के क्रांतदर्शी, सत्यनिष्ठ, तपोपूत संत थे। उनका स्वतन्त्र चिन्तन, वैराग्य से ओत–प्रोत साधुत्व, प्रतिभा–सम्पन्न वक्तृत्वशक्ति एवं भक्तियोग से समन्वित व्यक्तित्व स्व–पर–कल्याणकर था।

आचार्यश्री का चिन्तन सार्वजनिक, सार्वभौम और मानव मात्र के लिए उपादेय था। उन्होंने जो कुछ कहा वह तत्काल के लिए नहीं, अपितु सर्वकाल के लिए प्रेरणापुंज बन गया। उन्होंने व्यक्ति, समाज, ग्राम, नगर एवं राष्ट्र के सुव्यवस्थित विकास के लिए अनेक ऐसे तत्त्वों को उजागर किया जो प्रत्येक मानव के लिए आकाशदीप की भाँति दिशाबोधक बन गये।

आचार्यश्री के अन्तरंग में मानवता का सागर लहरा रहा था। उन्होंने मानवोचित जीवनयापन का सम्यक् धरातल प्रस्तुत कर कर्तव्यबुद्धि को जाग्रत करने का सम्यक् प्रयास अपने प्रेरणादायी उद्बोधनों के माध्यम से किया।

आगम के अनमोल रहस्यों को सरल भाषा में आबद्ध कर जन–जन तक जिनेश्वर देवों की वाणी को पहुंचाने का भगीरथ प्रयत्न किया। साथ ही, प्रेरणादायी दिव्य महापुरुषों एवं महासतियों के जीवन वृत्तान्तों को सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया। इस प्रकार व्यक्ति से लेकर विश्व तक को अपने अमूल्य साहित्य के माध्यम से सजाने–संवारने का काम पूज्यश्रीजी ने किया है। अस्तु! आज भी समग्र मानव जाति उनके उद्बोधन से लाभान्वित हो रही है। इसी क्रम में राजकोट के व्याख्यान किरणावली का यह अंक पाठकों के लिए प्रस्तुत है। सुज्ञ पाठक इससे सम्यक् लाभ प्राप्त करेगे।

युगद्रष्टा, युगप्रवर्तक ज्योतिर्धर आचार्यश्री जवाहरलालजी म.सा. का महाप्रयाण भीनासर में हुआ। आपकी स्मृति को अक्षुण्ण रखने और आपके कालजयी प्रवचन साहित्य को युग–युग में जन–जन को सुलभ कराने हेतु समाजभूषण, कर्मनिष्ठ, आदर्श समाजसेवी स्व. सेठ चम्पालालजी बांठिया का चिरस्मरणीय, श्लाघनीय योगदान रहा। आपके अथक प्रयासों और समाज के उदार सहयोग से

श्री जवाहर विद्यापीठ भीनासर की स्थापना हुई। संस्था जवाहर साहित्य को लागत मूल्य पर जन–जन को सुलभ करा रही है और पण्डित शोभाचन्द्रजी भारिल्ल के सम्पादकत्व में सेठजी ने 33 जवाहर किरणावलियों का प्रकाशन कर एक उल्लेखनीय कार्य किया है। वाद में संस्था की स्वर्ण जयन्ती के पावन अवसर पर श्री वालचन्दजी सेठिया व श्री खेमचन्दजी छल्लाणी के अथक प्रयासों से किरणावलियों की संख्या वढ़कार 53 कर दी गई। आज यह सैट प्रायः विक जाने पर श्री जवाहर विद्यापीठ ने यह निर्णय किया गया कि किरणावलियों को नया रूप दिया जावे। इसके लिए संस्था के सहमंत्री श्री तोलाराम बोथरा ने परिश्रम करके विपय अनुसार कई किरणावलियों को एक साथ समाहित किया और पुनः सभी किरणावलियों को 32 किरणों में प्रकाशित करने का निर्णय किया गया।

ज्योतिर्धर श्री जवाहराचार्यजी म.सा. के साहित्य के प्रचार–प्रसार में जवाहर विद्यापीठ भीनासर की पहल को सार्थक और भारत तथा विश्वव्यापी वनाने में श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, वीकानेर की महती भूमिका रही। संघ ने अपने राष्ट्रव्यापी प्रभावी संगठन और कार्यकर्ताओं के वल पर जवाहर किरणावलियों के प्रचार–प्रसार और विक्रय प्रवन्धन में अप्रतिम योगदान प्रदान किया है। आज संघ के प्रयासों से यह जीवन निर्माणकारी साहित्य जैन–जैनेतर ही नहीं, अपितु विश्व धरोहर वन चुका है। संघ के इस योगदान के प्रति हम आभारी हैं।

धर्मनिष्ठ सुश्राविका श्रीमती राजकुंवर वाई मालू धर्मपत्नी स्व. डालचन्दजी मालू द्वारा आरम्भ में समस्त जवाहर साहित्य प्रकाशन के लिए 60,000 रु. एक साथ प्रदान किये गये थे जिससे पूर्व में लगभग सभी किरणावलियाँ उनके सौजन्य से प्रकाशित की गई थी। सत्साहित्य प्रकाशन के लिए वहिनश्री की अनन्य निष्ठा चिरस्मरणीय रहेगी।

प्रस्तुत किरण 32 (राजकोट के व्याख्यान) के अर्थ सहयोगी श्री विमलचन्दजी सिपाणी,, वेंगलौर हैं। संस्था सभी अर्थ–सहयोगियों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती है।

निवेदक

चम्पालाल डागा
अध्यक्ष

सुमतिलाल बांठिया
मंत्री

आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा.

जीवन तथ्य

जन्म स्थान	:	थांदला, मध्यप्रदेश
जन्म तिथि	:	वि.सं. 1932, कार्तिक शुक्ला चतुर्थी
पिता	:	श्री जीवराजजी कवाड़
माता	:	श्रीमती नाथीबाई
दीक्षा स्थान	:	लिमड़ी (म.प्र.)
दीक्षा तिथि	:	वि.सं. 1948, माघ शुक्ला द्वितीया
युवाचार्य पद स्थान	:	रतलाम (म.प्र.)
युवाचार्य पद तिथि	:	वि.सं. 1976, चैत्र कृष्णा नवमी
आचार्य पद स्थान	:	जैतारण (राजस्थान)
आचार्य पद तिथि	:	वि.सं. 1976, आषाढ़ शुक्ला तृतीया
स्वर्गवास स्थान	:	भीनासर (राज.)
स्वर्गवास तिथि	:	वि.सं. 2000, आषाढ़ शुक्ला अष्टमी

आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा.

1. देश मालवा गल गम्भीर उपने वीर जवाहर धीर
2. प्रभु चरणों की नौका में
3. तृतीयाचार्य का आशीर्वाद एवं ज्ञानाभ्यास प्रारम्भ
4. नई शैली
5. मैं उदयपुर के लिए जवाहरात की पेटी भेज दूंगा
6. जोधपुर का उत्साही चातुर्मास दयादान के प्रचार का शंखनाद
7. जनकल्याण की गंगा बहाते चले
8. कामधेनु की तरह वरदायिनी बने कॉन्फ्रेंस
9. धर्म का अधार समाज–सुधार
10. महत्त्व पदार्थ का नहीं, भावना का है
11. दक्षिण प्रवास में राष्ट्रीय जागरण की क्रांतिकारी धारा
12. वैतनिक पण्डितों द्वारा अध्ययन प्रारम्भ
13. युवाचार्य पद महोत्सव में सहज विनम्रता के दर्शन
14. आपश्री का आचार्यकाल अज्ञान–निवारण के अभियान से आरम्भ
15. लोहे से साना बनाने के बाद पारसमणि बिछुड़ ही जाती है
16. रोग का आक्रमण
17. राष्ट्रीय विचारों का प्रबल पोषण एवं धर्म सिद्धांतों का नव विश्लेषण
18. थली प्रदेश की ओर प्रस्थान तथा 'सद्धर्ममंडन' एवं 'अनुकम्पाविचार' की रचना
19. देश की राजधानी दिल्ली में अहिंसात्मक स्वातंत्र्य आंदोलन को सम्बल
20. अजमेर के जैन साधु सम्मेलन में आचार्यश्री के मौलिक सुझाव
21. उत्तराधिकारी का चयन मिश्री के कूंजे की तरह बनने की सीख
22. रूढ़ विचारों पर सचोट प्रहार और आध्यात्मिक नव–जागृति
23. महात्मा गांधी एवं सरदार पटेल का आगमन
24. काठियावाड़ प्रवास में आचार्यश्री की प्राभाविकता शिखर पर
25. अस्वस्थता के वर्ष दिव्य सहनशीलता और भीनासर में स्वर्गवारा
26. सारा देश शोक–सागर में डूब गया और अर्पित हुए अपार श्रद्धा–सुमन परिशिष्ट सं. 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7

आचार्य श्री जवाहर–ज्योतिकण

विपत्तियों के तमिस्र गुफाओं के पार जिसने संयम साधना का राजमार्ग स्वीकार किया था।

ज्ञानार्जन की अतृप्त लालसा ने जिनके भीतर ज्ञान का अभिनव आलोक निरंतर अभिवर्द्धित किया।

संयमीय साधना के साथ वैचारिक क्रांति का शंखनाद कर जिसने भू–मण्डल को चमत्कृत कर दिया।

उत्सूत्र सिद्धांतों का उन्मूलन करने, आगम–सम्मत सिद्धांतों की प्रतिष्ठापना करने के लिए जिसने शास्त्रार्थों में विजयश्री प्राप्त की।

परतंत्र भारत को स्वतंत्र बनाने के लिए जिसने गांव–गांव, नगर–नगर पाद–विहार कर अपने तेजस्वी प्रवचनों द्वारा जन–जन के मन को जागृत किया।

शुद्ध खादी के परिवेश में खादी–अभियान चलाकर जिसने जन–मानस में खादी–धारण करने की भावना उत्पन्न कर दी।

अल्पारंभ–महारंभ जैसी अनेकों पेचीदी समस्याओं का जिसने अपनी प्रखर प्रतिभा द्वारा आगम–सम्मत सचोट समाधान प्रस्तुत किया।

स्थानकवासी समाज के लिये जिसने अजमेर सम्मेलन में गहरे चिंतन–मनन के साथ प्रभावशाली योजना प्रस्तुत की।

महात्मागांधी, विनोबाभावे, लोकमान्य तिलक, सरदार वल्लभ भाई पटेल, पं श्री जवाहर लाल नेहरू आदि राष्ट्रीय नेताओं ने जिनके सचोट प्रवचनों का समय–समय पर लाभ उठाया।

जैन व जैनेत्तर समाज जिसे श्रद्धा से अपना पूजनीय स्वीकार करती थी।

सत्य सिद्धांतों की सुरक्षा के लिये जो निडरता एवं निर्भीकता के साथ भू–मंडल पर विचरण करते थे।

"हुक्म संघ के आचार्य"

1. **आचार्य श्री हुक्मीचंदजी म.सा. – दीक्षा वि.स. 1870, स्वर्गवास वि.स. 1917**

   ज्ञान-सम्मत क्रियोद्धारक साधुमार्गी परम्परा के आसन्न उपकारी।

2. **आचार्य श्री शिवलालजी म.सा. – दीक्षा वि.स. 1891, स्वर्गवास वि.स. 1933**

   प्रतिभा–सम्पन्न प्रकाण्ड विद्वान, परम तपस्वी, महान शिवपथानुयायी।

3. **आचार्य श्री उदय सागरजी म.सा. – दीक्षा 1918, स्वर्गवास वि.स. 1954**

   विलक्षण प्रतिभा के धनी, वदीमान–मर्दक, विरक्तों के आदर्श विलक्षण।

4. **आचार्य श्री चौथमलजी म.सा. – दीक्षा 1909, स्वर्गवास वि.स. 1957**

   महान क्रियावान, सागर सम गंभीर, संयम के सशक्त पालक, शांत–दांत, निरहंकारी, निर्ग्रन्थ शिरोमणि।

5. **आचार्य श्री श्रीलालजी म.सा. – दीक्षा 1944, स्वर्गवास वि.स. 1977**

   सुरा–सुरेन्द्र–दुर्जय कामविजेता, अद्‌भुत स्मृति के धारक, जीव–दया के प्राण।

6. **आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा. – दीक्षा 1947, स्वर्गवास वि.स. 2000**

   ज्योतिर्धर, महान क्रांतिकारी, क्रांतदृष्टा, युगपुरुष।

7. **आचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा. – दीक्षा 1962, स्वर्गवास वि.स. 2019**

   शांत क्रांति के जन्मदाता, सरलता की सजीव मूर्ति।

8. **आचार्य श्री नानालालजी म.सा. – दीक्षा 1996, स्वर्गवास वि.स. 2056**

   समता–विभूति, विद्वद्‌शिरोमणि, जिनशासन प्रद्योतक, धर्मपाल प्रतिबोधक, समीक्षण ध्यानयोगी।

9. **आचार्य श्री रामलालजी म.सा. – दीक्षा 2031, आचार्य वि.सं. 2056 से**

   आगमज्ञ, तरुण तपस्वी, तपोमूर्ति, उग्रविहारी, सिरीवाल प्रतिबोधक, व्यसनमुक्ति के प्रबल प्रेरक, बालब्रह्मचारी, प्रशांतमना।

अर्थ–सहयोगी परिचय

उदारमना, उद्योगपति, बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी
युवा समाजसेवी श्रीमान् विमलचन्दजी सिपाणी

दृश्यजगत की शुष्क, रेतीली मरुभूमि के अन्तर में प्रवाहित अन्तःसलिला सरस्वती की सरस धारा के मध्य स्थित मरु–जांगल क्षेत्र के उदयरामसर ग्राम में धर्मनिष्ठ, सुसंस्कारी, शिक्षा, चिकित्सा और समाजसेवी कार्यों में अग्रणी सिपाणी परिवार के धर्मनिष्ठ सुश्रावक स्व. सोहनलाल जी सिपाणी के सबसे छोटे पुत्र, युवा उद्यमी श्री विमल चन्द जी सिपाणी को सद्संस्कार सहज उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुए हैं। मरुधरा के मोती श्री विमल चन्द जी ने भी व्यवसाय के लिए अपना कर्मक्षेत्र बैंगलोर को बनाया। आपने अपने पिता के व्यवसाय को नूतन आयाम प्रदान करते हुए एक आदर्श स्थिति में स्थापित किया है और "क्लीन पैक लिमिटेड" बैंगलोर के नाम से आपके व्यवसाय को उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त है। श्री विमल चन्द जी की माता श्रीमती जेठी देवी सिपाणी भी धर्मानुरागी और शासनसेवी है। इस प्रकार श्री विमल कुमार को माता और पिता दोनों से उत्तम संस्कार प्राप्त हुए और परिवार में सबसे छोटे होने के कारण अगाध वात्सल्य भी प्राप्त हुआ।

श्री विमल चन्द जी सिपाणी का विवाह भी श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ के पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री भंवरलाल जी बैद गंगाशहर /कोलकाता की सुपुत्री कुमुद देवी से हुआ। सौ. श्रीमती कुमुद देवी में भी सत्संस्कार कूट–कूट कर भरे हैं। इस प्रकार पति–पत्नी दोनों को दोनों परिवारों से उत्तम शिक्षा और संस्कार रूपी राजकोष सहज ही प्राप्त है। शास्त्र की आज्ञा है कि "धर्माद् अर्थश्च, कामश्च" अर्थात् धर्मपूर्वक धन संग्रह करना चाहिये और गृहस्थ के दायित्वों का सम्पादन करना चाहिये। सिपाणी ने इस आदर्श को साकार करते हुए अपनी श्री वृद्धि की और साथ ही पुत्ररत्न श्री सुनील कुमार और पुत्रवधू श्रीमती श्रद्धा देवी तथा द्वितीय पुत्र श्री पुनीत कुमार सिपाणी के रूप

भेंट किये हैं। श्रीमती कुमुद देवी गृहकार्य दक्ष होने के साथ ही नित्य सामायिक और स्वध्याय करती है। इस प्रकार सम्पूर्ण परिवार को सुमार्ग की ओर प्रवृत्त करती है।

पूर्वजों और अग्रजों की गौरवगाथाओं, अपने स्वयं के अनुभव, संत समागम, सत्संगति आदि से श्री विमल कुमार जी सिपाणी के निर्मल व्यक्तित्व की रचना हुई। श्री सिपाणी जी का अप्रमत व्यवहार है। वे अपने कार्य के प्रति क्षण मात्र का भी प्रमाद नहीं करते। प्राप्त समय को सुफल बनाने के लिए आप समय का भरपूर सदुपयोग करते हैं। व्यावसायिक व्यस्तता के बावजूद आप धार्मिक, सामाजिक गतिविधियों में उत्साह से भाग लेते हैं और सत्कार्यों को प्रोत्साहित करने में अग्रसर रहते हैं।

आदर्श व्यक्तित्व के धनी, होनहार और भाग्यशाली श्री विमल चन्द जी सिपाणी परिवार की परम्परा में रंगे हुए हैं और प्रशान्तमना, शास्त्रज्ञ, तरुण तपस्वी, सिरीवाल प्रतिबोधक, व्यसनमुक्ति के प्रेरक, चारित्र–चूडामणि, बाल ब्रह्मचारी श्री 1008 आचार्य श्री रामलाल जी म. सा. के प्रति अनन्य श्रद्धा रखते हैं। गुरु के प्रति अगाध आस्था और समर्पण आपके जीवन का अभिन्न अंग है। आपका सम्पूर्ण परिवार भी इसी भांति गुरुभक्त है।

आप अनुपम प्रतिभा के धनी, स्पष्टवक्ता, मितभाषी, व्यवहारकुशल, करुणावान, समत्व साधक, गंभीर और शांत प्रकृति के धनी हैं। आपने जवाहर–किरणावली के प्रकाशन में अर्थ–सहयोगी वन कर ज्ञानार्जन और ज्ञानवर्धन के पवित्र कार्य में अपना प्रशस्त भाव प्रकट किया है। आप चिरायु हों और इसी प्रकार समाज–संघ और राष्ट्र की सेवा करते रहें; यही मंगल कामना है।
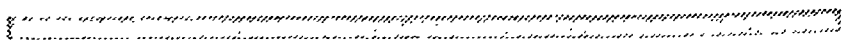
अनुक्रम

समझ की भ्रांति	:	१
ब्रह्मचर्य की महिमा	:	१५
इच्छा आकाश के समान अनन्त है	:	१३
आदर्श नगर सेठ	:	४८
परोपकार ही जीवन का सार है	:	५८
सूक्ष्म संस्कारों की करामात	:	७३
रोग आत्मा का परम मित्र है	:	८८
प्रकृति की अपेक्षा आत्मा में अनन्तगुणी शक्ति है	:	४६
संतान पर माता-पिता का ऋण	:	११८
आदर्श भ्रातृ-प्रेम	:	१३०
आत्म साक्षी से निर्णय करो	:	१४०
आत्मा ही परमात्मा बनता है	:	१५६
परमात्मा का प्रकाश प्राप्त करो	:	१६८
वैर से वैर शान्त नहीं हो सकता	:	१८४
आत्मिक शान्ति का अचूक प्रभाव	:	२००
ब्रह्मचर्य का साधक तप	:	२१७
सतोगुण का चमत्कार	:	२३४
संवत्सरी और चार भावनायें	:	२५५
निर्बल के बल राम	:	२७७
कन्या और पुत्र का समानाधिकार	:	२८७
शत्रु को मित्र बनाने की कला	:	२९६
दुःख में उत्थान और सुख में पतन	:	३०६
नीतिमय जीवन आध्यात्मिक जीवन की नींव है	:	३२२
दृढ़तम संकल्प	:	३३६
धर्म-श्रद्धा की परीक्षा	:	३४६
मुनि पृथ्वी के समान क्षमाशील हो	:	३६०
संकल्प शक्ति का शरीरिक प्रभाव	:	३७१

समझ की भ्रांति

श्री शांति जिनेश्वर सायब सोलमा

प्रार्थनाः– इस गायन में सोलहवें तीर्थंकर भगवान श्री शांतिनाथजी की प्रार्थना की गई है। परमात्मा की प्रार्थना में रहे हुए तत्त्व को समझाने के लिए बड़े बड़े ज्ञानी–ध्यानी विद्वानों ने प्रयत्न किया है मगर केवल समझाने मात्र से प्रार्थना का रहस्य समझ में नहीं आ सकता। नित्य प्रार्थना करते–करते ही यह तत्त्व समझ में आ सकता है। मैं प्रार्थना का स्वरूप बता देता हूं। किन्तु आचरण करना आप लोगों का कार्य है। मार्ग बतलाने वाला मार्ग बता देता है किन्तु चलनेवाला उस पर न चले तो मंजिल कैसे तै की जा सकती है। सच्चा मार्ग बताना उपकार का काम है। परमात्मा तक पहुंचने के लिए प्रार्थना सच्चा मार्ग है। प्रार्थना के द्वारा प्रभु के निकट पहुंचा जा सकता है।

अनेक महापुरुषों एवं भक्तों ने भगवान से अपना मेल जोड़ने के लिए अनेक प्रकार के काव्य, छन्द आदि द्वारा देश काल और स्वरुचि के अनुकूल प्रार्थनाएं रचकर हमारे सामने रखी हैं। इस तरह हमारे लिए उन्होंने सुगमता करदी है। अनेक भक्तों ने जुदी–जुदी भाषा और जुदे–जुदे तरीकों से भगवान का गुणगान किया है, प्रार्थना की है। प्रार्थना का भाव तो पुराना ही है मगर उस भाव को व्यक्त करने का तरीका नया है, जुदा हैं। पहले से कुछ सरल है। हमें इससे लाभ लेना चाहिए।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि प्रार्थना क्यों कर करना चाहिए। क्या किसी कामना की पूर्ति कराने के लिए प्रार्थना करनी है? इसका उत्तर साफ है। और वह यह है कि कामना की पूर्ति के लिए प्रार्थना नही करना चाहिए। कामना मात्र मिटाने की प्रार्थना होनी चाहिए। कामनाओं की पूर्ति तो कभी हो ही नही सकती। एक कामना की पूर्ति हो जाने पर दूसरी अनेक कामनाएं हाथ फैलाकर खड़ी हो जाती है। अतः भगवान् से यही प्रार्थना

करनी चाहिए कि हे प्रभो! मेरी कामना का ही नाश हो जाना चाहिए! मैं निष्काम बन जाऊं।

बंधुओं! आपके हृदय में विषय–वासना की आग प्रज्वलित हो रही है उस आग को प्रार्थना रूपी जल सिंचन के द्वारा शांत करना चाहिए। जिस प्रकार केवल बातों से अग्नि शांत नहीं होती उसी प्रकार विषयरूपी दावानल भी बातों से शांत नहीं हो सकता। सच्चे हृदय से की हुई प्रार्थना से विषय कषाय की आग तुरंत बुझ जाती है। प्रार्थना आन्तरिक रोगों के नाश की रामबाण दवा है। अनेक ज्ञानियों द्वारा अनुभूत प्रयोग है। आप भी प्रयोग करके देखिये।

हमारी प्रार्थना की सार्थकता विषय कषाय के शांत होने पर निर्भर है। यदि प्रार्थना करते–करते विषय वासना कम होने के बजाय बढ़ती जाती है तो समझना चाहिए कि हमने दिल– से,हृदय से प्रार्थना नहीं की है। केवल मुख से उच्चारण मात्र किया है। मौखिक उच्चारण से कार्य सिद्ध नहीं होता। प्रार्थना हृदय से निकलनी चाहिए। अनन्त और अटूट श्रद्धा के साथ प्रार्थना के शब्दों का उच्चारण करना चाहिए। मन की तरंगों और कामनाओं की अग्नि को शांत और नाश करने के लिए ही प्रभुमय बनकर प्रार्थना करनी चाहिए। ऐसी प्रार्थना से विषय भोग रूपी तुच्छ भावनाओं को मिटना ही पड़ेगा। प्रार्थना करने से मानव कृतकृत्य हो जाता है। कहा भी है–

'यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति अमृतो भवति तृप्तो भवति'

प्रार्थना करते करते मनुष्य सिद्ध–कृतकृत्य हो जाता है। अमृत–अमर हो जाता है। तृप्त–आशा तृष्णा रहित हो जाता है। उसे मृत्यु का भय भी नहीं रहता। उसे ऐसी तृप्ति और संतुष्टि हो जाती है कि किसी भी वस्तु की कामना ही शेष नहीं रहती। यही प्रार्थना की पहचान है। ऐसी प्रार्थना करके विषयेच्छा का शमन करो।

शास्त्र :– अब यही बात गणधर प्रणीत शास्त्र द्वारा कहता हूं। सूत्र श्री उत्तराध्ययन के बीसवें अध्ययन में महामुनि सनाथी मगधधिपति राजा श्रेणिक को सनाथ–अनाथ का स्वरूप समझाते हैं।

इसी प्रसंग में राजा–श्रेणिक महामुनी सनाथी से कहता है कि मेरे आधिपत्य में बडे–बड़े घोड़े हैं, मदोन्मत्त हाथी हैं, छत्रधारी अनेक नरेशों की कन्याएँ मेरी रानियां हैं, महान् नगर मेरे राज्य में सम्मिलित हैं, मेरी आज्ञा सर्वत्र अविकल रूप से मानी जाती है, मैं आज्ञा का ईश्वर हूं। अर्थात् सर्व सुख मेरे

स्वाधीन हैं। फिर हे महामुने! आप मुझे अनाथ क्यों कह रहे हैं? आप मुनिव्रत धारण करके भी असत्य भाषण कर रहे हैं?

सुज्ञ श्रावकों! जरा ध्यान लगाकर इस पर गौर करिये कि अढलक ऋद्धि में सम्पन्न श्रेणिक राजा को भी जब महामुनि सनाथी, अनाथ बता रहे हैं, तब आप हम किस गिनती में हैं। मगधाधीश अपनी सनाथता सिद्ध करने के लिए जो बातें बता रहा है, जो कुछ दलीलें पेश कर रहा है, उन्हें आप व्यर्थ मान रहे हैं न? क्योंकि आपने शास्त्र सुने हैं और शास्त्रों में लिखा है कि भौतिक ऋद्धि-सिद्धि के कारण कोई सनाथ नहीं हो सकता। सनाथता प्राप्त करने के लिए भौतिक ऋद्धियों का त्याग आवश्यक है। पराधीनता में सुख नहीं है, सुख स्वाधीनता में है। जो सुख किसी वस्तु पर आश्रित होता है वह उस वस्तु के हटते ही दूर हट जाता है। किन्तु जो सुख आत्मा के निज गुणों में विकसित होता है वह स्थायी होता है, टिकाऊ होता है। त्याग जन्य सुख स्वाधीन होता है, भोग-जन्य सुख पराधीन होता है। यही सब बातें शास्त्रास्धार से सुनकर आप लोग मानते हैं कि श्रेणिक राजा की सनाथता के लिए बताई हुई पराधीनता अप्रामाणिक है, गल्त है।

मित्रों! शास्त्र सुनकर दूसरों की तरफ तो देखते हो मगर अपनी तरफ निगाह क्यों नहीं करते। आपको भी तो जरा-जरा सी चीजों पर अभिमान आ जाता है। नई जूतियां पहन कर लोग बड़ी अकड़ के साथ चलते हैं। जूतियों का भी अभिमान! तो फिर अन्य वस्तुओं के लिए क्या कहा जाय! यह सब सनाथ-अनाथ का स्वरूप न समझने का नतीजा है। आप सनाथ हैं या अनाथ इस बात पर विचार करिये। अभी न तो श्रेणिक राजा है और न सनाथी मुनि। यहां तो अभी आप और मैं हूं। उनका चरित्र सुनकर अपने ऊपर घटाइये उनके चरित्र से अपना सुधार कीजिये। उनका चरित्र सुनकर अपने ऊपर घटाइये, उनके चरित्र से अपना सुधार कीजिये। यदि चरित्र सुनकर अपना सुधार न किया तो सुनने का पुण्य तो होगा मगर पूर्ण लाभ न होगा। पूर्ण लाभ तभी होगा जब अपना सुधार करेंगें।

आपको झूठ न बोलना चाहिए। मैं शासक हूं अतः मेरा फर्ज है कि मैं सब को अपना–अपना कर्त्तव्य अदा करने के लिए प्रेरित करूं। शास्त्रों में मुनि के लिए असत्य भाषण सर्वथा वर्जित है। आपने मुझे अनाथ कहा इसकी मुझे उतनी चिन्ता नहीं है जितनी एक मुनि द्वारा असत्य भाषण करने की है। मुझे अनाथ कहने से आपको झूठ का पातक लगा है।

श्रेणिक राजा के इस कथन से यदि कोई साधारण मुनि होता तो वह नाराज हो जाता। रुष्ट होकर कोई शाप दे डालता। किन्तु ये तो क्षमाशूर तपोधन महामुनि सनाथी हैं समुद्र के समान गंभीर और मेरु पर्वत के समान अडोल हैं। ऐसे शब्दों से इन मुनि के आत्म–समुद्र में एक लहर भी नहीं उठती। राजा की समझ में ही दोष है यह मान कर राजा को सत्–असत् का विवेक कराने के लिए मुनि कहते हैं–

न तुमं अणाहस्सा अत्थं पुत्थं च पत्थिव।
जहाअणाहो भवइ सणाहो वा नराहिवा।।16।।

अर्थः– हे राजन्, तू अनाथ शब्द का अर्थ और व्युत्पत्ति नहीं जानता है और न यह जानता है कि अनाथ किस प्रकार का होता है और सनाथ किस प्रकार।

हे नराधिप! तेरे हृदय में अज्ञानान्धकार भरा हुआ है इससे तू ऐसा कहता है कि मैं सम्पत्ति के कारण नाथ हूं। तेरी समझ में वही नाथ है जो धनवान, कुटुम्बवान और शक्तिशाली हो। द्रव्यहीन और कुटुम्बहीन को तू अनाथ समझता है। इस में राजन्, तेरा कोई दोष नहीं है। दोष तेरी समझ में है।

मुनि ने राजा से जो कुछ कहा है उस पर गहराई से विचार करने पर संसार की बहुतसी बातें हल हो जाती हैं, कोई कारण नहीं है। वस्तु स्थिति कुछ और है और समझ कुछ और लिया जाता है। इसी गलत–फहमी के कारण द्वेष भाव बढ़ता जाता है और एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के साथ लडाई करने लगता है। समझ की कमी के कारण कितना अनर्थ फैल जाता है, इसका एक नमूना आपके सामने पेश करता हूं।

पन्द्रह कर्मादानों के अर्थ के विषय में बड़ा भ्रम फैला हुआ है। इसी भ्रम के कारण बहुत से भाई कहते हैं कि यदि पन्द्रह कर्मादानों में बताये गये कर्म न करें तो जीवन निर्वाह बहुत कठिन हो जाता है। अतः इनमें छूट होनी चाहिए। शास्त्रों में भगवान ने तो पन्द्रह कर्मादान श्रावक के लिए सर्वथा त्याज्य अर्थात् अनाचरणीय बतलाये हैं।

'पण्णरस्स कम्मादाणाइं जाणियव्वाइं न समारयरियव्वाइं'।

अर्थात पन्द्रह कर्मादान श्रावक को जानना चाहिए किन्तु आचरण में नहीं लाना चाहिए। जो बात में नहीं लाना चाहिए, जो बात श्रावक अवस्था में रहते हुए अशक्यानुष्ठान हो उसका निषेध तीर्थंकर भगवान स्वयं नहीं करते। कोई आगार अवश्य रख देते। आगार नहीं रखा गया है इसी से पता चलता है कि पन्द्रह कर्मादान श्रावकों के लिए वर्जनीय हैं। पन्द्रह कर्मादानों में बताये हुए कार्य न करने से श्रावक की आजीविका में किसी प्रकार की बाधा नहीं आ सकती।

बन्धुओं! दर असल बात यह है कि हमारे बहुत से भाई और साधु मुनिराज भी पन्द्रह कर्मादान का अर्थ ठीक ठीक नहीं समझते। इसीलिए उनमें छूट रख देने की बात कहते हैं।

भगवान ने श्रावक के लिए तीन प्रकार के कार्य निषिद्ध कहे हैं। 1 इहलोक विरुद्ध 2 परलोक विरुद्ध 3 इह पर लोक विरुद्ध। 1 जो कार्य इस लोक के लिए विरुद्ध हो, चाहे वह परलोक के लिए अच्छा ही क्यों न हो श्रावक के लिए त्याज्य है 2 इसी प्रकार जो कार्य परलोक के लिए विरुद्ध हो, परलोक में दुःख दायी फल देने वाला हो वह भी श्रावक के लिए वर्जनीय है। 3 जो कार्य इस भव और परभव दोनों में दुःखदायी हो वह भी हेय है।

पन्द्रह कर्मादान परलोक के लिए विरुद्ध हैं अर्थात् इन के सेवन करने से दुर्गति होती है, इसीलिए भगवान ने इनके आचरण का निषेध किया है। आजकल साम्प्रदायिकता के आग्रह के कारण एक–दूसरे की न्याय संगत और शास्त्र सम्मत बात मानना भी कठिन है। किन्तु प्राचीन टीका के आधार से यदि इनका एक असली अर्थ समझा जाये तो पता लगे कि इनके निषेध का क्या उद्देश्य है। हमने जो पन्द्रह कर्मादानों की व्याख्या की है वह हरीभद्रीय टीका के आधार से की है। हरिभद्रीय टीका पर जैनों का बहुत आधार है। यद्यपि हरिभद्रीय से कुछ साम्प्रदायिक मतभेद है फिर भी उनकी टीका को अर्थज्ञान के लिए बहुत आधार भूत माना जाता है।

केशवाणिज्य का अर्थ करते हुए केश शब्द को लक्षणा माना जाता है। अर्थात् लक्षणा से केश शब्द का अर्थ केवल केश न करके केशवाली दासियां किया गया है। पहले जमाने में सुन्दर केशोंवाली दासियों को एक देश से दूसरे देशों में बेचने का धंधा किया जाता था। ऐसा धंधा करना श्रावक के लिए वर्जित है। मुसलमानों की हदीसों में भी इंसानों का बेचना गुनाह माना गया है। आज की हमारी सरकार भी दासदासी के विक्रय को अपराध मानती है। कहिये, ऐसा धन्धा यदि श्रावक न करे तो उसकी आजीविका में क्या बाधा उपस्थित हो सकती है? मेरे ख्याल में कोई बाधा नहीं मालूम देती।

शास्त्र का अर्थ बहुत ज्ञानियों के अनुभव और विचारों को ध्यान में लेकर करना चाहिए। अन्यथा राजा श्रेणिक की तरह भ्रम पैदा होने की संभावना रहती है। मुनि के गूढ आशय को न समझते हुए राजा ने मृषा–भाषण करने तक का उपालम्भ दे डाला है। इतने पर भी मुनि रुष्ट नहीं हुए। अपने कथन पर स्थिर हैं। हम लोगों का भी कर्तव्य है कि हम अपनी सच्ची बात पर अड़े रहे और दूसरों के समक्ष उसकी उपादेयता सिद्ध करें।

मुनि, राजा से कहते हैं कि हे राजन्! तू सनाथ–अनाथ का वास्तविक अर्थ नहीं जानता है। जिसको कोई खाने–पीने के लिए देनेवाला न हो, जो गरीब हो, असहाय हो वह अनाथ है, यह जग प्रसिद्ध अनाथ शब्द की व्याख्या लौकिक व्याख्या है। मैंने किस अर्थ और व्युत्पत्ति को लक्ष्य में लेकर बात कही है वह तू नहीं समझा।

न समझने के कारण राजा ने दूसरा अर्थ लगाया है। इसी प्रकार आप भी तो नहीं करते हैं, विचार करिये। यदि कोई बात समझ में न आवे तो राजा की तरह पूछ लेना चाहिए। किन्तु कुछ का कुछ अर्थ न कर बैठना चाहिए। कोई बात ऊपर से कुछ और लगती है और भीतर में कुछ और रहस्य छिपा रहता है। इसके संबंध में राजा भोज के समय की एक कहानी प्रसिद्ध है।

एक ब्राह्मण जो प्रसिद्ध विद्वान था, जुआरी हो गया। जुआरी आदमी को कैसी कैसी आपत्ति में से गुजरना पड़ता है, यह सर्व विदित बात है। जुआरी में धीरे–धीरे चोरी करने का दुर्गुण भी आ जाता है। पहले घर की चोरी शुरू करता है, जब घर का सब सामान खत्म हो जाता है तब दूसरों के यहां चोरी करता है। यहां तक देखा गया है कि जुआरियों ने गहनों के लिए अपने बच्चों और स्त्रियों तक की हत्या कर डाली है।

वह ब्राह्मण भी जुए में धन हारकर घर के सामान की चोरी करने

लगा। इसके घर के लोग उसका अनादर और घृणा करने लगे। जब घर का सामान चुराने की गुंजाइश न रही तब वह विद्वान् ब्राह्मण विचार करने लगा कि अब क्या करना चाहिये। अब तो बाहर की चोरी करनी चाहिये। पैसे के अभाव में मेरी स्त्री भी मेरा अनादर करने लगी है। यह दुर्दशा केवल जुए में फंस जाने के कारण उपस्थित हुई है। जुए के कारण मुझे चोर बनना पड़ा है। किन्तु अब मुझे कोई दूसरा काम नहीं सूझता है। अब सोच–समझकर कार्य करना चाहिए जिससे पीछे पछताना न पड़े। चोरी तो करना है मगर समझदारी पूर्वक करना है। किसी गरीब के घर चोरी करूंगा तो उसे बड़ा दुःख होगा। पैसा प्राण समान प्यारा होता है। अतः किसी गरीब को दुःख पहुंचाना उचित नहीं है। गरीब के यहां चोरी करने से मेरी मनोकामना भी पूरी न होगी।

राजा बड़ा ऋद्धिशाली है। उसके खजाने में बहुमूल्य रत्न, जवाहर, सुवर्णमुद्रा आदि हैं। अतः वहीं चोरी करने से मेरी इच्छा पूरी हो सकती है। किन्तु राजा के भवन में चोरी करने के लिए पहले चोरी के व्यवसाय में निष्णात होना जरूरी है। चोरी की कला में अकुशल होऊंगा तो पकड़ा जाऊंगा और सजा पाऊंगा तथा पहले की तरह अपमानित भी। अतः वह चौर्यकर्म का अभ्यास करने लगा।

सुना जाता है कि आजकल पेरिस में चोरी करने की शिक्षा देने के लिए विधिवत् शिक्षणालय खुले हैं। वह ब्राह्मण कुछ दिन अभ्यास बढ़ाकर राजा के महल पर चढ़कर खजाना फाड़कर उसमें दाखिल हो गया। खजाने में दाखिल होकर वह विचार करने लगा कि क्या क्या लेना चाहिए। यहां रत्न है, सुवर्ण मुद्राएं हैं और रुपये भी हैं। रत्न की चोरी का फल शास्त्र में बड़ा बताया गया है। शास्त्र–निषिद्ध कार्य करने का फल बुरा होता है। पहले भी मैंने बिना विचारे कार्य किया था जिसका दुष्परिणाम मुझे भोगना पड़ा है। अब सोचसमझ कर कदम उठाना चाहिए। रत्न बहुमूल्य होता है। उसकी कीमत यदि एक लाख रुपये होगी तो खरीदने वाला मुझे दस–बीस हजार ही देकर टरका देगा। पाप बड़ा होगा और लाभ थोड़ा होगा। अतः रत्न तो न चुराने चाहिएं।

लेलूंगा तो वुद्धि और अधिक भ्रष्ट हो जायेगी। वुद्धि के भ्रष्ट होने से अनेक विकार मगज में पैदा हो जाते हैं। विकारों के कारण मेरा मगज अस्थिर हो जायेगा तथा दुःख परम्परा आ पड़ेगी।

फिर चांदी की तरफ उसका ध्यान गया। सोचने लगा कि चांदी भारी होती है और सस्ती भी। वहुत अधिक प्रमाण में चांदी लेऊं तव मेरा काम वन सकता है। वहुत अधिक चांदी सिर पर उठाकर राजभवन से नीचे उतरते उतरते कहीं फिसल पड़ा तो जान से हाथ धोना पड़ेगा। फिर यह चांदी क्या काम आयेगी। अतः चांदी भी न लेनी चाहिये। तो क्या पैसे लेऊं? जव मैंने रत्न, सुवर्ण और चांदी पर भी नीयत न बिगाड़ी तो पैसों पर क्या नीयत बिगाड़ूं। अब क्या करना चाहिए इस विषय में वह गंभीर हो गया। घर पर बाल वच्चे भूखे हैं। प्रातः होते ही ब्राह्मणी अन्न मांगेगी तव क्या उत्तर दूंगा। पेट को भाड़ा तो देना ही होगा।

इसी विचार से वह मशगूल था कि एकाएक उसकी नजर एक कोने में पड़े चावलों के ढेर पर गई। उसने सोचा वस, ये चावल लेना ठीक है। इन से कुछ दिन काम चल जायेगा। चावलों की पोटली बांधकर ज्योंही वह जाने के लिए तैयार हुआ कि अकस्मात् उसे कुछ आवाज सुनाई दी।

कुछ दूरी पर राजा और रानी छत में सोए हुए थे। रानी के मुख पर चांदनी छिटक रही थी जिससे उसके मुख की शोभा और अधिक वढ़ गई थी। राजा की नींद खुल गई। रानी के मुख की सुन्दरता देखकर राजा का अभिमान जाग्रत हो गया। वह राजा कवि भी था अतः अपने वैभव का वर्णन करने के लिए श्लोक बनाने लगा। श्लोक के ये तीन चरण तो वह वना चुका मगर वार-वार दोहराने पर भी वह चौथा पद न वना सका।

चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूलाः सद्बान्धवाः सुजन गर्भरिश्च भृत्या। गर्जन्ति हस्तिनिवहा स्तरलास्तुरंगाः... ।।

इन तीनों पदों का अर्थ यह है कि मैं कैसा सौभागी हूं कि मुझे चित्त को चुराने वाली ये सुन्दरी युवतियां मिली हुई हैं। मेरे मित्र मेरे अनुकूल हैं। संसार में सन्मित्र का मिलना वड़ा दुर्लभ है। ऊपर से मीठा बोलने वाले और पेट में छुरी रखने वाले मित्र बहुत होते हैं। किन्तु मेरा सद्भाग्य है कि मुझे सच्चे मित्र मिले हैं जो सदा मेरे अनुकूल कार्य करते हैं। मेरे बांधव-भाई भतीजे भी वड़े योग्य हैं। मुझ से ईर्षा द्वेष न रखकर मेरे कार्य में सहयोग देते हैं।

दूसरों के बान्धव तो स्वयं राज्य करना चाहते हैं किन्तु मेरे बन्धु मेरे राज्य करने में सहायक है। मुझे राज्य करते देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती है। मुझे नौकर भी बड़े आज्ञाकारी मिले हैं। सदा मेरी सेवा में तत्पर रहते हैं। मेरे लिए रात–दिन एक कर डालते हैं। बड़े–बड़े दांतवाले मदोन्मत हाथी और चपल घोड़े मेरे यहां मौजूद हैं। अहा! मैं कितना भाग्यशाली हूं।

इस प्रकार तीन चरण बना कर राजा फूला न समा रहा था किन्तु बार बार परिश्रम करने पर भी वह चौथा चरण नहीं बना पा रहा था। तीन चरणों को ही बारम्बार दोहरा रहा था। वह विद्वान ब्राह्मण चोर, राजा द्वारा बारम्बार बोले जाते हुए इन तीन चरणों को सुन रहा था। उसके दिल में आया कि राजा को अपनी सम्पत्ति का गर्व हो गया है। मुझे जिस प्रकार काल का भय होता है। इसको वैसा भय नहीं है। इसका अभिमान चूर करना चाहिए। रोगी को कड़्वी औषधि पसन्द नहीं होती किन्तु उसके हित के लिए कड़्वी दवा देना आवश्यक है वैसे ही इस राजा को रुचे या न रुचे हितकारी शिक्षा देना चाहिए। मैंने चावल की चोरी की है, रत्न मुहर आदि की नहीं। पकड़ा मै अवश्य जाऊंगा। थोड़ी बहुत सजा दे लेगा। किन्तु हितशिक्षा देकर इस का अभिमान खंड़ित करना चाहिए।

ऐसा विचार करके उस ब्राह्मण ने राजा के श्लोक का चौथा चरण इस प्रकार बना कर बोल दिया।

'सम्मीलिते नयन किंचिदस्ति'

अर्थात्–नयन बन्द हो जाने पर अर्थात् मौत आ जाने पर यह सब ऋद्धि सिद्धि और ऐश आराम का साजोसामान कुछ नहीं हैं। किसी काम का नही है। आंख बन्द होने पर यह सब पराया हो जायेगा। जब काल उपस्थित हो जाता है तब ये सुन्दरी युवतियां और हाथी घोड़े आडे नही आ सकते।

ब्राह्मण द्वारा यह चतुर्थ पद सुनकर राजा चकित रह गया। अरे! इस वक्त गुरु के समान हित शिक्षा देनेवाला यह कौन हैं? अपने चौकीदार सिपाही को बुलाकर कहा कि देखो यह कौन व्यक्ति है, पकड कर मेरे सामने उपस्थित करो। राजाज्ञा होते ही अक्खड मक्कड़ खा की तरह सिपाही लोग दौंड और उस ब्राह्मण को पकड कर राजा के पास ले आये।

जाने पर ब्राह्मणने कहा कि चोरी करने के लिए आया हूं और ये चावल चुराये हैं। राजा ने गठरी खुलवा कर देखी तो वास्तव में उस गठरी में चावल ही निकले। राजा ने कहा कि तेरा दुर्भाग्य यहां भी साथ ही रहा जो रत्न, सुवर्ण, मुहरें, रुपये आदि छोड़कर केवल चावल चुराये हैं। चोर ने उत्तर दिया कि महाराज इसकी कथा लम्बी है। आपको जो सजा देनी हो दीजिये। इसकी कथा मत पूछिये। मैं ये चावल घर ले जाकर अपने बाल–बच्चों के साथ खाता। अब आपकी जेल में खाने पड़ेंगे।

राजा बड़ा बुद्धिमान था। उसने समझ लिया कि इस व्यक्ति का अज्ञान दूर हो गया। चोरी की है मगर मजबूरी के वशीभूत होकर की है। राजा द्वारा चोरी की कहानी सुनने का आग्रह करने पर ब्राह्मण ने कहा महाराज! कथा सुन लेने पर आप मुझे चोरी की सजा न देंगे। अतः न सुनना ही अच्छा है। किन्तु राजा के अति आग्रह करने पर ब्राह्मण ने आदि से अन्त तक सारी बात कह सुनाई। किस प्रकार जुआरी बना, किस प्रकार घर की चोरी करने लगा और अन्त में राजमहल में कैसे पहुंचा। रत्न, सुवर्ण और रुपयों की चोरी न करके केवल पेट भरने के लिए चावल ही क्यों चुराये आदि सब हकीकत कह सुनाई।

भाइयों! यह ब्राह्मण चोर रहा या साहूकार? इसने चावल की चूरी तो चुराई है मगर साथ में रत्न, सुवर्ण और रुपयों का मोह कितना त्यागा है। रत्न, सुवर्ण और रुपयों का लोभ छोड़ना बड़ा कठिन है। इस ब्राह्मण ने ज्ञान पूर्वक, विवेक पूर्वक रत्नादि का त्याग किया है। भयपूर्वक या अन्य किसी कारण से लोभ नहीं छोड़ा है किन्तु परलोक के भय से ज्ञान पूर्वक लोभ छोड़ा है।

राजा कहने लगा–ब्राह्मण! तुम्हारी हिम्मत प्रशंसा करने योग्य है तुमने सब बातें सच बता दीं। तुझे किंचित् भी डन न लगा। और मैं तुम्हारी विद्वत्ता पर भी मुग्ध हूं। बड़े यत्न के बावजूद भी मैं अपने श्लोक का चतुर्थ चरण न बना सका किन्तु तुमने तुरंत बना दिया और मेरा अभिमान गलित कर दिया। उसी वक्त राजा ने भण्डारी को बुलाकर हुक्म दिया कि इस ब्राह्मण को चावलों के बराबर तोलकर रत्न दे दो।

राजा की आज्ञा सुनकर ब्राह्मण कहने लगा–महाराज! मुझ पर यह क्या आपत्ति डाल रहे हैं? मैं गरीब ब्राह्मण इन रत्नों को कहां संभालूंगा। ये रत्न तो आपके खजाने में ही शोभा पावेंगे। उधर भण्डारी विचार करने लगा कि राजा यह क्या कर रहा है। चोर को सजा न देकर उल्टा रत्न दे रहा है। ऐसा करने से तो लोगों का हौसला बढ जायेगा और चोरों की तादाद बढ

जायेगी। भण्डारी ने अपने मन की बात राजा को कह सुनाई।

राजाने कहा—भण्डारी! तुम ऊपर ऊपर की बात देख रहे हो। बहुत सी बातें ऐसी होती हैं जो ऊपर से कुछ और नजर आती हैं मगर भीतर कुछ और होता है। असलियत समझना कठिन काम है। इस ब्राह्मण ने कितना त्याग किया है? रत्नादि के रहते हुए उन्हें न लेकर पेट पालने के लिए केवल चावल ही इसने चुराये हैं। इतना लोभ त्यागना कितना कठिन है। पहले तो ऐसा आदमी होना ही कठिन है। यदि है, तो भी मैं इसकी संभाल करूंगा।

जैसे राजा ने भण्डारी की आंखें खोली हैं, आप लोक भी अपनी आंखें खोलें। आप श्रावक हैं अतः आपके द्वारा अन्याय और अनीति पूर्वक व्यापार धन्धा न होना चाहिए। आप यदि संसार की माया पर न ललचा कर मर्यादापूर्वक जीवन व्यतीत करेंगे तो कभी दुःखी न होंगे।

कहने का मतलब यह है कि कोई बात बाहर से कैसी होती है और वास्तव में कैसी होती है, यह सबके समझ में नहीं आती। राजा भोज ने भण्डारी को जिस तरह वस्तुस्थिति का ज्ञान कराया था उसी तरह सनाथी मुनि भी श्रेणिक राजा को वस्तु स्थिति का बोध कराने के लिए कहते हैं कि राजन्! तुम सनाथ और अनाथ का वास्तविक अर्थ नहीं जानते हो। मैं अपनी आप बीती सुनाकर अनाथ शब्द का अर्थ तुमको बताता हूं।

मुनि राजा को अनाथ शब्द की जो व्याख्या सुनाते है, उसे सुनकर यदि आप भी त्याग करेंगे तो आत्मा का वास्तविक हित साधन होगा। जिन वस्तुओं का आप त्याग करते है, आप समझते होंगे कि हम उन्हें छोड रहे हैं। किन्तु दरअसल बात यह है कि जिन चीजों में मनुष्य चिपका रहता है वे उसकी होती ही नहीं है। जिनको छोड देता है—त्यागकर देता है वे ही वास्तव में उसकी बन जाती हैं। इस बात पर विश्वास लाकर जितना अधिक त्यागधर्म अपनाओगे आत्मा का भला होगा।

वात दूसरी है कि त्याग का फल कभी इस भव में मिलता है। कभी उस भव में। किन्तु फल अवश्य मिलता है। त्याग का फल निष्फल नहीं जाता। कहा भी है–

"नहि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात! गच्छति।"

भलाई का फल भलाई है और बुराई का फल बुराई है। आमके वृक्ष के आम्रफल ही लगता है और नीम के निमोली ही। कल्याण के काम से कल्याण ही होता है, अकल्याण नहीं हो सकता। कल्याणकारी काम करने वाला दुर्गति में नहीं जा सकता।

सुभग ने अपनी अंतिम अवस्था में शुभ ध्यान रूप क्रिया की थी। उसी के फलस्वरूप सुदर्शन सेठ बना है। शुभ से शुभ की वृद्धि होती है। शुभ परंपरा चालू रहती है। पर भाव में प्राप्त उसी शुभ भावना के कारण इस भव में भी सुदर्शन की विचारधारा बड़ी शुभ है। इस लोक और परलोक को सुध ारने के लिए वह विचार करता रहता है। अर्थ और परमार्थ का विचार करके अपना विवाह किया है। मनोरमा का भी सब प्रकार से विकास हो चुकने पर विवाह हुआ है। दोनों की बड़ी योग्य जोड़ी जुड़ी है।

आजकल कहा जाता है कि वर और कन्या को अपना साथी स्वयं ही चुनना चाहिए। बीच में किसी को न पड़ना चाहिए। माता पिता या अन्य गुरुजनों को बीच में दखल देकर युवक युवतियों के जीवन को दुःखमय बनाने में निमित्त न वनना चाहिए। जिन युवायुवतियों को जन्म भर एक साथ अपना जीवन व्यतीत करना है, उनका चुनाव उन्हें स्वयं करना चाहिए। किन्तु इस खयाल में थोड़ी भूल है। वर और कन्या के बीच में किसी बुद्धिमान और विवेकशील व्यक्ति की आवश्यकता रहती है। ऐसा न होने पर कभी कभी बड़ा अनर्थ हो जाता है। माता पिता और गुरुजन जो कि अपनी संतान के परम हितैषी होते हैं, अपनी जान में कभी खराब चुनाव न करेंगे। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि युवक युवतियों को अपना साथी चुनने में स्वयं कुछ भी भाग न लेना चाहिए। मेरे कहने का आशय यह है कि वुजुर्गी के ज्ञान और अनुभव का लाभ युवकों को लेना चाहिए। माता–पिता और गुरुजनों का भी कर्त्तव्य है कि वे लोभ के वशीभूत होकर अपनी कन्याओं और पुत्रों को अयोग्य जोड़ी में न वांधें।

वर विक्रय और कन्याविक्रय की वुरी प्रथा समाज में देखकर वडा खेद होता है। अमुक रकम देवे तभी हम कन्या दे सकते हैं और इतनी भेट(टीकाडोरा तिलक) मिलने पर ही अपने पुत्र का संवंध कर सकते हैं, यह

बुरी बात है। यह तो सौदा हुआ। सौदे में कन्या और लड़के के गुण दोषों की तरफ उतना ध्यान नहीं रहता जितना रकम की तरफ रहता है। क्या ऐसा करना केश वाणिज्य में शामिल नहीं होता? कन्या और वर का विक्रय महान् अपराध है। इस प्रथा को आप स्वयं बन्द कर दीजिये। वर्ना सरकार को इसे रोकने के लिए कानून बनाना पड़ेगा। सरकारी कानून के दबाव से किसी प्रथा को रोकने से बेहतर यही है कि आप स्वयं उस प्रथा को रोकदें।

बाल विवाह को बंद करने के लिए बहुत उपदेश दिया गया किन्तु लोग न माने। आखिर में सरकार को कानून बनाना ही पडा। यदि शास्त्र में प्रतिपादित 'सरिसावया सरिसातया' पर ध्यान दिया जाता तो सामाजिक बातों में सरकार को बीच में न पड़ना पड़ता। धर्मशास्त्र की हितकारी बातों पर ध्यान देकर ही अपना सुधार क्यों नहीं कर लेते। क्यों राज्य को अपने सामाजिक हक हकूकों में हस्तक्षेप करने का मौका देते हो।

सुदर्शन और मनोरमा का विवाह हो चुका। विवाह के पश्चात् दोनो ने अपने धर्म गुरु की साक्षी से श्रावक व्रत अंगीकार किए। बहुत से लोग विवाह का अर्थ बहुत संकुचित करते हैं। विषयेच्छा या वासना पूर्ति के लिए विवाह की कल्पना करना कितनी निकृष्ट कल्पना है। वस्तुतः स्त्री और पुरुष विवाह की सांकल में बंध कर धर्माराधन में एक दूसरे के सहायक बने तभी विवाह की सार्थकता है।

दोनों ने गुरु के समक्ष व्रत धारण किये हैं, इस मे भी कुछ रहस्य रहा हुआ है। आजकल ऐसी धारणा युवक वर्ग में फैली हुई हैं कि गुरु या अन्य लोगों की साक्षी से व्रत नियम लेने की क्या आवश्यकता है। जो कुछ नियम या प्रतिज्ञा लेनी हो स्वयं ही ले लेना चाहिए। दिखावा करने की क्या जरूरत है। किन्तु इस धारणा में भूल है। गुरु के समक्ष या जाहिर त्याग प्रत्याख्यान करने से कभी उस त्याग प्रत्याख्यान को छोड़ देने का भी मन हो जावे तो लोक लज्जा के कारण भी पतन रुक जाता है। कई लोगों का ऐसा अनुभव सुना गया है कि मन ही मन में नियम लिए और जब मन ढीला हो गया कि नियम तोड़ डाले। यदि वे अन्य की साक्षी से नियम लेते तो नियम तोड़ते वक्त विचार करना पड़ता और मन को मजबूत बना कर नियम पर कायम रहना पड़ता।

ग्रहीत व्रत नियम को छोड़ने की इच्छा हो जाती है। यह तो मन की तरंग है ऐसी साधारण तरंगें लोक लज्जा से रुक जावें तो क्या हरज है? कालान्तर में पुनः मन मजवूत हो जाता है और प्रतिज्ञा पालन का आनंद आने लगता है अतः व्रत नियम गुरु साक्षी से लेना अच्छा है।

मान लीजिए आप ने झूठी साक्षी देने का त्याग किया है। यदि वह त्याग लोगों की साक्षी में किया है तव तो कोर्ट में जाकर किसी के लिए झूठी साक्षी देने में आपको विचार करना पड़ेगा कि यदि मैं झूठी गवाही दूंगा तो लोगों की निगाहों में गिर जाऊंगा। इन्हीं कारणों से साक्षी पूर्वक नियमादि लेने की हमारी परम्परा है। मनोवल को कायम रखने में इससे बड़ी मदद मिलती है।

आनन्द श्रावक और उसकी स्त्री शिवानन्दा ने जिस तरह व्रत धारण किये थे उसी तरह सुदर्शन और मनोरमा ने भी बारह व्रत धारत किए हैं। दोनों शरीर और छाया के समान रहते हैं। छाया शरीर के बिना नहीं रह सकती। दोनों साथ रहते हैं। शरीर के झुकने पर छाया भी झुकती है। दोनों समान धर्म का पालन करते हैं और सुख पूर्वक रहते हैं। पूर्व जन्म के पुण्योदय के प्रताप से ही ऐसी योग्य जोड़ी जुड़ा करती है। सीता और राम की तरह स्त्री पुरुष की जोड़ी मिलना दुर्लभ वात है। वह घर स्वर्ग है जिसमें स्त्री और पुरुष में आपस में मीठा संवंध होता है। दोनों एक दूसरे का मन रखते हुए प्रेम व्यवहार करते हैं।

नवकार मंत्र के प्रभाव से ही सुदर्शन और मनोरमा की जोड़ी जुड़ी है। अच्छी भूमि में ही वीज उगता है और फूलता फलता है। नवकार मंत्र रूपी भूमि में यह जोड़ी विकसित हुई है। इन दोनों के माता पिता भी ऐसी योग्य जोड़ी देखकर मन ही मन प्रसन्न होते थे और मन में ख्याल लाते थे कि हमारी ही प्रतिकृति इन में उतर आई है। ग्रन्थों में लिखा है कि माता पिता को समझना चाहिए कि पुत्र हमारे शरीर में से ही निकला है। जिस प्रकार वैक्रिय लब्धि से एक शरीर में से दो शरीर वनाये जाते हैं उसी प्रकार पिता के शरीर में से पुत्र उत्पन्न होता है। आप हम देखते ही हैं कि पिता की आकृति तक पुत्र में उतर आती है।

सुदर्शन और मनोरमा स्थिर चित से धर्माराधन कर रहे हैं। अव आगे क्या होता है, इस का विचार आगे ज्ञात होगा।

राजकोट

1.8.1936

ब्रह्मचर्य की महिमा

कुन्थु जिन राज तू ऐसो, नहिं कोई देव तो जैसो।

प्रार्थना:– यह सत्रहवें तीर्थकर भगवान् कुन्थुनाथ की प्रार्थना है। आत्मा परमात्मा को किस प्रकार गावे, ध्यावे और मनावे इसकी अनेक रीतियां ज्ञानियों एवं भक्तों ने विविध प्रकार से प्रार्थनाऐं करके अपने भावोद्गार के रूप में जनता के सामने रख दी हैं। ईश्वर तक पहुंचने के लिए अनेक मार्ग हैं। फिर भी हम साधारण जन किसी एक साधारण मार्ग पर लग जावें तभी हमारा एकीकरण हो सकता है और सफलता मिल सकती है।

बड़े–बडे ज्ञानी और भक्त–जन किस तरीके से भगवान की प्रार्थना करते है यह बात उन्हीं के लिए सुलभ रहे। हमारे लिए उनका अपनाया हुआ तरीका काम नहीं आ सकता। हम अभी नीची भूमिका पर है अतः हमारे लिए प्रार्थना का कोई साधारण तरीका ही उपयुक्त हो सकता है। अतः हमें यह देखना है कि प्रभु में तन्मय होने के लिए हमारे लिए कौनसा मार्ग सरल और सुलभ है। कई लोगों को इसकी जिज्ञासा होती है। प्रभुमय बनने के लिऐ मार्ग खोजते रहते है।

विश्वास है कि इर इन्सान में परमात्मा की शक्ति व खेल विद्यमान हैं। यही विश्वास शास्त्रों में व्यक्त किया गया है।

मुझे आज श्री संघ की तरफ से ब्रह्मचर्य के संवध में अपने विचार प्रकट करने के लिए कहा गया है। किन्तु प्रार्थना मेरी आत्मा का विषय है अतः उस पर कुछ कहे विना मुझ से नहीं रहा जाता। प्रार्थना के विषय में कुछ कहने से मेरी आत्मा को शान्ति मिलती है। मुझे शान्ति मिलने से आपको भी लाभ होगा।

मैंने जो प्रार्थना बोली है वह मेरे अकेले की नहीं है। किन्तु आप हम सव की है। आप कहेंगे कि हम लोगों की मंशा जाने विना किस आधार पर से कहते हैं कि यह प्रार्थना सव लोगों की है। जवर्दस्ती किसी पर कोई वात लादना कहां तक उचित है। किन्तु मैं कहता हूं कि आप चाहे ऊपर से ऐसा कहें परन्तु मेरा तो दृढ विश्वास है कि प्रार्थना के विना कोई भी व्यक्ति जीवन नहीं विता सकता।

एक आदमी कहता है कि मुझे सूर्य के प्रकाश की जरूरत नहीं है। मैं अन्य प्रकार के प्रकाश से काम चला लेता हूं। क्या इस आदमी का कहना सत्य है? कदापि नहीं। सूर्य प्रकाश के विना जीवन टिक ही नहीं सकता। रक्त की गति ही वन्द हो जावे और जीवन खत्म हो जावे। अतः सूर्य प्रकाश को अनावश्यक वताने वाला भूल करता है। सूर्य प्रकाश सव के जीवन के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है अतः वह सर्वत्र सुलभ भी है। कोई उसे स्वीकार करे या न करे वह सव के लिए उपस्थित ही रहता है। जो उसे गाली दे या उसकी हस्ती को ही न माने उसके लिए भी वह मौजूद रहता है और लाभ पहुंचाता है। किसी के साथ भेदभाव का वर्ताव नहीं करता।

जव भौतिक सूर्य के संवंध में भी ऐसी वात है, तव परमात्मा के लिए क्या कहना। परमात्मा के लिए कहा गया हैः—

सूर्यातिशायि महिमासि मुनीन्द्र लोके

अर्थात् परमात्मा की महिमा, तेज सूर्य के तेज से भी वढकर है। अनन्त सूर्यों के प्रकाश से भी परमात्मा का ज्ञान रूपी प्रकाश वढ कर है। उस प्रकाश के विना जीवधारी प्राणी का क्षण भर के लिए भी काम नहीं चल सकता। आप शंका करेंगे कि सूर्य को तो हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं, किन्तु परमात्मा हमारी नजर में नहीं आता। तव कैसे मान लें कि परमात्मा है और उसकी प्रार्थना करना जरूरी है। इसका उत्तर इतना ही कि इन चमड़े की आंखों से परमात्मा दिखाई नहीं देता तो क्या हृदय चक्षु से भी नहीं दिखाई देता? परमात्मा का वास हृदय में है। एकाग्रता पूर्वक ध्यान करने से उसकी

सत्ता का बोध हो सकता है। बहुत सी बातें ऐसी हैं जो चर्म चक्षुओं से नहीं दिखाई देतीं किन्तु हैं अवश्य और उन पर विश्वास भी करना पडता है।

ज्ञानीजन कहते हैं कि हमारे पर विश्वास रखकर परमात्मा की प्रार्थना करो। कभी न कभी आपको भी उसकी सत्ता का ज्ञान हो जायेगा। बचपन में आपको ज्ञान न होने पर भी माता के कथन पर विश्वास लाकर आप सांप आदि विषैले जानवरों से दूर रहे हैं। इससे आपको लाभ ही हुआ है। जब माता के कथन पर विश्वास करने से भी आपको लाभ हो सकता है तो अंन्नत माहृदय धारण करने वाले परम कृपालु ज्ञानियों के कथन पर विश्वास करने से आपकी हानि कैसे हो सकती है ? अतः माता पर विश्वास लाइये और सदा उसकी प्रार्थना करिये। हमारे लिए एक साथ मिलकर तन्मयता पूर्वक उसके भजन गाना प्रार्थना का सर्वसाधारण तरीका है।

अब यह प्रश्न होता है कि परमात्मा पर विश्वास क्यों नहीं होता। इसका कारण है विश्वास की कमी और साधन का अभाव। ईश्वर पर विश्वास लाने के साधनों में ब्रह्मचर्य एक महान साधन है।

ब्रह्मचर्यः – ब्रह्मचर्य किसी की ऊपरी उपज नहीं है किन्तु ज्ञानियों के हृदय की उपज है जिन ज्ञानियों ने साधना करके अन्य अनेक सिद्धात निश्चित किये हैं उन्हीं ज्ञानियों ने स्वानुभव के आधार से ब्रह्मचर्य का सिद्धान्त भी कायम किया है। ब्रह्मचर्य ऐसा विषय है जिस पर अनेक व्याख्यान दिए जावें तब भी उसकी व्याख्या और वर्णन पूरे नहीं हो सकते। एक दिन के एक व्याख्यान में उसके स्वरूप का वर्णन कैसे हो सकता है। फिर भी उसका वर्णन तो करना ही है। अतः पूर्ण को अपूर्ण रूप से कहता हूं सो सावधान होकर सुनिये।

संसार में कोई भी ऐसा मजहब या धर्म नहीं है जिसने अपने धर्मशास्त्र में ब्रह्मचर्य के गुणगान न किए हों अन्य शास्त्रों के प्रमाण उपस्थित करने के पहले मै जैनशास्त्रों से ही इस विषय में कुछ बताता हूं। जैन शास्त्र में कहा हैः–

जम्बु एत्तो य बंभचेरं तवनियम नाण दंसण चरित्त, सम्मत विणयमूलं।
यमनियम गुणप्पहाण जंत्त हिमवंत महंत तेयमंत पसत्थ गंभीर थिमिय मज्झ।

भगवान सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बु अनगार से कहते है कि हे

पहले यह मालूम करें कि ब्रह्मचर्य कहते किसे है? ब्रह्मचर्य में दो शब्द हैं। एक ब्रह्म दूसरा चर्य। ब्रह्म का अर्थ है आत्मा और उसके ज्ञान, दर्शन चारित्र वल वीर्य क्षमा संतोष आदि गुण। ब्रह्म शब्द में सब सद्गुणों का समावेश हो जाता है। इन सद्गुणों में रमण करना, विचरना ब्रह्मचर्य कहलाता है। चर्य का अर्थ है विचरना, रमण करना। गुणों में तल्लीन रहना ही ब्रह्मचर्य का अर्थ है।

सुधर्म स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं कि जिस प्रकार वृक्ष में जड डाली पत्ते फल फूल आदि होते हैं। किन्तु इन सब का आधार मूल है। मूल के विना फल फूल नहीं हो सकते। इसी प्रकार सब उत्तम क्रियाओं का आधार ब्रह्मचर्य है हां ब्रह्मचर्य है वहीं तप नियम आदि उतम क्रियाएं हैं। शुभ क्रियाओं में तप श्रेष्ठ किया है। इसीसे इसे पहले वताया गया है। तप भी ब्रह्मचर्य के विना नहीं हो सकता। कहा भी है:– **तपो वै ब्रह्मचर्यम्।**

अर्थात् ब्रह्मचर्य ही तप है। जिस तप में ब्रह्मचर्य नहीं है वह तप ही नहीं हो सकता। जब मूल ही न होगा तो शाखाएं कहां से होंगी। विना ब्रह्मचर्य की तपस्या काया क्लेश मात्र है।

इसी प्रकार नियम ज्ञान दर्शन चारित्र सम्यक्त्व विनय आदि का मूल भी ब्रह्मचर्य है। यम यानी महाव्रत और नियम यानी त्याग प्रत्याख्यान। ब्रह्मचर्य पालन किए विना महाव्रत ग्रहण करने और त्याग प्रत्याख्यान करने का कोई अर्थ नहीं होता। पर्वतों में जैसे हिमवान्–हिमालय वडा है वैसे ही यम नियमों में ब्रह्मचर्य महान् है।

आपने हिमालय पर्वत चाहे न भी देखा हो किन्तु उसके कारण आपको जो सुख शांति मिलती है उस पर यदि विचार करेंगे तो आपको मानना पड़ेगा कि उसका आप पर कितना महान् उपकार है। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य की शक्ति पर विचार करने से आपको यह मानने के लिए वाध्य होना पडेगा कि आप में जो शक्ति है वह ब्रह्मचर्य की ही देन है। आप ब्रह्मचर्य की जितनी महिमा जानते हैं, शास्त्रों में उससे कई गुनी महिमा वताई हुई है।

कदाचित् आप कहें कि शास्त्रों में ब्रह्मचर्य का जेसा चमत्कार वताया गया है, वैसा चमत्कार आजकल क्यों नहीं दिखाई देता। क्यों नहीं आजकल भी शूली का सिंहासन होता हुआ दिखाई देता। वैसी हालत में कैसे मानें कि शास्त्रीय वर्णन सत्य है। इसका उत्तर यह है कि ऐसे चमत्कार आपके देखने

में नहीं आते किन्तु आपकी कल्पना में तो आते हैं न? आप कहेंगे कल्पना में आया हुआ चमत्कार क्या काम का है। लेकिन कई बातें ऐसी होती हैं जो साक्षात् दीखने पर ही काम आती हैं और कई ऐसी भी होती हैं जो कल्पनामात्र से ही काम की होती हैं। यह बात मैं जबर्दस्ती मनाना नहीं चाहता किन्तु यदि आप गहराई से सोचेंगे तो मानना पड़ेगा।

आज बुद्धिवाद का जमाना है। अतः हर बात बुद्धि की कसौटी पर खरी उतरने पर ही मानी जाती है। मैं भी यही कहता हूं कि मेरी बात को हृदय की कसौटी पर कसकर मानिये। प्रश्न यह है कि जो बात कल्पना में है वह हमारे दिमाग में कैसे आवे। इसके लिए दृष्टांत आपके सामने रखता हूं।

स्कूलों में ज्योमेट्री पढ़ने वाले छात्र–रेखा गणित में भूमध्य रेखा मानकर एक लकीर खींचते हैं। किन्तु वास्तव में भूमध्य रेखा होती ही नहीं है। केवल उसकी कल्पना की जाती है। भूमध्य रेखा की कल्पना किए बिना काम नहीं चल सकता अतः कल्पना करनी पड़ती है। इसी प्रकार पूर्ण ब्रह्मचर्य में सर्व शक्ति विद्यमान है यह बात यदि शास्त्रीय कल्पना ही हो तो भी आपको स्वीकार करने में क्या बाधा है। इस कल्पना को दृष्टि में रखकर यदि आप ब्रह्मचर्य की ओर गति करो तो आपको लाभ ही होगा। जैसे रेखा–गणित में भूमध्य रेखा मानना आवश्यक है वैसे ही ब्रह्मचर्य के लिए पूर्ण ब्रह्मचर्य को आदर्श मानना जरूरी है। फिर चाहे यह आदर्श कल्पना का ही क्यों न हो। आंशिक ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए पूर्ण ब्रह्मचर्य का लक्ष्य सामने रखे बिना काम नहीं चल सकता। इस कल्पना में लाभ है, नुकसान कुछ भी नहीं है।

यह तो पूर्ण ब्रह्मचर्य की बात हुई। अब यह देखना है कि अपूर्ण ब्रह्मचर्य कैसा होता है और अपूर्ण ब्रह्मचर्य में से पूर्ण ब्रह्मचर्य तक कैसे पहुंचा जा सकता है। ज्ञानी कहते हैं कि समस्त इन्द्रियों पर काबू रखना, उन्हें विषयोपभोग की तरफ न जाने देना पूर्ण ब्रह्मचर्य है। केवल वीर्य–रक्षा करना यह अपूर्ण ब्रह्मचर्य है। आज वीर्य रक्षा तक ही ब्रह्मचर्य की सीमा मानी जाती है किन्तु वस्तुतः समस्त इन्द्रियां और मन को विषय वासना की तरफ न जाने देना ही ब्रह्मचर्य की पूर्ण सीमा है।

उत्तराध्ययन सूत्र के सोलहवें अध्ययन की नियुक्ति में ब्रह्मचर्य के चार भेद बताये हैं। 1 नाम ब्रह्मचर्य 2 स्थापना ब्रह्मचर्य 3 द्रव्य ब्रह्मचर्य 4 भाव ब्रह्मचर्य। जो नाम से ब्रह्मचारी पुकारा जाता है किन्तु ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करता वह नाम ब्रह्मचर्य वह नाम ब्रह्मचर्य है। कई लोग दुनियां में अपने को अच्छा कहलाने के लोभ से ब्रह्मचर्य का नाम धराते हैं किन्तु उसका पालन नहीं करते। वे अपने को और दुनिया को दोनों को ठगते हैं। हीरा मोती पहनने वालों का लोगों में आदर देखकर कई लोग नकली (कलचर) हीरा–मोती पहनकर दुनिया का आदर प्राप्त करने की कोशिश करते हैं किन्तु सच्चाई छिप नहीं सकती। उनका यह कार्य नखरे दिखाकर दुनिया को ठगने के सिवा और कुछ नही है।

स्थापना ब्रह्मचारी वह है जो स्वयं तो ब्रह्मचर्य नहीं पालता किन्तु ब्रह्मचारी की मूर्ति स्थापित कर उसको मानता है। उससे अपना कार्य सिद्ध होना मानता है। किन्तु इससे उसको कोई लाभ नहीं हो सकता। जिस गुण के कारण उसकी मूर्ति मान रहे हो उस गुण का पालन स्वयं करोगे तभी लाभ हो सकता है।

तीसरा द्रव्य ब्रह्मचर्य है। शारीरिक शक्ति प्राप्त करने के लिए जो ब्रह्मचर्य पाला जाता है वह द्रव्य ब्रह्मचर्य है। इससे शारीरिक शक्ति मात्र प्राप्त होती है। कहा भी है:– ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः

वीर्यरक्षा से बड़े लाभ होते है। आज देश में दरिद्रता, रोगशोक आदि फैले हुए है। इनका कारण लोगों का वीर्यशाली न होना है। वीर्य का नाश इस तरह किया जाता है जैसे कोई कूड़ा करकट हो। वीर्य की शक्ति का अन्दाजा न लगाकर लोगों ने उसको नष्ट करने और विषय भोग भोगने में आनन्द मान रखा है। जब अधिक संतानें हो जाती है तब अपनी जिम्मेवारियों से घबराकर दुःखी होते हैं। बहुसंतति से घबराते हैं मगर मैथुन नहीं छोड़ सकते। भारतवासियों के लिए यह बात बहुत ही विचारणीय है। भारत ने ब्रह्मचर्य का महत्व समझा हुआ है। इस देश में ऐसे महान् ब्रह्मचारी हुए हैं जिन्होंने महान् शक्तियां प्राप्त करके जगत के समक्ष आदर्श उपस्थित किया है।

यह दुर्भाग्य की बात है कि इस देश के निवासी भी पश्चिमात्य देशों की नकल करके संततिनिरोध के लिए कृत्रिम उपाय काम में लाने लगे हैं। यह घोर अन्याय है। जिस देश का आदर्श ही पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करना हो उसके निवासी कृत्रिम उपायो से संततिनिरोध करें इससे बढ़ कर शर्मजनक बात और

क्या हो सकती है। संततिनिरोध करने का प्रामाणिक उपाय ब्रह्मचर्य का पालन और वीर्य रक्षा ही है। वीर्य को व्यर्थ नष्ट करने के समान अन्य कोई अन्याय नहीं हो सकता।

आप विचार करेंगे तो मालूम होगा कि आप में जो शक्ति और साहस है वह वीर्य के प्रताप से ही है। यदि मनुष्य शरीर में वीर्य न रहे तो चलना फिरना, उठना बैठना आदि सब बन्द हो जाय। आंशिक वीर्य नाश से भी मनुष्य ढीला हो जाता है, निःसत्त्व बन जाता है और उत्साह, स्फूर्ति, कर्तृव्य शक्ति आदि सब नष्ट हो जाते हैं। वीर्य रक्षा से उक्त गुण प्राप्त हो सकते हैं। जिस वीर्य के रक्षण से मनुष्य बाल सफेद हुए बिना, दांत गिरे बिना, आंख नाक और कान की शक्ति कमजोर हुए बिना सौ वर्ष तक जिन्दा रह सकता है उस वीर्य शक्ति को नीच कामों में क्षणिक सुख के लिए नष्ट कर डालना कितना हानिकर कार्य है। ब्रह्मचर्य से लोगों को प्रेम तो है मगर कोरीबातों के प्रेम से क्या काम चल सकता है। ब्रह्मचर्य संबंधी सादे नियमों का पालन भी नहीं होता। इसी से सारी खराबी है।

चौथा भाव ब्रह्मचर्य है। भाव ब्रह्मचर्य के शास्त्रकारों ने दस नियम बताये हैं। ये दस नियम पूर्ण ब्रह्मचर्य और मुनि के लिए हैं। अपूर्ण ब्रह्मचर्य के लिए भी ये दस नियम हैं जो विवाहित और अविवाहित, युवक और वृद्ध सब के लिए लाभप्रद हैं। आप लोग भी इन नियमों पर विश्वास लाकर इनका पालन करिये। आपने शरीर की अन्य बीमारियों की दवा की होगी, किन्तु अब्रह्मचर्य की दवा न की होगी। ये दस नियम वीर्य रक्षा करने की दवा हैं, इस दवा का सेवन कर के देखिये कि कितना लाभ होता है।

पहला नियम भावना है। भावना का बड़ा प्रभाव होता है, माता पिता को यह भावना रखनी चाहिए कि मेरी संतान वीर्यवान और जग कल्याणकारी हो। आप लोगों को अनेक प्रकार के स्वप्न आते होंगे। सब भिन्न भिन्न स्वप्न क्यो आते है ? भावना के भिन्न होने के कारण स्वप्न भी भिन्न-भिन्न आते हैं। जिसकी जैसी भावना होती है उसे स्वप्न भी वैसा ही आता हैं। इसी प्रकार संतान के विषय में माता पिता के जैसे विचार होंगे संतान के विचार भी वैसे ही होंगे। जैसे भावना से स्वप्न का निर्माण होता हैं वैसे ही माता पिता की भावना से संतान के भावो पर गहरा असर पड़ता हैं। यह प्रभाव गर्भावस्था से ही आरंभ हो जाता हैं। अच्छे या बुरे स्वप्न हम स्वयं बुलाते हैं। अतः संतान और अपने विषय में ब्रह्मचर्य की भावना रखनी चाहिए।

कई लोग समझते है कि जिसके खाने से आनन्द आवे वही भोजन है। किन्तु यह विचार भूल भरा है। ब्रह्मचारी और अब्रह्मचारी के भोजन में बड़ा अन्तर है। गीता में रजोगुणी, तमोगुणी और सतोगुणी भोजन अलग अलग बताये गये हैं। वैदिक ग्रंथों में भी ब्रह्मचारी का भोजन भिन्न प्रकार का बताया गया है। किन्तु आज अधिकांश लोग जबान के वशीभूत होकर खाने के गुलाम बने हुए हैं। जो अपनी जीभ पर भी काबू नहीं रख सकता वह लंगोट पर काबू कैसे रखेगा। विद्या पढ़ने और शास्त्र सुनने का फल यह है कि अपनी इन्द्रियों पर काबू रखना। इन्द्रियों में भी रसना इन्द्रिय सब में मुख्य है जिस पर काबू रखना सर्वप्रथम कार्य है। इस रसना इन्द्रिय को पुष्ट करने से अन्य चारों इन्द्रियां पुष्ट होती है। इसको भूखा रखने से अन्य इन्द्रियों का बल भी क्षीण हो जाता है। भोजन का असर हमारे शरीर और मन पर कितना पडता है यह स्वतंत्र विषय है जिस पर लम्बा विवेचन आवश्यक है। अभी तो मैं इतना ही कहता हूं कि हमारे मन को बिगाड़ने और इन्द्रियों में उत्तेजना पैदा करने में यह प्रधान कारण है। अधिक शक्कर और मिर्च मसालेदार पदार्थों का ब्रह्मचर्य के खंडन में तत्काल असर होता है।

आजकल खाने पीने के संबंध में लोग भान भूले हुए हैं। ऐसा मालूम देता है मानों पढ़ाई का फल बेभान बनने में ही हो। चाय पीने का शौक आजकल इतना बढ़ गया है कि कुछ कहा नहीं जाता। कोई रोगी दवा के रूप में इसका उपयोग करे यह बात जुदी है। मगर माताएं प्रतिदिन अपने बच्चों को चाय पिलावें और मानें कि इससे बच्चों में तेजी और स्फूर्ति आती है, कितनी गलत धारणा है। चाय से तेजी और स्फूर्ति आती है यह बात किसी से पूछी है या स्वयं ही धारणा वांध ली है? आज चाय ने लोगों पर किस प्रकार आधिपत्य जमा रखा है, इस पर एक कवि कहता है:–

चाय तारी चाहना, ज्यां त्यां विशेषे वधी पड़ी।
मोंह फाड़ता मुंह वाटती, तुझ माटे तलखे जीभड़ी।।
दांतन कर्यो के ना कर्यो, पर रांड तूं तो झट खड़ी।
तारा विना हिन्दुस्तान मां, एक जोयो मलतो नथी।।
चटकी बस नहीं तुं एटले, जहां शाक लेवा जन जता।
अगर मां सुख शांति गृह मां, देखी तुझने पेसतां।।
टकवाद पिण थारा थतो, वलि जगवूं तुझ जाप थी।
नाशी गयो दूध दही, पापिनी तुझ पाप थी।।
मिजमान भी आव्या घरे, सत्कार तारा थी थतो।

उत्सव अने मजलिस विषे, वैभव न तुझ बिन छाजतो।।
नाटक विषे चेटक विषे, मुसाफरी मां तुं खड़ी।
खूब रग फड़फड़ती, कलेजो बाली ने करी ठीकरी।।
आचार भ्रष्ट कर्यो बावली, जागवूं तुझ नाम थी।
करी मंद जठराग्नि ने, धातू ने बाली नाखती।।
चूडेल चूसे रक्त निशिदिन, रोजना रोगी वर्या।
आश्चर्य वैद्य हकीम डाक्टर, सर्व ने तें वश कर्या।।
जे न्याय ना देनार, न्यायाधीश पण तुझ ने कर्या।
फर्याद तारी क्यां करुं, सर्व ने तें वश कर्या।।
भूजल भूल्यो तने हूं लेतां, तूं बेचारी शूं करे।
आंखो लखी जन अन्ध थइने, लई दीप कूवे पड़े।।
सर्प छे छेड्यो सुतेलो, तेने करड़तां शु वार हे।
छेड़ी तने वलगी पड़ी तुज दोष नहीं छे लिगार हे।।

घोर अंधेरा छाया हुआ है। जिससे लोग अंधा धुंधी की ओर जा रहे है। जिसको नागिन कहा जाता है उसको यदि आप माला मानकर गले में धारण कर लें या घर में रख लें, तो क्या यह नही कहा जावेगा कि आप अंधेरे में हैं ? आप कहेंगे नागिन को घर में कौन स्थान देगा? किन्तु मैं पूछता हूं चाय क्या नागिन से कम है? जो समय प्रातःकाल का ईश्वर भजन करने का है उस वक्त इस गरमागरम नागिन को पेट में डाल लेते हैं। किसी अच्छे डाक्टर से पूछिये कि चाय पीने से क्या हानिया होती हैं। चाय से धातु क्षीण होता है। इंद्रियो मे झूठी उत्तेजना पैदा होती है। इसकी फरियाद की जावे तो किसके सामने की जावे। बड़े-बड़े जज और डाक्टर भी इसके काबू है। वे इसकी बुराई कैसे बतावें। महात्मा गाधीजी ने इसके अवगुणो पर अच्छा प्रकाश डाला है। मैं भी आप लोगो से कहता हू कि यह अच्छी चीज नहीं है ब्रह्मचर्य की घातक है। अतः इसका त्याग करने में ही श्रेष्ठ है।

—·-

अतः आहार का विचार रखना ब्रह्मचारी के लिए परम आवश्यक है। कौनसी वस्तु शरीर मन और बुद्धि पर क्या असर करती है यह जानकर ही उसका उपयोग करना चाहिए। भोजन स्वाद के लिए न करके शरीर और मन को स्वस्थ, पुष्ट और विकारहीन बनाने के उद्देश्य से करना चाहिए। कोरी चर्बी बढ़ा लेना स्वास्थ्य का चिन्ह नहीं है। मन मजबूत बनाना और विकारों को काबू में रख सकने की सामर्थ्य प्राप्त करना जीवन का ध्येय होना चाहिए।

बालक और युवक का खाना भिन्न–भिन्न है। इसी प्रकार सधवा और विधवा की खुराक भी भिन्न होनी चाहिए। विधवाओं को अपने शील की रक्षा के लिए विकृतिहीन भोजन करना चाहिए तथा कुमारीकाओं को भी सात्त्विक भोजन लाभप्रद होता है। खान पान का विचार न रखने से तथा भावना अशुद्ध रहने से लड़कियां अपरिपक्व उम्र में ही ऋतुमती हो जाती हैं। उनकी संतान भी कमजोर होती है। प्रसूतिकाल में स्त्रियों की अधिक मृत्यु संख्या भी इसी बात की ओर संकेत करती है।

तीसरा पोषाक पर ध्यान रखना। पोषाक का भावना के साथ बड़ा संबंध है। यदि पोषाक चटकीली होगी तो हमारे कारण दूसरों की भावनाओं में विकार आ सकता है तथा कभी हमारा भी पतन हो सकता है। हम साधु लोग ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं अतः हमें पोषाक–वेष पर बहुत ध्यान रखना पड़ता है। यदि हम लोग रंगीन वस्त्र पहन लें तो आप लोग उपालम्भ देने लगेंगे और कहेंगे कि साधुओं को रंगीन वस्त्र पहनना अनुचित है। जिस तरह साधुओं के वस्त्रों पर आप ध्यान देते हैं उसी तरह अपने वस्त्रों पर भी ध्यान क्यों नहीं लगाते। कई लोग कहते हैं, वस्त्रों में क्या है। किन्तु वे लोग यह नहीं सोचते कि भड़कीली पोषाक चित्त में खराबी पैदा करती है। लज्जा ढांकने के लिए सादी पोषाक से काम चल सकता है तो चर्बी युक्त फेन्सी वस्त्र पहनने में क्या विशेषता है। वस्त्र पर राग द्वेष रखने का प्रश्न नहीं है। खादी की उत्पत्ति अल्पारंभ से है जबकि विलायती वस्त्र की महारम्भ से है।

इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि खादी की उत्पत्ति कब से है और मिलवस्त्रों की कब से। खादी बनाने की कला भगवान ऋषभ देव ने बताई है। मिलों की उत्पत्ति आधुनिक है। क्या ऋषभदेव मिल विज्ञान से अनभिज्ञ थे जो हाथ से खादी बनाने की कला बताई। नहीं, वे इस कला को जानते थे किन्तु मानव समाज का इस में हित न देख कर इसे नहीं बताया। जनता का जीवन भी निभ जाय और किसी प्रकार की हानि भी न हो ऐसी कला उन्होंने बताई थी। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में कहा है कि– जणहियट्ठयाए

अर्थात् जनता के हित के लिए कलायें बताई गई हैं। मतलब यह है कि पोषाक पर ध्यान देना ब्रह्मचारी के लिए अत्यावश्यक है जो लोग फैशनेबल वस्त्र पहनते है वे एक बार सादे वस्त्र पहनकर अनुभव करें कि जीवन का कैसा असर होता है। कई लोग तर्क करते हैं कि खादी पहनने वाले भी तो लुच्चे लफंगे होते हैं। इसका उत्तर इतना ही है कि साधुवेष धारियों में लुच्चे लफंगे नहीं होते? इस तरह की बातें तो चलती रहती हैं। इससे सादी पोषाक का महत्व घट नहीं सकता। कहावत है कि फैशन की फांसी और सादगी आबादगी।

वीर्यनाश का एक कारण स्त्री पुरुषों का एक ही मकान या एक ही बिस्तर पर सोना भी है। एक मकान या बिस्तर पर सोने से वीर्य स्थिर नहीं रह सकता। मन में कमजोरी आते ही पतन हो जाता है। शास्त्रों में जहां भी स्त्री और पुरुषों के सोने का वर्णन आया है वहां भिन्न भिन्न शयनागारों का जिक्र है। उनका शारीरिक संबंध अवसर पर ही होता था। बिना अवसर के नहीं होता था इसीलिए उनकी संतानें भी शक्तिशाली होती थी।

निकम्मा रहना भी वीर्य नाश का एक कारण है। जो लोग शरीर और मन को काम मे लगाये नहीं रहते उनका वीर्य स्थिर नही रह सकता। शरीर और मन को काम में लगाये रहने से व्यर्थ के विचार नही आ सकते। बिना काम के शरीर और दिमाग में शैतान का वास माना जाता है। रात को देरी से सोना और सूर्योदय के बाद तक सोते रहने से भी वीर्य नाश को मदद मिलती है। अश्लील साहित्य पढना और अश्लील चित्र देखना भी ब्रह्मचर्य के लिए घातक है। आज कल देखा जाता है कि अश्लीलतापूर्ण साहित्य- उपन्यास और कथाएं छात्र छात्राएं बडे शौक से पढते हैं। बहनें भी ऐसी पुस्तकें पढती है। उनको सतियों के चरित्र मिलते ही नही। मिल गये तो पढने का चाव ही नही है। गन्दा साहित्य पढने से गंदे विचार बनेंगे। और गंदे विचार होने से येन केन प्रकारेण वीर्य नाश हुए बिना नही रह सकता।

नाटक सिनेमा देखना और श्रृंगार रस पूर्ण गाने सुनना भी वीर्य रक्षा मे बाधक है। वर्तमान युग में सिनेमाओ की धून बहुत बढी हुई है। मिलों व कारखानों के पास ही सिनेमाघर होते है जिससे बेचारे गरीबों का धन और धर्म दोनों का हरण हो जाता है। सिनेमाओ मे स्त्री पुरुषों का हाव भाव आदि देखकर कौन व्यक्ति अपने को काबू मे रख सकता है। कभी कोई कहे कि सिनेमा नाटको में महात्माओ रामचन्द्र हरिश्चंद्र और भक्त तुकाराम जैसे के चरित्र भी दिखाये जाते है अतः एकान्त रूप से इनका निषेध करना कहां तक

उचित गिना जा सकता है। इसका समाधान यह है कि यदि किसी बाग में दो चार वृक्ष अच्छे हों और बाकी सब जहरीले हों तो क्या आप उस बाग में हवा खाने जायेंगे? बन्धुओं! गुणों की अपेक्षा दुर्गुण जल्दी चिपक जाते हैं। अतः सिनेमा संसार से बचाये रखना ही ब्रह्मचर्य के लिए लाभ की बात है। ग्रामोफोन की अश्लील चूड़ियां बजाकर सुनना भी मन पर बुरा असर पैदा करता है।

स्वप्नदोष से भी वीर्यनाश होता है। कई लोग कहते हैं कि ब्रह्मचर्य का पालन करने से स्वप्नदोष होकर वीर्यनाश हो जाता है। किन्तु यह कथन ठीक नहीं है। ब्रह्मचर्य का पालन करने से कभी वीर्य नाश नहीं हो सकता। मन में दूषित विचार या खान पान आदि के दोष से स्वप्नदोष होता है। स्वप्न दोष का कारण ढूंढ निकालना चाहिए और उसे दूर करने का उपाय करना चाहिये। भावना में खराबी आये बिना स्वप्नदोष होना ठीक नहीं जंचता। आहार की विकृति से भी स्वप्नदोष संभव है। अतः किसी के कहने में न आना चाहिए कि ब्रह्मचर्य पालन से स्वप्नदोष हो जाता है। आप सोते हुए हों और आपकी गफलत में कोई आपके खीसे में से रुपये या रत्न निकाल ले जावे तो क्या आप जागते हुए भी किसी को रत्न ले जाने देंगे। ऐसा आप कदापि न होने देंगे। इसी तरह सुप्तावस्था में यदि आपका वीर्यरूपी रत्न चला जाता है तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता कि आप जाग्रतावस्था में भी जान बूझकर वीर्य नाश करें।

ऊपर बताये हुए कारणों को रोकते हुए आत्म संयम रखना वीर्यरक्षा का अमोघ उपाय है। जो बात आपके काबू में न आवे, परमात्मा की प्रार्थना करते रहने से वह भी वश में हो जावेगी। उस अजर अमर अविनाशी प्रभु की शरण में अपने को छोड़ देने से हमारी रक्षा सुनिश्चित है।

अब मैं इन्हीं सब बातों का सार एक कथा द्वारा आपके सामने रखता हूं। आजकल विवाह करने के संबंध में युवकों और वृद्धों की विचारधारा में खींचातानी चल रही है। युवक कहते हैं, कन्या को हर किसी जाति में शादी करने का अधिकार है। जाति बन्धारण में इसमें विघ्न डाल रखा है। वृद्ध कहते हैं, युवक स्वच्छन्द हो गये हैं। पुरानी प्रथाओं को मटियामेट करके सारी जाति व्यवस्था को नष्ट करने पर तुले हुए हैं। अपना जीवन साथी चुनने का लड़के लड़कियों को कोई अधिकार नहीं है। यह तो हम वृद्धों का अधिकार है। हम जिसके साथ शादी कर दें उसी के साथ जीवन पर्यन्त रहना होगा। इस प्राचीन कथा से युवक वृद्ध विचारधारा का वैषम्य भी मिट सकता है।

यह कथा महाब्रह्मचारी भीष्म की है। भीष्म का पहला नाम गंगकुमार था। फिर देवव्रत नाम हुआ। और ब्रह्मचर्य की भीष्म भयंकर प्रतिज्ञा करने के कारण आखिर में भीष्म नाम प्रसिद्ध हुआ। एक बार किसी ने भीष्म से कहा कि आपके विवाह न करने से भारत को बडी हानि हुई है। यदि आप विवाह करते तो आपके लडके भी आप ही जैसे पराक्रमी और वीर्यवान् होते। भीष्म ने उत्तर दिया कि यदि मैं विवाह करता तो मेरे पुत्र वीर्यमान् होते या कैसे, यह तो अनिश्चित है। क्यों क्षीर सागर में सब क्षीर ही नहीं होता, विष भी होता है। किन्तु मेरे ब्रह्मचारी रहने से मुझे आदर्श मानकर वर्तमान और भविष्य में भी कितने व्यक्ति अपना जीवन सुधारकर स्वपर का कल्याण करेंगे।

भीष्म का विचार पहले ब्रह्मचारी रहने का न था। किन्तु अपने पिता की इच्छा पूरी करने के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने की महान् प्रतिज्ञा ग्रहण की थी। इससे इस कथा से यह भी ज्ञान होगा कि पुत्र का पिता के लिए क्या कर्त्तव्य है तथा पिता का पुत्र के लिए भी। सत्यवती जिसे मत्स्यगन्धा और योजनगंधा भी कहते हैं, देखकर राजा शान्तनु विमोहित हो गया। उससे बातचीत करने के पश्चात् उसे सर्वोत्कृष्ट जानकर अपनी रानी बनाने का निश्चय कर लिया। निश्चय तो कर लिया मगर राजा विचार करने लगा कि मेरी यह इच्छा पूरी कैसे हो। सत्यवती से यह जानकर कि वह सुदास की कन्या है, राजा उसकी याचना करने के लिए उसके घर पर उसके पास गया। शान्तनु राजा था, तो हुक्म देकर सुदास को बुलवा सकता था मगर वह उसका हृदय परिवर्तन करके उसकी कन्या ग्रहण करना चाहता था अनीतिपूर्वक जबरन लेना नहीं चाहता था। हृदय का काम धर्म का विचार करना है। राजा स्वयं याचक बना और सुदास को दाता बनाया।

अब हमें यह देखना है कि कन्या के पिता का कन्या के प्रति क्या कर्तव्य है। सौदास यह सोचने के लिए स्वतंत्र था कि यदि मैं अपनी कन्या राजा को दूंगा तो मैं वैभवशाली हो जाऊंगा और मेरा मान सम्मान बढ़ जायेगा। किन्तु उसने अपने सुख को ध्यान में रखकर इस बात पर विचार नहीं किया मगर अपनी कन्या के भविष्य को मद्देनजर रखकर राजा से कह दिया कि मैं अपनी कन्या आपको नहीं दे सकता। आपका पुत्र गंगकुमार बड़ा पराक्रमी और वीर है राज्य का अधिकारी वह होगा, मेरी कन्या और उसका

के अधिकार पर कुठाराघात कैसे कर सकता हूं। मैं अपनी इच्छा को रोकूंगा मगर गंगकुमार के हक को नष्ट न करूंगा। एक तरफ तो राजा को इस बात का अफसोस था कि नाहक मैंने सौदास से उसकी कन्या की याचना की और दूसरी तरफ सत्यवती के रूप लावण्य की याद से दुर्बल होता जाता था। उसका शरीर हाडपिंजर हो गया। मंत्रियों से अपने पिता की दुर्बलता का समाचार जान कर गंगकुमार मन्त्रियों के साथ सौदास के घर गये।

गंगकुमार सौदास से कहने लगे कि तुम बड़े भाग्यशाली हो जो पिताजी तुम्हारी कन्या चाहते हैं। वे तुम्हारे जमाई बनना चाहते हैं। तुमने इस संबंध से इन्कार क्यों किया। सौदास ने उत्तर दिया कि राजकुमार! इस संबंध में तुम्हीं बाधक हो। यदि तुम यह प्रतिज्ञा करलो कि सत्यवती का पुत्र ही राज्य का अधिकारी होगा तो मुझे अपनी कन्या राजा के साथ ब्याहने में कोई आपत्ति नहीं है।

सौदास का कथन सुनकर गंगकुमार विचार करने लगे कि आज यज्ञ का समय है। पितृभक्ति की परीक्षा है। लोग आग में घी डालकर होम करने को यज्ञ समझते हैं किन्तु यज्ञ क्या है इसके लिए गीता में कहा है–

श्रोतादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुव्हति।
शब्दादिन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुव्हति।।
सर्वाणीन्द्रिय कर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुव्हति ज्ञानदीपिते।।

पांचों इन्द्रियों और इनके विषयों पर काबू रखना ही वस्तुतः यज्ञ है। गंगकुमार अपने पिता के सुख के खातिर श्रोत्रादि इन्द्रियों के विषयसुखों को अग्नि में होम करता है। और यह सुनने में आनन्द मानता है कि सत्यवती का पुत्र युवराज होगा। गंगकुमार विचार करता है कि हे आंखों! तुम राजसी पोषाक देखकर आनन्द मानने वाली थी किन्तु इस इच्छा को अब यज्ञ में होमकर भाई को राजा देखने में आनन्द मानना होगा। हे जीभ! कभी तक तू विविध व्यंजनों के आस्वाद में तल्लीन थी किन्तु अब तुझे पिता के सुख के खातिर यज्ञ में होम दूंगा। अर्थात् तेरे विषय को अब जीतना होगा। हे मस्तक! अभी तक तू ऊंचा रहा है किन्तु अब पिता के सुख के लिए सत्यवती के पुत्र के सामने झुकना होगा। और उसे राजा मानना होगा। उस पर चंवर उडाने होंगे।

आग मे घृत डालकर यज्ञ करने वाले बहुत मिलेंगे किन्तु ऐसा यज्ञ करने वाले विरले ही पुरुष मिलेंगे।

गंगकुमार का यह आदर्श त्याग युवकों के लिए अनुकरणीय है। देश धर्म और माता पिता के लिए इतना त्याग करने वाले युवकों की बात कौन न मानेगा? गंगकुमार ने अपना पितृ कर्तव्य निभाया। उधर शान्तनु ने भी अपनी इच्छा का दमन करके पुत्र के अधिकार को आघात पहुंचाना उचित न समझा। अगर पिता पुत्र इस तरह एक दूसरे का हक देखते रहें तो कोई गड़बड़ नहीं हो सकती। युवक और वृद्ध एक दूसरे की सुविधा का ख्याल रखते हुए बर्ताव करने लगें तो कितना सुखमय जीवन व्यतीत हो।

गंगकुमार ने सौदास से कहा कि मैंने पिता के हित के लिए सब कुछ त्याग करने का निश्चय कर लिया है। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि अपने पिता का राज्य ग्रहण न करूंगा।

यह बात सुनकर सौदास कहने लगा—हे कुमार! तुम वीर हो तुम्हारी प्रतिज्ञा वीरोचित है। ऐसी प्रतिज्ञा साधारण व्यक्ति नहीं कर सकता। किन्तु मैं भूलता हूं। आपका पुत्र भी तो आप ही के समान पराक्रमी होगा। वह कब मेरी लड़की के लड़के को राज्य करने देगा। वह कहेगा मेरे पिता ने राज्य त्याग दिया तो क्या हुआ। राज्य का अधिकारी तो मैं हूं। इस तरह मेरा दौहित्र राज्य से वंचित हो जायेगा। अतः मैं अपनी पुत्री आप के पिता को नहीं दे सकता।

जो लोग रुपए लेकर अपनी कन्याओं को बेच देते हैं, उन्हे सौदास के बर्ताव पर विचार करना चाहिए। सौदास जाति से कोली होकर भी अपनी कन्या के हक का इतना ख्याल रखता है। और उच्च जाति मे उत्पन्न होने वाले लोग रुपयों के लोभ में आकर अपनी कन्याओं को बुड्ढो के साथ ब्याह देते है।

सौदास के ऐसा कहने पर गंगकुमार ने कहा— तुम ठीक कहते हो सौदास। मगर यदि मै विवाह न करूं तो संतान कहां से होगी। मै देव गुरु और धर्म को साक्षी रख कर प्रतिज्ञा करता हूं कि मै तो उम्र विवाह न करूंगा, जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा।

नहीं चाहते, छूटे घोड़े रहना चाहते हैं। ऐसे लोग दुराचार सेवन कर के समाज में अनीति की वृद्धि करते हैं।

गंगकुमार की यह दृढ़ प्रतिज्ञा सुनकर सौदास और सत्यवती आदि सब कांप उठे। भीषण प्रतिज्ञा करने के कारण ही भीष्म नाम चालू हुआ। अंत में भीष्म सत्यवती को अपने पिता के पास ले गये। सत्यवती का शांतनु के साथ विवाह हुआ। भीष्म आजीवन ब्रह्मचारी रहे। विवाह न करने पर भी ब्रह्मचर्य के कारण जगत् पितामह कहलाये। आप लोग भी भीष्म पितामह के जीवन से शिक्षा लेकर ब्रह्मचर्य का पालन करिये। युवक और वृद्ध एक दूसरे का आदर करना सीखें और परस्पर प्रेम से रहें तो कल्याण है।

आशा है ब्रह्मचर्य के संबंध में मेरी बातें सुन कर आप लोग अपना जीवन उच्च बनाने का प्रयत्न करेंगे। इतना कह कर अपना भाषण समाप्त करता हूं।

राजकोट
2.8.36

इच्छा आकाश के समान अनन्त है

अरहनाथ अवीनाशी, शिवसुख लीधो,
विमल विज्ञान विलासी साहब सीधो।।1।।
तू चेतन भज अरहनाथ, ते प्रभु त्रिभुवन राया,
तात 'सुदर्शन' 'देवी' माता, तेनो नन्द कहाय।।2।।

प्रार्थना– यह अठारवें तीर्थंकर भगवान् अरहनाथ की प्रार्थना है। आत्मा परमात्मा की प्रार्थना किस प्रकार करता है, यह देखना है। प्रार्थना दो प्रकार की होती है। एक सविकल्प दूसरी निर्विकल्प। आत्मा को निर्विकल्प प्रार्थना ही करनी चाहिए। किन्तु एक दम निर्विकल्प प्रार्थना तक पहुंचना कठिन है। इसलिए निर्विकल्प प्रार्थना में जाने के लिए सविकल्प प्रार्थना का अवलम्ब लिया जाता है। इस भजन में दोनों प्रकार की प्रार्थना की गई है सगुण और निर्गुण अथवा साकार और निराकार, शरीरधारी अर्हन्त और अशरीरी सिद्ध दोनों की प्रार्थना की गई है।

तात सुदर्शन देवी माता तेनो नंद कहाय

जिनके पिता सुदर्शन है और माता देवी है, उन शरीर धारी अठारहवें तीर्थंकर भगवान् अरहनाथ की पहले स्तुति की गई है। फिर कहा गया है–

अलख अरूप अखण्डित अविचल अगम अगोचर आप।
निर्विकल्प निःकलंक निरंजन अद्भुत ज्योति अमाप।।

नहीं किया जा सकता, जो निष्कलंक है—कर्मरूप रजमैल से रहित है, जो निराकार होता हुआ भी अद्‌भुत ज्योति—ज्ञान ज्योति धारण करता है और जिसका माप नहीं हो सकता उस परमात्मा की प्रार्थना करता हूं अर्थात् शरीर धारी और अशरीर धारी दोनों प्रकार के परमात्मा की प्रार्थना की गई है।

शंका—शरीर धारी परमात्मा अर्हन्तों के न होने पर यदि उन की मूर्ति बनाकर, उसकी सहायता से आगे बढ़ा जावे तो क्या हर्ज है?

समाधान इस तरह करने से आप अधिक गड़बड़ में पड़ जायेंगे। निश्चयनय से आत्मा और शरीर भिन्न भिन्न हैं। एक दूसरे का कोई संबंध नहीं है। शरीर जड़ है, आत्मा चैतन्य है। फिर भी मिथ्यात्व और अज्ञान के कारण आत्मा शरीर को अपना मानता है। आत्मा को शरीर रूप होने का अध्यास हो रहा है। यह अध्याय बढ़ाना ठीक है या घटाना? यदि शरीर से आत्मा का जो अभेद बोध हो रहा है उसे दूर करना है तब तो उसे यही विचार करना पड़ेगा कि शरीर से मेरा कोई संबंध नहीं है, मैं निर्विकल्प हूं, शरीर से निकलना चाहता हूं। मुझे जो अभेदाध्यास हो रहा है, वह झूठा है। जब शरीर के अध्यास से भी आत्मा अलग होना चाहता है तब मूर्ति में अपने को फंसाकर अधिक उलझन में पड़ना कहां तक उचित है? यह तो शरीराध्यास से निकलने के बदले और अधिक फंसना हुआ। यह तो द्राविड़प्राणायाम हुआ। शरीर धारी अर्हन्तों की भक्ति और गुणगान करना दूसरी बात है। उन में गुण विद्यमन है। मूर्ति में गुण नहीं होते।

जब आत्मा को शरीर में अभेदाध्यास हो जाता है तब 'मैं शरीर हूं' ऐसा मानने लगता है। अर्जुन को भी ऐसा अध्यास हो गया था। तब श्री कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा न्यन्यानि संयाति नवानि देही।।
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।

जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्र त्यागकर नवीन वस्त्र धारण करते हैं, उसी प्रकार पुराने शरीर को छोडकर आत्मा नवीन शरीर को धारण करता है।

इस आत्मा को शस्त्र छेद नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकती, पानी गला नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकता। श्री कृष्ण ने अर्जुन को जो बात समझाई है वह हमारे आपके लिए भी है। शरीर नाशवान् है। आत्मा अविनाशी है। इस प्रकार आत्मा को सविकल्प से निर्विकल्प में पहुंचना है न कि और विकल्प में फंसना है।

यदि सविकल्प प्रार्थना करनी है तो जैसा कि पहले बताया गया है, माता पिता से उत्पन्न अठारवें तीर्थकर तेरहवें गुणस्थान में वर्तमान अर्हतं भगवान् की करनी चाहिए। और यदि निर्विकल्प प्रार्थना करनी है तो सिद्ध भगवान की करिये। अरहनाथ स्वामी हुए तो शरीर में ही किन्तु अंत में शरीर का अध्यास छोड़कर शरीर से निकलकर सिद्ध बुद्ध हुए हैं।

शास्त्रः– सविकल्प प्रार्थना से निर्विकल्प स्थिति में कैसे पहुंचना चाहिए यही बात शास्त्र के द्वारा बताता हूं। श्रेणिक राजा सोचता है कि मैं दीन, अनाथ या गरीब नहीं हूं फिर इन मुनि ने मुझे अनाथ क्यों कहा। राजा को वास्तविकता का ज्ञान न होने से मन में अमुझा रहा है। जब तक ज्ञान नही होता तब तक आत्मा भ्रम जाल में पड़कर मुरझाता रहता है। यह भ्रम तभी मिट सकता है जब किसी ज्ञानी गुरु का संयोग मिलता है। अपूर्ण ज्ञानी को भ्रम होता ही है। जैसे अंधेरे में रस्सी को सांप, दूरीपर सीप को चांदी और ठूंठ को मनुष्य समझने का भ्रम होता है। किन्तु प्रकाश होने पर और निकट पहुंचने पर यह सारा भ्रम दूर हो जाता है। रस्सी तो रस्सी ही है, सीप भी सीप ही है और ठूंठ भी ठूंठ (स्थाणु) ही है किन्तु भ्रम के कारण इनको गलत समझा जाता है। भ्रम दूर होने पर सच्चाई सामने आ जाती है। श्रेणिक राजा के भ्रम को दूर करने के लिए मुनि कहते हैं:–

न तुमं जताणे अणाहस्स, अत्थं पुत्थं च पत्थिवा।
जहा अणाहो भवइ, सणाहो वा नराहिवा।।
सुणेह मे महाराय! अव्वाविखत्तेण चेयसा।
जहा अणाही भवइ, जहा मेयं पवत्तियं।।

हे राजन्! तू अनाथ सनाथ का स्वरूप नहीं जानता है। मैं तुम्हें सुनाता हूं। एकाग्रचित्त से सुनो। मैंने तुमको अनाथ कहा, मगर उसका कारण नहीं बताया इसी से तुम व्याकुल हो रहे हो। और मुझ पर झूठ बोलने का आरोप लगा रहे हो।

प्रकार की विधिनिषेध पूर्वक आज्ञाएं प्रदान कर देते हैं किन्तु अमुक काम करने और न करने का कारण नहीं बताते जिससे बच्चे उसकी असलियत को नहीं समझते और कभी कभी आज्ञा का उल्लंघन भी कर डालते हैं। अतः अपने शिष्यों या लड़कों को किसी भी बात की प्रवृत्ति या निवृत्ति की आज्ञा देने के साथ ही साथ उस कार्य का कारण भी बता देना चाहिए ताकि कारण समझकर शीघ्र प्रवृत्ति करने लगें। मुनि ने राजा को अनाथ तो कह दिया मगर वह अनाथ क्यों है इसका कारण नहीं बताया। इसीलिए राजा के मन में अनेक संकल्प विकल्प पैदा हुए हैं। अब मुनि अनाथता का कारण बताने के लिए कहते हैं कि हे राजन्! एकाग्रता पूर्वक सुन।

प्रत्येक बात चित्त को एकाग्र बनाकर सुनी जावे तभी समझ में आ सकती है और लाभ हो सकता है। यदि सुनने में ध्यान न देकर चित कहीं अन्यत्र चला गया हो तो उससे पूरा लाभ नहीं हो सकता। चित की एकाग्रता हर काम में लिए आवश्यक है। चाहे व्यवहारिक कार्य हो चाहे आध्यात्मिक दोनों में एकाग्रता की जरूरत है। जिस काम को लेकर बैठे हैं, उसके सिवा किसी अन्य काम में चित्त को दौड़ा देना विक्षेप है।

आप लोग सामायिक करके बैठे हैं। सामायिक का मतलब है आत्मा में स्थिर होना। अन्यत्र व्यायोग न करना। किन्तु आपका चित्त कहां है यह कौन जानता है? सामायिक भी करना और मन को खुला छोड़कर इधर उधर भटकने देना वैसा ही हुआ जैसा–

न खुदा ही मिला न विसाले सनम, न इधर के रहे न उधर के सनम।

सामायिक लेकर बैठने पर भी यदि मन स्थान पर न रहे और इधर उधर भटकता रहे, तो उस समय के लिए उसे क्या कहा जाय, वह सामायिक कैसी होती है, उसके लिए एक बात सुनाता हूं।

एक सेठ की पुत्रवधू को दूसरों के मन की बात जानने का विशिष्ट ज्ञान हो गया था। एक दिन उसका श्वसुर सामायिक करके बैठा था। बाहर से एक आदमी आकर पूछने लगा कि सेठजी कहां है? सेठ ने उसकी आवाज सुन ली किन्तु सामायिक में होने से उत्तर नहीं दिया। पुत्रवधू ने उत्तर दिया कि सेठजी अभी मोचीवाड़े में गये हुए हैं। उस व्यक्ति को जरूरी काम था अतः दौड़ा हुआ मोचीवाडे में पहुंचा। मोचीवाडे में सेठजी को न पाकर वापस आकर पूछने लगा कि वहां तो नहीं है। कहां हैं सो बताओ। मुझे बहुत आवश्यक काम है। पुनः पुत्रवधू ने कहा, अब सेठजी पंसारी बाजार में गये हुए हैं। बहू की बात सुनकर वह आदमी पंसारी बाजार के लिए शीघ्रतापूर्वक

चला गया। इतने में सामायिक पार कर सेठजी अपनी पुत्रवधू से पूछने लगे कि बेचारे उसे आदमी को नाहक कष्ट देकर झूठ क्यों बोल रही हो। मैं घर में ही सामायिक करके बैठा था। उस आदमी को पहले मोचीवाड़े में भेजा फिर पंसारी बाजार में। इस प्रकार झूठ बोलने से तुम्हारी पैठ उठ जायेगी। लोग तुम्हारी बात न मानेंगे।

श्वसुरजी की बात सुन कर पुत्रवधू कहने लगी। मैं आज तक झूठ न बोली। आपने आज मुझ पर झूठ बोलने का दोषारोपण किया है मैं पूछती हूं– क्या आप सचमुच सामायिक में थे? आप का मन जूते पहनने के लिए मोचीवाड़े में नहीं था? और उसके बाद पंसारी बाजार में जिन्स खरीदने के लिए नहीं दौड़ रहा था? आप आत्म साक्षी से कहिये। वधू की बात सुन कर श्वसुर आश्चर्य में डूब गया। कहने लगा वस्तुतः मेरा मन उक्त दोनो स्थानो में चला गया था। मै स्व उपयोग में न था। बहू तेरी बात सत्य है।

तब बहू ने कहा–निश्चय नय से जिस व्यक्ति का उपयोग जहा होता है वह वहीं है ऐसा गिना जाता है। आपकी चित्तवृत्ति तो बाजार में थी, आपके शरीर का खोखामात्र यहां था। अतः निश्चय नय से आप बाजार में थे, व्यवहार नय से घर पर थे। कहिये–मैंने क्या झूठ कहा। अब आयन्दा आप सामायिक में मन को स्थिर रखने की कोशिश रखियेगा। तभी सामायिक सार्थक गिनी जायेगी।

आप लोग भी सामायिक में बैठ कर मन मे अनेक प्रकार के घाट घडने लगेंगे तो वह व्यवहारिक सामायिक गिनी जायेगी। ऐसी सामायिक से इष्ट मनोरथ पूरा नहीं हो सकेगा। आप कहेंगे–तो क्या सामायिक न किया करें? क्योकि मन तो वायु के समान बड़ा चंचल है। प्रयत्न करने पर भी काबू में नही रहता। इसका समाधान इतना ही है कि यदि आप मन को इधर उधर जाने से रोकने में असमर्थ है तो उसे अशुभ प्रवृत्ति से हटाकर शुभ प्रवृत्ति मे लगाने की कोशिश करिये। यदि कभी बुराई की तरफ चला जाये तो पश्चाताप करते हुए भलाई की तरफ लाने का यत्न करे।

चिन्तन करने में लगाइये। मन काबू में न रहे अतः सामायिक करना ही छोड़ बैठना कहां का न्याय है। जो व्यक्ति कुछ अध्ययन करता है उसी की भूल निकाली जाती है। जो कुछ पढ़ता ही नहीं है, उसकी क्या भूल निकाली जायेगी।

आज कल देखा जाता है कि जो सार्वजनिक कार्य करता है उस की लोग बहुत टीका टिप्पणी किया करते हैं। उसके कार्यों में दोष निकाला करते हैं और यह सिद्ध करना चाहते हैं कि हम अच्छे हैं जो कुछ नहीं करते हैं। किन्तु यह तो अकर्मण्यता की ओर बढ़ना है। जो दौड़ लगाता है, वही गिरता है। जो दौड़ में शामिल ही नहीं होता वह क्या गिरेगा। वह तो निष्क्रिय व्यक्ति है जो दूर बैठा–बैठा दूसरे को गिरते हुए देखकर हंसता रहता है। जो स्वयं सामायिक न करके दूसरों की सामायिक के दोष देखता रहता है वह सामायिक करने वाले की अपेक्षा निकम्मा है। सामायिक न करने की बात कहने की अपेक्षा सामायिक करके उसमें मन को काबू में करने की कोशिश करना चाहिए। गल्ती को मिटाने की कोशिश करना चाहिए न कि गल्ती के डर से कार्य ही न करना। प्रयत्न करने से दोषों में कमी होती जाती है। धीरे–धीरे आगे बढ़ा जाता है।

सनाथी मुनि श्रेणिक राजा को कहते हैं कि हे राजन्! एकाग्र चित्त होकर मेरी बात सुन। मन में जो व्याक्षेप हो, कोई अन्य बात हो उसे निकालकर शुद्ध चित्त से सनाथ अनाथ का स्वरूप सुन। मैं किसी दूसरे पर बीती हुई घटना नहीं सुनाता हूं किन्तु आप बीती सुनाता हूं। दूसरे पर बीती हुई घटना कहने में भूल भी हो सकती है अथवा उसे तोड़ मरोड़ कर अन्यथा भी कहा जा सकता है किन्तु मैं अपने पर बीती घटना सुनाकर तेरे को समझाना चाहता हूं कि मैं भी पहले किस प्रकार अनाथ था और बाद में किस प्रकार सनाथ बना हूं।

आप सनाथ हैं या अनाथ इस बात पर विचार करिये। यदि आप अपने को अनाथ मान कर चलेंगे तो सनाथता का स्वरूप भी समझ में आ जायेगा। किन्तु भूल यह होती है कि आत्मा अनाथ होता हुआ भी स्वयं को अनाथ मानने के लिए तैयार नहीं होता। परमात्मा के समक्ष अपनी अनाथता स्वीकार नहीं करता। किन्तु भक्त लोग अपनी अनाथता स्वीकार कर लेते हैं। यह बात मैं तुलसीदासजी की कविता द्वारा कहता हूं। ऊपर से आपको कुछ अंतर दिखाई देगा किन्तु गहराई से विचार करने पर कोई अंतर मालूम न देगा।

तू दयालु दीन हौं, तू दानी हौं भिखारी,
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुंजहारी।
नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मो सों,
मो समान आरत नाहिं आरतहर तो सों।

यह आत्म समर्पण भाव है। आत्मा को परमात्मा में समर्पण कैसे करना यह बात इस कविता में बताई हुई है। अनाथी मुनि जो कुछ कहते हैं वही बात शब्दान्तर से तुलसीदासजी ने कही है।

परमात्मा को आत्मसमर्पण करने की कला कवि की भाषा और कवि की कविता से समझो। परमात्मा को दीन दयालु कहा जाता है, ढींग दयालु नहीं। अब आप अपने पर विचार करो कि आप दीन बनकर प्रार्थना करते हैं या ढींग बनकर। परमात्मा दीन दयाल है और आप ढींग–अभिमानी हैं। वैसी हालत में दोनों का मेल बैठे तो कैसे बैठे। आप कहेंगे हम दीन कैसे बनें। जब तक मन में अभिमान है तब तक दीन नहीं बना जाता है। दीन बनने के लिए अपना अभिमान छोड़ दो फिर परमात्मा आपका रक्षक बन जायेगा। वैसे तो आप न मालूम किन किन के सामने दीन बन जाते हैं किन्तु परमात्मा के सामने दीन नहीं बनते।

विवाह हो जाने पर आप सोचते हैं हम घर के मालिक बन गये हैं। लेकिन विचार करो कि विवाह से आप दीन बने हैं या नहीं? जिस तरह कुत्ता रोटी के लिए दुम हिलाता है और अपना पेट दिखाता है उसी तरह आप स्त्री के सामने दीनता दिखाते हैं या नहीं। विषय वासना के वशीभूत होने पर आत्मा इस तरह गुलाम बनता ही है। बड़े–बड़े राजा महाराजा भी वेश्या के वशीभूत होकर उसके सामने दीन बनकर उसके गुलाम बने हैं। उदाहरणों की कमी नहीं है।

मतलब यह है कि दीन बनने का आत्मा का स्वभाव है किन्तु परमात्मा के सामने वह दीन नहीं बनता। उसके सामने दीन बनने में कठिनाई अनुभव करता है। समस्त अभियान छोडकर परमात्मा के समक्ष दीनता धारण करने पर ही संसार समुद्र से बेडा पार हो सकता है। कवि आनन्दघन जी ने कहा है –

प्रीति सगाई सौ करै प्रीति सगाई न कोय
प्रीति सगाई निरुपाधिक करे सोपाधिक धन खोय

करते जीव को अनन्तकाल वीत चुका है। यह सोपाधिक दीनता है। किन्तु परमात्मा के साथ निरुपाधिक प्रीति या दीनता न करने के कारण जीव संसार में परिभ्रमण कर रहा है। सोपाधिक दीनता करने से दीनता घटने के वजाय वढती है, ज्यों–2 दीनता दिखाकर साधन सामग्री जुटाई जाती है त्यों त्यों आवश्यकताएं वढती जाती हैं और जीव पराधीन होता जाता है।

तव आप कहेंगे हम क्या करें? यही करिये कि अपनी सव आशा तृष्णा और भावनाएं परमात्मा के समर्पण कर दीजिये। उसके सामने अभिमान तजकर दीन वन जाइये। उसकी शरण में अपने सारे वल को छोड़ दीजिये। ऐसा समर्पण एक गरीव से लेकर अमीर तक सव कोई कर सकते हैं। अंधा वहरा गूंगा लूला लंगड़ा सव अपने को परमात्मा के समर्पण कर सकते हैं। किसी के लिए रुकावट नहीं है। परमात्मा के समर्पण करने के वाद फिर अपना वल आजमाइश करने की जरूरत नहीं। सव कार्य अपने आप सिद्ध हो जाते हैं।

कदाचित् कोई कहे कि दीनता मिटाने के लिए किसी राजा रईस या सेठ की शरण लेने से काम चल सकता है। परमात्मा के शरण की क्या जरूरत है। किन्तु राजा की शरण से दीनता मिटती नहीं बल्कि बढ़ती जाती है। राजा आदि की शरण से दीनता किस प्रकार वढ़ती है, यह वताने के लिए ही शास्त्र में कपिल व्राह्मण का दृष्टान्त प्रसिद्ध है।

कपिल श्रावस्ती के राजपुरोहित का लड़का था। पढ़ने के लिए कौशम्वी नगरी में रहता था। वहां एक दासी से उसकी मित्रता हो गई। दासी को रिझाने के लिए धन्नासेठ द्वारा प्रतिदिन दिया जाने वाला दो माशे सोने का दान लेने के लिए एक दिन वह रात को वारह वजे ही निकल पड़ा। कारण कि प्रातःकाल जो सर्वप्रथम पहुंचता था उसी को यह दान मिला करता था। जल्दी पहुंचने की धुन में वह रात को वारह वजे ही निकल पड़ा। मार्ग में चोर के शक में सिपाहियों द्वारा पकड़ा गया और प्रातः राजा की पेशी में उपस्थित किया गया।

कपिल की शक्ल सूरत देख कर राजा विचारने लगा कि यह चोर नहीं मालूम देता। उधर कपिल मन में विचार करता है कि इस राजा का श्रावस्ती नगरी के साथ वैर विरोध है अतः श्रावस्ती निवासी होने के कारण मुझे कसके दण्ड देगा कुछ भी हो झूठ तो न वोलूंगा।

श्रावस्ती का वैर याद आ गया। क्रोधित होकर राजा ने पुनः पूछा किसका लडका है? कपिल ने कहा–श्रावस्ती के राजा के राज पुरोहित काश्यप का लडका हूं। राजा ने कहा–तू तो मेरे शत्रु के मित्र का लड़का है अतः मेरा शत्रु ठहरा। अच्छा यहां क्यों आये थे? श्रावस्ती में मुझ से घृणा की जाती है और कोई पढाता न था अतः यहां पढ़ने के लिए आया हूं, कपिल ने उत्तर दिया। रात को क्यों निकले थे? कपिल ने कहा– यह किस्सा लम्बा है। मै उपाध्याय के पास पढ़ता हूं और शालिभद्र सेठ के यहां से भोजन पाता हूं। एक दासी मेरे यहां काम करने आती है। मैं उसके साथ फंस गया हूं। वह लोभिन है। उसने त्यौहार बता कर मुझ से कपडे मांगे। मैं दरिद्र हूं, 'तुझे कपडे कहां से दूं कहने पर उसने उपाय बताया कि इस नगरी में धन्नासेठ प्रातःकाल सर्वप्रथम पहुंचकर आशीर्वाद देने वाले को दो माशा सोना भेंट दिया करता है। उसके यहां जाकर सोना ले आओ।

मै धन्ना सेठ को सर्वप्रथम आशीर्वाद देकर सोना लेने की धुन में समय असमय को भूल गया और रात को बारह बजे ही निकल पड़ा। रास्ते मे आपके सिपाहियों ने चोर के शक में मुझे पकड कर आप के सामने उपस्थित किया है। अब आप मालिक हैं। जो चाहें करें।

कपिल का बयान सुन कर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। वह कहने लगा कि यद्यपि तू मेरे शत्रु राजा के पुरोहित का लडका है। फिर भी मैं तेरी स्पष्ट और सत्यवादिता पर बहुत प्रसन्न हूं। तू जो कुछ मांगना चाहता है, मांग। मैं वणिक नहीं हूं जो खाली बातों से राजी करदूं। 'वणिक तुष्टे देत [illegible]' मैं क्षत्रिय हूं। जो चाहे मांगले। कपिल विचार मे पड गया कि क्या मांगना चाहिये। पहले बिना विचारे घर से निकला उसका नतीजा अच्छा न हुआ। अब राजा से जो कुछ मांगना वह विचार कर ही मांगना चाहिए। उसने राजा से कहा कि महाराज! मुझे दोघडी का समय विचार करने के लिए दीजिये ताकि आपकी अशोक वाटिका मे बैठ कर यह सोच लूं कि आपसे क्या मांगूं। राजा ने विचार करने का अवसर दे दिया।

पोशाक क्या खुलेगी। यदि स्त्री के लिए आभूषणादि मांग लेता हूं फिर भी मैं तो कोरा ही रह जाता हूं। राजा और रानी दोनों की पोशाकें और आभूषण मांग लूं। किन्तु इतनी बढिया पोशाक और आभूषण पहन कर झोपड़ों में कैसे रहेंगे। अतः महल भी मांग लूं महल में रह कर हाथों से काम करने में लज्जा आयेगी अतः नौकर चाकर भी चाहिए। नौकरों को तनख्वाह चुकाने के लिए रुपये भी चाहिए अतः दो चार ग्राम मांग लूं। इतना होने पर भी मेरी हुकूमत तो नहीं चलेगी अतः राजा का सारा ही मांग लूं। राजा वचनबद्ध है, क्षत्रिय है, अतः राज्य देने से इन्कार तो नहीं करेगा। किन्तु राज्य देने के बाद राजा मुझसे ईर्ष्या द्वेष रखने लगेगा अतः राजा को जेल में बंद कर देना होगा। इसलिए मैं राजा से यही वर मांगलूं कि तुम्हारा स्वराज्य मुझे दे दो और स्वयं जेल खाने में बंद हो जाओ।

यह निश्चय करते ही पुनः उसे विचार आया कि राजा वचनबद्ध होने के कारण राज्य दे देगा किन्तु यह राज्य मेरे अनादर का ही कारण होगा। सब लोग मेरी निंदा करने लगेंगे कि राजा से इस प्रकार राज्य मांग लिया। यह ब्राह्मण इतना नीच है कि इसने राजा की वचनबद्धता का ऐसा दुरुपयोग किया है। ऐसे तत्व को कभी वचन न देना चाहिए।

यह विचार आते ही ब्राह्मण की विचारधारा पलटने लगी। ओह! मैं दो मासा सोना मांगते मांगते सारा राज्य मांगने पर उतारू हो गया। और इतने में भी मेरी इच्छा शांत न हुई जो राजा को बंदी बनाने का भी वचन मांगना तै किया। वास्तव में मैं राजा को बंदी नहीं बनाना चाहता हूं किन्तु अपनी अनन्त तृष्णा के वश में होकर अपने को बंदी बना रहा हूं। वस्तुओं से कभी इच्छापूर्ति नहीं हो सकती। ज्यों ज्यों वस्तुएं मिलती जाती हैं, आत्मा अधिकाधिक गुलाम बनता जाता है। सब पदार्थ मुझसे परे हैं। मेरा इनसे कोई संबंध नहीं है। ज्ञानदर्शन आदि गुण ही मेरे हैं।

इस प्रकार विचार करते हुए कपिल को अवधि ज्ञान उत्पन्न हो गया। उसे अपना पूर्व जन्म हाथ की रेखा की तरह दिखाई देने लगा।

एक कथा में यों भी कहा है कि देवता ने साधु योग्य वस्त्र दिये जिन्हें पहन कर कपिल राजा के पास गया। राजा ने पूछा—यह क्या किया? साधु क्यों बन गये? कपिल ने कहा कि राजन्! मुझे जो चाहिए था वह मिल चुका है। राजा ने कहा आखिर बात क्या हुई सो कहिये। कपिल ने कहा महाराज! दो मासा सोना मांगते मांगते तुम्हारा सारा राज्य मांग कर तुम्हें जेल खाने में बंद कर देने तक की इच्छा पैदा हो गई। किन्तु इतने पर भी शान्ति

नहीं मिलती थी। अपमान जन्य दुख बाकी रह जाता था। तृष्णा बढ़ती ही आती थी। अंत में मैंने तृष्णा घटाना शुरू किया और संतोष वृत्ति धारण की। जिससे सच्चा ज्ञान पैदा हो गया और अनन्त शान्ति प्राप्त हुई है। अब राज्यादि के झंझट में नहीं पडना चाहता। अब राज्य में सुख नही मालूम देता।

राजा ने पुनः कहा–कपिल! मैं तुझ को लिख देता हूं कि मैं जन्म भर तुम्हारा सेवक बना रहूंगा और कोई शत्रु राज्य पर चढाई कर के आयेगा तो मै तुम्हारी सहायता भी करूंगा।

कपिल ने कहा–राजन! अब मुझे राज्य करने का मोह ही नहीं है। मै एक बात पूछता हूं कि यदि मैं पहले तेरा राज्य मांग लेता तो तू मुझ से वैर भाव रखते या नहीं? यह तो मेरे त्याग का प्रभाव है जो तुम स्वयं स्वेच्छा से राज्य तक दे देना चाहते हो। जिस त्याग को अपनाने से राज्य मिल सकता है उस त्याग का महत्व कितना है। राज्य बडा रहा या त्याग? मै त्याग के सामने राज्य को तुच्छ समझता हूं।

राजा ने कहा–महात्मन्! आप का मोह दूर हो गया इसलिए राज्य श्री को भी तुच्छ समझने लग गये है। किन्तु मै तो साधु नही बन सकता अतः संसार में रहते हुए भी कुछ आत्म कल्याण कर सकू वैसा उपदेश दीजिए।

कपिलमुनि समयोचित उपदेश सुनाकर आत्मकल्याणार्थ वन में चले गये। वन मे भी पांच सौ चोरो को प्रतिबोध देकर उन्हे आत्म कल्याण की ओर लगाया। इस प्रकार कठिन साधना से केवल ज्ञान प्राप्त करके अंत में वे सिद्ध बुद्ध हो गये।

कहने का सारांश यह है कि ससार में दीनता करने का स्वभाव है मगर दीनता उनके सामने की जाती है जो स्वयं ही दीन हैं। जो स्वयं दीन है वह दूसरों की दीनता का हरण कैसे कर सकता है। जिनके जरिये नाथ बनने की कोशिश की जाती है उनके जरिये उल्टे अनाथ बन जाते हैं इसलिए हे भव्य प्राणियों! परमात्मा की शरण पकड़ो। उसकी शरण में जाने से सनाथ बन जाओगे।

आप लोगों को यह ख्याल पैदा हो सकता है कि महाराज आप व्यावहारिक क्रियाओं की बात क्यों कहते हो। व्यवहार में तो हम लोग दक्ष हैं। आप तो हमें धार्मिक कार्यों की बातें बतावें। किन्तु मित्रों! आध्यात्मिकता और व्यावहारिकता दोनों को समान रूप से सुधारने की जरूरत है। जब तक दोनों का सुधार न हो तब तक शांति नहीं मिल सकती। दोनों का परस्पर गहरा संबंध है। आध्यात्मिकता के बिना व्यवहार शुष्क होगा और व्यवहार के बिना आध्यात्मिकता कोरा आदर्शवाद होगा।

कोई साहित्य आपका व्यवहार सुधार देता है और आपको व्यावहारिक शांति भी देता है किन्तु उससे यदि आत्मिक शांति न मिली जो वह शांति वास्तविक शांति न होगी, क्षणिक शांति होगी। वही शांति और सुधार सच्चा गिना जा सकता है जिससे आत्मा को सुख मिले। आध्यात्मिक सुधार तभी हो सकता है जब व्यवहार सुधरा हुआ हो। कई अविचारक लोग अध्यात्म और व्यवहार का संबंध ही नहीं समझते, वे कहते हैं व्यवहार और अध्यात्म सर्वथा भिन्न हैं। एक दूसरे का कोई संबंध नहीं है। मगर मैं कहता हूं–लौकिक कर्तव्यों में अच्छाई आये बिना अध्यात्म कर्तव्य में अच्छाई कैसे आ सकती है। जो नैतिक नियमों का भी पालन नहीं करता वह अध्यात्म का साधन कैसे कर सकता है? व्यवहार और अध्यात्म में परस्पर संबंध है।

किन्तु व्यवहार साधना में उलझ कर यदि अध्यात्म साधना में ध्यान न दिया जाय तो सच्ची शांति नहीं मिल सकती। सच्ची शांति और सुख का स्रोत आत्मा है। सुभग के पेट में खूंटा घुस गया था फिर भी उसने धैर्य न छोडा और नवकार मंत्र का ध्यान करता रहा। यह आध्यात्मिक सुधार का परिणाम था और उसी शुभ भावना का नतीजा है जो सुदर्शन भधव में वैभव और सम्पत्ति मिली है।

वर्तमान युग में कई लोगों को आत्मा पर भी विश्वास नहीं है। यद्यपि वे नित्य आत्मिक शक्ति का परिचय पाते हैं फिर भी भूलते हैं। इस विषय में मैंने शंकर भीष्म में बहुत कुछ देखा है। वह सब कहने जितना अभी समय नहीं है। किन्तु उस भाव को अत्यन्त सरल बना कर कुछ आप के सामने रखता हूं।

आप लोग स्वप्न देखते हैं। स्वप्न वैसा ही होता है। जैसा खुद विचार होता है। जागृत अवस्था में यदि खराब भाव रहे तो स्वप्न भी खराब ही आता है और यदि अच्छे भाव रहे तो अच्छा स्वप्न आता है। यह बात सब के अनुभव की है अपनी माता के साथ बुरी हरकत करने का किसी को स्वप्न नहीं आता

क्योंकि कोई भी इन्सान ऐसा करने की जागृत अवस्था में कल्पना भी नहीं करता। यह बात सब के अनुभव की है कि जैसे परिणाम होते है तदनुसार ही स्वप्न आते हैं। कई वर्षो पूर्व कोई कार्य करने का संकल्प आया हो, किसी के साथ वैरभाव रहा हो, किसी स्त्री पर बुरी नजर गई हो अथवा कोई दृश्य देखा हो, सुना हो, आस्वाद दिया हो, स्पर्श किया हो, उन सब घटनाओं का दर्शन स्वप्न में हो जाया करता है। जैसा विचार वैसा स्वप्न। अदृष्ट, अश्रुत और अकल्पित का स्वप्न नहीं आ सकता। यह बात जुदी है कि देखी हुई वस्तु का स्वप्न में उल्टा सुल्टा संबंध भी दिखाई देता है जैसे गधे के मस्तक पर सींग दिखाई देना। गधा भी देखा है और गाय भैंस के मस्तक पर सींग भी देखे हैं। स्वप्न में गाय भैस के सींग गधे के सिर पर भी कभी-2 देखे जा सकते हैं। अथवा जागृत अवस्था में गधे के मस्तक पर सीग होने की कल्पना की हो तब वैसा स्वप्न आ सकता है। कहने का सारांश यह है कि इस जन्म में कभी दृश्य देखा या विचारा हो वह स्वप्न में आलोकित हो सकता है।

जो बात स्वप्न पर लागू होती है वही पुनर्जन्म पर समझ लीजिए। वर्तमान जन्म में जीव जिन भावों को लेकर मरता है पुनर्जन्म मे उन्हीं भावों को प्राप्त होता है। 'जं लेस्से मरीज्जइ तं लेस्से उववज्जइ,' जिस लेश्या से युक्त होकर जीव शरीर छोडता है उसी लेश्या मे दूसरा शरीर भी धारण करता है। अर्थात् मरते वक्त जैसे परिणाम होते है दूसरी योनि मे जन्म लेते वक्त भी वैसे ही परिणाम होते हैं। गीता में भी कहा है-

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजन्त्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय! सदा तद्भावभावितः।।

अर्थात्-जीव अन्तिमावस्था में जिस जिस भाव-विचार का चिन्तन करता हुआ कलेवर छोडता है पुनः उन्हीं भावों में दूसरा जन्म ग्रहण करता है। पुनर्जन्म की बात स्वप्न से हमारे समझ में आ जाती है फिर भी कई लोगों को आत्मा पर विश्वास नही होता। यह भूल है।

किया सेठ ने काल, कुंवर ने जब पाया अधिकार।
पर उपकारी पर दुःखहारी, निराधार आधार रे धन।।

नहीं करते। जब उनका दम निकल जाता है तब उनके कन्दोरे से दुकान व तिजोरी की चाबियां खोलकर उनके पुत्र संभालते हैं। ऐसे वृद्धलोग सदा अपने लड़कों को नादान या नासमझ ही समझते रहते हैं।

किन्तु वे लोग यह नहीं सोचते कि उनके मरने के बाद उनके घर व सम्पत्ति का क्या हाल होगा। ऐसे लोग अपना तो बुरा करते ही हैं साथ में अपने पुत्रों को कार्य सीखने का मौका न देकर उनका भी अनिष्ट करते हैं। जो पिता अपने सामने अपने पुत्रों को सारा कारोबार सौंपकर स्वयं धर्म–ध्यान में पिछली उम्र व्यतीत करते हैं, वे अपने पीछे अच्छा उदाहरण छोड़ जाते हैं। उनके पुत्र भी इसी पकिपाटी का अनुकरण करते हैं। किन्तु जिनसे मरते वक्त तक चाबियां नहीं छूटतीं उनके पुत्र यही समझ लेते हैं कि संसार में अंतिम दम तक फंसे रहने में ही सार है। इसीलिए हमारे पिता भी अंत तक फंसे रहे।

इसका प्रत्यक्ष उदाहरण यह है कि जो नेता लोग संसार व्यवहार में रहते हुए, घर बार आदि का भार अपने ऊपर रखते हुए, किसी बात का उपदेश देते हैं उनकी बात कितनी मानी जाती है और जो स्वार्थ त्यागकर उपदेश देते हैं उनकी पुस्तक में मैंने पढ़ा है कि बुद्ध ने ऐसा नियम बनाया था कि राजा के दो पुत्र हों तो एक राज्य भार संभाले और दूसरा बौद्ध दीक्षा अंगीकार कर अपना व संसार का भला करे।

आप लोगों से यदि यह कहा जावे कि आप भी अपना एक पुत्र जैन धर्म व संसार की सेवा के लिए हमें सौंप दीजिये तो आप क्या कहेंगे। आप यही कहेंगे कि महाराज! और सब कुछ कहो किन्तु यह बात मत कहो। आपको अच्छे साधु तो चाहिए किन्तु अपने सुसंस्कारी पुत्रों को सौंपने में कठिनाई होती है। अच्छे साधु आवें तो कहां से आवें। यदि आपने साधुत्व को अच्छा समझा होता तब तो अपने पुत्र को दीक्षित होते हुए देखकर आपको भी आनन्द आता। पहले जमाने में राजा महाराज और बड़े–बड़े लक्ष्मीपति सेठ साहूकार दीक्षा लेते थे जिससे धर्म व दीक्षा का महत्व साधारण लोगों की निगाह में आ जाता था। आज यदि किसी सेठ को दीक्षा के लिए कहा जाय तो बडी कठिनाई महसूस होती है। ऐसी दशा में जन साधारण को त्याग का महत्व कैसे मालूम हो।

सेठ जिनदास दीक्षा अंगीकार न कर सका किन्तु गृहकार्य का भार पुत्र को संभालकर धर्मध्यान में जीवन बिताने लगा। इस तरह सेठ काल कर गया। सुदर्शन और मनोरमा ने संसार का भार संभाल कर उनका भार हल्का

कर दिया और जिनदास तथा अर्हदासी का मरण सुधार दिया।

नगर के लोगों को जब पता लगा कि जिनदास सेठ काल कर गये हैं। तब वे बहुत शोकाकुल हुए। उनका शोक उनके सुयोग्य पुत्र सुदर्शन को देख कर मिट गया। नगरवासियों ने नगर सेठ का पद सुदर्शन को देना तै किया। वहां के राजा को जब यह सुसंवाद प्राप्त हुआ तब वह भी प्रसन्न हुआ। सोने के कटोरे में घी डालना कौन ना पसन्द करेगा। ठीकरे में घी डालना कठिन होता है किन्तु सुवर्ण पात्र में घी देने में प्रसन्नता होती है।

राजा व प्रजा दोनों ने मिलकर सुदर्शन को नगर सेठ की पदवी से विभूषित किया। नगर सेठ के क्या कर्तव्य है, यह विषय लम्बा है। आजकल लोग रायबहादुर और राज्यभूषण आदि की उपाधियां तो ले लेते है किन्तु उन उपाधियों के पीछे उनकी क्या जिम्मेदारियां हैं, नहीं जानते। पैसे देकर पदवियां लेते हैं और उनके गुलाम बन जाते हैं। इस तरह गुलाम बनना और बात है और प्रजा की सेवा करना और बात है। सुदर्शन नगर सेठ बने है। अब आगे क्या होता है इसका विचार आगे पर है।

राजकोट
4.8.36

आदर्श नगर सेठ

मल्लिजिन बाल ब्रह्मचारी, 'कुम्भ' पिता 'परमावती' मैया,
तिनकी कुमारी, मल्लिजिन बाल ब्रह्मचारी।।

प्रार्थना—यह उन्नीसवें तीर्थंकर भगवान् मल्लिनाथ की प्रार्थना है। जिस समय जिन भावों पर दृष्टिपात किया जाता है उस समय वे ही भाव हृदय में आकर प्रकाशमान होते हैं। इस पर से यह विचार करना चाहिए कि जब मेरी दृष्टि जिस भाव पर पडती है तब वही भाव हृदय में आकर प्रकाश फैलाता है। परमात्मा की प्रार्थना में विविध भाव भरे हुए हैं। जिस समय जिस भाव पर दृष्टि चली जाती है उस समय उसी भाव का प्रकाश मेरे हृदय पट पर पड़ता है। इस प्रकार आत्मा में कितने ही भावों का उद्भव होना चाहिए। हीरे की एक झलक होनी चाहिए।

कौन—कौन से भाव आत्मा में आते रहते हैं, सब भाव एक साथ क्यों नहीं आते यह बात क्षायिक भाव से संबंध रखती है। जिस जीव के ज्ञानावरणीय कर्म सर्वथा नष्ट हो चुके हैं उसको क्षायिक भाव होता है। और उसी को सब भावों का प्रकाश एक साथ प्राप्त होता है। अतः परमात्मा की प्रार्थना में आये हुए भावों पर से अपनी शक्ति का विचार करो। आप को परमात्मा का स्मरण करते हुए कितने भावों का प्रकाश मिलता है, इस पर सोचें। यदि आप अपनी शक्ति पर विचार करेंगे तो आप में अद्भुत शक्ति मालूम देगी। आज प्रार्थना पर अधिक न कह कर इतना ही कहता हूं कि जिसे परमात्मा की सच्ची भक्ति करना है उसे मल्लिनाथ की इस प्रार्थना पर विशेष

निर्गुण दोनों प्रकार की भक्ति होती है। भक्ति सूत्र में कहा है। तत्तु विषयत्यागात् संगत्यागाच्च

पांचों इन्द्रियों के विषयों में आसक्त न रहने से और संग का त्याग करने से भक्ति होती है। अच्छे की संगति करने और बुरे की संगति त्यागने से जीव भक्ति मार्ग पर पहुंच सकता है। जिसकी संगति बुरी है वह भक्ति मार्ग पर नहीं चल सकता। यदि ऐसा आदमी भक्ति मार्ग में जावेगा तो वह और खराबी पैदा करेगा। जिनसे विषय वासना नहीं छूटती वे लोग यदि भक्ति मार्ग में जाते है तो वहां भी अपने इन्द्रिय सुखों का ही पोषण करते हैं। भक्ति का ऊपर से ढोंग दिखाते हैं और अन्तर में विषय का सेवन करते हैं। वे मिथ्याचारी कहलाते है। ऐसे लोग स्वयं पाप में डूबते हैं और अपनी संगति में आने वाले अन्य लोगों को भी पाप में डुबोते हैं।

भगवान् मल्लिनाथ की प्रार्थना में यही बात बताई हुई है कि परमात्मा की भक्ति करने के लिए विषयेच्छा का त्याग करना परमावश्यक है। भगवान् मल्लिनाथ के पूर्व जन्म के साथी उन छओं राजाओं ने जब विषयेच्छा को त्याग दिया तभी वे भक्ति मार्ग पर आरूढ हो सके और समीप से सायुज्य में पहुंच सके।

शास्त्रः– राजा श्रेणिक से अनाथी मुनि अपनी आप बीती सुना रहे है। अनाथी मुनि ने एकाग्रता पूर्वक सुनने के लिए राजा का ध्यान खींचा है। यह बात आप सब श्रोताओं के लिए भी लागू है। आप लोग भी सावधानी पूर्वक अनाथता का स्वरूप समझिये। अनाथी मुनि अनाथता की भूमि पार कर के सनाथता की भूमि में पहुंच चुके हैं। आप लोग भी अपने लिए विचार करें कि आप कौनसी भूमिका पर स्थित हैं।

अवस्था मैं स्वयं भोग चुका हूं। उस अवस्था में मैं छटपटता था और दुःख से दूर होने की कामना किया करता था। जिस व्यक्ति ने मेरे दुःख को दूर करने में सहायता पहुंचाई थी वह मुझे बड़ा प्यारा लगा था। अतः मेरा कर्तव्य है कि मैं भी इसी प्रकार दूसरों के दुःखों को दूर करने में निमित बनूं।

किसी कसाई को देखकर आप उसका तिरस्कार करेंगे। किन्तु ज्ञानीजन उसके प्रति मध्यस्थ भावना रखते हैं। और यह विचार करते हैं कि ऐसी स्थिति हमने भी कभी किसी जन्म में भोगी हुई है। मैं भी कभी कसाई रहा हूं और बकरे को मारा है। मेरा आत्मा भी बकरा रहा है और कसाई द्वारा मारा गया है। मैं कसाई होने की अवस्था में भी दूसरों के द्वारा दया का अधिकारी रहा हूं। जब मुझ कसाई को किसी ने मारने की चेष्टा की थी तव मैं अपना बचाव करना चाहता था और मुझ पर दया दिखाने वाले को अच्छा समझता था। इसी प्रकार इस भव में मेरा भी धर्म है कि मैं कसाई पर भी दया करूं। उस पर मध्यस्थ भाव धारण करूं। यह ज्ञानियों की विचारधारा है। यह सोचकर ज्ञानीजन पापी से भी घृणा नहीं करते।

संसार में कोई भी कुकृत्य का काला तिलक अपने मस्तक पर निकलवाना पसन्द नहीं करता। फिर भी किसी के मस्तक पर कुकृत्य का काला तिलक देखकर ज्ञानी यही सोचता है कि यह व्यक्ति न चाहते हुए भी कर्मों के जाल में फंसा हुआ होने से काले तिलक से बदनाम है। आशा और तृष्णा के जाल में गुंथा हुआ परवशपन में बदनाम है। ज्ञानीजन उसको यही उपदेश देते हैं कि ऐ भूले प्राणी! अपने कलंक की कालिमा को सुकृत के द्वारा धो डाल! वे उससे घृणा नहीं करते बल्कि उसको सुधारने का प्रयत्न करते हैं। यही ज्ञानियों और अज्ञानियों में विशेषता है। जिस पापी व्यक्ति को उपदेश दिया जाता है वह उपदेश माने या न माने ज्ञानी तो अपना फर्ज अदा करते ही हैं। अपने भूतकाल के अनुभवों को याद करके ज्ञानीजन इस प्रकार आदर्श व्यवहार करते हैं।

अनाथी मुनि रोग ग्रस्त अवस्था के अनुभवों को भूले नहीं है। उन अनुभवो के आधार से वे राजा श्रेणिक को सनाथ अनाथ दशा का स्वरूप समझाते हैं।

है। वे अपनी आत्मा के समान उसकी आत्मा को भी मानकर अज्ञानदशा में से उसका उद्धार करते हैं। अनाथी मुनि राजा श्रेणिक की अज्ञानदशा को मिटाने के लिए कहते हैं:–

कोसम्बी नाम नयरी, पुराणपुर भेयणी।
तत्थ आसी पिया मज्ज, पभूय घणसंचओ।।19।।

भावार्थ–कोशम्बी नाम की नगरी–जो प्राचीन थी, प्राचीन कही जाती हुई नगरियों की प्राचीनता का भी उल्लंघन करने वाली थी। वहां मेरे पिता रहते थे। जिनके पास प्रचुर धन का संग्रह था। (उनका नाम भी प्रचुर धन संचयी था।)

कौशम्बी नगरी की प्राचीनता का वर्णन करने में मुनि का अभिप्राय उस नगरी की विशेषता बताना है। प्राचीन नगरों में जो विशेषता होती है वह नवीन नगरों में दृष्टिगोचर नहीं होती। नगरी की विशेषता बताने मे मुनि के मन में दो कारण थे। पहला कारण श्रेणिक राजा का अभिमान घटाना था। राजा श्रेणिक अभी तक अपने राज्य के नगरों को ही श्रेष्ठ मानता था, उसका यह अभिमान गालने के लिए मुनि ने कहा कि तेरी नगरियों की अपेक्षा यह नगरी प्राचीनता के कारण श्रेष्ठ है।

दूसरी बात मुनि ने उस नगरी में अपने पिता का निवासस्थान बताकर अपना जन्मस्थान भी बता दिया। एक बात के संबंध से दूसरी बात का बोध हो जाना अर्थापति अलंकार कहलाता है। कौशम्बी नगरी मे मेरे पिता रहते थे अर्थात् मेरा जन्म मेरी पितृ भूमि में हुआ है पिता को धनवान् बताकर अपनी धनवत्ता स्वतः सिद्ध कर दी।

कई लोगों को शंका हो सकती है कि प्राचीन होने से ही नगरी श्रेष्ठ कैसे हो गई। क्या आधुनिक नगर श्रेष्ठ नहीं हो सकते और प्राचीन नगर भी अश्रेष्ठ नही हो सकते।

कोयला ही रह जाता है। हीरा बहुत अर्से तक जमीन में रहने से हीरा हो जाता है। एक ही प्रकार के परमाणु थोड़ा समय और अधिक समय जमीन में रहने के कारण कोयला व हीरा कहे जाते हैं। कोयले और हीरे की कीमत में कितना अंतर है यह तो आप लोग जानते ही हैं। इसी प्रकार मनुष्यों में भी जो ज्यादा उम्र व अनुभव वाले हैं उनकी कद्र उनसे अधिक होती है जो कम उम्र व कम अनुभव वाले होते हैं। बालक और वृद्ध अनुभवी में अंतर होता है। अन्य भी कई वस्तुएं हैं जो पुरानी होने के कारण ही श्रेष्ठ गिनी जाती हैं। पर्वत, वृक्ष और नगर आदि की पुराने होने से अधिक कीमत है। आज भी बनारस नगरी की विशेषता उसके पुराने होने के कारण देखी जाती है।

मुनि कहते हैं—कोशम्बी नगरी प्राचीन थी। केवल प्राचीन ही नहीं थी उसके संस्कार भी पुराने थे। अनेक आघात प्रत्याघातों को सहन करती हुई वह अपनी हस्ती को कायम रखे हुए थी। प्राचीन नगरों से भी अति प्राचीन थी। यहां यह प्रश्न होता है कि मुनि अनाथ सनाथका स्वरूप बताते हुए नगर की प्राचीनता क्यों बता गये। नगरी की प्राचीनता बताने का आशय यही मालूम होता है कि 'मैं ऐसी प्राचीन नगरी में रहता था जिसमें सुखके सब साधन मौजूद थे। मैं किसी ग्राम में न रहता था जिसमें ऐश आराम और जीवन की आवश्यक वस्तुओं का अभाव होता है। साधन सम्पन्न नगर में रहने से मैं अनाथ था। मैं नागरिक जीवन व्यतीत करता था फिर भी अनाथ था।

अर्थापत्ति अलंकार से मुनि ने अपना निवास्थान भी बता दिया। 'उस नगर में मेरे पिता रहते थे'; यह कहा। मगर यह न कहा कि 'मैं उस नगर में रहता था।' अपनी लघुता बताने के लिए और पिता का बडप्पन जाहिर करने के लिए अर्थापत्ति अलंकार से काम लिया है। अर्थापत्ति अलंकार का थोड़ा स्वरूप बताता हूं। कई दार्शनिक इसे प्रमाण का भेदमान कर स्वतन्त्र प्रमाण मानते हैं।

'पीनो देवदत्तः दिवा न भुंक्ते'

जैसे जैन शास्त्रों के आदि में सुधर्म स्वामी शास्त्र वर्णन करते वक्त बार–बार 'सुंय में आउसं तेणं भगवया एवं–मक्खांय' हे जम्बू! मैंने श्रमण भगवान महावीर स्वामी से ऐसा सुना है, जो सुना है वही तुम को बताता हूं। सुधर्मास्वामी स्वयं चार ज्ञान व चौदह पूर्व के धारी थे फिर भी ऐसा नही कहा कि हे जम्बू, मैं ऐसा करता हूं' किन्तु यह कहा कि 'भगवान् महावीर से मैंने ऐसा सुना है।' पहले के लोग अपने पूर्वजों का नाम आगे रखते थे। आप लोग क्या करते हैं सो जरा सोचो।

आजकल कई लोग पुराने लोगों को ढिच्चर बताते हैं। कई तो ऐसे कुलकलंक भी सुने गये हैं जो अपने बाप को अपनी मित्र मण्डली में नौकर तक कह डालते हैं। किन्तु अच्छे और संस्कारी व्यक्ति अपने बडों का आदर सत्कार करते हैं और उनको आगे रखते हैं। सुना गया है कि चीन मे पुत्र के पराक्रमी कार्यो के उपलक्ष्य में पिता को खिताब दिया जाता है। इस का यह अर्थ हुआ कि पिता के सुप्रयत्न से ही पुत्र योग्य बना है। इन्ही कारणों से अनाथी मुनि अपना नगर बता कर अपने पिता का परिचय देते है।

राजन्! मेरे पिता प्रभूत धन संचयी थे। जैसा उनका नाम था वैसा ही उनका गुण भी था। आजकल लोग केवल नाम बडा रख लेते हैं। गुणों का कुछ पता ही नहीं होता। किन्तु पहले जमाने में अक्सर गुण सूचक नाम रखा जाता था। गुणों के अनुसार ही नाम प्रसिद्धि पाता था। पिता को प्रभूत धन संचयी बताकर खुद को भी धनवान बता दिया। श्रेणिक ने कहा था कि मैं बडा ऋद्धिशाली हूं। मुनि ने भी जाहिर कर दिया कि मैं भी महाऋद्धि सम्पन्न था। फिर भी अनाथ था। अतः हे राजन्! लक्ष्मीवान् होने के कारण तू अभिमान मत कर।

यह अर्थ निकाला है कि पूज्य महाराज तो धनवानों का पक्ष लेते हैं। किन्तु मेरे कहने का भावार्थ धनवानों का पक्ष लेने या उन्हें बढ़ावा देने का नहीं था। व्याख्यान का संबंध ही यह चल रहा है कि जो जितना अधिक धनवान् होता है वही उतना ही अधिक अनाथ है, परिस्थिति का दास है। सौ रुपए में एक बोतल मदिरा जितना नशा बताया गया है। कहा जाता है कि किसी के पास कुछ न हो और यदि उसे एक सौ रुपया मिल जाय तो उसे इतना नशा चढ जाता है जितना बोतल भर शराब पीने से चढ़ता है। यानी धनवानों को एक प्रकार का नशा सा चढ़ा रहता है। वे समझते हैं, हमें धर्म करने की क्या जरूरत है। हम पूर्वजन्म में धर्मकरके आये हैं इसीलिए धनवान् बने हैं।

नवनियाणों में एक नियाणा यह भी है कि 'मेरा जन्म दरिद्र कुल में हो।' धनवान कुल में जन्म होने पर घर बार छोड़ कर धर्म करणी करने के लिए निकल पडना बड़ा कठिन होता है। यद्यपि नौ नियाणों में से एक भी नियाणा करना अच्छा नहीं है किन्तु कहने का सारांश यह है कि धनवान के लिए धर्मकरणी करना कठिन होता है। बाईबल में कहा है कि सूई की नोक में से ऊट का निकलना शक्य हो सकता है किन्तु धनवान का स्वर्ग में प्रवेश असंभव है। दुःख के बिना वैराग्य नहीं होता। अनाथी मुनि के पास धन तो बहुत था किन्तु जब दुःख आपड़ा तभी वैराग्य आया था। धनवान अपने धन के मद मे दु.ख को भूल जाते हैं। अतः उनके लिए घरबार छोड़ कर दीक्षा अंगीकार करना कठिन माना जाता है। ऐसे लोग भी यदि दीक्षा अंगीकार करें तो लोगो को यह विश्वास हो जाता है कि वस्तुतः धन में सुख नहीं है। यदि धन में सुख होता तो ये लोग क्यों छोडते। मुझे धन का बडप्पन सिद्ध नहीं करना है। उसकी असारता, हेयता बताना है। धर्म का धन से कोई संबंध नहीं है। धर्म का आचरण गरीब और धनवान् सब कोई कर सकते है। किन्तु धनवान के लिए धर्मसाधना और कठिन होती है। उसे अनेक उपाधियां लगी रहती हैं। महापुण्य कर्म का उदय होने पर ही धनवान दीक्षा अंगीकार कर सकता है। ऋद्धि को पचाना सरल काम नहीं है। ऋद्धि पाकर लोग

चरित्रः– धन पाकर के भी मर्यादा पर रहने वाले का चरित्र आपको सुनाता हूं:–

नगर सेठ पद राय प्रजा मिल, दिया गुणोदधि जान।
स्वकुटुम्ब सम सब की रक्षा, करते तज अभिमान।।धन।।20।।
लता पुष्प सम सब हितकारी, हुआ सुदर्शन सेठ।
राज साज के चढ़े वृक्ष पै, कभी न करते ऐंठ रे।।धन।।21।।

सुदर्शन की जो कथा आपके सामने उपस्थित करता हूं वह ऐतिहासिक कथा नहीं है किन्तु धर्म कथा है। धर्म कथा का सहारा लेकर जीवन सुधार किया जा सकता है।

नगरसेठ जिनदास के मर जाने पर राजा और प्रजा ने सोचा कि नगर सेठ नहीं रहे। किन्तु वे अपने पीछे एक सुसंस्कारी, व्यवहार निपुण, योग्यतम पुत्र छोड़ गये हैं। उसी को नगर सेठ बनाना चाहिए।

हमें यह देखना है कि किसी को राजा व प्रजा नगर सेठ क्यों बनाते है। नगर सेठ वही बनाया जाता है जो व्यक्ति राजा व प्रजा दोनों का प्रिय पात्र होता है। राजा प्रजा के बीच में मध्यस्थ का काम करता हो। अगर राजा को कोई काम प्रजा से करवाना हो अथवा प्रजा को अपना कोई कार्य राजा के द्वारा करवाना हो तो नगर सेठ के मार्फत एक दूसरे के पास संदेश पहुंचाया जाता है। नगर सेठ सहूलियत से दोनों के कार्य सिद्ध करवा देता है। अपनी बुद्धिमत्ता व कार्य कुशलता के कारण नगर सेठ राजा व प्रजा दोनों का आदरणीय होता है।

आजकल तो लोग रायबहादुर, सर, नाईट आदि उपाधियां लेकर खराब कानून बनवाने में विदेशी सरकार की सहायता करते हैं। प्रजा के कष्ट मिटाने के बजाय प्रजा के कष्ट बढ़ाने में मददगार होते हैं। कई लोग प्रजा द्रोही कार्य करके राजा से उपाधियां लेते हैं। इसके विपरीत पुराने जमाने का नगर सेठ राजा और प्रजा के बीच का पुरुष होता है। दोनों का विश्वास पात्र होता है। दोनों का धर्म जानता है और दोनों को धर्म पर दृढ़ करता है। वह राजा द्वारा प्रजा को कष्ट नहीं होने देता। अपने प्राणों की आहुति देकर भी वह प्रजा की रक्षा करता है। प्रजाहित के लिए राजा द्वारा बनाये हुए नियमों का प्रजा द्वारा वह भंग नहीं होने देता। यदि प्रजा हित के लिए राजा कोई कानून बनाता है तो नगर सेठ राजा का साथ देकर प्रजा से वह कानून मनवाता है। राजा व प्रजा दोनो को प्रसन्न रखने का कार्य कितना कठिन है यह कोई अनुभवी ही समझ सकता है।

मुझे इधर का हाल ज्ञात नहीं है। किन्तु उदयपुर (मेवाड़) का एक उदाहरण आपके सामने रखता हूं। वहां आपके सहधर्मी प्रेमचन्दजी नामक एक व्यक्ति रहते थे। उनकी आर्थिक हालत साधारण थी किन्तु वे थे सत्य पर दृढ रहने वाले व्यक्ति। किसी की लाग लपेट में आने वाले न थे। गोद आने से पहले भावी राणा स्वरूपसिंहजी बागोर की हवेली में रहते थे। प्रेमचन्दजी उनके यहां जाया करते थे और उनका काम काज किया करते थे। प्रेमचन्दजी का काम व स्वभाव देखकर स्वरूपसिंहजी बहुत प्रसन्न होते थे। यह अच्छा आदमी है। यदि मैं मेवाड़ का राणा बन जाऊं तो इसको नगर सेठ बनाऊंगा।

दैवयोग से स्वरूपसिंहजी को मेवाड़ का राज्य मिल गया। प्रेमचन्दजी की योग्यता व गुणों से राणा स्वरूपसिंहजी परिचित थे। उन्होंने प्रेमचन्दजी को बुलाकर नगर सेठ की पदवी प्रदान करने की बात कही। प्रेमचन्दजी ने कहा कि मैं यह आफत मोल लेना नहीं चाहता। मुझे दिन में तीन घंटे धर्मध्यान करने में लगते हैं। तथा आजीविका के लिए भी समय लगाना पड़ता है। यह राज्य का काम है। जरा जरा सी देर में बुलौआ आ सकता है और वक्त पर हाजिर होना ही पड़ता है। अतः यह कार्य मुझसे न निभ सकेगा।

राणाजी ने कहा कि प्रेमचन्दजी! मैं तुमको वेसमय में न बुलाऊंगा। तुम जो समय बता दोगे उसी समय बुलाया करूंगा। प्रेमचन्दजी ने कहा–यह तो अच्छी बात है। किन्तु अभी मैंने ऐसा कोई खास काम नहीं किया है। न प्रजा मुझे जानती ही है। प्रजा की मेरी तरफ कोई आकर्पण भी नहीं है। अतः अभी यह पद ग्रहण करना वाजिव नहीं मालूम देता। यह तो आपकी महरबानी के किराये स्वरूप पद गिना जायेगा। राणा ने सोचा– यह ठीक ही कहता है। पहले इससे कोई अच्छा कार्य कराना चाहिये फिर पद देंगे। राणाजी इसी चिन्ता मे थे कि कोई कार्य इसके हाथों से हो।

उस समय उदयपुर में जो नगरसेठ थे वह बहुत धनवान थे। साधारण धनवान न थे। किन्तु इतने धनवान थे कि कभी कभी राणाओं को कर्ज लेने के लिए उनके यहां मेवाड तक गिरवी रखनी पडती थी। उन्हीं दिनों राणाजी की माता स्वर्गस्थ हो गई। माता का मोसर किया गया। राणाजी ने नगर सेठ को बुलवाकर कहा कि लड्डू बांधने के लिए शहर के लोगों को

है, लड्डू बंधवाने हैं, आप लोग चलिए, ऐसा अवसर कब आता है। प्रेमचंद जी के आदर्श बर्ताव से सब महाजन लड्डू बांधने के लिए आ गये। महाजन कहने लगे– नगर सेठजी तो हम लोगों को हलकारे से बुलाया करते थे। यह तो स्वयं बुलाने के लिए आये वास्तव में नगर सेठ होने लायक प्रेमचंदजी ही है।

लोगों की मनोभावना समझकर राणा ने प्रेमचन्दजी को नगर सेठ बना देने की बात कही। किन्तु प्रेमचन्दजी बोले– महाराना साहिब! मैं गरीब आदमी हूं। अपने घर का गुजारा चलाऊं या नगर सेठाई करूं। राणा द्वारा दस हजार की जागीरी प्रदान करने की बात कहने पर भी प्रेमचन्दजी ने कहा इस तरह जागीरी लेकर मैं आपका गुलाम बन जाऊंगा, खरी बात न कह सकूंगा। प्रजा की भलाई का ध्यान रख सकूंगा। राणा ने कहा बिना कुछ लिए ही सही पर पदवी तो ले लो। मैं तुम्हारी आर्थिक दशा का ख्याल रखूंगा। प्रेमचन्दजी नगर सेठ घोषित कर दिए गये।

जो आलस्य या ऐशो आराम में समय विताकर कर्तव्यच्युत हो जाता है वह धिक्कार का ही पात्र होता है।

सुदर्शन भी यही विचार के अपना कर्त्तव्य निश्चित करने के लिए बाग में जाकर विचारणा करने लगा। उद्यान में बैठकर वह क्या देखता है कि एक लता वृक्ष पर चढ़ी हुई है। उस लता में फूल खिले हुए हैं, फूलों पर भ्रमर मंडरा रहे हैं और रसास्वादन कर रहे हैं। यह देखकर सुदर्शन बहुत प्रसन्न हुआ। और कहने लगा–ऐ लता और वृक्ष! तुम मुझको क्या शिक्षा देना चाहते हो! ऐसा मालूम होता है कि तुम मेरे हृदय के सारे असमंजस को मिटाये डालते हो!

लता पृथ्वी से निकल कर झाड़ पर चढ़ती है। वह पृथ्वी और पानी के पुद्गलों को ग्रहण करके अपना पोषण करती है। खुद का पोषण करके उन परमाणुओं को पुष्प के रूप में जगत् के सामने प्रकट करती है। पृथ्वी में गन्ध है। गन्धवती पृथ्वी कही जाती है। लता पृथ्वी में से गन्ध ग्रहण करती है और उस गन्ध को फूल के रूप में प्रकट करती है। पृथ्वी की गन्ध को लेकर लता फूल बनाती है। यदि मिट्टी का ढेला लेकर सूंघा जावे तो वैसी खुशबू नहीं आती जैसी एक पुष्प में आती है। प्रकृति की अजब लीला है कि एक लता आकर्षण से पृथ्वी में से गन्ध को खींच लेती है और सुन्दर पुष्प के रूप में पेश करती है। लता गन्ध लेकर फूल को देती है और फूल भी अपनी महक स्वयं नहीं भोगता किन्तु भ्रमर को देता है। वृक्ष लता को आधार देता है। इसलिए यह कहने का अधिकारी है कि लता के पुष्पों को मैं स्वयं ही भोगूं, दूसरों को नहीं भोगने दूंगा। किन्तु वृक्ष ऐसा नहीं करता।

लता और वृक्ष मधुमक्खियों से कहते हैं–ओ मधु–मक्खियों! आओ हमारे रस को ग्रहण करो और शहद बनाओ। हमारे रस का दुरुपयोग मत करना किन्तु मधु बनाना। मधुमक्खियां भी शहद बनाकर स्वयं नहीं भोगतीं। वे तो अपना कर्त्तव्य पूरा करती हैं। शहद के उपभोक्ता कोई और ही होते हैं।

वृक्ष लता, पुष्प और मधुमक्खियों के कार्य देखकर सुदर्शन सोचता है कि कहां ये क्षुद्र जीव और कहां मनुष्य? कितना अंतर है। एक परोपकारार्थ अपना निर्माण करते हैं और दूसरे उसका उपभोग कर के दूसरों को सताते हैं। हमें जो सम्पत्ति मिली है वह दुरुपयोग करने के लिए अथवा विषय वासना में लगाकर खराब करने के लिए नहीं मिली है। सम्पत्ति का परोपकारार्थ सदुपयोग करना चाहिए। यदि लता और मधुमक्खियों से शिक्षा ग्रहण करके अपनी सम्पत्ति का उपयोग जनकल्याण के लिए न करूंगा तो मैं भी धिक्कार

का पात्र होंऊगा। इस सम्पत्ति की पदवी की शोभा तभी है जब मैं भी लता की तरह दूसरो के लिए अपने आपको समर्पित कर दूं। दूसरों से जो कुछ लूं वह अपने ही लिए न रखकर फूल की तरह उसका विकास कर सज्जनों का पोषण करूं।

मुझे राज्य सता का आधार मिला है। इस सत्ता का उपयोग दूसरो को सताने के लिए न करूं बल्कि दूसरों की आपत्तियां हल्का करने मे करूं। अपनी बुद्धि रूपी बेल को सत्ता रूपी वृक्ष पर चढ़ाकर शक्ति रूपी पुष्प से सब को सुगन्धित करूं। अपना व्यापार धंधा या लक्ष्मी की वृद्धि करने में ही न करूं। इस प्रकार सुदर्शन लता को देखकर अपना असमंजस मिटा रहा है। उसे अपना कर्त्तव्य स्पष्ट मालूम दे रहा है।

मित्रों! आप लोग भी दूसरों से लेते हो तो दूसरों को देने की भावना भी रखो। लता से यह गुण सीखो। अपनी शक्ति का उपयोग दूसरों की भलाई के लिए करोगे और देना सीख लोगे तो कल्याण है।

राजकोट
5.8.36

परोपकार ही जीवन का सार है

श्रीमुनि सुव्रत सायबा, दीन दयाल देवांतणा देव के,
तरण तारण प्रभु मो भणी, उज्ज्वल चित्त समरूं नित्य मेव के।
श्री मुनिसुव्रत सायबा।।1।।

प्रार्थना— यह बीसवें तीर्थंकर भगवान् मुनिसुव्रत स्वामी की प्रार्थना है। भक्त कहता है कि इस अखिल संसार में परिभ्रमण करते अनन्त काल व्यतीत हो गया फिर भी मेरा निस्तार नहीं हुआ इस विश्व में परिभ्रमण करते हुए मुझे अपने अनुभव से यह ज्ञात हुआ कि परमात्मा की शरण में अपने आप को सौंप देना भवसागर से पार उतरने का एक मात्र सच्चा उपाय है। संसार रूपी महासमुद्र से पार उतरने के लिए ईश्वर का संस्मरण नौका के समान है। मुझे भी परमात्मा की शरण में जाने और उसका स्मरण करने का कई बार विचार आता है। किन्तु उसकी शरण में किस प्रकार जाना और किस प्रकार उसका संस्मरण करना चाहिए यह बात समझ में नहीं आती। इसका उपाय इस प्रार्थना में बताया है। कहा है:— **उज्ज्वल चित्त समरूं नितमेव के**

हे प्रभो! मैं उज्ज्वल चित्त से नित्य तेरा स्मरण करता रहूं। ईश्वर का रटनमात्र—स्मरण करना दूसरी बात है। और उज्ज्वल चित्त से स्मरण करना और बात है। मन हृदय और बुद्धि को साफ बनाये बिना परमात्मा की झांकी नहीं हो सकती। जिस प्रकार साफ आईने में मुख देखा जा सकता है उसी प्रकार शुद्ध हृदय मे परमात्मा के दर्शन हो सकते हैं। जिस हृदय में पाप रूपी कालिमा लगी हो उसमें प्रभु दर्शन संभव नहीं है। अतः हृदय को, चित्त को उज्ज्वल बनाना प्रथम आवश्यक है। चित्त में रहे हुए विषय विकारों को

अन्तर्यामी! तेरी शरण में जाने और तेरा स्मरण करने के जो साधन हैं वे अन्य कामों में रुके हुए हैं। मैं चाहता तो यह हूं कान तेरे भजन सुनें, तेरी वाणी का आस्वाद लें किन्तु होता यह है कि दूसरों की निन्दा सुनने से ही उन्हे फुरसत नहीं मिलती। आंखों से भी मैं तेरा रूप निहारना चाहता हूं।

'जहां देखूं वहीं पर नूरे खुदा, कोई और तो आता नजर ही नहीं।'

जिधर देखूं उधर हे प्रभो! तेरा ही नूर देखूं, यह चाहता हूं। किन्तु आंखें ऐसा नहीं करतीं। वे अलंकारों से विभूषित नवयौवन नारियों को देखने के लिए जितनी उत्सुक रहती हैं उतनी तेरे दर्शन के लिए लालायित नहीं रहतीं। नाम के संबंध में भी यही बात है। मैं अपनी नाक ऊंची रखना चाहता हूं। किन्तु जिन सुकृत्यों के करने से नाक ऊंचा रहता है वे न करके नाक कटने के काम करता हूं। जिह्वा से तेरे गुणगान करना चाहता हूं। किन्तु ऐसा न करते हुए जिह्वा विविध-व्यंजनों का स्वाद लेने और दूसरों की निन्दा करने में लगी रहती है। जिह्वा परनिन्दा करने में और हलुवा पूड़ी खाने मे जुटी है। [illegible] वाग्बाण बरसाने में अपनी शक्ति का उपयोग करती है।

परमात्मा के निकट पहुंचाने में निमित्त हो सकती हैं। जो रोगी होता है वही डाक्टर की शरण में जाता है। जो विद्याहीन है वही विद्यालय में पढ़ने जाता है। इसी प्रकार तेरे में ये खामियां है इसीलिए तू परमात्मा की शरण में जाना चाहता है। अगर खामियां न होतीं तो तू परमात्मा का विचार ही क्यों करता। तेने अपनी कमजोरियां जान लीं यह भी कम बात नहीं है। कम से कम तू खरावी को खरावी तो मानता है, बुराई को भलाई तो नहीं कहता। तेरी बुद्धि सम्यक् है कि तू बुरे को बुरा और अच्छे को अच्छा मानता है। तू हेयोपादेय का ज्ञान रखता है। अतः तेरा उद्धार होना संभव है। और इसीलिए तू परमात्मा की शरण में जाना चाहता है।

पूरव अशुम कर्त्तव्यता तेहने है प्रभु तूं न विचार के।
अघम उद्धारण विरुद है शरण आयो अब कीजै सहाय के।।

हे प्रभो! मैं अपने कार्यों की तरफ देखता हूं तो तेरी शरण में आने लायक अपने को नहीं पाता। लेकिन तू पतितों का उद्धारक है, निराधारों का आधार है। मैं अधम हूं, पतित हूं, और निराधार भी। अतः तेरे विरुदों का ख्याल करके तेरी शरण में आया हूं। सद्गुरु के वचनों का विश्वास लाकर तेरी शरण चाहता हूं। भगवन्! संसार सागर से मेरी नैया पार उतारो।

जिस प्रकार सर्प से डसा हुआ व्यक्ति अपना जहर उतरवाने के लिए किसी जानकार मंत्रवादी के पास पहुंचता है। उसी प्रकार मैं भी काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेप आदि सर्पों से डसा हुआ हूं। सर्प का विप तो शरीर तक ही कायम रहता है मरने पर अपने आप खत्म हो जाता है। किन्तु काम, क्रोध का विप अनेक जन्म जन्मान्तर तक अपना असर कायम रखता है। इन जहरीले विपों से अपना पिण्ड छुड़ाने की मुझे चटपटी लग रही है अतः प्रभो! मैं तेरी शरण में आया हूं। मुझे इन शैतानों से वचाओ, मेरा उद्धार करो, मेरी रक्षा करो।

धर्म प्रेमी सज्जनों! आप लोग भी कुछ चेतेंगे या गहरी नींद में ही सोये पडे रहेंगे। आप लोगों को समझना चाहिए कि धर्म स्थान में क्यों आये है, प्रभु की गोद में आये हैं। अतः प्रमाद रखना उचित नहीं है। कोई आदमी राजा की गोद में वैठा हो तो क्या वह नींद लेगा या स्फूर्ति रखेगा। इसी प्रकार धर्मस्थानक में आकर आलस्यप्रमाद छोड कर प्रभु में लौ लगानी चाहिए। कहना मेरा काम है, करना आपका काम है।

इस अभिमान को त्याग कर अपने को अनाथ मान। जो अपने को अनाथ समझेगा वही किसी नाथ की शरण में जा सकता है। जो अपने में कोई बीमारी अनुभव करता है वही वैद्य की शरण में जाता है। स्वस्थ व्यक्ति वैद्य के पास क्यों जायेगा। मैं अनाथ दशा भोग चुका हूं। उसका जिक्र तुझे सुनाता हूं।

मेरे पिता कौशाम्बी नगरी में रहते हैं। वे प्रचुर धनसंचयी हैं। प्रचुर धन–संचयी वह है जिसके आश्रय में रहने वाले लोग भी धनवान हो जावें। जैसे पंडित के साथ रहने वाला मूर्ख पंडित हो जाता है, डाक्टर के पास रहने वाला अस्वस्थ व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है वैसे ही जिसके पास रहने से निर्धन भी धनवान हो जावें वह प्रभूत धन–संचयी कहलाता है। यह अर्थ मैं शांकर भाष्य के आधार से कर रहा हूं। मुनि ने यह बताया कि मेरे पिता के आश्रय में रहकर अनेक लोग धनवान बन गये थे।

इस पर से यह भी बता दिया कि धनवान पिता का पुत्र होने से मैं स्वयं भी धनवान था। मुनि की बात सुनकर राजा को विश्वास हो गया कि वस्तुतः कौशाम्बी नगरी बहुत पुरानी नगरी है और उसमें अनेक बड़े–बड़े इभ्य सेठ भी रहते सुने गये हैं। अतः उस नगरी के निवासी यह मुनि भी बहुत बड़े धनवान् रहे होंगे। किन्तु राजा का यह संशय तो अभी बाकी ही है कि इतने धनवान होते हुए भी आप अनाथ कैसे थे। इसको मिटाने के लिए मुनि आगे कहते हैं:–

पढमे वये महाराय अतुला मे अच्छिवेयणा।
अहोत्था विउलो दाहो, सव्वगेसु पत्थिवा।।19।।
सत्थं जहा परमतिक्खं, सरीर विवरंतरे।
पविसिज्ज अरी कुद्धो, एवं मे अच्छिवेयणा।।20।।
तियं मे अंतरिच्छं च, उत्तमंगं च पीडई।
इन्दासणिसमा घोरा, वेयणा परमदारुणा।।21।।
उवट्ठिया मे आयरिया, विज्जामंत चिगिच्छया।
अबीया सत्थकुसला, मन्तमूल विसारया।।22।।
ते मे तिगिच्छं कुव्वंति, चाउप्पायं जहाहियं।
न य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया।।23।।

हुआ। जिनको तू भोग के साधन मानता है वे सब साधन भी थे। फिर भी क्या हुआ सो सुन।

सर्वसाधन होते हुए भी युवावस्था में मेरे शरीर में घोर वेदना हो गई। सबसे पहले मेरी आंखों में वेदना ने प्रवेश किया। आंखें सारे शरीर का सार मानी जाती हैं। आंखों से देखकर के ही सब को पहचाना जाता है। आंखों के अभाव में सर्वत्र अंधेरा है। सूर्य के प्रकाश फैलाने पर भी आंखों के विना अंधेरा ही है। मेरी आंखों में घोर वेदना शुरू हो गई।

आंखों के होने से मनुष्य अनाथ होता है या सनाथ यह बात अनाथी मुनि के कथन पर से समझने की कोशिश करिये। अनाथी मुनि नें आखों से अच्छे अच्छे दृश्य देखे थे। आंखों को दुरुस्त करने के लिए अच्छे-अच्छे पौष्टिक पदार्थ खाये थे और आंखों में अंजन भी लगाया था। फिर भी उनकी आंखों में वेदना क्यों हो गई। उनको वेदना के पहले अपनी आंखों का बडा अभिमान था। वे समझते थे कि मेरी जैसी लम्बी-लम्बी आंखें विरलों की ही होंगी। आंखों का अपने को नाथ मान रहे थे। किन्तु जब वेदना हुई तब सुख का साधन मानी जाने वाली यही आंखें दुःख का कारण बन गई। कहिये आंखों के कारण अनाथी मुनि नाथ रहे या अनाथ? मुनि कहते हैं-हे राजन्! मैं आंखों को अच्छी रखना चाहता था। लेकिन मेरे प्रयत्न करने पर भी उनमें घोर वेदना आरंभ हो गई। तब मुझे विश्वास हो गया कि मैं आंखों का नाथ स्वामी नहीं हूं। आंखें मेरी नहीं हैं। उस समय ऐसा जान पड़ने लगा कि यदि आंखें ही न होतीं तो अच्छा होता। आंखों को मैं अपनी मानता था। किन्तु वेदना होने पर मुझे अपनी भूल मालूम हो गई।

जो लोग कहते हैं कि 'आंखें हमारी हैं' वे भूल करते हैं। वे आंखों में अपनेपन का आरोप कर लेते हैं। जो वस्तु अपनी होती है वह अपना हुक्म मानती है। किन्तु जो हमारा हुक्म न माने वह वस्तु हमारी कैसे हुई। जो जिसका अपने को नाथ मानता है, यदि वह उसका हुक्म न माने तो वह नाथ कैसा। किन्तु राजन्! वेदना के पूर्व मैं आंखों का बड़ा अभिमान करता था, वह अब उतर गया। बंधुओं! आज संसार में देखते हैं कि लोग जरा सी साधन सामग्री पाकर बहुत इतराने लगते हैं। वे अपने को ठगते हैं।

मुखड़ा क्या देखे दर्पण में, तेरे दया धर्म नहीं मनमें।
पगिया बांधे पेंच संवारे, फूल रहा निजतन में।
धन जोबन डूंगर का पानी, ढलक जाय एक छिन में।

लोग दर्पण में मुख देखकर अकड़ने लगते हैं। आंख स्वयं अपना मुख नही देख सकती अतः दर्पण का सहारा लेना पड़ता है। जिन आंखों से अपना मुख देखकर आप अभिमान अनुभव करते हैं, क्या सचमुच उन आंखों के आप नाथ है? अनाथी मुनि का विवेचन सुन कर यह सोचिये कि 'आंखें हमारी नहीं है और न हम आंखों के नाथ हैं' फिर अभिमान किस बात का?

अनाथी मुनि कहते हैं कि मेरी आंखों में घोर वेदना होने के साथ ही साथ मेरे शरीर में भी विपुलदाह होने लगा। शरीर के किसी एक अवयव में नही, किन्तु सारे ही शरीर में अत्यन्त जलन होने लगी। मेरा शरीर इस प्रकार जल रहा था मानो आग पर रखा हो।

कोई व्यक्ति आपके शरीर पर यदि आग रखता है या आपकी आंखों में भाले की नोंक चुभोता है तो आप उसे अपना शत्रु मानेंगे। उसे अपराधी कहेंगे। बाहर से वेदना पहुंचाने वाले को तो आप शत्रु और अपराधी मान लेते हो। किन्तु आपके भीतर ही से वेदना पहुंचाने वाले को क्या कहेंगे? अनाथी मुनि के शरीर में विपुल दाह और आंखों में घोर वेदना कौन पहुंचा रहा था? वह कौनसा शत्रु है? बाहर वाले को तो शत्रु मानते हो। किन्तु अपने शत्रु आप स्वयं बन रहे हो इसका भी कभी ख्याल किया है?

मुनि राजा से कहते हैं–राजन्! यदि कोई मनुष्य किसी की आंखों मे भाला खोंचता है या कोई किसी को जलाता है तो क्या तू खड़ा देखता रहेगा या राज्य सत्ता का उपयोग करके उसको बचायेगा? और कसूर करने वाले को सजा देगा। राजा ने कहा–मुनिवर! मेरे जीवन में भी ऐसा प्रसंग नहीं आया कि मै सताये जाते हुए को देखता रहा हूं और आततायी को दण्ड न दिया हो। मुनि ने कहा–राजन्! इन बाहरी शत्रुओं से तू बचाव कर सकता है और उन्हें दण्ड भी दे सकता है किन्तु मुझ पर भीतरी शत्रु का आक्रमण हुआ था। उससे बचाव करने का तेरे पास क्या उपाय है?

राजन्! तूने बाहरी शत्रुओं से अपनी प्रजा का रक्षण किया है? किन्तु तेरी प्रजा में कोई रोग व्याप्त हो जाय उसका क्या उपाय किया? यदि कोई उपचार न कर सका तो नाथ कैसे हुआ? प्रजा का नाथ होना तो दूर की बात है। तू स्वयं अपना भी नाथ नहीं है। रोग क्या है? रोग अन्य कुछ नहीं है, स्वयं आत्मा ही रोग है। रोग का मूल कारण आत्मा में निहित है। जब तू अपने भीतर घेरे हुए रोग के मूलकारण को भी नहीं जीत सकता तो तू नाथ कैसे हुआ।

मगधाधिप! जब मुझे घोर अक्षिवेदना हो रही थी और मैं उस वेदना को मिटाने में सर्वथा असमर्थ था तब तू ही बता कि मैं सनाथ था या अनाथ। जब मुझे अक्षिवेदना हो रही थी तब मेरे कटिप्रदेश में भी शूल चल रहा था।

उसी वक्त मेरे मस्तक में भी ऐसी पीड़ा हो रही थी जैसे इन्द्र वज्र मार रहा हो या बिजली गिर रही हो। उस मस्तक में जिसे उत्तमांग कहा जाता है तथा जो ज्ञान का केन्द्रस्थल है। दारुण और दिल को दहला देने वाली घोर पीडा हो रही थी।

राजन्! कदाचित् तू कहे कि रोगों का निदान मौजूद है, इलाज कराने से बीमारी मिट सकती है और तज्जन्य कष्ट दूर किया जा सकता है। तो सुन, मेरी वेदना मिटाने के लिए किसी भी उपाय की कमी नहीं रखी गई थी। मैं किसी ग्राम में न रहता था जहां कि औषधोपचार का पूरा प्रबन्ध नहीं होता। मैं प्राचीन से प्राचीन कौशाम्बी नगरी में रहता था। वहां बड़े बड़े अनुभवी वृद्ध वैद्याचार्य रहते थे जिनको अपना निजी अनुभव के साथ साथ अपने पूर्वज वैद्यों के विशाल ज्ञान का लाभ भी मिला हुआ था। जिनके खानदान में वंश परम्परा से वैद्यकी का धंधा चला आता था और जिनको पिछली पीढ़ियों के अपने पूर्वजों के अनुभव का लाभ भी परंपरागत प्राप्त था। उन वैद्यों में अनुभव के साथ ज्ञान भी था। वे शास्त्र और शस्त्र दोनों में प्रवीण थे। जडी बूटियों के सिवा शल्यक्रिया–चीरफाड़ के काम में भी कुशल थे। वे चाकू से इस प्रकार चीरा लगाने में निपुण थे कि रोगी को पता तक न लग सके। इसके साथ साथ वे मन्त्र विद्या में भी विशारद थे। वे चार प्रकार से मेरी चिकित्सा करते करते थक गये किन्तु मेरी पीडा में कुछ भी कमी करने में समर्थ न हो सके।

राजन्, तू जिस शरीर को भोग भोगने का साधन बताता है उसी शरीर में ऐसी असह्य पीड़ा हुई थी। अब तू ही बता कि मैं नाथ था या अनाथ। वेदना के आवेग को सहने में अपने को विवश पाकर मैंने यदि कहीं से विष मिल जाय तो उसे खाकर शरीर का ही अन्त करने का विचार कर लिया था। ताकि न रहे बांस न बजे बांसुरी। जब शरीर ही छूट जायेगा तो उसके साथ वेदना भी छूट जायेगी। किन्तु राजन्! फिर विचार आया कि शरीर के छूट जाने से थोडी देर के लिए वेदना तो छूट जायेगी किन्तु वेदना का मूल भूत कारण–कर्म तो आत्मा के साथ दूसरे भव में भी मेरा पिन्ड न छोडेगा। कारण के मौजूद रहने से इस भव में नहीं तो परभव में वेदनीय कर्म उदय आये बिना न रहेगा। अतः कारण का नाश करना ही वेदना मिटने का समुचित उपाय है। बीज के जल जाने पर फिर वृक्ष नहीं उग सकता। कारण नाश होने से फिर कर्म वेदना नहीं हो सकती। वेदना का कारण वेदनीय कर्म मेरे भीतर विद्यमान

मिटी हुई नहीं मानी जा सकती। मुझे भान हुआ कि इस शरीर को अपना मानना ही भूल भरी बात है। और इस शरीर का अभिमान करना तो डबल भूल है। राजन्! मेरी तरह तुझे भी कभी शरीर रोग तो हुआ ही होगा। कारण कि यह शरीर रोग का घर है।

राजा श्रेणिक और अनाथी मुनि अभी नहीं हैं। अभी तो यहां मैं और आप उपस्थित हैं। मैं आपसे पूछना चाहता हूं कि आपको भी शरीर में कभी रोग हुआ होगा। रुग्णावस्था में आपका यह अति प्यारा शरीर आपको कैसा लगा होगा। बुरा लगा होगा किन्तु पूरी तरह बुरा न लगा। यदि पूरी तरह यह शरीर बुरा बना होता तो आप ऐसा प्रयत्न करते कि जिससे कि कभी यह शरीर धारण ही न करना पड़ता। किन्तु कष्ट से छूटने के बाद कष्ट याद ही नही रहता। आपके सामने शास्त्र की गंगा बह रही है। इससे लाभ लेकर के भी कुछ अपना आत्म कल्याण करिये।

चरित्रः—अब मैं शरीर से मुक्त होकर सदा के लिए कष्टों से छुटकारा पाने वाले की कथा सुनाता हूं।

कपिल पुरोहित विविध विद्याधर, सुदर्शन से पाले प्रीत।
लोह चुम्बक सम मिले परस्पर, सरखी सरखी रीत रे।।घन।।21।।

आपके सामने कथा क्यों रखी जाती है इस बात पर पूर्वाचार्यों ने बहुत विचार किया है। साधारण जनता तत्त्वज्ञान की बारीकी नहीं समझ सकती। कथा की सहायता से तत्त्वों की सूक्ष्म विवेचना को स्थूल बनाकर जनसाधारण के लिए सुबोध बनाना, कथा का उद्देश्य होता है। किसी चरित्र नायक का चरित्र सुनाकर उसके जीवन की घटनाओं में आई हुई अनुभव पूर्ण बातो से तत्त्व को समझाना ही कथा का उद्देश्य है। दूसरी बात, कथा के द्वारा प्रेम रस की पुष्टि की जाती है। कथा का आधार लेकर विशुद्ध प्रेम की भावना उत्पन्न की जाती है। प्रेम उत्पन्न कर के तत्त्व समझाना ही कथा का लक्ष्य होता है।

जैसे आपके विवाह किया और आपकी पत्नी घर पर आ गई। पत्नी ने फरमाइश की कि अमुक अमुक वस्तुएं मेरे लिए ला दीजिये। यदि आप उसके प्रेम में बंध गये हैं तो बिना पशोपेश के उसकी आज्ञानुसार सब वस्तुएं ला देंगे। वैसे ही कथा के द्वारा पहले श्रोताओं में धर्मश्रवण के लिए प्रेम–रुचि पैदा करना इष्ट है। फिर धीरे–धीरे उनको गहरे तत्त्व समझाने की कोशिश करना और तदनुसार आचरण बनाने का उपदेश देना धर्म कथा सुनाने का उद्देश्य है।

ये फूल वृक्ष में से रस खींचकर दूसरों के लिए अपनी शक्ति का विकास करते हैं उसी प्रकार मुझे भी अपनी सम्पत्ति और पद का उपयोग दूसरों के परोपकारार्थ करना चाहिए तभी इनकी सार्थकता है। लता, पृथ्वी पानी और हवा से जो कुछ ग्रहण करती हैं उसका फूल के रूप में विकास करती है। न लता को आधार देने वाला वृक्ष ही उसका लाभ लेता है। उसका लाभ तो शहद बनाने वाली मक्खियों को मिलता है। आप लोग भी पृथ्वी, पानी और हवा से सार ग्रहण करके जीवन धारण करते हो, उसकी एवज में वापस क्या देते हो इसका जरा विचार करो।

क्या आप लोगों ने कभी यह बात सुनी है कि पुष्पों से हवा गन्दी होती है और उससे जगत् में जहर फैलता है? यदि नहीं सुनी तो खुद के लिए विचार करो कि आप अपनी वाणी, मन और कर्म के द्वारा जगत् में विष तो नहीं फैला रहे हैं। कठोर व मर्मघाती शब्द बोलकर दूसरों के चित्त को दुःखी तो नहीं कर रहे है? मन में गन्दे विचार लाकर हृदय कलुषित तो नहीं कर रहे हैं? अपने कार्यों के द्वारा लोगों में भय आतंक और क्लेश तो नहीं फैला रहे हैं? यदि आप ऐसा करते हैं तो अब भी समय है कि पूर्वकृत कार्यों का पश्चाताप करके आयन्दा ऐसा न करने का निर्णय करके अपना आत्मकल्याण कर सकते हैं।

लता और वृक्ष के कार्यों से शिक्षा ग्रहण करके सुदर्शन अपना कर्तव्य अदा करने में लग गया। उसने ऐसी व्यवस्था की कि शहर में कोई भी व्यक्ति नंगा और भूखा न दिखाई देता था। वह निराधार का आधार बन गया था। राजकोट के भूतपूर्व ठाकुर साहिब लखाजी राजा के लिए सुना जाता है कि वे दीन हीन, दुःखी जनों के लिए बहुत प्रयत्न करते थे। गरीबों के घरों मे पहुंच जाते थे और ऐसा काम करने में भी न हिचकते थे जिसे नौकर तक करने से घबड़ाते थे। जब एक रईस भी गरीबों की सेवा में इस तरह जुटे रहते थे तो क्या आप जिनेन्द्र देव के भक्त और जैन श्रावक नाम धराकर, केवल निजी स्वार्थ में ही मशगूल रहेंगे? यदि आप निज स्वार्थ मे ही लगे रहे तो श्रावक कैसे? लता वृक्ष और फूल के जीवन से कुछ नसीहत ग्रहण कीजिये। तब जैन

या पशु दुःखी न रहना चाहिए।

आजकल लोगों ने पशुपालन की जिम्मेवारी अपने ऊपर से हटा दी है ऐसा मालूम पड़ता है। मोल का दूध दही लेकर अपना काम चला लेते हैं और कहते हैं कि ढोर का पालन करके ढोर कौन बने। मैं पूछता हूं कि ढोर का दूध दही खाने से क्या बन जाते हैं? इसका उत्तर दीजिये। यदि ढोरों(पशुओं) का पालन करने से इन्सान ढोर बन जाता है तो आनन्द श्रावक का क्या हाल हुआ होगा। उनके पास चालीस हजार गायें थी। आपके न्यायानुसार तो वह सब से बड़े ढोर ठहरे। जिसकी सहायता से हमारा जीवन निर्वाह होता है उसका पालन पोषण और रक्षण न करके पैसे के बल पर नाचना और गरजना कितना अनुचित है। ऐसा जीवन सच्चा जीवन नहीं गिना जा सकता। केवल लेना ही लेना न सीखो किन्तु कुछ देना भी सीखो।

कल मुनि सीरेमलजी ने आपको मेवाड़ के महाराणा प्रताप का कुछ हाल सुनाया था। राणा ने आधी रोटी से अपने अतिथि का सत्कार किया था। अतिथि का सत्कार पूरी तरह न कर सकने के लिए राणा कितने दुःखी हुए थे। उन्हें यही दुःख था कि मेरे यहां आया हुआ अतिथि भूखा कैसे जा सकता है। उनकी स्त्री और पुत्री भी कितनी उदार थी। भारत के इतिहास में महाराणा प्रताप का जैसा स्थान है वैसा शायद ही किसी का हो। उदारता रखने से कुछ भी कमी नहीं हो जाती। लाखाजी राजा उदार थे तो क्या उनको कुछ कमी हो गई थी। कृपणता से धन की वृद्धि होती है और दान देने में उदारता करने से धन की कमी होती है, ऐसा ख्याल करना नितान्त भूल है। अतः उदार बनो और देना सीखो।

सूर्य के उदय से जैसे किसी के घर में अन्धेरा नहीं रह सकता वैसे ही सुदर्शन के रहते नगर में कोई दुःखिया नहीं दिखाई देने लगा। दीपक एक ही घर मे प्रकाश फैलाता है। किन्तु सूर्य सब घरों का अन्धकार दूर करके प्रकाश फैलाता है। जो अपने ही कुटुम्ब का पालन पोषण करता है वह मनुष्य है और जो सूर्य की तरह सब लोगों की भलाई करता है वह मनुष्य के रूप में देवता है। जो एक घर में प्रकाश करता है वह दीपक है और सर्वत्र प्रकाश करता है वह सूर्य है।

जो परोपकारी या सेवाभावी व्यक्ति है उसे भी अपने से अधिक परोपकारी और सेवाभावी को देखकर उसका आदर सत्कार करना चाहिए और उसके सामने अपने कार्यो को तुच्छ मानकर और आगे बढ़ना चाहिए। ऐसी उच्च भावना रखने से क्या हिन्दू और क्या मुसलमान सब आनन्दपूर्वक रह सकते हैं।

सुदर्शन सेठ परोपकार करने में इस प्रकार जुट गया कि सर्वत्र उसी की बातें और बड़ाई होने लगी। लोग चर्चा करने लगे कि राजा तो फिर है, हमारे लिए तो यह सेठ ही सब कुछ है। यह सेठ हमारा दुःखदर्द सुनकर तत्काल हमारे पास पहुंच जाता है और हमें हर प्रकार से सहायता पहुंचा कर हमारी सेवा करता है। गर्मी से तपे हुए व्यक्ति को वृक्ष छाया देकर सुखी बनाता है वैसे ही यह सेठ हमारे अभावों को दूर करके हमें आनन्दित करता है।

वृक्ष तपे हुए लोगों को छाया प्रदान करके किस प्रकार आनन्दित करते हैं इस बात का अनुभव आप लोगों को क्या होगा। आप जूते पहन कर, छाता लगा कर या रेल मोटर में बैठकर चलते हैं और मौका लगने पर आकाश में उड़कर भी जाते हैं। इस बात का अनुभव तो हम साधु लोगों को है, जो नगे पैर बिना छाता लगाये वैशाख जेठ की कड़ी धूप में चलते हैं। हमारे लिए तो अब भी चौथा आरा बरत रहा है। आज के ये साधन–रेल मोटर और हवाई जहाज हमारे क्या काम के जब हम लोग चार छः कोस का विहार करके एक ग्राम से दूसरे ग्राम में जाते हैं तब मार्ग में कड़ी धूप से तपे हुए हम लोगों को वृक्ष की घनी छाया कैसे लगती होगी। आप छाता लगाने की बात कहेंगे तो वह हमें नहीं कल्पती है। किन्तु वृक्ष की छाया का आश्रय लेने में हमें कोई रुकावट नहीं हैं। इस प्रकार वृक्ष तपे हुए को अपनी छाया देकर आनन्दित करता है।

जो वृक्ष ताप से तप्त प्राणी को छाया देकर सुखी नहीं बनाता वह वृक्ष कैसा। उसका होना निरर्थक है। जो आदमी दूसरों की सहायता नहीं करता वह भी पृथ्वी पर भार भूत प्राणी है। वृक्ष की तरह सुदर्शन भी सब को छाया–आश्रय देता था। वह सोचता था कि अपने पास आये हुए को यदि मैंने शांति नहीं पहुंचाई तो मेरा मनुष्य जन्म धारण करना वृथा है। वह इन्सान ही क्या जो दूसरों के काम न आवे। सुदर्शन की परोपकार वृत्ति की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी।

अच्छी प्रतिष्ठा थी। सब उसकी कृपादृष्टि के इच्छुक थे। उसने सुदर्शन के यश की गाथा सुनी। उसके मन में हुआ कि ऐसे गुणी आदमी की मित्रता लाभदायक होती है अतः किसी तरह सेठ से प्रीति करनी चाहिए।

दुनिया का यह साधारण नियम है कि समान स्वभाव वालों की ही आपस में दोस्ती होती है। संस्कृत में कहावत है कि–

'समान शील व्यसनेषु मैत्री'

जिन लोगों का स्वभाव मिलता है और जो समान व्यसन–आदत वाले हैं उनका परस्पर दोस्ताना होना स्वाभाविक है। गुणी गुणी की तरफ खिंचता है और दुर्गुणी दुर्गुणी की तरफ। बीड़ी पीने वाले की दोस्ती बीड़ी पीने वाले से, भंग पीने वाले की भंग पीने वाले से, शराबी की शराबी से और दुराचारी की दुराचारी के साथ मित्रता होना स्वाभाविक है। इसी तरह धर्मी की दोस्ती धर्मात्मा से होती है। सामायिक पौषधोपवास आदि करने वाले की मित्रता ये कार्य करने वाले के साथ हो जाती है। उदार व्यक्ति की दोस्ती उदार व्यक्ति से होती है। मतलब कि समानशील और व्यसन वालों की आपस मे दोस्ती होना संभव है।

कपिल पुरोहित ने अनेक प्रयत्न करके सुदर्शन सेठ से मुलाकात की। सेठ सुदर्शन इतना सज्जन आदमी था कि हर किसी से मिलने व मुलाकात करने के लिए सदा तैयार रहता था। कपिल ने तो प्रयत्न पूर्वक भेंट की थी अतः उससे मिलने और प्रीति करने में सेठ को क्या आपत्ति हो सकती थी। सेठ गुणीजनों से तो प्रीति करते ही थे किन्तु दुर्गुणियों से भी उनके दुर्गुण मिटाने की भावना से प्रेम करते थे। उनके साथ मेलजोल रखते थे। प्रीति करके दुर्गुण किस प्रकार छुड़ाये जाते हैं, यह बात एक कथा द्वारा बताता हूं।

एक बार मगध देश के राजा श्रेणिक ने अपने राज्य में 'अमरपडह' फिरवाया कि कोई भी व्यक्ति मेरे राज्य में किसी जीव को न मारे। यह आज्ञा

से मेरी रोजी चलती है। मैं अपनी रोजी किस प्रकार छोड़ दूं।

राजा ने सोचा, यह सीधी तरह हुक्म मानने वाला नहीं है। अत सिपाहियों को आज्ञा देकर उसे जेल में बन्द करवा दिया। कालकसूरी कसाई जेल में पड़ा हुआ भी अपने शरीर से मैल उतारकर उसके भैंसे बनाकर अपने नाखून से तलवार की तरह उन पर घाव करता जाता और गिनता जाता था कि एक दो तीन। उसकी चिल्लाहट सुनकर राजा ने सिपाहियों से पूछा कि कालकसूरी कसाई एक दो तीन आदि क्यों चिल्ला रहा है। सिपाहियों ने उत्तर दिया कि महाराज! जिस काम से रोकने के लिए आपने कालकसूरी कसाई को जेल में बन्द करवा रखा है वही काम वह जेल में बंदी बन करके भी कर रहा है। अपने शरीर के मैल से भैंसे बनाकर मार रहा है। और मारते मारते उनकी गिनती करता जा रहा है। उसी की यह चिल्लाहट है।

सिपाहियों से यह हकीकत सुनकर राजा ने अपने पुत्र तथा मंत्री अभयकुमार को बुलवाकर कहा कि किसी तरह इस काल कसूरी कसाई से हिंसा करना छुड़वाओ। इसको किस प्रकार सुधारें यह मानता ही नहीं है। अभयकुमार ने कहा कि महाराज! इसके संस्कार ही ऐसे पड़े हुए हैं। जेल में बंद कर रखने से इसके विचार या संस्कार थोड़े ही सुधरेंगे। इन संस्कारों को मिटाकर इनके स्थान में दूसरे अच्छे संस्कार डालना और सुधार करने का मार्ग भिन्न है। देखिए, मैं किस प्रकार संस्कार सुधार कर आदत सुधारता हूं।

यह कहकर अभयकुमार ने कालकसूरी के पुत्र सुलक से मित्रता शुरू की। मित्रता ऐसी की कि एक आत्मा दो देह जैसी। अभयकुमार की मैत्री के प्रभाव से सुलक धर्मी बन गया। उसने कसाई का धंधा छोड दिया और दूसरा धंधा करने लग गया। अभयकुमार ने राजा से कहा कि महाराज! कालकसूरी तो नहीं सुधरा मगर उसके पुत्र को बुलवा कर देखिये कि वह कितना सुधर गया है। राजा ने सुलक को बुलवाकर पूछा कि आजकल तेरी आजीविका किस प्रकार चलती है। तेरे पिता तो जेल में बंद हैं। सुलक ने उत्तर दिया कि

अभयकुमार के बुद्धिचातुर्य की प्रशंसा करने लगा। अभय! तुमने सुलक के संस्कारो को बदल दिया, यह बडा भारी काम किया है। अभयकुमार ने कहा—महाराज अब इसके पिता को जेल से मुक्त कर देना चाहिए। कालकसूरी जेल से छोड दिया गया। जेल मुक्त होकर अपने घर पर आकर कालकसूरी बहुत नाराज हुआ। क्योंकि उसकी गैर हाजरी में उसका लडका बिगड गया है। और उसने अपना परंपरागत व्यवसाय छोड दिया है। जब कालकसूरी मरण शय्या पर पडा हुआ था तब वह अपने बेटे सुलक को बुलाकर कहने लगा कि पुत्र! मेरे प्राण शांति से नहीं निकल रहे है। मुझे इस बात की चिन्ता है कि तू मेरे पश्चात् मेरा धंधा न करेगा। पुत्र! मुझे वचन दे कि तू मेरा धंधा चालू रखेगा। सुलक ने वचन दे दिया कि आपके बाद मै आजीविका के लिए धंधा चालू रखूंगा।

कालकसूरी ने शरीर छोड़ दिया। सुलक विचारने लगा कि अभयकुमार ने कहा वह बात सत्य है। जो संस्कार पड जाते है वे मरने के समय तक भी नहीं छूटते। और इसी कारण जैसी मति होती है वैसी ही गति भी होती है। आयुष्य बंधने के पूर्व तो जैसी मति होती है वैसी गति होती है। किंतु मरने पर जैसी गति होती है वैसी मति हो जाती है।

कालकसूरी के मरने के बाद सुलक को उसके कुटुम्बी [illegible] को दिए हुए वचन की याद दिलाकर कसाई का धंधा करने की [illegible] सुलक ने स्पष्ट कह दिया कि मैंने धंधा करने का वचन दिया है [illegible] को मारकर धधा करने का। कुटुम्बियो ने कहा कि सुलक! अपने [illegible] धंधा करो। जीवो की घात से जो पाप होगा। उसका फल हम [illegible] तुम धंधा करो।

उसे ही भोगना पड़ता है, जो कर्म करता है।

भाइयो! कई लोग अपने कुटुम्बियों के लिए न करने लायक कार्य कर डालते हैं, न्याय और अन्याय से उनके पोषणार्थ धन उपार्जन करते हैं। अनेक प्रकार से दगाबाजी और फरेबी करके येन केन प्रकारेण पैसा पैदा करके अपने कुटुम्बियों को प्रसन्न करने की चेष्टा किया करते हैं। संभवतः उनका यह ख्याल हो कि हम जो पाप करते हैं। वह अपने लिए थोड़ा ही करते हैं। हम तो अपने परिवार के लिए करते हैं अतः जो कुछ पाप होगा वह परिवार वालों को लगेगा। किन्तु यह धारणा गलत है। पाप तो करने वाले को ही लगता है। क्रिया का फल कर्त्ता को ही होता है। जो क्रिया नहीं करता उसको फल कैसे मिल सकता है। यह सिद्धान्त है कि आत्मा स्वकृत कर्म का फल पाता है परकृतका नहीं। कहा—

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा। फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।।
परेण दत्तं यदि लभ्यते शुभं। स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा।

[illegible]त्मा ने शुभ या अशुभ जैसा भी कार्य किया है उसका फल उसे [illegible] भोगना पड़ता है। यदि दूसरे के द्वारा किये हुए का फल भोगना पड़े। [illegible] कर्म निरर्थक हो जायेगा। अतः जो कुछ करो सोच समझ [illegible]। [illegible] भोगने की तैयारी के साथ करो। अपने मन में गलत धारणा [illegible] से छुटकारा न हो सकेगा।

[illegible] के कुटुम्बियों ने कहा कि तब तुम अपने पिता को दिये हुए [illegible] हो गये हो। सुलक ने कहा कि मैं यह नियम लेता हूं। अपने कुटुम्बियों को खिलाने के पूर्व खाना न खाऊंगा। इस तरह उसने अपना वचन [illegible] और हिंसाकार्य भी छोड़ दिया।

अभयकुमार ने सुलक को सुधारने के लिए उससे दोस्ती की थी न कि उसके दुर्गुण अपने में लेने के लिए। सुदर्शन ने भी कपिल से इसी भावना से दोस्ती की है कपिल के कारण सुदर्शन की किस प्रकार परीक्षा होती है इसका विचार आगे है।

राजकोट
7.8.36

अपने स्वरूप में मग्न रहकर कर्मकृत पर्यायों को अपना न माने तो वह ज्ञानात्मा है। कर्म और कर्मफल से प्राप्त वस्तु का स्वामित्व मानने से ही आत्मा में अज्ञान आया है। यदि जीव पर, वस्तु पर मालिकी करना छोड दे तो वह ज्ञानी बन जाता है। जो वस्तु अपनी नहीं है उसे अपनी मानना और जो अपनी है उसे भूल जाना यही अज्ञान है। यह अज्ञान दूर हुआ कि जीव ज्ञानी बन जाता है। सूर्य स्वयं प्रकाशित है। किन्तु उस पर जब बादल छा जाते हैं तब वह ढक जाता है और उसका प्रकाश दब जाता है। लेकिन बादलों के हटते ही पुनः वह प्रकाशित होने लगता है। इसी तरह आत्मा पर भी कर्म प्रकृति से प्राप्त वस्तु की मालिकी करने से अज्ञान का आवरण आ रहा है। यह आवरण दूर होते ही शरीरावस्था में भी अनन्त बल प्राप्त हो सकता है। अपने ऊपर छाये हुए बादलों को हटाना सूर्य के वश की बात नहीं है किन्तु आत्मा पर छाये हुए कर्मों को दूर हटाना आत्मा के वश की बात है।

आत्मा से कर्म प्रकृति को दूर करने का यह उपाय है कि आत्मा यह समझने लग जाय कि देह भिन्न है और मैं भिन्न हूं। देह खण्डित है, आत्मा अखण्डित है। देह नाशवान है, मैं अखण्डित हूं। मैं और आत्मा एक ही वस्तु हैं। देह और आत्मा अलग–अलग हैं। अतः देह से मेरा क्या संबंध। मुझे देह से कुछ लेना देना। इसका मेरा कैसा साथ। यदि मैं देह को स्थायी रूप से रखना चाहूं तो नहीं रख सकता और देह भी मुझको अपने में स्थायी रखना चाहे तो मैं भी नहीं रह सकता। देह जड और मैं चैतन्य। इसका मेरा कोई सम्बंध नहीं है। अज्ञान के कारण ही पर वस्तु को स्ववस्तु मान रखा है। भेद ज्ञान हो जाना ही सम्यग्दर्शन है।

अनेक भवों के पापों का विनाश करने का इलाज प्रभु–भजन में संनिहित है। प्रार्थना या भजन करने से शुभ ध्यान रहता है। बुरा ध्यान उस वक्त नहीं रहता। जब बुरा ध्यान रहेगा तो पाप कैसे टिक सकता है। पाप तो बुरे विचारों में है। बुरे विचारों मे पाप बांधने की शक्ति है तो क्या अच्छे विचारों में पाप नाश करने की शक्ति नहीं है? अवश्य है। शुभ विचारों से पाप नष्ट होकर दुःख दूर हो आ जाते हैं। दुःख क्या हैं सो कहा है–

काम क्रोध मद मत्सर तृष्णा दुर्मति निकट न आवे।

सच्चे दुःख काम, क्रोध, मद, मत्सर, तृष्णा और दुर्मति है। परमात्मा के भजन से ये दुःख पास नहीं फटकने पाते। अतः मित्रो! सदा परमात्मा को याद रखो और उसके भजन किया करो।

शास्त्रः– अब इसी बात को शास्त्र कथन द्वारा समझाता हूं। [illegible] मुनि राजा श्रेणिक से कहते है कि हे राजन्! जिन वस्तुओं की [illegible] से आत्मा अनाथ बनता है उन्हीं वस्तुओं को लेकर तू अपने को [illegible] है, यह तेरी भूल है, यह अज्ञान है। अनाथता बढाने वाली वस्तुओं [illegible] कैसे हो सकता है।

यह कहकर अब मुनि शरीर के कारण जीव की [illegible] जीव सोचता है कि मै इस देह का स्वामी हूं, यह देह मेरे अधीन [illegible] जीव शरीर से ममत्व भाव रखकर उसका स्वामी बनना [illegible] आत्मा शरीर पर जितना अधिक ममत्व भाव रखता है [illegible] अधिक वह अनाथ है।

इसका आप स्वयं ही अंदाजा लगाइये। नाथ बनने के लिए शरीर का ममत्त्व छोडना आवश्यक है। जो शरीर पर ममत्व भाव रखता है वह कायर है। वह नाथ नहीं बन सकता। वह तो शरीर से चिपटा रहेगा। वह अनाथ है, कायर है।

मुनि कहते हैं राजन्! तू अपने को शरीर का नाथ मानता है, शरीर को अपना समझता है। किन्तु इस बात पर विचार कर कि दर असल शरीर पर तेरा आधिपत्य है भी या नहीं! जो बात बिन्दु में है वह सिन्धु में भी है। जो बात मुझपर घटी है वह तेरे पर भी लागू होती है। जो मुझ पर बीती है वह सब पर भी बीत सकती है, ऐसा नियम हैं। मैं भी पहले अपने को शरीर का स्वामी मानता था। किन्तु मेरा यह अभिमान दूर हो गया।

मेरी जवान अवस्था थी। जवानी आने पर भाग्य से ही कोई दीवाना न बनता हो। उस समय रक्त में गर्मी रहती है अतः अधिकांश मनुष्य दीवाने बन जाते हैं। जवानी दीवानी कही गई है। मेरी अवस्था भी जवान थी। साथ में अच्छे घराने की सुन्दर स्त्रियों से मेरा विवाह हो गया था। वह अवस्था उन रूप यौवना सुन्दरियों के शृंगार आभूषण देखने की थी। किन्तु विधिका विधान ही कुछ और था। रूप सौन्दर्य देखने का साधन ही बिगड़ गया। आंखों में उस वक्त घोर पीडा आरंभ हो गई। जवानी के दीवाने लोग जिन आंखों से पर स्त्री को ताकते हैं, उन आंखों से मैं अपनी स्त्री की तरफ देखने में भी असमर्थ हो गया था। उसका शृंगार देखकर नेत्रों को तृप्त नहीं कर सकता था।

जिन वस्तुओं को देखकर आनन्द माना जाता है, आंखों के खराब

का दास बन जाना ही अनाथता है। आंखों पर काबू रखना, उनको अनिष्ट तत्वों पर न जाने देना सनाथता है। हम आंखों के वश न हों किन्तु आंखे हमारे वश मे हों।

आंखों का उपयोग किस प्रकार करना चाहिए इसके संबंध में कुछ बताता हूं। एक आदमी को उसके मित्र ने सूक्ष्मदर्शक यंत्र दिया। सूक्ष्मदर्शक यंत्र में वस्तु अपनी आकृति से कई हजार गुनी बडी दिखाई देती है। मित्र ने यह यंत्र इस मंशा से दिया कि जो अत्यन्त बारीक पदार्थ या जीव जन्तु हमारी आंखों से नहीं देखे जा सकते वे इस यंत्र के जरिये देखे जायें और जगत में रही हुई गुप्तता के दर्शन किये जाये। किन्तु उस का मित्र इतना मूर्ख ठहरा कि वह सूक्ष्मदर्शक यंत्र का उपयोग गदहे घोडे देखने में करने लगा। गदहे घोडे तो आंखों से वैसे ही दिखाई देते है। सूक्ष्मदर्शक यंत्र पाकर वह [illegible] न समाता था और नहीं देखने लायक पदार्थ देखकर यंत्र का दुरुपयोग करता था।

कहिये, यंत्र देने वाला अपने मित्र पर नाराज होगा या [illegible] का दुरुपयोग देख कर वह अप्रसन्न ही होगा। मित्र की बात तो आप [illegible] गये किन्तु जरा अपनी तरफ भी तो नजर करिये। आप को जो [illegible] मिले है इनका आप किस तरह उपयोग कर रहे है, जरा सोचो। सूक्ष्म [illegible] यंत्र बडा है या आप के नेत्र? यदि नेत्रो में रोशनी न हो तो [illegible] यंत्र क्या कर सकता है। अंधे के लिए चश्मा या सूक्ष्मदर्शक [illegible] देखने की शक्ति आंखों में है। यंत्र मे तो पदार्थ को बडा दिखा [illegible] है। आंखो का सदुपयोग करना सीखो।

होंगे कि दृश्य देखे और काम खत्म हो गया। किन्तु ऐसी बात नही है। वह बाहरी दृश्य तो आंखो से ओझल हो जाता है लेकिन अपना सूक्ष्म संस्कार दिमाग मे छोड जाता है। जो जो दृश्य हम देखते हैं उनकी सूक्ष्म आकृति हमारे मस्तिष्क पर रह जाती है जिसे संस्कार कहते हैं। हम पदार्थ को जितनी अधिक आसक्ति पूर्वक देखेगे, संस्कार भी उतने ही गहरे जमेंगे। मस्तिष्क का ससार हमारे कार्मण शरीर पर पडता है और इस तरह अनेक भव भवान्तर तक उसकी परंपरा चलती रहती है जब तक कि उसको मिटाने का प्रयत्न न किया जाय। इसी कारण ठाणांग सूत्र में 'दिट्ठियाकिरिया' अर्थात् देखने मात्र से क्रिया लगती है। उस देखने में कषाय की मात्रा जितनी होगी उसके अनुसार हलका और चिकना बंध होगा। देखने मात्र से क्रिया लगती है और उसका संस्कार अर्थात् असर कार्मण–सूक्ष्म शरीर पर किस प्रकार पडता है यह बात उदाहरण से बताता हूं।

वट का वृक्ष आप सब लोगों ने देखा है और उसकी छाया में भी कभी बैठे होंगे। वट वृक्ष भारत देश में ही होता है। अन्य देशों में नहीं होता। यदि कोई दूसरे देश वाले इसको अपने यहां ले गये हों तो बात अलग है। वट वृक्ष से इन्सान शिक्षा ग्रहण करने लगें तो अपनी बहुत बडी तरक्की कर सकते हैं। विष्णु को वटशायी भी कहा जाता है। इसका क्या रहस्य है, यह बताने जितना अभी समय नहीं है। अभी तो यह बताना है कि वटवृक्ष बहुत विशाल है और वे भारत मे प्रसिद्ध है। वटवृक्ष की अपेक्षा उसका फल भी बहुत छोटा होता है। फल की अपेक्षा बीज बहुत छोटा होता है।

एक व्यक्ति वटवृक्ष का छोटा सा बीज अपनी हथेली में लेकर आपसे पूछता है कि महाशयजी, इस बीज में वटवृक्ष और उसके फल कहां छिपे हैं,

चुके। अव जरा अपने शरीर की तरफ देखिये। यह भी माता पिता के थोड़े से रजवीर्य से इतना बडा बना है। साढे तीन हाथ का पुतला कहा जाता है। इस पुतले ने अपना कितना विस्तार किया है, विचार करो। इसके अनेक कुटुम्बी हैं, अनेक दूकानें, अनेक मकान और अनेक–प्रकार का साजो समान है। यह सब इस शरीर का विस्तार है। ये सब चीजें शरीर के लिए है। इन सब वस्तुओं का बीज शरीर में मौजूद था तभी ये चीजें हुई हैं। इच्छा और तृष्णा के रूप में सूक्ष्म बीज आपके शरीर में था तभी आगे जाकर ये वस्तुएं आपको मिली हैं।

आपके हाथ की बात है।

एक आदमी आंखों से मैला देखता है। दूसरा अंधा होने के कारण कुछ भी देखने में अपने को असमर्थ पाकर बड़ा दु:खी होता है। देखने की इच्छा होते हुए भी देख नहीं सकता। तीसरा आंखों में वेदना होने से कुछ भी देख नहीं सकता है। किन्तु न दिखाने का उसे अफसोस नहीं है। वह वेदना से घबड़ाता नहीं है। वेदना को सहायता करने वाली मित्र मानता है। इन तीनों आदमियों में से आप किसे अच्छा कहेंगे। ज्ञानी लोग तीसरे प्रकार के ही होते हैं। वे दु:ख को अपना मित्र मानते हैं और उससे अपनी आत्मा को प्रबल बनाते है। जैसे जातिवंत घोड़े के चाबुक लगते ही दौड़ने लगता है वैसे ज्ञानी भी दु:ख आने पर धबड़ा उठते हैं और दु:ख दूर करने के लिए और अधिक दु:ख मोल ले लेते है। ज्ञानी जिसे दिन मानते हैं अज्ञानी उसे रात मानते हैं।

ज्ञानियों की विचारधारा के अनुसार यदि आप लोग भी विचार करें और [illegible] करेंगे तो अनन्तबली बन जायेंगे। आप को आत्म कल्याण के [illegible] मिले हुए हैं। निरोग शरीर, उत्तम संगति, जैन शास्त्रों का श्रवण आदि [illegible] मिले हुए हैं। शास्त्र वचनों पर श्रद्धा लाना और आचरण करना [illegible] है। आप शरीर स्वास्थ्य के लिए जिस प्रकार डाक्टर वैद्यों की [illegible] हो। उसी प्रकार आत्म स्वास्थ्य के लिए हमारी भी दवा लेओ। आप [illegible] शास्त्र में श्रावक को साधु का माता पिता कहा है। आप लोग चाहे [illegible] किन्तु हम तो आप को श्रावक के नाते पिता माता मानना चाहिए। वृद्ध [illegible] बाप को भी बाप ही माना जाता है। आप भी अपना श्रावक कर्तव्य समझकर आत्म सुधारणा करेंगे तो अच्छा है। चरित्र—

कपिल पुरोहित विविध विद्याधर सदर्शन से प्रीति।
लोह चुम्बक सममिले परस्पर सरखी सरखी रीति रे, धन.।।
पुरोहित नारी महाव्यभिचारी कपिला कुटिल कठोर।
सेठ कीर्ति सुन सुन्दर तनकी व्यापी मन्मथ जोर रे, धन ।।
पति गये पर देश सेठ से बोली कपट विशेष।
पति हमारा अति बिमारा चलो चलो तज शेष रे धन ।।

कैसी होती है, कौन जाने। वैसे तो समान आचार विचार वाले के साथ मित्रता होती है। फिर भी मित्रता में इस बात का खास ध्यान रखना चाहिए कि मित्रता से हमारे धार्मिक ख्यालातों पर बुरा असर तो नहीं पडता है। हमारी धर्मश्रद्धा दोस्ती के कारण ढीली तो नहीं पड़ रही है। जिसकी दोस्ती से धर्मभावना के विकास में रुकावट न आती हो उसके साथ दोस्ती करने में कोई हर्ज नहीं। धार्मिक तत्व को धक्का लगे वैसी दोस्ती कभी न करनी चाहिए। मित्र कुटुम्ब परिवार तो अनेक बार मिल जाते हैं मगर धर्म तत्व की प्राप्ति अति दुर्लभ है। मित्र, कुटुम्बादि की प्राप्ति भी धर्म के प्रताप से होती है अतः धर्म को मुख्य समझना चाहिए।

हमारी धर्मश्रद्धा में जो बाधक हो वस्तुतः वह हमारा शत्रु हैं। यदि पिता भी धार्मिक विचार में बाधक हो तो स्पष्ट कहा जा सकता है कि मैं आपकी सेवा करने के लिए सदा तैयार हूं किन्तु आपकी धर्मविरुद्ध मान्यता मे सहमति प्रकट करने में मजबूर हूं। आपने मुझे यह शरीर प्रदान किया है अतः यह आपकी सेवा करने के लिए सदा उद्यत है, किन्तु धर्म आत्मा का है। आपने मुझे आत्मा नही दिया है। आत्मा मेरा अपना है। उस पर मेरा पूरा अधिकार है। मै अपने आत्मिक धर्म को नहीं छोड सकता। यदि आपके दिए हुए शरीर को मैं कुपथ में लगाऊँ तो आप मुझे दण्ड दे सकते हैं। किन्तु मेरी आत्मा को धर्म में लगाते हुए आप बाधक नहीं बन सकते।

यदि विवाहिता स्त्री भी धर्म मार्ग में बाधक बने तो उसे भी स्पष्ट कहा जा सकता है कि मैंने तुम्हारे साथ जीवन पर्यन्त के लिए सम्बन्ध किया

जाय तो क्या उचित गिना जायेगा? जीवन साथी बनकर छोटी मोटी बातों के लिए तलाक तक की बातें करना अशोभनीय है। राज्य की नौकरी सदा लेता रहे और जब युद्ध में जाकर सिर कटाने की नौबत आये तब नौकरी से स्तीफा दें तो क्या मंजूर होगा और क्या यह अच्छी बात गिनी जायेगी? इसी प्रकार पति–पत्नी पहले साथ रहने का इकरार करके फिर कष्ट के समय अलग कैसे हो सकते हैं। हां, यदि पत्नी या पति एक दूसरे के धर्म पर आघात करते हों तो उस वक्त अपना धर्म बचाना कर्त्तव्य है।

उपासक दशांग सूत्र में महाशतक श्रावक का कथन आया है। महाशतक की स्त्री रेवती अपनी बारह सौतों को मारकर मदिरा मांस में निरत रहती थी। किन्तु महाशतक ने अपना धर्म उससे अलग मानकर संसार के सारे कार्य छोड़कर प्रतिमा धारण कर धर्मस्थान में आश्रय लिया। उसे अवधि ज्ञान उत्पन्न हो गया। एक दिन उसकी स्त्री रेवती धर्म स्थान में आकर उससे कहने लगी कि यह क्या ढोंग कर रखा है। तुमको किसने भरमाया है जो प्रत्यक्ष आनन्द को छोड़कर परोक्ष आनन्द की आशा में यहां बैठे हो। चलो, घर चलो। संसार का आनन्द भोगें।

रेवती का वक्तव्य सुनकर महाशतक कहने लगा कि तेरे अन्य अनेक अपराध मैंने सहन किये है। मगर मैं अपने धर्म पर किया हुआ आघात सहन करने में असमर्थ हूं। यह कह कर गुस्से में आकर महाशतक ने रेवती को बता दिया कि तू मरकर चौरासी हजार वर्ष की आयु लेकर प्रथम नरकावास में उत्पन्न होगी। अतन लिए यह भविष्यवाणी सुनकर रेवती डर गई और वापस लौट गई।

थी। कपिल बुद्धिमान था अतः सोचा करता था कि मुझे यह ऋद्धि मिली है और मै राजा का गुरु हूं अतः मुझे बहुत सावधान रहना चाहिए। मुझ से कोई बुरा कार्य न हो जाय। मेरे सामने उच्च आदर्श रहे ताकि मैं अपना जीवन स्तर ऊंचा रख सकूं। इधर कपिल इतनी उच्च भावनाओं में लीन है उार कपिला क्या सोचती है सो देखिये।

कपिल की स्त्री कपिला विचार करती है कि मुझे इतनी ऋद्धि, सम्पत्ति, भोग और ऐश्वर्य मिले हुए हैं। जीवन का उद्देश्य भोग भोगना और ऐश आराम में मश्गूल रहना ही है। यह धन दौलत और साजो–सामान मौज–मजा उडाने के वास्ते ही तो है। इस प्रकार दोनों पति–पत्नी की विचार धारा में वृहद् अन्तर था। दोनों के मार्ग भिन्न थे। जीवन का रहस्य दोनों ने दो प्रकार से समझा।

सुदर्शन और कपिल दोनों मित्रता के बन्धन में बंधे है। आजकल लोग पार्टियां उडाने के लिए भी दोस्त बनते हैं। नाटक सिनेमा या ऐसे ही अन्य आमोद प्रमोदों में शामिल होने के लिए मित्रता की जाती है। किन्तु सन्मित्र का मिलना बडा कठिन है। सुदर्शन और कपिल दोनो योग्य थे। दोनों की ऐसी गाढ मैत्री हुई कि दो शरीर एक आत्मा थे। जब सुदर्शन को फुरसत मिलती, कपिल के घर चला जाता और जब कपिल को फुरसत मिलती सुदर्शन के घर चला जाता। यद्यपि वे भिन्न–भिन्न कामो मे लगे रहते थे किन्तु उनका मन एक दूसरे मे लगा रहता था।

होती है वह अमृतमय हो जाती है।

जिस सुदर्शन को देखकर अनेक लोगों के दिलों में प्रेम भावना और उच्च विचार जागृत होते हैं, अनेकों के हृदयों में धर्मभावना जागृत होती है उसी सुदर्शन को देखकर कपिला के चित्त में कामवासना जागृत हो जाती है। इसीलिए कहता हूं कि संसार की दशा बड़ी विचित्र है। इसे समझना सरल काम नहीं है।

कपिला को जो लगन लगी वह लगी ही रही। वह अपनी लगन पूरी करने का उपाय सोचने लगी। सुदर्शन मेरी परवाह नहीं करता, मेरी तरफ ताकता तक नहीं है। मालूम पड़ता है यह सरलता से मेरे काबू में आने वाला प्राणी नहीं है। इसको अपने वश में करने के लिए त्रिरिया चरित्र का उपयोग करना पड़ेगा।

कविता में कपिला को महाव्यभिचारिणी कहा गया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह बाजारू स्त्री थी या सुदर्शन के सिवा अन्य किसी पर पुरुष पर वह आसक्त थी। उसे महाव्यभिचारिणी कहने का आशय इतना ही है कि उसने एक सदाचारी महापुरुष को आचार भ्रष्ट करने की चेष्टा की थी। जैसे कोई पुरुष राजा का भंडार तोड़ कर चोरी करता है तो वह महाचोर कहा जाता है क्योंकि उसने बड़ा साहसपूर्ण कदम उठाया है। वैसे ही कोई राजा की रानी से व्यभिचार सेवन करे तो वह महाव्यभिचारी कहा जाता है। यदि कोई साधु राजा की रानी से व्यभिचार करता है तो शास्त्रों में उसे दसवां प्रायश्चित्त का भागी बताया है और यदि वह किसी अन्य सामान्य स्त्री से व्यभिचार सेवन करता है तो वह आठवें प्रायश्चित्त का अधिकारी कहा गया है अर्थात रानी के साथ भ्रष्ट होने को महापाप माना गया है। इसी प्रकार जिस सुदर्शन की संगति से पापी भी धर्मात्मा हो जाते हैं उसके साथ भोग भोगने की चेष्टा करने के कारण कपिला को महाव्यभिचारिणी कहा गया है।

वक्त मेरे पति सुदर्शन से मिलकर न जा सके। मिलकर जाते तो मुझे अपने इरादे पूरे करने में दिक्कत पेश आती। कपिल मुझ से कहकर ही गये हैं कि कोई आवश्यश्क कार्य हो तो वह मेरे मित्र सुदर्शन से करा लेना, उसे मेरे स्थान पर मानना और किसी प्रकार का संकोच मत करना।

'उसे मेरे स्थान पर मानना' कहकर मेरे पति ने अपने मित्र सुदर्शन के साथ भोग भोगने की मुझे स्वीकृति दे दी है।

दुर्जन लोग सदाशय से कहे हुए शास्त्र वचनों मे से भी बुरा अर्थ निकालने की कोशिश करते है। किसी के द्वारा अच्छे भावों से प्रेरित होकर कोई बात कही जाय उसे भी दुर्जन बुरे अर्थ में ग्रहण कर लेते हैं। जैसी जिसकी भावना होती है वैसा ही वह अर्थ निकालने का प्रयत्न करता है। कपिल ने शुभ आशय से अपने मित्र की योग्य सहायता लेने की बात कही थी। उसका कितना गन्दा अर्थ ग्रहण करके, अर्थ का अनर्थ करने के लिए कपिला उद्यत हो गई।

चलिये, अन्य काम छोड दीजिये। विलम्ब करने जैसा यह अवसर नहीं है एक क्षण की बडी कीमत है। आप वक्त पर चल कर उनके इलाज का उचित प्रबन्ध कीजिये अन्यथा गजब हो जायेगा।

मित्रों! कपिला के पेट में क्या बात है और मुंह से क्या बात कह रही है। शास्त्र मे इस प्रकार के कपट को माया शल्य कहा है। कपट करके दूसरों को ठगना अपनी आत्मा में कांटे चुभोना है। कपटी आदमी दूसरों को ठगने की कोशिश में अपनी आत्मा को ही ठगता है। दूसरे का ठगा जाना तो अनिश्चित है किन्तु आत्म वंचना तो स्पष्ट प्रकट है।

अपने मित्र की बीमारी के समाचार सुनकर सुदर्शन का जीव उसके घर जाने से कैसे रुक सकता था। कपिला के से हालात सुनकर सुदर्शन को विश्वास हो गया कि जरूर शूल की बीमारी हो गई है। शरीर है, किस वक्त क्या बीमारी हो जाय इसका कोई ठिकाना नहीं है। इस शरीर में अनेक रोग भरे हुए हैं। यह शरीर रोग का घर है।

सुदर्शन ने सहज भाव से कपिला से पूछा कि ऐसी भयानक अवस्था में मेरे मित्र को अकेला छोडकर कैसे आ गई? कपिला ने चट उत्तर दे दिया कि नोकर को भेजने से संभव है आप आते या न आते इसी आशंका से मैं स्वयं भागी हुई आई हूं। सुदर्शन ने कहा, अच्छा आप चलो। मैं अभी आता हूं। कपिला ने कहा, ऐसा नहीं हो सकता। आप आगे आगे चलो मैं आपके पीछे चलती हूं।

सुदर्शन जैसे खडा था वैसे ही मित्र के घर चल पडा। आगे–आगे सुदर्शन और पीछे–पीछे कपिला। पीछे चलती हुई कपिला मन में फूली न समाती थी कि किस प्रकार मैंने सेठ को अपने चंगुल में फंसा लिया है। लोग कहते हैं कि कपट न करना चाहिए। किन्तु कपट जाल रचने से कितनी खूबी से कार्य सिद्ध हो जाता है। अगर मै कपट का आश्रय न लेती तो क्या ये मेरे घर पर आते? कदापि न आते।

रोग आत्मा का परम मित्र है

'समुद विजय' सुत श्री नेमीश्वर, जादव कुल कोटी को,
रतनकुंख धारणी 'सिवादे' तेइनो नंदन नीको।
श्री जिन मोहन गारो छै कि जीवन प्राण हमारो छै।।1।।

प्रार्थना– यह बाईसवें तीर्थकर भगवान् अरिष्टनेमी की प्रार्थना है। परमात्मा को मोहनगारो कहने की किसकी सत्ता है? कौन व्यक्ति भगवान् को मोहनगारो बना सकता है। किसने परमात्मा को मोहनगारो बनाया है? हम लोग परमात्मा को मोहनगारो बनाने का केवल अनुरारण भी करते हैं या केवल जीभ से उनकी प्रशंसा करते हैं। हृदय रो भगवान् को मोहनगारो नहीं बनाया है। भगवान् को मोहनगारो भगवती राजमती ने बनाया था जिराने उनको हृदय में स्थान देकर आपना ओर जगत् का कल्याण किया था।

राजन्! साधारण व्यक्ति असमंजस में पड सकता है कि दु:ख देने वाली शक्ति को शत्रु कहा जाय या मित्र? एक तरफ उसने घोर वेदना प्रदान की और दूसरी तरफ संसार के आल जाल से छुडा दिया। दोनों परस्पर विरोधी कार्य मालूम देते हैं। किन्तु नहीं, विचार करने से दोनों कार्यों की संगति बैठ जाती है। संसार के माया जाल से छुडाने में वेदना कारण बन गई। जो वेदना अनादिकालीन भव चक्र को छुडाने वाली हो उसे शत्रु रूप कैसे मानें। उसे तो परम मित्र कहना पडेगा।

मान लीजिये एक आदमी के हाथ में जहरी छाला है। यदि उस छाले को फोडकर उसका जहर दूर न किया गया तो वह सारे शरीर में विष फैला कर मृत्यु तक पहुचा देता है। डाक्टर ने चीरा लगाकर जहर निकाल दिया। चीरा लगाने से वेदना होती है। क्या चीरा लगाने वाले डाक्टर को शत्रु कहा जायेगा? कदापि नहीं। मेरे सामने तो आप स्वीकार करते है। किन्तु वेदना उपस्थित होने पर जरा से घबडा कर वस्त्र फेंकने के लिए तो उतारू नहीं हो जाते हैं

राजन्! वेदना के समय मुझे वेदना का वास्तविक कारण ज्ञात हो गया। मेरी वेदना का कारण कोई बाहरी न था। उसका कारण मेरे भीतर ही विद्यमान था। मेरी कषाय आत्मा ही वेदना का असली कारण थी। जब मैंने यह जान लिया कि मेरे रोगों का मै स्वयं निर्माता हूं, तब यह भी अपने आप बोध हो गया कि मै स्वयं ही अपना उद्धार कर सकता हूं। कोई बाह्यशक्ति मेरा उद्धार नही कर सकती।

'उद्धरेदात्मनात्मानम्'

अर्थात् आत्मा से आत्मा का उद्धार करना चाहिए। कांटे से कांटा निकालना चाहिए। शुद्ध आत्मा की शक्ति से अशुद्ध आत्मा का उद्धार करना चाहिए। अथवा यों भी कह सकते हैं कि ज्ञानात्मा से कषायात्मा का उद्धार करना चाहिए आत्मा को बंधन मे डालने वाला या मुक्ति दिलाने वाला बाहरी कारण निमित कारण ही हो सकता है। उपादान कारण तो आत्मा स्वयं है। जो बंधन मे फंस सकता है वह छुटकारा भी पा सकता है।

आज श्रोताओं के दिल मे यह शंका अवश्य उपस्थित हो रही होगी कि यदि डाक्टर वैद्य रोग मिटाने में सर्वथा असमर्थ होते है तो इतनी दुनिया उनके पास क्यों दौड़ी जाती है? इसका समाधान इतना ही है कि वैद्य डाक्टर शारीरिक रोग मिटाने मे निमित्त मात्र बन जाते हैं। वे रोग का वास्तविक कारण नहीं मिटा सकते हमें ऐसा लगने लगता है कि वैद्य डाक्टर की दवा से हम स्वस्थ हो गये हैं किन्तु इसमे हमारी समझ में भूल है। आत्मिक स्वस्थता के बिना शारीरिक स्वस्थता असंभव है। मानसिक विकार भी रोग के कारण है। दुर्भावनाओं को मिटाये बिना असली स्वास्थ्य का लाभ नहीं हो सकता। वैद्यो में यह ताकत नहीं है कि वे अपनी दवाओं से हमारे अशुद्ध विकारों को मिटा दें।

मुनि कहते है—राजन्! यह अच्छा ही हुआ कि वैद्यों की दवा से मेरी वेदना न मिटी। यदि मिट जाती तो मैं पुनः गफलत में फंस जाता और वेदना का वास्तविक कारण न जानकर फिर कभी रोग—पीडित बन जाता। और स्वयं अज्ञानवश वैद्यों को मैं अपना नाथ मान बैठता। यह उस महाशक्ति की कृपा है कि उसने ऐसा न होने दिया।

अपने हाथों से बांधी न थी। वह नंगा दिखाई देने लगा। इतने में उसका कोई दोस्त आ गया। उसने उसकी धोती बांध दी। अमीर के लड़के ने अपने दोस्त की दीनता स्वीकार कर ली और कहा कि आप तो मेरी लज्जा ढांकने वाले हैं। अब एक ऐसा व्यक्ति है जो अपनी धोती आप बांध लेता है। यदि कभी बाजार में उसकी धोती खुल भी जाय तो वह स्वयं अपनी लज्जा ढांकने में समर्थ है। कहिये न, दोनों में से आप किसको अच्छा मानेंगे? जो अपने हाथों से कुछ भी कार्य नहीं करता और आलस्य में जीवन व्यतीत करता है उसे अच्छा मानेगे या हाथ–पैरों से काम लेने वाले को?

यही बात रोग और वैद्य डाक्टर के संबंध में भी समझो। बीमार होना आत्मा की एक प्रकार की नग्नता है। जो कमजोर होता है वही बीमार होता है बलवान् आदमी बीमार नहीं होता है। अथवा जो खानपान रहन–सहन में पूरी सावधानी रखते हैं वे तन्दुरुस्त रहते हैं। पहले असावधान रहना और फिर रोग होने पर डाक्टर वैद्यों की पराधीनता स्वीकार करना दूसरे से अपनी धोती बंधवाने के समान है।

जो स्वतंत्र है, पूर्ण बलवान है, सावधान है, उनको रोग होते ही नही है। जैसे तीर्थकरों को रोग नही होते। यदि पूर्व कर्मोदय के कारण कोई भी रोग हो गया तो वे स्वयं ही उसे मिटा देने में समर्थ होते है। डाक्टर वैद्यो के सहारे की उनको जरूरत नही पड़ती।

और रोग भी बढ़े हैं। जितने वकील बैरिस्टर बढ़े मुकदमें भी उतने ही बढ़े हैं। पुराने जमाने में आज जितने वैद्य डाक्टर या वकील बैरिस्टर न थे और रोग और मुकदमे भी उतने न थे। आजकल नई नई बीमारियां उत्पन्न हो रही हैं जिनका कभी नाम भी न सुना था। मुकदमे बाजी भी खूब बढ़ी हुई है। कहिये, डाक्टरों की वृद्धि से रोगियों और रोगों में कितनी कमी हुई है? कमी नहीं हुई, उल्टी वृद्धि हुई है। ऐसी हालत में कैसे कहा जा सकता है कि वैद्य डाक्टर की दवा से रोग नष्ट हो जाता है।

लोग बीमारी की सच्ची दवा भूल गये हैं और भ्रम के कारण न लेने लायक अनेक दवाएं अपने पेट में डालकर और रोगों की वृद्धि कर रहे हैं। रोगों की सच्ची और व्यावहारिक दवा यह है कि खान–पान पर अंकुश रखना। कब खाना, कितना खाना और कैसा खाना, इसका विचार रखना चाहिये। मैंने एक पुस्तक में पढ़ा है कि खाना खाने वाले व्यक्ति दो प्रकार के होते हैं। एक अमीर और दूसरे गरीब। गरीबों को भोजन तब करना चाहिए जब भोजन प्राप्त हो सके और अमीरों को भोजन तब करना चाहिए जब भूख लग जावे।

मैं आजकल देखता हूं कि अमीरों के घरों में बिना भूख खाना खाने का [illegible] प्रचार है। भूख लगे या न लगे समय होने पर अवश्य भोजन कर लेते हैं। [illegible] प्रकार के अचार, चटनी और चूर्णों का आविष्कार करके उनको [illegible] भूख [illegible] का प्रयत्न किया जाता है। और बिना भूख के भी अधिक खाने का प्रयत्न किया जाता है। बिना भूख के भोजन करना रोग को निमन्त्रण [illegible] भूख [illegible] भोजन करने से रूखी सूखी रोटी भी बड़ी अच्छी लगती है।

सकता। ठाणांगसूत्र में नवकारणों से रोग उत्पन्न होना बताया गया है। कई लोग वेदनीयकर्म का नाम लेकर या उसका दोष निकाल कर संतोष कर लेते हैं किन्तु रोग के कारणों पर प्रकाश डालने जितना अभी समय नहीं है। यह विषय लम्बा है। अभी तो इतना ही कहता हूं कि डाक्टरों की शरण में जाना अपनी कमजोरी है।

मुनि कहते हैं—राजन्! जब किसी उपाय से मेरा रोग शमन न हुआ तक मैं इस निश्चय पर पहुंचा कि शरीर रोग और वैद्य भिन्न हैं और मैं भिन्न हूं। इसका मेरा क्या संबंध? इस तरह मैंने अपनी अनाथता समझी। राजन्! मेरी आप बीती सुन कर तू भी अपना अभिमान त्याग कर अपने को अनाथ समझ।

भाइयों! अनाथी मुनि के हितकारी वचन सुनकर श्रेणिक राजा ने अपना अभियान त्याग कर अपने को अनाथ मान लिया था। किन्तु आप लोग अपने को अनाथ मानते हो या नहीं? जब तक अपनी अनाथता या कमजोरी को समझ कर उसको मिटाने का उपाय न किया जायेगा, आत्मा का वास्तविक कल्याण नहीं हो सकता।

आप लोग मेरे मित्र हैं। आज का जमाना बुद्धिवाद का है। हमारे शिष्य, हम जो कुछ कहते है उसे बिना तर्क किये मान लेते हैं। किन्तु मित्र लोग किसी बात को तर्क वितर्क किये बिना नहीं मानते। तर्क वितर्क, चर्चा वार्ता करने के बाद जब बात समझ में आ जाती है तभी मानते हैं। आप हमारे शिष्य न बनो तो मित्र तो बनो। तर्क वितर्क करने बाद तो हमारी बात स्वीकार कीजिये। बुद्धि की कसोटी पर खरी उतरे वह बात तो स्वीकार करो और अमल में लाओ। चरित्र—

किन्तु यदि दैव योग से किसी के जाल मे फंस गये तो किस तरह अपना छुटकारा करना चाहिए यह सुदर्शन के चरित्र से सीखे।

प्रीति बंधाना सेठ सयाना, आया कपिला साथ।
अन्दर लेकर हाव भाव से, बोली मन्मथ बातरे।।धन.।।24।।
महिषी सींग में डांस डंक सम, लगे न इस को बोध।
क्या उपाय से यहां से निकलें, करते मन में शोधरे।।धनं25।।

कपिला की कुटिल चाल में फंस कर सेठ उसके घर पर आ गये। उसने उनको कमरे में बंद कर रखा है। सेठ थे तो सागाने किन्तु कपिल की प्रीति से बंधे हुए थे। पेम और बुद्धि मे बड़ा अन्तर है। बुद्धि किसी बात की पूरी छान बीन करती है। किन्तु प्रेम छान बीन मे नही पडता। अतः अपने मित्र कपिल के शरीर मे शूल चलने की बात सुनते ही पेम के वशीभूत होकर बिना कुछ भी सोचे सेठ झट उसके घर चले आये।

किन्तु यदि दैव योग से किसी के जाल मे फस गये तो किस तरह अपना छुटकारा कराना चाहिए यह सुदर्शन के चरित्र से सीखें।

प्रीति बंधाना सेठ सयाना, आया कपिला साथ।
अन्दर लेकर हाव भाव से, बोली मन्मथ बातरे।।धन.।।24।।
महिषी सींग में डांस डंक सम, लगे न इस को बोध।
क्या उपाय से यहां से निकलें, करते मन में शोधरे।।धनं25।।

कपिला की कुटिल चाल में फंस कर सेठ उसके घर पर आ गये। उसने उनको कमरे में बंद कर रखा है। सेठ थे तो सयाने किन्तु कपिल की प्रीति से बंधे हुए थे। प्रेम और बुद्धि में बडा अन्तर है। बुद्धि किसी बात की पूरी छान वीन करती है। किन्तु प्रेम छान वीन में नहीं पडता। अतः अपने मित्र कपिल के शरीर में शूल चलने की बात सुनते ही प्रेम के वशीभूत होकर बिना कुछ भी सोचे सेठ झट उसके घर चले आये।

सुदर्शन से कपिल भी प्रेम करता था और उसकी स्त्री कपिला भी किन्तु दोनों के प्रेम में कितना अंतर है। प्रेम शब्द सुन कर ही मोहित न हो जाना चाहिए किन्तु उसके पीछे क्या भावना है, यह खयाल करना चाहिए। दूध गाय का भी होता है और आक का भी। एक के दूध से शरीर को पुष्टि मिलती है और दूसरे के दूध से शरीर की हानि होती है। एक जीवन प्रदान करता है दूसरा जीवन हरण करता है, जिस दूध से मूल धातु को हानि पहुंचे वह दूध नहीं विष है, जिससे मूल धातु की वृद्धि हो वह दूध है।

इसी प्रकार जिस प्रेम से आध्यात्मिक मानसिक और शारीरिक शक्ति की वृद्धि हो, सत्य और धर्म की पुष्टि हो वह प्रेम सच्चा प्रेम है। ऐसा प्रेम आदरणीय है। किन्तु जिस प्रेम में चरित्र का नाश हो, धर्माधर्म का कोई विचार न रहता हो वह प्रेम नहीं है। उसे कुसंगति कहना ठीक होगा। मोज और ऐश आराम करना ही जिस प्रेम का लक्ष्य हो उसके लिए प्रेम शब्द का प्रयोग करना नितान्त अनुचित है। वह मोह है। ऐसा मोह त्याज्य है।

कपिल का सुदर्शन के साथ जो प्रेम-भाव था वह शुद्ध था, निखालस था। उसमें न स्वार्थ भावना थी, न विषयवासना की भावना। किन्तु कपिला का सुदर्शन पर जो प्रेम भाव था वह अशुद्ध था। उस प्रेम मे शारीरिक आकर्षण था। विषय सेवन करने की भावना थी। उसके साथ वह मोज मजा

दुष्ट लोग दूसरों के द्वारा प्रयुक्त शब्दो का अर्थ अपनी अशुद्ध भावनाओं के अनुसार किया करते हैं। कई लोग शास्त्र वाक्यों का अर्थ भी अपनी भावना के अनुसार कतई उल्टा कर डालते हैं। वैसे शास्त्रों में सबके लाभ की बातें ही बताई हुई हैं किन्तु लोग अपनी अपनी भावना के अनुसार अर्थ निकाल लेते हैं। जैसे मनु स्मृति में कहा है– **' न मांस भक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने'**

बस, मांस, मद्य और मैथुन के शौकीन लोग यह वाक्य सुनकर बड़े प्रसन्न हो गये ओर अपनी इच्छा पूर्ति के लिए मनृस्मृति के वचन की आड़ लेने लगे। किन्तु इसके आगे क्या कहा है इस पर वे क्यों ध्यान देने लगे। आगे के वाक्य से उनकी भावना की पुष्टि नहीं होती अतः उस पर ध्यान नहीं देते। आगे कहा है– **'प्रवृत्तिरेष भूतानां, निवृत्तिस्तु महाफला।'**

मद्य मांस और मैथुन की निवृत्ति से महाफल होता है। किन्तु जिन्हें विषयों में प्रवृत्ति करना है वे निवृत्ति की तरफ क्यों ध्यान दें।

भावना के अनुसार किस प्रकार अर्थ किया जाता है इसके लिए एक दृष्टान्त आपके सामने रखता हूं।

एक पंडितजी महाभारत की कथा बांच रहे थे। श्रोताओं में एक सेठ और सेठानी भी थे। जब कथा समाप्त हो गई तब पंडित जी ने पूछा कि सेठ जी! आपको कथा में से कौनसी बात अच्छी लगी? सेठ ने कहा पण्डित जी! मुझे सब पात्रों में दुर्योधन और उसका वर्ताव सब से अच्छा लगा। जब तक वह जिन्दा रहा एक सूई की नोंक जितनी भूमि भी उसने पाण्डवों को न दी। पण्डितजी समझ गये कि इसमें इसकी भावना का दोष है। इसने अपनी भावना के अनुसार दुर्योधन को पसन्द किया। फिर सेठानी से पूछा कि तुम्हे कौनसा पात्र या बात पसन्द पड़ी है? सेठानी ने कहा मुझे द्रौपदी अच्छी लगी। क्योंकि उसके पांच पति थे। यदि एक मर जाय तो चार बचे रहते हैं और दो मर जायें तो तीन जिन्दे रहते हैं। इस तरह कभी विधवा होने का प्रसग ही नही आ सकता।

पंडितजी समझ गये कि ये दोनों सेठ सेठानी अपनी–अपनी वृत्ति और विचारो के अनुसार पात्रों को पसन्द कर रहे है। इसमें कथा का कोई दोष नही है। श्रोताओ की भावना का दोष है। कथा मे युधिष्ठिर और अर्जुन जैसे भले व्यक्ति और कुन्ती गांधारी जैसी अनेक पतिव्रता स्त्रिया भी हैं। किन्तु जिसकी जैसी भावना वैसी उसकी पसन्दगी है। द्रौपदी के पाच पति होने का

कारण न समझकर सेठानी ने कितना गलत अर्थ ग्रहण किया है। यही बात कपिला के लिए भी लागू होती है कि उसने अपने पति के मनोभावों को न समझ कर अपनी वासना के अनुसार यह अर्थ लगा लिया कि पति ने मुझे सुदर्शन के साथ व्यभिचार करने की स्वीकृति दे दी है।

कपिला के द्वारा मकान में बंद किये जाने पर भी सेठ सुदर्शन घबडाये नहीं किन्तु छुटकारे के उपाय सोचने लगे और यह भी विचार करने लगे कि प्राण भले ही चले जायं मगर अपने शील व्रत का भंग न होने दूंगा।

जो वीर पुरुष होते हैं वे विपत्ति आने पर घबड़ाते नहीं है। विपत्ति में धैर्य धारण करते हैं। विपत्ति में घबड़ाने से विपत्ति कम तो होती नहीं। उल्टा घबड़ाने से बुद्धि बिगड़ जाती है और न करने लायक कार्य हो जाता है। धैर्य रखकर विपत्ति–विनाश के लिए उपाय सोचने से विपत्ति से पार पा सकते हैं। सुदर्शन वीर था, धैर्य से काम ले रहा है।

कपिला ने सुन्दर वस्त्राभूषण पहन रखे थे। वह सेठ से कहने लगी कि आपके मित्र बीमार नहीं है। वे बाहर गांव गये हुए हैं। यह अच्छा अवसर हाथ लगा है कि आप हम आनन्द करें। मैं आपको इसी मतलब से बुला लाई हू। देखते क्या हैं? मेरे साथ विषय सेवन करके अपने यौवन को सफल बनाइये, मुझे अपनी प्रेयसी स्वीकार कीजिये।

मित्रों! हलाहल विष खाकर उसे पचा डालना सम्भव है, हाथों से समुद्र पारकर डालना भी शक्य है किन्तु शीलव्रत की रक्षा का कार्य इनसे भी कठिन है। क्रोध के आवेश को दबा देना सरल है, अपमान की कड़ी घूंट पी जाना सरल है, माया जाल में से निकल छूटना सरल है और लोभ की अनन्त तृष्णा को पार करना भी सरल है मगर कामवासना के आवेग को दबा देना या जीत लेना बड़ा कठिन है। वीर्य को पचाना सबसे अधिक कठिन कार्य है। जो व्यक्ति वीर्य को पचा डालता है वह धन्यवाद का पात्र है। भगवान ने कहा है कि शीलव्रत सबसे बडा व्रत है। शीलभंग के अवसर पर भी जो दृढ रहता है शीलभंग नहीं करता, वह कठिन से कठिन काम करता है।

करना वाणी को ही दूषित बनाना है। मगर करना क्या? किस प्रकार इसके फन्द से छूटूं? यदि छुटकारा पाने के लिए शारीरिक बल का प्रयोग करता हूं तो हल्ला सुनकर लोग इकट्ठे हुए बिना न रहेंगे जिससे मेरे मित्र की और इसकी इज्जत हतक होगी। तथा आवेश में आकर मेरे संबंध में भी न मालूम क्या कह डाले। इसने मर्यादा छोड़ दी है अतः मुझ पर व्यभिचार करने का दोषारोपण भी कर सकती है और इससे मेरी इज्जत में भी बट्टा लगा सकती है।

सुदर्शन ऐसे उपाय की खोज में है कि जिससे अपने दोस्त, अपनी और दोस्त की पत्नी की इज्जत आबरू भी कायम रह जाय और शीलव्रत की भी रक्षा हो जाय।

लोगों ने अपनी आत्मा को बिगाड़ रखा है अतः वक्त पर अच्छी बुद्धि नहीं सूझती। अगर आत्मा पवित्र हो तो वह ऐसी उत्तम सलाह दे सकती है जैसी कोई सन्मित्र भी नहीं दे सकता। सुदर्शन की आत्मा पवित्र थी, साफ थी अतः उसे एक उपाय सूझ आया।

अप्सरा सम तुम नारी प्यारी, मम नवयौवनकाय।
कौन चूके ऐसे अवसर को, गिल्यो योग सुखदायरे।।धन.।।25।।
हतभागी हूं मैं सुन सुभगे! अन्तराय के जोग।
षंढपना है मेरे तन में, व्यर्थ मनोरथ तोरे रे।।धन.।।26।।
हे दुर्भागी! जा दुर्भागी धिक् मैं खोई बात।
धिक् मेरे अज्ञानी पतिको, रहता तेरे साथ।।धन.।।27।।
देवगुरु की मुझे प्रतिज्ञा, कहूं न तेरी बात।
तुम भी निश्चय नियम करोरी, लाज मेरी तुम हाथ रे।।धन.।।28।।
नियम कराया बाहर आया, मन पाया विश्राम।
बाधिन के मुख से मृग बचके, पाया निज आराम रे।धन।।29।।

सुदर्शन ने प्रेम भरे नेत्रों से कपिला की ओर दृष्टिपात करते हुए कहा—प्यारी! मैं कैसा हतभागी हूं कि अप्सरा के समान तुम जैसी सुन्दरी नारी स्वतः अपनी इच्छा से प्रेरित होकर मुझ से शारीरिक संबंध की प्रार्थना कर रही है और मेरा यह शरीर भी यौवन से युक्त है फिर भी मैं किसी कारण वा इस आनन्द से वंचित रहता हूं और तुम्हारी मनोकामना पूरी करने में मजबूर हूं। क्या करूं तुम जैसी रूपलावण्यवती ललना सारे शहर में खोजने पर भी मिलना असम्भव है। तुम्हारी और मेरी उम्र भी समान है। ऐश आराम के सामान की यहां कमी नहीं है। तुम मुझ को अपना पति बनाना चाहती हो। अपना

सर्वस्व मुझे समर्पण करने को उद्यत हो। तुम को जिस प्रकार कामदेव सता रहा है उसी प्रकार मेरे मन में भी वासना का उभाड़ आता है। और यह शरीर का धर्म भी है। ऐसा कौन व्यक्ति होगा जिसे काम ने न सताया हो। कहा हैः–

शम्भूः स्वयम्भुहरयो हरिणेक्षणानां, येनाक्रियन्तः सततं गृहकर्मदासाः।
वाचामगोचर चरित्र विचित्रताय, तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय।।

(श्रृंगार शतक)

भर्तृहरि कहते हैं कि मैं उस कुसुमायुध कामदेव को नमस्कार करता हूं जिसने व्रह्मा विष्णु और महेश तक को स्त्रियों के समक्ष पानी भरवाया बेचारे व्रह्मा विष्णु और महेश भी जिस काम के काटाक्षों से अपने को न बचा सके, तो मैं क्या चीज हूं। किन्तु प्यारी! मैं विवश हूं, लाचार हूं। मैं बड़ा हतभागी हूं कि इस सुन्दर सुअवसर का लाभ नहीं ले सकता।

कपिला ने पूछा–ऐसी क्या बात है जो आप इतनी लाचारी प्रकट कर रहे हैं? और अपने भाग्य को दोष दे रहे हैं?

सुदर्शन ने उत्तर दिया–क्या बताऊं कुछ कहा नहीं जाता। कहते हुए जवान रुक जाती है। बड़ी शर्म लगती है। यदि तुम यह प्रतिज्ञा करो कि मैं यह बात किसी के समक्ष प्रकट न करूंगी तो मैं कह सकता हूं। मैं भी तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा पूर्वक कहता हूं कि तुम्हारी बात किसी के समक्ष न कहूंगा। तुम भी ऐसी प्रतिज्ञा करो। फिर बात बताऊं।

कपिला ने कहा–क्या बात है सो शीघ्र कह डालो। तुम्हें किस बात की कमी है सो कहो मैं अभी पूरी किये देती हूं।

सुदर्शन ने कहा–कुदरत की कमी को तुम कैसे पूरी कर सकोगी? फिर भी यदि पूरी कर सको तो करना किन्तु पहले मेरे सामने सौगन्ध खालो कि बात किसी से नहीं कहूंगी।

कपिलाने कहा–मैं देव गुरु और धर्म आदि की शपथ खा कर कहती हूं कि तुम जो बात कहोगे मैं किसी से न कहूंगी।

इसी प्रकार सुदर्शन ने भी कपिला के सामने शपथ खाकर कहा कि मैं तुम्हारी बात किसी के सामने न बताऊंगा। यहां तक कि मेरे अभिन्न मित्र कपिल के सामने भी जिक्र न करूंगा।

इस तरह परस्पर प्रतिज्ञा करके सुदर्शन ने कहा कि मेरा दुर्भाग्य है जो मैं बीमारी के कारण भूख होने पर भी परोसे हुए स्वादिष्ट भोजन को खाने में लाचार हूं।

कपिला ने कहा–क्या बीमारी है? कहते क्यों नहीं?

सुदर्शन ने कहा–मैं नपुंसक हूं, पुरुषत्व से हीन हूं।

यह बात सुनते ही क्रोध में आकर कपिला ने कहा–चल, निकल यहां से। तेरे जैसे नपुंसकों की यहां जरूरत नहीं है। सुदर्शन को यही चाहिए था। भूखे को भोजन मिला। चट से सुदर्शन बाहर निकल भागा और इस तरह प्रसन्न हुआ जिस तरह मृग का बच्चा बाघ के मुख से छुटकारा पाकर अपनी मां से मिलकर प्रसन्न होता है।

मित्रों, अब यह प्रश्न होता है कि सुदर्शन जैसा सच्चा और प्रतिष्ठित व्यक्ति झूठ क्यों बोला। वह नपुंसक न था फिर भी अपने को नपुंसक बताया, यह साफ झूठ था। इसका समाधान अवसर पर किया जायेगा। अभी तो इतना ही ध्यान में रखें कि कठिनाई में फंसने पर भी अपने शील की रक्षा करनी चाहिए। विकार का कारण उपस्थित होने पर भी जो विकृत न हो वही वीर है। सुदर्शन से शिक्षा लेकर शील का पालन करेंगे तो कल्याण ही कल्याण है।

राजकोट

10.8.36

प्रकृति की अपेक्षा आत्मा में अनन्तगुणी शक्ति है

'अश्वसेन' नृप कुलतिलोरे 'वामा' देवी नो नंद।
चिन्तामणि चित्त में बसेरे, दूर टले दुःख द्वंद।।
जीवरे तू पार्श्व जिनेश्वर वंद।।1।।

प्रार्थना– यह तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की प्रार्थना है। स्तुति, प्रार्थना, अभ्यर्थना आदि किसी शब्द का प्रयोग किया जाय, उसका उद्देश्य भगवान पार्श्वनाथ से भेंट करना होना चाहिए। क्या भगवान पार्श्वनाथ से भेंट करने की इच्छा या प्रयत्न करना मोह या राग नहीं है? भगवान से मिलने की इच्छा करना, मोह या राग नहीं कहा जा सकता। कदाचित इसे प्रशस्त राग कह सकते हैं। यह राग वीतराग–दशा को प्राप्त कराता है। वीतरागता आत्मा की उत्कृष्ट दशा है। इससे ऊंचा कोई भी साधन नहीं है। पातजंलि योगशास्त्र के समाधिपाद में कहा है:– **वीतरागविषयं वा चित्तं**

वीतराग के ध्यान में तन्मय हो जाना समाधि का एक साधन है। यह साधन सरल और सुलभ है। इसी बात को लक्ष्य में लेकर ज्ञानी कहते हैं कि हे जीव! तू भगवान पार्श्वनाथ की शरण में लीन हो जा। भगवान पार्श्वनाथ की शरण में लीन होना, वीतराग की शरण में लीन होना है।

यदि वीतराग में ही लीन होना है तो पार्श्वनाथ का विशेष नाम क्यों लिया गया? इसका समाधान यह है कि यद्यपि वीतराग अनन्त हैं फिर भी हम जिस भूमिका पर हैं हमारे लिए किसी विशेष नाम का अवलम्बन लेना आवश्यक है।

भगवान पार्श्वनाथ का पूरा चरित्र चित्रण करने जितना अभी समय नहीं है। अभी इतना ही कहता हूं कि वे वीतराग के उत्कृष्ट साधक थे। उनके द्वारा की गई साधना को अपनाने के लिए ही उनका नाम लिया जाता है। अनेक कवियों ने अनेक तरीकों से भगवान पार्श्वनाथ की स्तुति की है। किन्तु

सब का सार यही है कि उनकी जैसी वीतरागदशा प्राप्त की जाय।

ग्रंथकारों ने भगवान पार्श्वनाथ के दस भवों का वर्णन किया है। इससे पूर्व नववें भव में इनका नाम मरुभूति था। मरुभूति के बड़े भाई का नाम कमठ था। कमठ अपने छोटे भाई पर सदा नाराज रहा करता था। मरुभूमि अच्छा काम करता तब भी रुष्ट ही रहता था। एक दिन अति रुष्ट होकर कमठ ने अपने भाई मरु-भूति के सिर पर शिला दे मारी फिर भी मरुभूति ने सहनशीलता का त्याग न किया और अपने बड़े भाई पर क्रोध नहीं किया। इस सहनशीलता के कारण मरुभूति तरक्की करते गये और कमठ गिरता ही गया।

आजकल लोग सहनशीलता को अधिक महत्व नहीं देते और जरा-जरासी बात पर आपे से बाहर हो जाते हैं। मैंने क्या अपराध किया सो मुझ पर रुष्ट होते हो और मार मारते हो? चट से ये शब्द कह डालते हैं। किन्तु ज्ञानी जन यह विचार करते हैं कि संभव है कोई न कोई मेरा अपराध रहा होगा इसलिए सामने वाला नाराज हुआ होगा। मेरे कर्मो की निर्जरा होती है। मैं क्यों नाराज होऊं इस प्रकार विचार कर के ज्ञानी अनन्त क्षमाशील बने रहते हैं और दूसरे की पुण्याई के पुण्य का हरण कर लेते हैं। क्रोधी गिरता जाता है और सहनशील बढ़ता जाता है।

दसवें भव में कमठ योगी हुआ और मरुभूमि भगवान पार्श्वनाथ हुए। एक बार कमठ पंचाग्नि तप ताप रहा था। उस समय राजकुमार पार्श्व उधर आ निकले।

राजकुमार ने कहा-कमठ! यह क्या मूर्खता कर रहे हो! तुम्हें मोक्ष मार्ग की करणी का पता नहीं है और इस प्रकार अज्ञान तप कर के शरीर को क्यों कष्ट दे रहे हो? कमठ ने कहा-राजकुमार! तुम क्या समझो योगमार्ग को। तुम हाथी घोड़े पालो और राज काज संभालो। हम योगियों की बात मे दखल मत दो। अगर दखल दोगे तो कुछ अनिष्ट हो जायेगा और फिर पछताओगे। पार्श्वनाथ ने कहा-सो तो ठीक है, किन्तु तुम स्वयं गलतमार्ग पर चलते हो। और दुनिया को भी कुमार्ग पर ले जाते हो। इसी से मुझे कहना पडता है कि योगमार्ग नही है।

कमठ-मै भूत भविष्य और वर्तमान की सब बातें जानता हू। मुझे योगमार्ग सिखाने की आवश्यकता नहीं है। राजकुमार! तुम अपना काम सभालो।

पार्श्वकुमार-योगी, तुम भूत भविष्य और वर्तमान के जानकार हो तो यह बताओ कि तुम्हारे सामने जल रही इस लकडी मे क्या है?

कमठ—लकड़ी में अग्नि देवता है और क्या है।

यह सुनकर पार्श्वकुमार ने अपने नौकरों को हुक्म दिया कि इस लकड़ी को अलग निकालकर चीर डालो। तुरंत नौकरों ने लकड़ी को चीर डाला तो उसमें से एक जलता हुआ नाग निकला। यह देखकर पास खड़े सब लोग योगी की सर्वज्ञता पर हंसने लगे और पार्श्वकुमार की बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करने लगे। पार्श्वनाथ ने अग्नि में दागे हुए सांप को **नवकार मंत्र** सुनाया और उससे बहुत प्रेम किया। पार्श्वकुमार की प्रेमवृष्टि से नाग अपनी वेदना भूल गया और मर कर धरणेन्द्र नाम का देव हुआ।

लोगों द्वारा अपनी मजाक सुनकर योगी बहुत रुष्ट हुआ। उसने क्रोध में आकर यह संकल्प कर लिया कि मेरी तपस्या का यदि कुछ फल हो तो मैं मर कर ऐसी योनि में जन्म लूं कि जिससे पार्श्वनाथ को खूब कष्ट दे सकूं।

संसार का यह नियम है कि लोग जब तक अपनी पोल नहीं खुल जाती अनेक प्रकार के धर्म के नाम पर ढोंग चलाते रहते हैं। चमत्कारों के चक्र में साधारण जनता फंस जाती है। और जनता की अज्ञानता का लाभ लेकर ढोंगी लोग गुलछर्रे उडाते हैं। किन्तु जब उनकी पोल खुल जाती है और आम जनता सच्चाई जान जाती है तब वे बडे दुःखी होते हैं। योगी भी अपनी पोल खुल जाने से बड़ा दुःखी हुआ और पार्श्वनार्थ को दुःखी करने का संकल्प कर लिया।

योगी मरकर असुर योनि में पैदा हुआ। जब पार्श्वकुमार ने राज्यसम्पत्ति त्यागकर भागवती दीक्षा अंगीकार कर ली और तपस्या करने लगे तव असुरयोनि धारी देव ने उन पर मूसलधार वर्षा की। मिन्तु योगी पार्श्वनाथ किंचित् भी विचलित न हुए। उल्टे यह मानने लगे कि यह मेरी आत्मा को उपशान्त वना रहा है। मेरे पूर्वकृत कर्मों को नाश करने में मदद पहुंचा रहा है।

आप लोग भगवान पार्श्वनाथ का स्मरण करते होंगे। किस मतलव से आप स्मरण करते हैं? कहावत है कि 'परचो पूरे पारस नाथ।' क्या परचा पुराने के लिए उनका स्मरण करते हैं? स्त्री हो, धन हो, पुत्र हो और कोई हमारा नुकसान करने वाला न हो, तथा कोई वीमारी भी न हो, यह परचा पुराने के लिए तो भगवान का स्मरण नही करते हैं? अगर इस मतलव से पार्श्वनाथ को भजा है तो आपने उनको समझा ही नहीं है? धन दोलत और कुटुम्बादि की इच्छा तो अन्य तरीकों से भी पूरी हो सकती है। वीतराग भगवान से ऐसी

कामना करना अज्ञानता है। वीतराग का भजन वीतरागता प्राप्त करने के लिए करो। पातजंल योगदर्शन में समाधि भाव प्राप्त करने का एक कारण वीतराग ध्यान भी बताया गया है। भगवान पार्श्वनाथ के भजन और ध्यान से वीतरागता प्राप्त होती है।

भगवान पार्श्वनाथ की ध्यानाग्नि असुर की मूसलाधार वर्षा से अधिकाधिक बढ़ती जाती थी। उनकी आत्म शांति में इस वर्षा से कोई बाधा नहीं पड़ती थी। किन्तु जिस नाग को एक बार नवकार मन्त्र सुनाकर उस पर अभिवृष्टि की थी वह अपना कर्त्तव्य अदा करने से कैसे चुप रह सकता था। धरणेन्द्र का आसन कम्पित हुआ। उसने तुरंत नाग का रूप धारण कर भगवान पर अपने फण से छाया कर दी और अपनी पूंछ से उनको ऊपर उठा लिया। लेकिन भगवान पार्श्वनाथ को अपने पर द्वेष रखने वाले असुर से कोई द्वेष भाव न था और न अपनी रक्षा के लिए छत्र धारण करने वाले धरणेन्द्र पर राग भाव ही। शत्रु और मित्र पर समभाव है।

अन्त में इन्द्र की फटकार से कमठ असुर अपने कार्यों से बाज आया और भगवान की शरण ग्रहण की। भगवान ने उसको भी शांति प्रदान की और उसकी आत्मा में जागृति पैदा की। वह असुर समकिती हो गया। उसका सुधार हो गया। सज्जनों की संगति में आकर दुष्ट जनों का उद्धार हो जाता है। जिस पार्श्वनाथ की कृपा से दुष्ट असुर का भी उद्धार हो गया उसकी अखण्ड और अविच्छिन्न प्रार्थना करते चलो। बोलिये–

'चिन्तामणि चित्त में बसेरे दूर टले दुःख द्वन्द'

पार्श्वनाथ के नाम की चिन्तामणि हृदय में धारण कर लीजिये। और कष्ट के समय में चाहे कोई काटे मारे या अन्य प्रकार की वेदना दे तो भी विचलित न होइये। यह विचार रखिये कि मेरे हृदय में चिन्तामणि बसते हैं अतः कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। जिसका ध्यान प्रभु की तरफ होगा उसको संसार की कौनसी ताकत है जो सता सकेगी या विचलित कर सकेगी? आत्मा की शक्ति सब भौतिक शक्तियों से बढ़कर है। आत्मा प्रकृति पर विजय प्राप्त कर सकती है। भगवान पार्श्वनाथ के जीवन से जो शिक्षा मिलती है, वही बात प्रकारान्तर से शास्त्र द्वारा बताता हूं।

शास्त्र– अनाथी मुनि राजा श्रेणिक से कहते हैं कि राजन! मैं इस शरीर का नाथ न था। यदि मैं इसका नाथ होता तो इसके द्वारा कष्ट क्यों पाता। इसी तरह यह शरीर भी मेरा नहीं है। यदि मेरा होता और मैं इसका नाथ होता तो इसे कष्ट क्यों होने देता। मुझे बोध हो गया कि भूतकाल में

इसी शरीर के कारण महान कष्ट सहन किये हैं। शरीर में अपनेपन के वहम के कारण ही अनेक विडम्बनायें खड़ी हुई हैं।

वहमी भय मानेयथा रे सूने घर वैताल।
त्यों मूंर्ख आतम विषेरे मान्यो जग भ्रम जाल।।

वहम के कारण कैसे कैसे भय खड़े कर लिए जाते हैं, यह आप को सुविदित ही है। जहां भूत नहीं होता वहां भी भूत की कल्पना कर ली जाती है। सूना घर देखा कि भूत की कल्पना कर ली जाती है। इसी प्रकार मूर्ख मनुष्य आत्मा में जगत जंजाल की कल्पना कर लेते हैं। शरीर को अपना मानना भी एक प्रकार का वहम ही है। वहम के कारण ही आत्मा दूसरे को दुःख सुख का दाता मानने लगता है।

'सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति बुबुद्धिरेषा'

अर्थात सुख और दुःख का देने वाला कोई नहीं है स्वयं आत्मा ही सुख और दुःख उत्पन्न करता है। दूसरा कोई सुख दुःख देता है ऐसी कल्पना करना ही कुवुद्धि है।

शंका–हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि दूसरा व्यक्ति हमारी निन्दा करके हम से शत्रुता रख के हमारी वस्तु चुराकर या किसी अन्य तरह हमको कष्ट पहुंचा कर दुःख देता है और एक व्यक्ति हमारे लिए अनेक प्रकार के कष्ट सहन करके भी हमें आराम पहुंचाता है। फिर आप कैसे कहते हैं कि दूसरा सुख दुःख नहीं देता। जो वात प्रत्यक्ष अनुभव में आ रही है उसका अपलाप कैसे करते हैं!

समाधान–जिसको तुम दूसरा कह रहे हो वह व्यक्ति और तुम तो अलग हो ही। किन्तु यह तुम्हारा शरीर और आत्मा भी अलग अलग है। दुःख देने वाला व्यक्ति तुम्हारी आत्मा को दुःख देता है या शरीर को? शरीर को सुख दुःख देता है तो शरीर आत्मा से भिन्न है। शरीर आत्मा का एक हथियार है, साधन मात्र है। शरीर के दुःख को तुम अपना दुःख समझते ही क्यों हो। और यदि शरीर के कारण ही दूसरा दुःख देता है तो ऐसा प्रयत्न क्यों नहीं करते जिससे फिर शरीर धारण ही न करना पड़े। आत्मा ने जव तक इस शरीर का साथ पकड़ रखा है तव तक अपने साथी के कारण दुःख सहन करना पड़ता है। शरीर का साथ छोड़कर अशरीरी सिद्ध बन जाने पर किसी प्रकार का दुःख नहीं होता।

यह आत्मा की भूल है जो वह शरीर के कष्टों का अपना कष्ट

समझता है, शरीर में अभेद भाव रखता है। दूसरा व्यक्ति हमारी आत्मा को क्या कष्ट पहुंचा सकता है यदि हम उस कष्ट को कष्ट ही न मानें। सांसारिक सुख व दुःख कल्पना के विषय हैं। दुःख सुख पहुंचाने में दूसरे को निमित्त कारण मान सकते हैं किन्तु यदि उपादान कारण रूप आत्मा स्वयं उसकी तरफ ध्यान न दे, तो बेचारे निमित्त कारण की क्या वकत(कीमत) है।

शरीर का साथ छोड़ देने पर आत्मा को किसी प्रकार का दुःख नहीं हो सकता, यह बात एक उदाहरण से समझाता हूं। आपने उबलते हुए पानी को देखा होगा। सन सन आवाज करता हुआ पानी क्या कहता है? इसके लिए कल्पना की जाती है। पानी कहता है–अग्नि की ताकत नहीं जो मुझे जला सके। मैं क्षणभर में अग्नि को बुझा सकता हूं। किन्तु क्या करूं मेरे और अग्नि के बीच में यह पात्र आड़ा आ गया है अतः मुझे कष्ट सहना पड़ता है। पात्र–बर्तन का साथ करने से मुझे भी उसके साथ दुःख उठाना पड़ता है। यदि बर्तन के बंधन में न फंसता तो अग्नि की क्या ताकत है जो मुझे जला सके।

ज्ञानी जन भी यही सोचते हैं कि दुनिया पदार्थो की क्या शक्ति है जो मुझे दुःख पहुंचा सकें, किन्तु इस शरीर रूपी पिंजड़े के बंधन फंस जाने से कष्ट भोगना पड़ता है। भौतिक पदार्थो की शक्ति से आत्मा में अनन्त गुणी शक्ति है। आत्मा अपने बल से बड़े बड़े पहाड़ों को भी उड़ा सकता है। किन्तु यह शरीर रूपी बंधन बीच में आ पड़ता है जिससे वह लाचार हो जाता है और दुःख सहता है।

लेकिन आत्मा का यह सोचना भी त्रुटियुक्त है कि मैं कर्मचेतना और कर्मफल चेतना से कष्ट भोग रहा हूं। कर्मो में और कर्म कृत शरीर में राग द्वेष ही क्यों लाया जाय। कर्म भी तो आत्मा के ही किये हुए हैं। सब खेल मेरा ही रचा हुआ है। मै जब चाहूं तब इस खेल को खत्म कर समेट सकता हूं।

एक आदमी मार्ग में चल रहा था। चलते चलते उसके दिमाग में कल्पना आई कि अंधे की तरह चलूं। वह आंखें बंद करके चलने लगा। चलते चलते एक खंभे से उसका सिर टकरा गया और लहू लुहान हो गया। गुस्से मे आकर वह खंभे को डण्डे से मारने लगा। यदि आप यह दृश्य देख रहे हों तो उसको क्या कहेंगे? मूर्ख या समझदार! मूर्ख ही कहेंगे। खंभे का क्या दोष था। दोष तो आंखे बंद करके चलने का था।

इसी प्रकार जड कर्मो का दोष निकालने से क्या काम चलेगा। जड कर्मों को संचित करने वाला स्वयं आत्मा ही है। अतः मुख्य जिम्मेवारी आत्मा

की ही है। कर्मो को आत्मा ने ही अपनी असावधानी और अज्ञानता से बुलाया है।

अनाथी मुनि कहते हैं–राजन्! मेरे शरीर में अनन्त वेदना थी। मेरे पिता से मेरा दुःख देखा नहीं जाता था। मेरा दुःख मिटाने के लिए वे सब प्रयत्न करने लगे।

पिया में सव्वसारं पि, दिज्जाहि मम कारणा।
न य दुःक्खाउ विमोयन्ति, एसा मज्झ अणहया।।24।।

आजकल रुपया सब से बड़ा माना जाता है। पुत्रादि से भी पैसा अधिक प्यारा गिना जाता है। कहावत है–

मात कहे मेरा पूत सपूता, बहन कहे मेरा भैया।
घर की जोरू यों कहे, सब से बड़ा रुपया।

ऐसा भी पढ़ने सुनने में आता है कि पिता ने पुत्र को और पुत्र ने पिता को पैसे के कारण मार डाला। कई लोग पुत्र का अर्थ ही यह लगाते हैं कि जो कमाकर लावे और दे। ऐसी दशा में बड़ा कौन रहा? पुत्र या रुपया?

मुनि कहते हैं–राजन्! मेरे पिता ऐसे न थे जो रुपयों को वडा समझते हो। उन्होंने वैद्य लोगों से कह दिया था कि यदि मेरे पुत्र को अच्छा कर दोगे तो मैं अपना सर्वस्व देकर खाली हाथ घर से बाहर निकल जाऊंगा। वे कहते थे मेरे पुत्र के सामने धन क्या चीज है। पैसा हाथ का (कमाया हुआ) मैल है। पुत्र की रक्षा करना प्रथम कर्त्तव्य है। **'पपति रक्षतीति पिता'**

जो पालन पोषण और रक्षण करता है वही पिता है। इसी तरह **'पुनातीतिपुत्र'** जो अपने कर्त्तव्यों से पिता को पवित्र करे वह पुत्र है। पवित्र करने का मतलब मरने के बाद पिंडदान देकर स्वर्ग पहुंचना नहीं किन्तु उनकी आत्मा को पवित्र करना है।

राजन! मेरे पिता पुत्र के प्रति अपना कर्त्तव्य खूब समझते थे। इसलिए अपना सब धन दौलत देकर मुझे वेदना से मुक्त करना चाहते थे। किन्तु वस्तुतः न वे मेरे थे और न मैं उनका था। मेरे मन की मान्यता में ही भूल थी। मैं जैसा अनाथ था मेरे पिता भी वैसे ही अनाथ थे। अतः मेरी वेदना न मिटा सके। अनुयोग द्वार सूत्र में एक दृष्टांत दिया हुआ है जिसका सार यह है–

पान झंरता देखकर हंसी जो कूंपरिया।
मोय बीती तोय बीतसी धीरी बापरिया।।

पान गिरने लगते हैं और कूंपल आने लगती हैं। पत्तों को गिरते

देखकर नई कूंपलियां हसने लगीं और कहने लगीं कि तुम गिरो अब हम मौज करेंगी। यह सुनकर गिरते हुए पत्तों ने जवाब दिया कि जरा धीरज रखो, एक दिन ऐसा आयेगा जब तुम्हें भी गिरना पड़ेगा। **'या घर याही रीत है, एक आवत एक जावत'** हम तो अपनी उम्र पूरी करके जा रहे हैं किन्तु तुम ध्यान रखना कहीं बीच ही में कोई बकरी आकर तुम्हारा विनाश न कर दे और अकाल में ही अपना जीवन पूरा न कर दो।

राजन्! यह संसार का नियम है कि रोग सब किसी को होते हैं। किन्तु कोई भी किसी का दुःख छुड़ाने में समर्थ नहीं होता है। मैं भी अपने पिता को चिन्ता मुक्त करना चाहता था लेकिन लाचार था, यही अनाथता है। अपनी असमर्थता अनुभव करके मैंने निश्चय कर लिया कि अनन्तकाल से संसार परिभ्रमण में वेदना सहन कर रहा हूं, अब कोई स्थाई उपाय करूं कि जिससे कभी वेदना ही न हो।

चरित्र– सुदर्शन बड़ा ऋद्धिशाली था। किन्तु ऋद्धि की अपेक्षा उसके मन में चारित्र्य की अधिक कीमत थी। इसलिए कपिला के पिण्ड से छूटने पर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। किसी आदमी की कमर में रुपयों की नोली बंधी हो और जंगल में उसको लुटेरों ने घेर लिया हो, यदि दैव योग से वह बचकर निकल जाय तो उसे कितनी खुशी होगी यह अनुभवी ही समझ सकता है। जिसके दिल में शील पालने का महत्व न हो वह सुदर्शन की खुशी को क्या महसूस कर सकता है।

अब यह प्रश्न खड़ा होता है कि सुदर्शन ने अपनी रक्षा असत्य का आश्रय लेकर चालाकी से क्यों की, इससे तो चालाकी करना और धोखेबाजी करना वाजिब साबित हो जाता है।

इस शंका का समाधान यह है कि पहले सुदर्शन की भावना को समझने की कोशिश करना चाहिए। सुदर्शन की सदा यह भावना रहती थी कि मैं पर स्त्री के लिए नपुंसक हूं। पर स्त्री को देखकर उसके मन में कामविकार उत्पन्न नहीं होता था। यह बात साधारण नहीं है। लम्बे काल से वह पर स्त्री में मातृ कल्पना करता रहा होगा या पर स्त्री को देखकर अपने को नपुंसकवत् मानता रहा होगा तभी तो स्वस्त्री के सिवा अन्य नारियों से उसे आकर्षण न होता था। उसने सदा यही शिक्षा पाई थी कि स्वस्त्री के सिवा सब के लिए मै नपुंसक हूं।

इस पर भी आपको शंका हो सकती है कि नपुंसक न होते हुए भी

अपने को नपुंसक मानना झूठ है। किन्तु ज्ञान के मार्ग में ऐसी कल्पना की जाती है। जैसे–

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।।

पर स्त्री को माता मानना, परद्रव्य को पत्थर मानना और पर प्राणियों को अपनी आत्मा के समान मानना क्या झूठ है? वेश्या को भी माता मानना और सुवर्ण चांदी को पत्थर मानना क्या झूठ नहीं है? जो माता नहीं है उसे माता मानना और सोना चांदी को पत्थर मानना अगर झूठ नहीं है तो परस्त्री के लिए अपने को नपुंसक मानना और कहना झूठ कैसे कहा जा सकता है। यह तो एक प्रकार की भावना है।

वेश्या वेश्या ही है और सोना चांदी सोना चांदी ही है। किन्तु उनसे अपना बचाव करने के लिए उन में माता और पत्थर की कल्पना की जाती है। इस कल्पना का उद्देश्य बहुत ऊंचा है अतः यह कल्पना झूठ नहीं कही जा सकती है। इसी प्रकार सुदर्शन परस्त्री से सदा अपना बचाव करना चाहता था और इसीलिए उसके लिए अपने को नपुंसक होने की भावना या कल्पना किया करता था। जब परस्त्री से बचने का प्रसंग आया तब उसने वही बात कह डाली जो सदा मन में रखता था।

वेश्या में माता की कल्पना किये बगैर उसके आकर्षण से बचना बड़ा कठिन है। किसी ने कहा कि अमुक मंत्र जपने से नागिन फूलों की माला बन जाती है। अब बताइये, उस मंत्र के द्वारा नागिन को फूल माला बनाने की कल्पना करना अच्छा है या विषवल्लरी बनाने की कल्पना करना? वेश्या में भी पुरुष में मादकता पैदा करने की शक्ति रही हुई है। अतः उसे फूल माला के समान माता मानने की कल्पना क्यों न की जाय ताकि उसके विष से बचाव हो सके। वेश्या में प्रति दिन माता की भावना भाते रहने से वह हमारे लिए निर्दोष हो जाती है। माता के लिए सभी नपुंसक हैं। मातृगमन की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। माता के लिए पुत्र नपुंसक ही है। माता को देखकर वासना जागृत हो ही नहीं सकती।

लिया नियम पर घर जाने का जहां रहती हो नार।
निजघर रहके धर्म आराधे, शियल शुद्ध आचार।।धन.।।30।।

घर आकर सुदर्शन इस बात पर गहराई से विचार करने लगा कि मुझ पर कपिला का मन क्यों खराब हुआ। मुझे देख कर उसके मन में विषय विकार सेवन करने का खिंचाव क्यों उत्पन्न हुआ? क्या इसमें उसी का दोष है या मेरा भी कुछ दोष है? विचार करते करते सुदर्शन इस निर्णय पर पहुंचा कि इसमें मेरे शरीर के सौन्दर्य का भी दोष है, जिस पर मोहित होकर कपिला का मन बिगड़ा और यहां तक नौबत पहुच गई। अतः यह बहतर है कि मैं दूसरों के घर पर ही न जाया करूं जिससे कि मेरे शरीर के रूप सौन्दर्य को देख कर किसी का मन विकृत हो। जिस मार्ग पर गमन करने से एक बार मैं खतरे में पड़ चुका हूं उस मार्ग को सदा के लिए छोड़ देता हूं। राजा के यहां या आम सभा को छोड़ कर किसी के घर पर ही न जाऊंगा ऐसा सुदर्शन ने निश्चय कर लिया।

श्रावक के लिए पर घर प्रवेश मना है। साधु आहार पानी लेने के लिए गृहस्थियों घर जाते हैं किन्तु श्रावक नहीं जाते। अतः श्रावकों की बड़ी प्रतीति और प्रमाणिकता मानी जाती है। उन पर कोई किसी प्रकार का सन्देह नहीं करते।

सुदर्शन यह विचार कर रहा था उधर कपिला अपने घर पर विचार करती थी कि देखने में वह सेठ बड़ा हृष्टपुष्ट और सुन्दर मालूम देता था किन्तु निकला नंपुसक। जब वह नपुंसक है तब उसकी स्त्री का क्या हाल होगा। वह जगत् में सती कहलाती है और भीतर में जरूर पर पुरुष गमन करती होगी। मैंने पहले राजा के घर के हाल जाने थे, अब सेठ के घर के हालात भी मालूम हो गये। मैं समझ गई कि सभी स्त्रियां मेरे समान ही होती हैं। मैं जैसी भीतर बाहर भिन्न हूं दूसरी भी वैसी ही हैं। अच्छा हुआ जो सेठ को बुला लाई और उसकी पोल मालूम हो गई। कैसे-कैसे पुरुष होते हैं जो पुरुषत्व हीन होते हुए भी लोगों में अच्छा दिखने के लिए विवाह कर लेते हैं और अपनी गणना पुरुषों में करवाते हैं।

बाहर गांव का कार्य पूरा हो जाने से कपिल पुरोहित घर पर आ गया। कपिला उसके सामने इस तरह पेश आई जैसे कुछ हुआ ही न हो। उसने मन मे सोचा कि सेठ नपुंसक होते हुए भी बात का तो पक्का है। उसने मेरे सामने शपथ खाकर स्वीकार किया था कि मै यह भेद किसी के सामने प्रकट नही करूंगा। यदि वह ऐसी प्रतिज्ञा न करता तो मेरा भाग्य ही फूट

जाता। मैं कहीं की न रहती। कपिला ने पति के समक्ष कुछ न कहा। चुप्पी साधली, जैसे कोई बात हुई ही न हो।

कपिल ने अपने परम मित्र सुदर्शन से एक दिन पूछा कि आजकल आप मेरे घर पर क्यों नहीं आते? क्या बात हुई जिससे आना छोड़ दिया। सुदर्शन ने जवाब दिया कि मैंने राजा के सिवाय किसी के घर जाना छोड़ दिया है। किसी के भी घर न जाने का व्रत ले लिया है। यह पूछे जाने पर कि यह व्रत तो आपको पहले भी था कपिल ने उत्तर दिया कि पहले मैंने मित्र के घर पर जाने की छूट रखी थी। अब वह भी छूट बंद कर दी है। केवल आप ही के यहां नहीं किन्तु किसी भी मित्र के यहां नहीं जाने का निश्चय ले लिया है। आपको यह जानकर अतीव प्रसन्न होना चाहिए कि आपका मित्र अधिकाधिक व्रत पालन कर रहा है।

मनुष्य को एक बार ठोकर खाकर सावधान हो जाना चाहिए। जो ठोकर खाकर भी सावधान नहीं होता वह मूर्ख गिना जाता है। ठोकर खाकर कैसे सावधान होना तथा पहले कैसे सावधान रहना आदि बातें एक दृष्टान्त से बताता हूं, सो ध्यान पूर्वक सुनें।

एक अध्यापक गुरु ने यह नियम कर लिया कि पहले छात्र की परीक्षा करनी और जो मेरी परीक्षा में उत्तीर्ण हो उसी को पढ़ाना अन्य को न पढाना। उसने एक अंधेरे कमरे में घण्टा बांध दिया। घण्टा मकान के ठीक बीचोंबीच बांधा था। एक दिन तीन छात्र पढ़ने की उम्मीद से गुरुजी के पास आये। गुरुजी ने कहा बैठो। एक छात्र से कहा—जाओ, उस कमरे में पुस्तक रखी है, उठा लाओ। छात्र कमरे के पास गया तो उसे ज्ञात हुआ कि कमरे में बहुत अंधेरा है। यह एक हाथ आगे रखकर सावधानी से चलने लगा। चलते चलते उसके हाथ में घण्टे की लगी। वह इधर उधर से आगे बढ़ गया और सामने रखी पुस्तक उठा लाया, लाकर गुरुजी को दे दी।

गुरुजी ने दूसरे छात्र से कहा—तुम भी जाओ और एक पुस्तक उठा लाओ। दूसरा छात्र एकदम कमरे में चला गया। ज्योंहीं बीच में पहुंचा कि घण्टे से सिर टकरा गया और कुछ चोट लगी। वह पुस्तक उठाकर लौटते वक्त बड़ी सावधानी से घण्टे से अपना बचाव करता हुआ बाहर निकल आया और पुस्तक लाकर गुरुजी की सेवा में पेश कर दी।

वापस लौटा। किन्तु लौटते वक्त पुनः सिर टकरा गया जिससे बड़ा नाराज होता हुआ बाहर आया और गुरुजी के हाथ में पुस्तक देकर कहने लगा कि वह आदमी कैसा मूर्ख है जिसने कमरे के बीचों बीच घण्टा बांधा है।

गुरुजी ने दूसरे दोनों छात्रों से भी पूछा कि तुम पर क्या बीती सो सुनाओ। पहले छात्र ने कहा–गुरुजी! मै तो अंधेरा देखकर द्वार पर से ही सावधान हो गया और सामने हाथ रखकर चला जिसे घंटा मेरे हाथ से टकराया और बाजू से निकल गया। वह घण्टा किसी बुद्धिमान् व्यक्ति ने लोगों को सावधान बने रहने की कला सिखाने के लिए बांध रखा हो ऐसा मालूम पड़ता है। मैं तो पहले ही सावधान था। मेरे लिए उसका होना न होना समान है।

दूसरे छात्र ने कहा–गुरुजी! जाते वक्त मैं असावधान था। मैं कुछ भी ख्याल किए बिना एकदम कमरे में चला गया जिससे सिर में चोट लगी। किन्तु लौटते वक्त सावधान हो गया और सुरक्षित बाहर निकल गया। एक बार असावधानी का फल भुगतकर दूसरी वक्त मैं सावधान हो गया।

तीनों छात्रों की जबानी सुनकर गुरुजी ने निर्णय दिया कि पहला छात्र मेरी सम्पूर्ण विद्या का अधिकारी है। वह बड़ा सावधान और पूर्ण योग्य पात्र है। दूसरा छात्र मेरी आधी विद्या का अधिकारी है। उसे भी पढ़ाऊंगा क्योंकि एक बार गलती करके भी दूसरी बार उसने उसे सुधार लिया है। किन्तु तीसरा छात्र विद्या का सर्वथा अनाधिकारी है। एक बार सिर में लगने पर भी उसने शिक्षा ग्रहण न की और उसी असावधानी से पुनः लौटा और फिर सिर टकराया तो घण्टा बांधने वाले को दोष देने लगा। दुनिया में ऐसे कई घण्टे बंधे हुए है। यदि असावधानी रखी जायेगी तो पग पग पर चोट लगेगी। दूसरों को दोष देने से क्या काम चलेगा। अतः तीसरे छात्र को मैं न पढ़ाऊंगा। वह मुझसे कोई बात ग्रहण न कर सकेगा।

इस दृष्टांत के अनुसार यह संसार भी एक पाठशाला है और आप इसके विद्यार्थी है। जो बिना ठोकर खाये सावधानी पूर्वक अपना व्यवहार चलाता है वह प्रथम नंबर का योग्य व्यक्ति है। यदि आप प्रथम नम्बर न पा सको तो कम से कम एक बार ठोकर खाकर तो चेतो। संसार के कुटुम्ब–परिवार और मित्र–अमित्र सब ठोकर के समान है। इनसे एक बार टकराकर आइन्दा के लिए शिक्षा ग्रहण करो। यदि आप विवेक और सावधानी पूर्वक अपना लोक व्यवहार चलाओगे तो इस संसार को अपने लिए स्वर्ग बना सकते हो। और यदि अविवेक और असावधानी से बर्ताव या कार्य करोगे तो पद पद पर कष्ट उठाने पड़ेंगे और यह संसार आपके लिए नरक बन जायेगा। संसार

को स्वर्ग या नरक बनाना आप ही पर निर्भर है। स्वर्ग और नरक और कुछ नहीं है आपकी आत्मा ही स्वर्ग नरक है। अतः आत्मा को सावधान रखना चाहिये।

जो सदा सावधान रहते हैं और कभी ठोकर खाते ही नहीं वे परमात्मा के समान हैं। जो ठोकर खाते हैं वे भी दो प्रकार के हैं। एक अन्तरात्मा दूसरा बहिरात्मा। जो एक बार ठोकर खाकर सावधान हो जाते हैं और पुनः ठोकर नहीं खाते वे अन्तरात्मा हैं। और जो बार बार ठोकरें खाते हैं किन्तु संसार में पड़े रहते हैं और चेतते नहीं वे बहिरात्मा हैं। आप लोग अनेक बार नरक तिर्यंच के कष्ट सहन कर चुके हैं। गर्भ में भी बड़ा कष्ट सहा है किन्तु अभी तक चेतते नहीं हैं, यह जानकर बड़ा आश्चर्य होता है।

दुनिया किधर जा रही है देखकर दिल में दुःख होता है। लोगों ने मान रखा है कि 'दुनिया ठगनी मक्कर से, रोटी खानी शक्कर से।' देखिये, पानवालों की दुकानों पर कांच क्यों लगा रखे हैं? होटलों में अनेक प्रकार के चित्र क्यों लगाये गये हैं और क्यों विविध प्रकार के वाद्य बजाये जाते हैं? सिनेमाघरों में सजावट क्यों है? यह सब दुनिया को ठगने के लिए ही तो हैं। भोले और अज्ञानी जीव इनमें फंसकर धन और स्वास्थ्य का नाश करते हैं और साथ में चरित्र से भी भ्रष्ट हो जाते हैं।

हिन्दुओं की चोटी जो सिर पर रहा करती थी अब आगे आ गई है। बाल रखवाकर कैसी पट्टी निकाली जाती है। और पोशाक कैसी पहनी जाती है। कितने चमकीले भड़कीले वस्त्र और फिर बारीक भी। एकदम लोग फेशन में बहे जा रहे हैं। कहलाते हिन्दुस्तानी हैं मगर भावनाएं विलायती बनती जा रही हैं। आप लोगों को अपने देश की भाषा, संस्कृति और वेषभूषा पसन्द नहीं आती है। अपनी संस्कृति की रक्षा की तरफ आपको ध्यान नहीं है।

भारत का वाइसराय भारत का सबसे बड़ा हाकिम है। उसे आप भारतीय पोषाक पहनने की बात कहिये। वाइसराय को छोडिये, किसी साधारण अंग्रेज से कहिये कि हमारी पोषाक पहनो। तो क्या अंग्रेज आपकी पोषाक पहनेंगे? वे अपनी संस्कृति और वेष भूषा छोडने के लिए कभी तैयार नहीं हैं। किन्तु हिन्दुस्तानियों का कितना मानसिक पतन हो चुका है कि वे बिना सोचे अंधानुकरण करने में लज्जित नहीं होते। अंग्रेज आपको यही जवाब देंगे कि हम दस हजार माइल से यहां आये हैं सो अपनी संस्कृति छोड़ने के लिए नहीं आये हैं [illegible] की वृद्धि करने वाले आये हैं। तुम पर शासन करने [illegible] के लिए आये हैं। हम मूंछ न रखवायेंगे, हां, तुम्हारी मूंछ [illegible]

आजकल लोग मुख सफाचट रखवाते हैं और कोई कोई इतने बाल रखवाते है, मानों दो मक्खियां बैठी हों। अंग्रेज अपनी संस्कृति नहीं छोड़ते तो आप क्यों अपनी अच्छी संस्कृति को तिलांजली देकर उसके स्थान में बुरी बातें भरते हैं। पाश्चात्य शिक्षा के प्रवाह में बह गत जाओ। यह शिक्षा भारतीय संस्कृति का नाश कर रही है। **जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन। जैसा पीवे पानी वैसी होवे वाणी** के अनुसार जैसी शिक्षा होगी भावना भी वैसी ही बनेगी। अतः पाश्चात्य शिक्षा को ही बदलना जरूरी है। यह शिक्षा बनावटी पन सिखाती है। ऊपर से केवल वेशभूषा से भपका दिखाकर लोगों के दिलों पर अपनी धाक जमाना चाहती है। किन्तु भारतीय शिक्षा और संस्कृति गुण प्रधान है। गुणों पर विशेष ध्यान दिया गया है वेशभूषा पर नहीं।

यह भारतदेश पुण्यभूमि है। इस देश की समता कोई देश नहीं कर सकता। इस देश से ही संसार के सब देशों ने सभ्यता और मानवीय गुण सीखे हैं। किन्तु कुछ काल से पासा बदला हुआ है, उल्टी गंगा बहने लगी है। मुसलमान बादशाहों ने भी भारतीय संस्कृति को अपनाया था। कुछ बादशाहों को अलबत्ते पागलपन सूझा था जिससे उन्होंने जोर जुल्म के द्वारा अपनी संस्कृति और धर्म लोगों पर लादने की कोशिश की थी। किन्तु उसके अत्याचारों से भी लोगों में वीरता ही आई थी। बादशाहों के जुल्मों से कई लोगों ने उत्कृष्ट दर्जे की वीरता सीखी थी और अपनी संस्कृति पर दृढ़ रहे थे। कम से कम लोग उनके जुल्मों से सावधान तो हो जाते थे, किन्तु अंग्रेजों द्वारा दी जाती हुई आधुनिक शिक्षा रूपी नशे से लोग इतने बेभान हो रहे हैं कि हंसते हंसते अपनी सभ्यता और चरित्र का विनाश कर रहे हैं। यह अफीम का नशा है जिसमें मनुष्य चक्कर खाने लगते हैं। यह मीठा विष पिलाया जा रहा है। मुसलमान बादशाहों के समान खुला अत्याचार नहीं है, किन्तु भीतर भीतर में हमारी सभ्यता पर घुन लगा दिया गया है।

मित्रों! विचारक और भारत के हितचिंतक लोग आपका ध्यान इस तरफ आकर्षित करते हैं अतः उस पर ध्यान देना आपका कर्त्तव्य है। ऊपरी टीपटाप में क्या रखा है। मनुष्य में गुण होंगे तो अपने आप उसकी कीर्ति होगी। गुणप्रधान सभ्यता टिकाऊ होती है और वास्तविक भी। सुदर्शन में सच्चरित्रता का गुण था इसीलिए हम लोग उनका चरित्र सुना रहे हैं और आप सुन रहे हैं। अब तो आप लोग चेतो। ठोकर खाकर भी न चेतेंगे तो तीसरे विद्यार्थी जैसी हालत होगी।

इसी भूमि में भगवान् पार्श्वनाथ ने जन्म लेकर भारत का उद्धार किया था। उनकी शिक्षाओं पर ध्यान देंगे तो आपका कल्याण है।

राजकोट

11.8.36

संतान पर माता–पिता का ऋण

धन धन जनक 'सिद्धारथ 'राजा, धन 'त्रिसला दे' मात रे प्राणी;
ज्यों सुत जायो ने गोद खिलायो, वर्धमान विख्यात रे प्राणी।
श्री महावीर नमो वरनाणी।।1।।

प्रार्थना– यह भगवान् महावीर स्वामी की स्तुति की गई है। परमात्मा की स्तुति करते हुए आत्मा को मुख्यतः किन तत्वों का विचार करना चाहिए इस विषय पर कई बार चर्चा की जा चुकी है। किन्तु आज भी कुछ इस विषय में कहना चाहता हूं।

परमात्मा की प्रार्थना करते वक्त मुख्यतः आत्मतत्त्व पर विचार करना चाहिए। संसार में द्रव्य और पर्याय दोनों देखे जाते हैं। पर्याय का मूलभूत आधार द्रव्य है। द्रव्य न हो तो पर्याय किसकी बने? सोने के दागीने सब कोई देखते हैं किन्तु सोना न हो तो दागीने कहा से बने। सोना द्रव्य है और दागीने उसकी पर्याय हैं। किन्तु आजकल लोग द्रव्य को तो भूल गये हैं केवल पर्यायों को पकड रखा है। यह लोगों की गंभीर भूल है। केवल पर्यायों को न पकड़े रहो पर द्रव्य को भी देखो। द्रव्य और पर्याय कथंचित् भिन्नभिन्न हैं।

आत्मतत्त्व मूलभूत द्रव्य है तिर्यंचादि उसकी पर्यायें हैं। आजकल विज्ञान की बडी तरक्की है। हर बात विज्ञान की दृष्टि से देखी जाती हैं द्रव्य पर्याय का स्वरूप जैनागमों में है। अतः विज्ञानवेता उसे कैसे समझ सकते हैं जब तक कि वे जैनागमों का अध्ययन न करें,। तात्त्विक अध्ययन किये बिना आत्मस्वरूप का बोध संभव नहीं है। पर्यायों के फेर में पडकर, मूलभूत आत्मतत्त्व को मत भूलो।

ज्यों कंचन तिहुकाल कहीजे भूषण नाम अनेक रे।
त्यों जगजीव चराचर योनि, है चेतन गुण एक रे प्राणी।।

जिस प्रकार सोना एक है किन्तु उसके जेवर अनेक प्रकार के होते

हैं, उसी प्रकार चेतन तत्त्व एक ही प्रकार का है किन्तु उसकी पर्यायें–चराचर योनियां अनेक प्रकार की हैं। चैतन्य गुण की तरफ देखिये, अनेक प्रकार के शरीरों में मत फंसिये।

अपनो आप विषय थिर आतम सोई हंस कहाय रे प्राणी।

यह विचार करिये कि पर्याय का ध्यान करते करते अनन्त काल व्यतीत हो गया है अतः अब द्रव्य पर ध्यान लगाइये। यदि कोई सराफ सोने पर ध्यान न दे और केवल घाट पर ही ध्यान देकर कीमत चुकाया करे तो उसका दिवाला ही निकल जाय। अमुक जेवर पैरों में पहनने का है इसलिए उसकी कीमत कम है और अमुक जेवर सिर पर पहनने का है अतः उसकी कीमत अधिक है यह ख्याल करके यदि सराफ सोना लिया करे तो कब तक उसकी दूकान चल सकती है? सराफ को केवल सोने की तरफ ही ध्यान रखना पड़ता है, डिजायन की तरफ नहीं। डिजायन तो बनते बिगड़ते रहते हैं उनमें असली वस्तु सुवर्ण है।

इसी प्रकार मनुष्य स्त्री, बालक, वृद्ध और युवा तथा गाय भैंस घोड़ा कुत्ता आदि की तरफ न देखकर उनमें रहने वाले आत्मा को देखिये। विविध प्रकार के घाट तो बनते बिगड़ते रहते हैं किन्तु इनमें रहने वाला शुद्ध आत्मा सदा कायम रहता है। आत्मा मूलतत्व हैं। अनेक प्रकार की खोलियां उसकी वैभाविक पर्यायें हैं।

द्रव्यरूप जीवात्मा को देखने से विषय स्थिर हो जायेंगे, और फिर आत्मा सोहं हंस कहा जायेगा। जिसे योगी लोग अनलहक भी कहते हैं। सोहं का अर्थ यह है कि जैसा तू है वैसा ही मैं हूं और हंस का अर्थ यह है कि जैसा मै हूं वैसा ही तू है, यानी मैं वही हूं, परमात्मा हूं, शुद्ध स्वरूप हूं। अनहलक का अर्थ है मैं खुदा हूं। जो आत्मा की मूलसत्ता पर विचार करता है वह किसी से द्वेष और किसी पर राज कैसे कर सकता है। तत्व ज्ञान का विचार करना ज्ञान मार्ग है। द्रव्य और पर्याय का वास्तविक बोध करने के लिए ही प्रार्थना की जाती है। पर्याय दो प्रकार की होती हैं स्वाभाविक और वैभाविक। वैभाविक पर्याय कर्मकृत है और हेय है। परमात्मा की प्रार्थना करने से आत्मा निज रूप को पहचान सकता है और तदाकार हो सकता है। जो इस प्रकार प्रार्थना करेगे उनका सदा भला है।

शास्त्र.– द्रव्य को किस प्रकार भुलाया जा रहा हैं और पर्याय को किस प्रकार पकड़ा जा रहा हैं। यह बात शास्त्र से कहता हूं। अभी तो उत्तराध्ययन के तीसरे अध्ययन के द्वारा समझाता हूं।

अनाथी मुनि राजा श्रेणिक को बता रहे हैं कि राजन्! जो व्यक्ति द्रव्यदृष्टि को गौण बनाकर पर्याय दृष्टि को मुख्य बना लेता है वह अनाथ है। और जो पर्याय दृष्टि को गौण करके द्रव्यदृष्टि को मुख्य बना लेता है वह सनाथ है। अर्थात् जो शरीर रूप पर्याय पर अधिक अधिक ध्यान लगाता है और आत्मा रूप द्रव्य का ख्याल ही नहीं करता वह अनाथ नहीं तो और क्या होगा। वह अपने शरीर का गुलाम होगा।

कथानकों में ऐसा भी सुना जाता है कि अनाथी मुनि का पिता इब्भ सेठ था। इब्भ सेठ तीन प्रकार के होते हैं–उत्तम मध्यम और कनिष्ठ। जिसके पास खड़े हुए एक हाथी को रुपयों से ढांक देने जितना धन हो वह कनिष्ठ इब्भ कहा जाता है। जिसके पास मोहरों से हाथी को ढांक देने जितना धन हो वह मध्यम इब्भ सेठ है। और जिसके पास रत्नों से हाथी को ढांकने जितना धन हो वह उत्तम इब्भ सेठ कहा जाता है। अनाथी मुनि के पिता के पास सत्तावन इब्भ धन था। यह सब धन वह अपने पुत्र को पीड़ा मुक्त कर देनेवाले को देने के लिए तैयार था। किन्तु फिर भी रोग मुक्त करने में समर्थ न हुआ।

राजन्! तू अपने को सम्पत्ति के कारण नाथ मानता है किन्तु मेरे पिता के पास सम्पति की कमी न थी फिर भी मैं अनाथ था तो तू सम्पत्ति के कारण नाथ कैसे कहा जा सकता है। जब तू अपना ही नाथ नहीं है तो दूसरों का नाथ कैसे बन सकता है।

माया यमे महाराय! पुत्तसोग दुहठ्ठिया।
न य दुक्खाउ विमोयन्ति ऐसा मज्झ अणाहया।।24।।

राजन्! मेरे माता भी थी। वैसे तो माता सब के होती है मगर कइयों की माता जब वे गर्भ में होते हैं तभी मर जाती है। और मां का पेट चीर कर उनको बाहर निकाला जाता है। वे मातृस्नेह से सर्वथा वंचित होते हैं। उनके लिए माता का होना क्या काम आया। लेकिन मेरी माता मौजूद थी और मुझ से बहुत स्नेह भी करती थी। मैंने दीक्षा अंगीकार की तब तक मेरी माता मोजूद थी। मेरी मां ने मेरा बड़े प्रेम से लालन पालन किया था। मेरा विवाह भी बड़े हर्ष से किया। किन्तु जब मुझे रोग हो गया तब वह बडी दुःखी हुई। वह रात दिन मुझे रोग मुक्त करने के लिए बडी चिन्तित रहती थी। लेकिन मेरा दुःख न मिटा सकी यही मेरी अनाथता है।

कई कई माताएं ऐसी भी होती हैं जो अपने एशोआराम के लिए पुत्र की पर्वाह नहीं करती। अपने दुराचार के लिए पुत्र को मार कर या जिन्दा गाड़ देने की बातें सुनी गई हैं।

चौदह स्वप्न देखे थे। स्वप्नों के कारण वह जान गई थी कि उसका पुत्र चक्रवर्ती होगा। फिर भी दीर्घराजा के साथ भ्रष्ट हो जाने से उसने अपने पुत्र ब्रह्मदत्त को मार डालने का विचार व प्रयत्न तक किया था। उसने सोचा पुत्र बड़ा हो गया है अतः मेरी कामवासना की पूर्ति में बाधक होगा। इसलिए उसने एक लाक्षागृह बनवाया। उसमें ब्रह्मदत्त को सुला दिया और रात के समय स्वयं ही उसमें जाकर आग लगा दी। यह तो ब्रह्मदत्त के पूर्वकृत पुण्य का फल था कि प्रधान की होशियारी से वह बचा लिया गया। किन्तु उसकी माता ने तो उसे मार डालने में कोई कसर नहीं रखी थी।

राजन्! सब माताएं एक समान नहीं होतीं। कई माताएं अपने पुत्र की रक्षा के लिए प्राण तक दे देती हैं। मेरी माता भी इसी प्रकार की थी कि वह मुझ को कहती थी कि अगर तेरे प्राणों की रक्षा के लिए मुझे अपने प्राण तक देने पड़ें तो मैं देने को तैयार हूं। पुत्र! यदि कोई सामने आकर तेरे शरीर में भाला खोंचता तो मैं बीच पड़कर भाला अपने शरीर पर झेल लेती और तुझे बचा देती। किन्तु तेरी यह पीड़ा भीतरी है। इसको मैं किस प्रकार मिटाऊं? तेरी पीड़ा देखकर मैं दुःखी हूं। मगर उसे दूर करने में कतई लाचार हूं। राजन्! यही मेरी अनाथता है।

अनाथी मुनि के कथन का कोई यह अर्थ न लगा ले कि जब माता पिता हमारा दुःख दर्द दूर नहीं कर सकते तो उनको मानने और सेवा शुश्रूषा करने की क्या जरूरत है। और न यह अर्थ लगाना चाहिए कि जब कोई किसी का दुःख दर्द मिटा ही नहीं सकता तो उसकी सेवा शुश्रूषा या रोग मिटाने का उपाय करना एकान्त पाप का कारण है।

थलीमारवाड़ में एक सम्प्रदाय ऐसा भी है जो माता पिता के लिए पुत्र को और पुत्र के लिए माता पिता को कुपात्र बताता है। माता पिता द्वारा पुत्र का पालन पोषण और संरक्षण करना तथा पुत्र द्वारा माता पिता की सेवा शुश्रूषा करना वह सम्प्रदाय सर्वथा पाप मानता व बताता है। अपनी इस मान्यता की पुष्टि में अन्य दाखलों के सिवा वह अनाथी मुनि का भी दाखला पेश करता है। वह कहता है कि देखो, अनाथी मुनि का दुःख व रोग कोई नहीं मिटा सके अतः रोगी की सेवा करना एकान्त पापकर्म के बंध का कारण है। लेकिन यह कथन किस प्रकार अनुचित और शास्त्र विरुद्ध है यह बात एक दाखला देकर कहता हूं जिससे आपकी समझ में शीघ्र आ सके।

एक माता अपने पुत्र से कहती है कि पुत्र! अब तू पढ़ लिखकर होशियार हो गया है। मैं तो आशा लगाये बैठी थी कि तू बड़ा होकर मेरी सेवा करेगा। किन्तु तू तो सेवा के बजाय मुझे कष्ट देता है। मेरा तुझ पर कितना

उपकार है। इस बात को तू बिलकुल भूल गया है।

पुत्र अपनी माता को जवाब देता है कि बस मां! रहने दे। तू अपने अज्ञान के कारण ऐसा कहती है कि मुझ पर तेरा उपकार है। वल्कि मेरा तुझ पर उपकार है। जब मेरा जनम न हुआ था तब तू संतान के लिए कितना विलाप करती और दुःखी होती थी। जब मैं पेट में आया तब तेरा वांझपने का दोप मिटा और तेरी इज्जत बढी। तुझे बडी प्रसन्नता हुई और सुखी हुई। तुम पति-पत्नी मौज करने में लगे हुए थे कि मैं पेट में आ गया। जब मेरा जन्म हुआ तव भी तुमने बड़ा उत्सव मनाया और आनन्दानुभव किया। जब कुछ वड़ा हुआ तब मुझसे लाड़ प्यार करके, मुझे खेलाकर और मेरा चुंबन लेकर तुमने वहुत आनन्द उठाया है। जब शादी के लायक हो गया तब मेरी शादी करके सगे सम्बन्धियों और गाम में बड़ा लाव्हा लिया था। अगर मैं न होता तो तुझे इतना सुख कहां से प्राप्त होता? अब तू ही बता मां, कि मेरा तुझ पर उपकार है या तेरा मुझ पर? इसलिए मां, अब तू बड़बड़ाना छोड़ दे और जैसा मैं कहूं, किया कर।

पुत्र का उत्तर सुनकर माता ने कहा बेटा! मैंने तुझे अपना दूध पिलाकर बडा किया है। ऐसा क्या वोलता है।

इस पर पुत्र ने कहा-मां, इसमें भी उपकार की क्या बात हुई। अगर मुझे दूध न पिलाती तो तेरे स्तन फट जाते और तू वड़ी दुःखी होती। अपना दर्द मिटाने के लिए ही तूने मुझे दूध पिलाया था। दूसरी वात, वह दूध तो मेरा ही था, मेरे हक का था। जब मैं जन्मा तभी तेरे स्तनों में दूध आया था। मेरे जनम के पहले तेरे स्तनों में दूध कहां था? इतने पर भी यदि तू तकरार करती है तो जितना दूध पिया है उसका पैसा ले ले।

पुनः मां ने कहा-बेटा! मैंने तेरे को नव मास पेट में रखा है। तू दूध के पैसे देने की बात कहता है किन्तु पेट में रखा इसका तो उपकार मान।

पुत्र ने कहा-इसमें उपकार की क्या वात है। पेट में तूने क्या रखा, मैंने स्वयं अपना स्थान बना लिया था। फिर भी चाहे तो पेट में रहने का किराया ले ले। कलकत्तादि में कोटडियों का किराया लिया जाता है वैसे तू भी ले ले। इससे अधिक क्या चाहती है।

-

मेरी सेवा करनी पड़ेगी।

लड़के ने सोचा कि यह बात ठीक है। क्योंकि शास्त्र में तो मैंने सुना है कि कोई किसी का दुःख दर्द मिटा नहीं सकता। जब कोई किसी का दुःख दर्द मिटा नहीं सकता, तो सेवा करना धर्म कैसे होगा, इसमें गुरुजी क्या बतलायेंगे। चल मां, गुरुजी के पास चल।

बन्धुओं! उस समय यदि वह किसी ऐसे गुरु के पास पहुंच जाती जो माता पिता की सेवा करने में एकान्त पाप होने की प्ररूपणा करते हैं और माता पिता को कुपात्र बताते हैं, तो उस बेचारी पर संकट का पहाड़ आ पड़ता और उसका लड़का उस पर हावी हो जाता। किन्तु सौभाग्य से वह ऐसे गुरु के पास पहुंची जो भगवान महावीर के प्ररूपित शास्त्र के जानकार थे। जिन महावीर ने अपनी हलनचलन से माता को तकलीफ न हो इस भावना से गर्भावस्था में हलनचलन बन्द कर दी थी फिर माता को विकल जानकर पुनः हलचल चालू की थी। माता ने गुरुजी से पूछा कि महाराज! अभी तक मैं सुनती आई हूं कि पुत्र पर माता पिता का अनन्त उपकार है। किन्तु मेरा वेटा कहता है कि पुत्र का माता पिता पर उपकार है। आप कृपया शास्त्र देखकर सच्ची बात बताइये।

पुत्र ने गुरुजी से कहा–महाराज! आप सोच समझकर निर्णय दें। उत्तराध्ययन सूत्र के बीसवें अध्ययन में अनाथी मुनि के अधिकार में स्पष्ट बताया हुआ है कि माता पिता स्त्री आदि कोई भी संबंधी अनाथी मुनि की वेदना मिटाने में समर्थ न हो सके थे, कोई भी मुनि की रक्षा न कर सके थे। इसलिए माता पिता आदि की सेवा करना एकान्त पाप है, भौठी छुरी को पैनी बनाना है। शास्त्र में स्पष्ट कह रखा है कि मां बाप आदि कोई कल्याण नही कर सकते, केवल साधु ही कल्याण कर सकते हैं। अतः सोच के निर्णय दें।

लडके का कथन सुनकर गुरुजी समझ गये कि यह भ्रम में है। गुरुजी ने कहा भगवती सूत्र में भगवान् महावीर ने कहा है कि मनुष्य के शरीर में तीन अंग माता के होते है और तीन पिता के। वाकी के अंग दोनो के भिन्न होते है। मांस रुधिर और मस्तक मातृ अंग है और हाड मज्जा और रोम पितृ अंग है। लौकिक में भी कहावत है कि मेरी मां का माथा, तेरे बाप के हाथ। अगर माता उच्चविचार शीला होगी तो पुत्र का मस्तक भी विचारवान् होगा। पिता के हाड मजबूत होंगे तो पुत्र भी बलिष्ठ होगा। जो जो शुद्र प्रधान अंग हैं वे पिता के है। वैद्यक शास्त्र मे भी कहा हैं कि माता पिता के रजवीर्य से संतान का शरीर बनता है। आधुनिक वैज्ञानिक भी ऐसा ही मानते है।

यह शास्त्रीय और वैज्ञानिक बात बताकर गुरु ने उस पुत्र से पूछा

कि अब तू बता कि पुत्र के अंग से माता पिता के कौन कौन से अंग बनते हैं जिससे कि पुत्र का माता पिता पर उपकार साबित हो जाय। गुरुजी की बात सुनकर माता को जोश आ गया और बीच में ही बोल उठी कि पुत्र! तू मुझ को दूध के पैसे और पेट में रहने का भाड़ा देने वाला था किन्तु मुझे यह नहीं चाहिए। मुझे मेरे दिये हुए तीनों अंग मांस रुधिर और मस्तक मुझे वापस दे दे। मां का कथन सुन कर पुत्र के लिए चुप रहने के सिवा कोई चारा न था चुप हो गया।

पुनः माता ने गुरुजी से पूछा कि शास्त्र में इतनी ही बात बताई हुई है या और भी कुछ कहा है। गुरुजी ने बताया कि ठाणांग सूत्र में भगवान् ने स्वयं प्रेरणा से श्रमण निर्ग्रथ साधुओं को संबोधित करके कहा है कि आयुष्मान् श्रमणों! माता पिता, सहायता देने वाले और धर्म में स्थिर करने वाले धर्म गुरु का उपकार बहुत बड़ा है। इन से उऋण होना कठिन है। किन्तु शास्त्रों में मैंने ऐसा कहीं नहीं देखा कि पुत्र का माता पिता पर उपकार है।

मां ने पुत्र से कहा कि बता, अब तू क्या चुकाना चाहता है। पुत्र का दिमाग गुरुजी की बातें सुनकर ठण्डा हो गया था अतः वह चुप रहा।

फिर गुरुजी कहने लगे कि पुत्र माता पिता के ऋण से कठिनाई से उऋण हो सकता है। ठाणांग सूत्र में ही कहा है कि यदि पुत्र प्रति दिन अपने माता पिता को नहलाता है, अच्छा खाना खिलाता पिलाता है, अच्छे वस्त्र पहनाता है और अपने कंधे पर उनको उठाये फिरता है तो भी उनके ऋण से उऋण नहीं हो सकता।

आप लोग कहेंगे कि इससे अधिक एक पुत्र अपने मां बाप के लिए और क्या कर सकता है। जो इतने पर भी उऋण नहीं होता। उसकी सेवा में क्या कसर रह जाती है? इसके लिए मैं एक उदाहरण देता हूं।

मान लीजिये कि एक आदमी ने दूसरे आदमी को एक बगीचा इनाम में दिया है। बगीचा इनाम में पाने वाला व्यक्ति एक दिन उस बगीचे के दस बीस फल लेकर इनाम देने वाले की सेवा में उपस्थित हुआ और वे फल उसको भेंट कर दिए। मैं आपसे पूछता हूं कि क्या बगीचा इनाम में पानेवाला

माता पिता की सेवा करता है। किन्तु यह शरीर किसका दिया हुआ है? माता पिता ही का तो दिया हुआ है। माता पिता द्वारा पाये हुए शरीर से उनकी सेवा करने से पुत्र कृतज्ञ या सपूत जरूर कहलायेगा किन्तु उऋण हो गया है ऐसा कदापि नहीं कहा जा सकता।

निश्चय की बात अलग है। व्यवहार में उपाय किये जाते हैं। जिसका उपादान अच्छा होगा उसके लिए उपाय निमित्त बन जायेगा। मां बाप बच्चे की बहुत साल संभाल और दवा दारू करते हैं फिर भी कभी कभी पुत्र मर जाता है। डाक्टरों की दवा से कई लोग अच्छे हो जाते हैं और कई मर भी जाते हैं। कइयों पर डाक्टरी दवा असर नहीं करती और प्राकृतिक रीति से अच्छे हो जाते हैं। इससे हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि व्यवहार में दुःखमुक्त होने के लिए उपाय किये जाते हैं। जिसका उपादान कारण पक गया होगा उसके लिए बाह्य उपाय लागू हो जायेंगे।

जब तक व्यवहार में बैठे हैं तब तक व्यवहार को न भूलना चाहिये। स्त्री पुत्रादि तो नहीं छूटे हैं और माता पिता के लिए कहना कि वे दुःखमुक्त नहीं कर सकते अतः उनकी सेवा शुश्रूषा करना पाप है, नितान्त मूर्खता और अज्ञानता है। आज तो यह स्थिति देखने में आ रही हैः–

बेटा झगरत बाप से कर तिरिया से नेह,
बदाबदी से कहते हैं मौंहि जुदा करि देह।
मोहि जुदा करि देव चीज सब घर की मेरी,
केती करूं खराब अकल बिगरेगी तेरी।
कह गिरधर कविराय सुनो हो सज्जन मित्ता,
समय पलटतो जाय बाप सों झगरत बेटा।।

अब प्रश्न यह रह जाता है कि जब इतनी सेवा करने पर भी पुत्र माता पिता से ऋण मुक्त नहीं हो सकता तब ऋण मुक्त होने का कोई मार्ग है भी या नहीं। माता पिता आदि से ऋण मुक्त होने का मार्ग है और वह है उनको धर्म मार्ग पर लगाना। जिस उपादान कारण से तुम पिता पुत्र के संबंध से बंधे हो और जिससे प्रेरित होकर तुम्हारा पालन पोषण किया गया है उस उपादान कारण स्वरूप धर्म का बोध देने से ऋण मुक्त हो सकते हो। माता पिता को धर्म मार्ग में स्थिर करने से, उनको धर्म प्राप्ति का लाभ कराने से और उनके आत्म सुधार में मदद करने से पुत्र ऋण मुक्त हो सकता है।

सारांश यह है कि निश्चय दृष्टि से तो माता पिता पुत्र के और पुत्र माता पिता का नाथ होने मे असमर्थ है। किन्तु ऐसा वही कह सकता है जो

अनाथी मुनि की तरह बन चुका हो। जिसने अनाथी के समान संसार त्याग दिया है। जिसने अभी स्त्री बच्चों को तो त्यागा नहीं है केवल माता पिता की सेवा का त्याग करता है उसने धर्म का स्वरूप ही नहीं समझा है।

यह तो पुत्र का माता पिता के प्रति कर्त्तव्य बताया गया है। अब माता पिता का पुत्र के प्रति क्या कर्त्तव्य है, बताता हूं। माता पिता का कर्त्तव्य है कि वे पुत्र की सपूती कपूती का ख्याल न करके अपना फर्ज अदा करें। पुत्र का फर्ज पुत्र के पास रहा और माता पिता का फर्ज माता पिता के पास रहा। अगर एक अपना फर्ज अदा नहीं करता तो यह कदापि उचित नहीं है कि दूसरा भी अपना फर्ज अदा करना छोड़ दे। मां बाप अपने धर्म पर दृढ रहें। अगर बेल अच्छी होगी तो फल भी अच्छे होंगे। माता पिता संतान का सुधार कर सकते हैं और बिगाड़ भी। छः छः मास के बच्चों को बूट पहनाकर मां बाप प्रसन्न होते हैं, उन्हें फैशनेबल कपड़े पहनाकर शौकीन बना देते हैं। अगर माता पिता अपने पुत्र को धर्म मार्ग पर लगाने की कोशिश करते हैं तो वे अपना पूरा फर्ज अदा करते हैं। चरित्रः–

लिया नियम परघर जाने का जहां रहती हो नार।
निज घर रहकर धर्म अराधे शील शुद्ध आचार रे।।धन.।।
नृप आज्ञा से इन्द्र उत्सव को चले सभी पुर बार।
सज शृंगार चली नृपनारी कपिला उसके लार रे।।धन.।।

जब आत्मा जागृत होता है तब संसार के सब साधन जागृति प्रदान करने वाले हो जाते हैं। जैसे अन्न जल और वस्त्र पापी और धर्मी दोनों के उपयोग में आते हैं किन्तु पापी का पाप बढ़ाते हैं और धर्मी का धर्म। अपना आत्मा जब धर्म में लगा रहता है तब संसार का कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं है जो धर्म में मदद न देता हो। कपिला ने सुदर्शन को चरित्र से भ्रष्ट करना चाहा था किन्तु यही घटना सुदर्शन के लिए धर्म में और अधिक दृढ़ रहने में सहायिका बन गई। सुदर्शन ने परघर प्रवेश न करने का नियम इसी घटना के कारण ग्रहण किया है।

के काम पहले ही छोड़ बैठना कहां तक उचित हो सकता है। यह निरी मूर्खता और धर्म स्वरूप समझने की अज्ञानता है। इस मूर्खतापूर्ण समझ के कारण कई लोग जैनियों पर आक्षेप करते हैं कि जैनी लोग किसी काम के नहीं हैं। कई स्त्रियां जब दूसरे बीमारों की सेवा का अबवसर आता है तब कहती हैं हम इस झगड़े में नहीं पड़ना चाहतीं। जब अपने बाल–बच्चों की सेवा नहीं छोड़ी है तब दूसरों की सेवा को पाप समझ कर छोड़ बैठना अनुचित है। इस प्रकार की प्रवृत्ति से आपके साथ हम भी बदनाम होते हैं। यदि सुदर्शन केवल पर घर न जाने का नियम ले लेता और घर पर रह कर अपने आपको एकान्त ध र्म कार्य में न लगा देता तब तो उसके नियम का कोई महत्व न होता। किन्तु उसने धर्म क्रिया में रत रह कर घर जाना छोड़ा था।

बुरा लड़का अपने बर्ताव से माता पिता को भी गाली दिलाता है और उनका नाम बदनाम कराता है। इसी प्रकार आप लोगों के व्यवहार से लोग हम साधु लोगों को भी गाली देते हैं। अतः ऐसी बातों का ध्यान रखो।

सुदर्शन आत्म साधना के मार्ग में लगा हुआ है। अपना वास्तविक हित किस बात में है इसी खोज में वह प्रयत्नशील है।

चम्पा नगरी का राजा दधिवाहन था। पहले के राजा लोग प्रजा में उत्साह पैदा करने के अनेक प्रकार के उत्सव किया करते थे उनमें इस उत्सव को इन्द्रोत्सव कहते हैं। यह कार्तिक पूर्णिमा पर हुआ करता था। इसका दूसरा नाम कौमुदी उत्सव भी है। दधिवाहन राजा ने भी उत्सव करने की तैयारी कराई और नगर में घोषणा करवा दी कि कल इन्द्रोत्सव मनाया जायेगा। इसलिए कोई भी व्यक्ति नगर के भीतर न रहे। सब कोई नगर से बाहर जाकर उत्सव मनावें।

जो लोग धर्मात्मा थे और उत्सवादिक कार्य से उदासीन रहते थे वे भी राजाज्ञा का पालन करने के लिए नगर के बाहर चले गये और जिन्हें मनोविनोद और मौजमजा करने का हौंस था वे तो खुशी खुशी नगर के बाहर जा कर आनन्द मनाने लगे। कई लोग राजा के साथ साथ बाहर निकले और कई अपने अपने दोस्तों के साथ। कई शुद्ध मनोरंजन की भावना से चले और कई बुरी भावना लेकर भी चले। यह स्वाभाविक है कि विविध रुचि के लोग होते हैं। सब समान नही होते।

यहां राजकोट मे भी लोग मेले में जाया करते हैं। वे किस किस

भावना को लेकर जाते हैं 'यह तो वे स्वयं ही जानें। किन्तु इतना मैंने सुना है कि मेले में जुआ बहुत खेला जाता है। पुरुष लोग बहुत दांव लगाया करते हैं। और यह जानकर तो दिल को बड़ी चोट पहुंची कि स्त्रियां भी जुए में पैसे लगाती हैं। जुए को बुरा और पापप्रद मानने की भावना ही कम होती जा रही है। लोग सोचते हैं कि एक रुपये के दस रुपये मिल गये। किन्तु एक बार दस मिल जाते हैं, वे दस कई दस को अपने साथ लेकर चले जाते हैं। तथा जिसको रुपये मिल जाते हैं वह तो राजी हो जाता है और जिसके रुपये चले जाते हैं उस पर क्या बीतती है सो विचार करो। किसी की आत्मा को दुःखी बनाकर आया हुआ धन सुख कैसे पहुंचा सकता है। जुआड़ी अपना भला सोचता है, दूसरे का नहीं। यह बहुत बुरा व्यसन है। इसे जितना जल्दी त्यागा जायेगा उतना ही भला है।

दधिवाहन राजा की आज्ञानुसार सुदर्शन ने विचार किया कि इन तीन दिनों में मनोविनोद न करके आत्मविनोद करना चाहिए, मगर राजाज्ञा का ख्याल करना भी जरूरी है। अतः राजा के पास जाकर उत्सव के दिनों में विशेष धर्म जागरण करने की इजाजत ले लूं। यह सोचकर, वह राजा की सेवा में उपस्थित हुआ।

सुदर्शन को आया हुआ देखकर राजा ने उचित सत्कार किया और पूछा कि सेठजी! आपको यह तो ज्ञात हो ही गया होगा कि कल से तीन दिन का कौमुदी उत्सव मनाने के लिए नगर से बाहर रहना है। इस उत्सव का प्रबंध आपको जैसा उचित जंचे करिये। अपना धन स्वयं ही न भोगना चाहिए किन्तु दूसरों के उपयोग में भी आना चाहिए। यही सोचकर उत्सव का आयोजन किया गया है।

र्मकार्य में हमारा मन नहीं लगता। तुम्हें कोटि कोटि धन्यवाद है जो मन को मारकर ईश्वर की शरण में लगा रहे हो। अगर तुम्हारी इच्छा धर्मकार्य करने की है तो बड़ी खुशी से करो। पूछने की कोई आवश्यकता न थी। 'बिना पूछे राजाज्ञा का भंग होता अतः मैंने पूछना जरूरी समझा, सुदर्शन ने उत्तर दिया।

घर आकर सुदर्शन ने अपनी स्त्री पुत्रों से कहा कि तुम सब राजाज्ञानुसार उत्सव में जाना। मैं धर्म साधना में लगता हूं। सुदर्शन तीन दिन का तेला करके बैठ गया। स्त्री ने अपने घर के पोजिशन के अनुसार बच्चों को वस्त्र और आभूषण पहनाये तथा खुद ने भी पहने। रथ में सवार होकर नगर से बाहर निकली।

उधर राजा की रानी अभया भी उत्सव में भाग लेने के लिए नगर के बाहर आई है। आगे क्या होता है सो यथावसर बताया जायेगा।

राजकोट

12.8.36

आदर्श भ्रातृ–प्रेम

श्री आदीश्वर स्वामी हो, प्रणमूं सिर नामी तुम भणी,
प्रभु अन्तर्यामी आप। मो पर म्हेर करिज हो;
मेटीजे चिन्ता मनतणी, मारा काटो पुराकृत पाप।।श्री.।।

प्रार्थनाः– यह प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव स्वामी की प्रार्थना है। भगवान ऋषभदेव के ध्यान और स्तुति का हिन्दू समाज में बहुत बड़ा स्थान है। जैनधर्मावलम्बियों ने तो उनका महत्व वर्णन किया ही है किन्तु इतर धर्म वालों ने भी उनके संबंध में बहुत कुछ लिखा है। भगवान् ऋषभदेव ही एक ऐसे अवतार हैं जिनके झण्डे के नीचे हिन्दूमात्र एक होकर खड़े हो सकते हैं।

संसार में देखा जाता है कि जिसको बहुत मत मिलते हैं उसका महत्त्व भी बहुत है। चुनाव में जो बहुमत से चुना जाता है उसे सब मानते हैं। भगवान् ऋषभदेव ने अवतार ग्रहण करके अपनी अवस्था के बीस भाग कुंवर पद में, तिरसठ भाग जन कल्याण में तथा एक भाग–केवल ज्ञान केवल दर्शन प्राप्त करने के बाद मोक्षमार्ग दिखाने में व्यतीत किया था। इस भारत क्षेत्र में पुनः धर्म मार्ग की संथापना करने के कारण भगवान् हम से असंख्यकाल पहले होने पर भी हमारे निकट हों ऐसा मालूम देता है।

वेद व्यासजी ने भागवत पुराण में ऋषभदेव की प्रार्थना करते हुए कहा है–

नित्यानुभूति निजलाभ निवृत्त तृष्णः, श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धः।
लोकस्य यः करुणाभय ऽऽत्मलोक– माख्यन्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै।।

उस भगवान ऋषभदेव को नमस्कार है जिसने स्वयं तृष्णा रूपी समुद्र पार करके चिरकाल से मोहनिद्रा में सुषुप्त मानव समाज को जागृत किया और धर्म मार्ग में लगाया है। आत्मस्वरूप का बोध करके स्वयं ही

जिन्होंने तृष्णा और आशा की डोर को काट दिया था और फिर जनता को उपदेश दिया था। तृष्णा रहित भगवान को नमस्कार करने से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि हमें भी अपनी तृष्णा घटानी चाहिए। जब हमारा आदर्श ही तृष्णा रहित है तो हम तृष्णा बढ़ाने की कल्पना तक कैसे कर सकते हैं।

वेद व्यासजी अपना और पराया दोनों का कल्याण करने वाले ऋषभदेव को नमस्कार करते हैं। जो अपना कल्याण कर लेता है वह तो अच्छा ही है। किन्तु जो अपने कल्याण के साथ साथ जगत् जीवों को संसार सागर से पार लगाने की कोशिश करते हैं वे ही महान् उपकारी पुरुष हैं। अठारह क्रोडाक्रोडी सागर वर्षो से भोग भूमि हो जाने के कारण यह पृथ्वी धर्म शून्य हो रही थी–धर्म का विरह पड़ा हुआ था उसको मिटा कर उन्होंने राज्य व्यवस्था के उपरांत धर्म व्यवस्था की थी।

घोड़े की पूंछ लम्बी होती है मगर दूसरों के लिए वह क्या काम की? अधिक से अधिक वह अपनी मक्खियां उड़ा सकती है। गाय की पूंछ अपनी मक्खिया उड़ाने के सिवाय दूसरों की भी उड़ा सकती है। गाय की पूंछ के चंवर बनते हैं जिससे मनुष्य की मक्खियां भी उड़ाई जा सकती हैं। विशेषता पराये काम आने में है। भगवान् ऋषभदेव ने अपना भी कल्याण किया और दूसरों का भी इसलिए उनको वंदन नमस्कार किया गया है।

यदि सूर्य दूसरों को प्रकाश न दे और स्वयं ही प्रकाशित होता रहे तो कौन उसे सूर्य कहेगा। पानी दूसरों की प्यास न बुझाये और रोटी दूसरों की भूख न मिटाये तो आप उसे पानी और रोटी न कहेंगे। इसी प्रकार जो दूसरों की भलाई के कार्य नहीं करते केवल उदरम्भरी (पेट भरे) बने रहते हैं उनकी गणना महापुरुषों में नहीं हो सकती। जो पराये काम न आता है वह इन्सान ही क्या है। महापुरुष वही कहे जाते हैं जो परोपकार में अपने को खपा देते हैं।

कहने का सारांश यह है कि ऋषभदेव के लिए हमारी भावना ऊंची होनी चाहिए। केवल कहने मात्र के लिए भावना उच्च न होनी चाहिए किन्तु कर्त्तव्यरूप में भावना उच्च होनी चाहिए। भगवान् ऋषभदेव या अन्य जितने भी महापुरुष या अवतारी पुरुष हुए हैं वे इसी भूमि पर हुए हैं देवलोक में किसी अवतार ने जन्म लेकर जगदुद्धार नहीं किया है। अतः इसी पृथ्वी को सुन्दर बनाने की कोशिश करनी चाहिए। पृथ्वी को सुन्दर न बना सको तो अपने पड़ोसियों, ग्रामवासियों और आसपास वालों को तो कम से कम सदाचारी और धर्मनिष्ठ बनाने की कोशिश करो। जो स्वयं सुधरा हुआ होगा वही दूसरों का सुधार कर सकता है और उसी का असर भी हो सकता है।

पृथ्वी पर रहकर ही स्वपर का कल्याण किया जा सकता है। देवलोक में स्वतः ही सुख है। अतः वहां क्या प्रयत्न किया जाय। इस पृथ्वी पर अनेक लोग अनेक प्रकार के अभाव और अभियोगों से दुःखी हैं उनका दुःख दूर करने का प्रयत्न होना चाहिए। करुणा करने का स्थान पृथ्वी ही है। ऐसा न हो कि मेरा व्याख्यान सुनते हैं उतनी देर तक तो उत्साह और जोश बना रहे और बाहर गये कि सब खत्म। जैसे मेले के प्रारंभ में तो लोगों को उत्साह था और मेला पूरा हुआ कि उत्साह भी चला गया। ऐसा न हो। धर्म के कार्य में स्थायी उत्साह होना चाहिए। जो कभी मिटे ही नहीं।

कल से पर्यूषण पर्व का प्रारम्भ होता है। आप लोगों को इस पवित्र त्यौहार मनाने में बहुत उत्साह रखना चाहिए। यह पर्व लौकिक पर्वों की तरह मौज मजा करने के लिए नहीं है किन्तु आत्म साधना, धर्म जागरण और आत्मशोधन के लिए है। इस पर्व में पाप कार्यों से बचकर धर्मकरणी करने में जुट जाओ।

शास्त्रः– अब अनाथी मुनि की बात कहता हूं। राजा श्रेणिक अनाथी मुनि की अनाथता की बात सुनकर बहुत आश्चर्यान्वित हो रहा है। मुनि ने माता पिता के तरफ की अनाथता तो बता दी है अब भाई के तरफ की अनाथता भी बताते हैं।

भायरो में महाराय सगा जिठ्ठ कणिठ्ठगा।
नय दुक्खा विमोयन्ति एसा मज्झ अणाहया।।26।।

राजन्! मेरे छोटे और बड़े भाई भी थे। किन्तु वे भी मेरी वेदना मिटाने मे असमर्थ रहे। मेरे सहोदर भाई थे। वे नाम के भाई न थे किन्तु काम के भाई थे। जामणजाये भाई थे। मेरे लिए सब कुछ करने को उद्यत थे।

दुनिया में भाई को अच्छा भी माना जाता है और बुरा भी। अच्छा तो इसलिए माना जाता है कि वक्त पर वह काम आता है। कितना भी आपस में वैर विरोध हो किन्तु वक्त पड़ने पर रक्त का संबंध जागृत हो जाता है। जैसे महाराना प्रताप को लड़ाई से भागते हुए देखकर अभिमानी शक्तिसिंह का दिल मोम बनकर पिघल गया था और उनके चरणों में गिर पड़ा था। और बुरा इसलिए माना जाता है कि भाई हिस्सेदार बन कर जन्म लेता है। हर बात व वस्तु में अपना अधिकार दर्शाता है। अधिकार और संपति को लेकर आपस में सदा खटराग चलती रहती है। यदि उनकी स्त्रियां समझदार न हुई तो वे आग में घी का काम करती रहती है।

भी छीन लेता है। पहले एक ही लड़का होता है सो सारा प्रेम उसी एक पर केन्द्रित होता है। किन्तु जब दूसरा भाई पैदा हो जाता है तब प्रेम बंट जाता है। थोड़ा और बड़ा होने पर खाने पीने, पहनने ओढ़ने, खेल खिलौने आदि हर वस्तु में हिस्सा लेने लगता है। जब युवा हो जाता है तब पिता की सारी जायदाद में आधा हिस्सा बंटा लेता है। इसलिए भाई से बढ़कर कोई भी शत्रु नहीं है।

किन्तु राजन्! मेरे भाई ऐसे कमीने ख्याल के न थे। वे उदार दिल के व्यक्ति थे। मेरे भाइयों के लिए कहा जा सकता है कि वे रामलक्ष्मण और महावीर नंदी वर्धन की जोड़ी जैसे थे। वे अपने को संकट में डाल कर मुझे सुखी बनाने के लिए सदा तत्पर रहते थे।

जब रामचन्द्र को जंगल में जाने की नौबत आई तो उसमें कुछ कारण था। कैकेयी के वरदान की पूर्ति के लिए उनको वनवास जाना पड़ा था। किन्तु लक्ष्मण को वनवास जाने का क्या कारण था? जब उन्होंने राम के वनगमन की बात सुनी तो उनकी आंखें क्रोध से लाल हो गई, भुजायें फड़कने लगीं और पैरों से पृथ्वी को हिलाने लगे। उनका क्रोध देखकर लोग भय से कांपने लगे।

किन्तु जब रामचन्द्र ने कहा कि भाई! तुम मेरा गौरव बढ़ाना चाहते हो या घटाना? तब लक्ष्मण शान्त हो गये। विनीत स्वर में कहने लगे कि भाई, मैं आपकी आज्ञाओं का पालन करने के लिए सदा तत्पर हूं। किन्तु कृपा करके आपका साथ मुझ से न छुड़ाना। यह बात मुझ से सहन न होगी। मैं और कुछ नही चाहता। केवल आपके साथ रह कर आपकी सेवा करना चाहता हूं।

रामचन्द्र ने लक्ष्मण की बात सुनकर उत्तर दिया कि यदि तुम मेरे साथ जंगल में आ जाओगे तो माता पिता को कितना कष्ट होगा। तुम मेरे साथ चलने का आग्रह क्यों करते हो। क्या मुझे दुःख सहन करने में कायर समझते हो? तुम यहीं पर रहकर भाई भरत के राजकाज में सहायता करना।

यदि कोई आजकल का भाई होता तो अपने बड़े भाई के ऐसे शब्द सुनकर बड़ा राजी होता। अच्छा हुआ जो जंगल जाने का पिंड छूटा और कष्ट से बच गया। कहने को भी हो गया कि मैं जंगल में साथ आना चाहता हूं और कष्टों से भी बच गया। किन्तु लक्ष्मण ऐसा भाई न था जो मन में कुछ और रखता हो और ऊपर से कुछ अन्य प्रकार का व्यवहार करता हो। उसका राम के प्रति सच्चा प्रेम था।

लक्ष्मण ने कहा भाई! पिताजी की सेवा करने वाले यहां बहुत हैं। आप वन जावें और मै यहां रहूं यह कैसे उचित हो सकता है।

रामचन्द्र समझ गये कि यह मानने वाला नहीं है। यदि मैं आग्रह पूर्वक इसे यहां छोड जाऊंगा तो न मालूम यह अपने प्राण भी रखे या न रखे। रामचन्द्र ने कहा कि लक्ष्मण, तुम माता के पास जाकर इजाजत ले लो फिर मेरे साथ चलना। लक्ष्मण विचार में पड़ गये कि कहीं ऐसा न हो कि माता के पास जाऊं और वह पुत्र स्नेह के कारण वनगमन की आज्ञा न दे। हे भगवन्! मेरी माता को ऐसी सद्बुद्धि दीजिये कि वह मुझे राम के साथ वन जाने की इजाजत दे दे। लक्ष्मण अपनी माता सुमित्रा के पास गये। सुमित्रा को पुत्र स्नेह हुआ फिर भी उसने क्या उत्तर दिया था वह जैन रामायण में सुस्पष्ट अंकित है।

वत्स सुवत्स बुद्धि ताहरी, भलो मतो तुझ मांय।
तात राम करि लेखलो, कहे सुमित्रा माय।

सुमित्रा कहती है कि पुत्र लक्ष्मण! तुम्हारी बुद्धि अच्छी है और तुम्हारा मन भी भला है जो राम और सीता के साथ जाने की तेरी इच्छा हुई। तू रामचन्द्र को पिता के समान और सीता को माता के समान मानकर इनकी सेवा करना। इनको किसी प्रकार का कष्ट मत होने देना। मैं अपने को धन्य समझूंगी जब यह सूनूगी कि लक्ष्मण ने अपने भाई भौजाई की एक चित्त से सेवा की है। पुत्र! तेरे सद्भाग्य से ही राम वन को जा रहे हैं। महलों में रहकर माल मलिन्दा उड़ाने में भाग्य का उदय नहीं है किन्तु वन में जाकर अपने बडे भाई राम की सेवा करने में भाग्योदय है।

लक्ष्मण जैसा भाई और सुमित्रा जैसी माता का मिलना महान् पुण्य कर्मफल का उदय कहा जा सकता है। सुमित्रा के ये वचन सुनकर लक्ष्मण को कितना हर्ष हुआ होगा कि राम के साथ वनगमन करने में देरी मत करो। मानो भूखे को रोटी और प्यासे को पानी मिल गया हो। भक्ति मार्ग में स्वार्थ और विषय भावना नहीं होती। लक्ष्मण ने वन में रामचंद्र और सीता की किस लगन से सेवा की थी यह सबको सुविदित है।

मानने लग गया था तो आप भी अपने को अनाथ क्यों नहीं मानते! अपने नाथ आप स्वयं ही बनो। यदि आप अपने नाथ बन जाओगे तो सारा जगत आपका दास बन जायेगा। अनाथी मुनि अपनी आत्मा के नाथ बने तो श्रेणिक भी उनके चरणों में झुक पड़ा था। कोणिक राजा किसी समर्थ और बलवान की तलवार से भी किसी को मस्तक झुकाने वाला न था किन्तु अपनी आत्मा पर विजय करने वाले मुनि के चरणों में बड़ी खुशी और हर्ष से स्वयं ही झुक पड़ा। यह पर पदार्थ छोड़कर स्व स्वरूप में रमण करने की कला की विजय है।

आप लोग भी अपने को अनाथ मानकर सच्चे नाथ बनने की कोशिश करो। मैं यह नहीं कहता कि आप लोग आज ही सब धन दौलत और कुटुम्ब को त्यागकर साधु बन जावें। किन्तु आपके हृदय में यह लगन होनी चाहिए कि हम अनाथ हैं और हमें नाथ बनना है। ऐसी भावना रखने से कभी नाथ भी बन जायेंगे।

संसार में देखा जाता है कि जो निर्बल होता है उसी पर सब कोई सवार होने को तैयार रहते हैं। दुर्बल को दो आषाढ़। माता के सामने बलिदान करने के लिए बकरे को चुना जाता है। सिंह को कोई नहीं चुनता। बेचारा बकरा बलिदान के वक्त म्यां म्यां करता है। किन्तु सिंह की दहाड के सामने बलिदान करने वाले खड़े तक नहीं रहते, दूर भाग जाते है। आजकल स्वराज्य की मांग की जाती है, किन्तु निर्बलों की आवाज को कौन सुनता है। अतः मुनि का कथन ध्यान में लेकर आत्मबल बढाओ।

मै देखता हूं कि आप लोग प्रतिदिन मेरी बातें केवल सुनते ही रहते है आचरण में लाते हुए नही देखता हूं। आज इतने दिन व्याख्यान सुनते सुनते हो गये किन्तु अभी तक चर्बी के वस्त्र भी नहीं छूटे हैं। कई लोग कहते है कि हमसे खादी के मोटे वस्त्र पहने नहीं जाते है। स्त्रियां भी इतने महीने वस्त्र पहिनती है कि लाज और धर्म जावे तो भले जायं किन्तु उनकी फैशन और अमीरी न जानी चाहिए। मित्रों! ऐसी निर्बलता का त्याग करके अनाथी मुनि जैसे सबल बनो। चरित्रः–

अब मै चरित्र के द्वारा यह बताना चाहता हूं कि आत्मा को बलवान् कैसे बनाना चाहिए। चम्पा नगरी के सब नरनारी मनोविनोद और आनंद विहार करने के लिए नगर से बाहर गये हुए है। एक सुदर्शन है जो तीन दिन का उपवास करके अपनी आत्मा का निरीक्षण कर रहे हैं।

अनेक लोग ऐसे होते हैं जो कल्याणकारी दिनों को भी अकल्याण कर बना लेते हैं। बिस्तर पर बीमार अवस्था में पड़े हुए भी कहते रहते हैं–

हे भगवान्! एक बार चार दिनों के लिए चंगा हो जाता तो अमुक खेल या मेला देख आता। थोड़ी आयु और लम्बा जाय तो पौत्र का मुख देख लूं या अमुक काम पूरा कर लूं। मरते जीते अमुक कार्य तो पूरा कर डालूं। जन्माष्टमी और दीपमालिका जैसे पवित्र त्यौहारों को जुआ खेलने के लिए मानते हैं। इस प्रकार अच्छे दिनों का उपयोग बुरे काम करने में करते हैं।

चम्पा में भी यही हुआ। लोगों में कौमुदी उत्सव मनाने का बडा उत्साह है। बडी चहल पहल और रौनक हैं। राजा में भी बडा उत्साह है और सुदर्शन सेठ में भी। किंतु दोनों के उत्साह में वड़ा फर्क है। दोनों उत्साहों की आपस में लडाई होती है।

नृप आदेशे इन्द्र महोत्सवे, चले सभी पुर बार।
सज शृंगार चली नृप नारी, कपिला उनके लार रे।।धन.।।
पांच पुत्र संग मनोरमा भी, चली बैठ रथ मांय।
कपिला निरखी मन अति हरखी रानी को बतलाय रे।।धनं।।
सती सावित्री लक्ष्मी गौरी से अधिकी इन काय।
जिस घर नारी यह सुखकारी, शोभा वरणी न जाय रे।।धन.।।

भगवान् महावीर ने कहा है कि–

चउविहे समण संघे पण्णत्ते तं जहा समणाए समणिए सावयाए सावियाए य।

चार प्रकार के श्रमण संघ में साधु साध्वियों के सिवाय श्रावक–श्राविकाओं को भी स्थान दिया गया है। संघ को तीर्थ भी कहा गया है जो तीर्थ होता है वह कैसा तारक होता है और जगत् का कल्याण कारक होता है यह बात सुदर्शन के चरित्र से देखिये। सुदर्शन श्रावकतीर्थ है। वह तीर्थस्वरूप होकर बैठा है। तीर्थ के जिम्मे अपने को और दूसरों को तारने की भी जिम्मेदारी है। ऐसा होते हुए भी, कोई तीर्थ का नाम धराकर जुआ खेलता फिरे, पर स्त्री ताकता फिरे और इधर उधर भटकता फिरे तो उसे क्या कहा जाय। वह तीर्थ कैसा। भगवान् ने श्रावक भी चार प्रकार के बताये हैं।

चत्तारि समणोवासगा पन्नत्ता तंजहा–अद्दाग समाणा पडाग समाणा ठाण समाणा खरकंट समाणा।

लोग अपने को ऊपर से धार्मिक दिखाने की चेष्टा करते हैं जिससे बेचारे भोले लोग उन्हें धर्मनिष्ठ समझ कर उनकी ठगाई में फंस जाते हैं। किन्तु सच्चे श्रावक बाहर भीतर एक होते हैं। वे बिल्लोरी कांच के समान अत्यन्त स्वच्छ हृदय वाले होते हैं। हर व्यक्ति उनके आदर्श जीवन में अपना चरित्र देखकर सुधार सकता है।

ध्वजा के समान वे श्रावक हैं जो मौके मौके पर अपना रुख बदलते रहते हैं। जैसे ध्वजा जिस तरह की हवा होती है उसी तरफ उड़ती रहती है। वैसे ही कई श्रावक जैसा समय देखा वैसा करने लगते हैं। गंगा गये गंगादास और यमुना गये तो यमुनादास बन गये।

तीसरे ठूण्ठ के समान श्रावक होते हैं जिनको कितना भी समझाया जाय समझते नहीं। कितनी भी वर्षा हो लेकिन ठूण्ठ(स्थाणु) में पत्ते और फल फूल नहीं आ सकते हैं।

चौथे श्रावक जहरी कांटे के समान स्वयं भी नष्ट होते हैं और दूसरों को भी पीड़ा पहुंचाते हैं। चौथे प्रकार के श्रावक नामधारी व्यक्ति अपना भी अहित करते हैं और निष्कारण दूसरों का अनिष्ट करने के लिए सदा तत्पर रहते हैं। आप लोग किस कोटि के श्रावक बनना चाहते हो सो विचार करो।

सुदर्शन सेठ आरसी के समान श्रावक था। वह अपने विशुद्ध चरित्र में मुखपर कालिमा लगे हुए कितने लोगों को अपना मुख साफ करने की प्रेरणा देता है, कहा नहीं जा सकता। उसका चरित्र इतना निर्मल था कि दूसरों को अपना दोष उसके सामने स्पष्ट दिखाई देने लगता था।

मनोरमा को राजाज्ञा पालन करने की बात कह कर सुदर्शन स्वयं आत्मचिंतना करने बैठ गया। यद्यपि मनोरमा की इच्छा भी मेले में सम्मिलित होने की न थी किन्तु पति के व्यवहार की रक्षा और राजाज्ञा के पालन की जिम्मेवारी से प्रेरित होकर वह मेले में गई। अपने पांचों पुत्रों को रथ मे साथ बिठाकर यह सोचती हुई मनोरमा नगर से बाहर गई कि मुझे उत्सव नही देखना है केवल व्यवहार रखना है। इस प्रकार अनासक्त भाव से वह रानी के दरबार में पहुंची। बाहर राजा का दरबार लगा हुआ था, भीतर रानी का लगा था। पुरुष राजा के पास जाते थे और स्त्रियां रानी के पास।

मनोरमा को आते हुए देखकर रानी ने उचित सत्कार किया और कहा कि अच्छा हुआ जो आप आ गई। मनोरमा ने प्रत्युत्तर दिया कि मेरे पति देव तो लोक व्यवहार से परे होकर आत्म साधना में लग रहे हैं किन्तु मैं तो संसार के व्यवहार में बंधी हुई हूं अतः उसका पालन करना आवश्यक था।

इतने ही में कपिला सजधज कर वहां आ पहुंची। वह उत्सव में किसी दूसरे ही उद्देश्य से आई है। वह अपनी स्वाभाविक चंचलता दिखाती हुई रानी के पास आ गई। कपिला और मनोरमा दोनों ही उत्सव में आई हैं। ऊपर की नजर से देखने वालों को दोनों में कोई भेद मालूम नहीं होता। किन्तु सूक्ष्मता से देखने वाले स्पष्ट रूप से दोनों की आंखों में भेद देख सकते हैं। एक सिर्फ व्यवहार का पालन करने के लिए आई है उसके दिल में किसी प्रकार का कोई आकर्षण नहीं है। जबकि दूसरी अपने मन में अनेक अरमान ले कर आई है। यह युवकों की तरफ मन में आकर्षण ले कर आई है।

कपिला को आई देखकर रानी ने कहा—अच्छा, आप भी तशरीफ ले आई। आपकी आज्ञा का पालन किये बिना आपके राज्य में कैसे रह सकती हूं आना ही पड़ा, कपिला ने वापस उत्तर दिया। मैं तो याद ही कर रही थी कि पुरोहितानी जी आवें तो मेले में चलें। इस प्रकार दोनों ने वार्तालाप किया। किन्तु यह वार्तालाप दिखाऊ था। भीतर में दोनों के भाव और हैं।

रानी और कपिला दोनों एक ही रथ में सवार होकर उत्सव देखने के लिए निकलीं। मनोरमा भी अपने पुत्रों के साथ खुद के रथ में बैठकर पीछे पीछे चलने लगी। रानी और कपिला इधर उधर दृष्टिपात करती हुई चल रही हैं। किन्तु मनोरमा नीची नजर किये हुए मानो पति या परमेश्वर का ध्यान करती हुई चल रही थी।

कपिला ने मनोरमा को देखा। देखकर बारंबार उसी की तरफ ताकती जाती थी। रानी ने पूछा कि कपिला, बारंबार उधर क्या देखती हो! कपिला ने उत्तर दिया कि मैं इस स्त्री को देख रही हूं यह कैसी स्त्री है, इसे लक्ष्मी कहूं या सरस्वती? विधाता ने सारा रूप सौन्दर्य इसी में भर दिया है। और इसके ये पांचों पुत्र भी कितने सुन्दर हैं, देखते रहने की ही इच्छा होती है। रानी ने कहा—क्या तू नहीं जानती कि यह नगर सेठ की सेठानी है और ये पांचो लड़के इन्हीं के पुत्र हैं। क्या तुम इनको नहीं जानती? यह सुनकर कपिला ठहाका मारकर जोर से हंसने लगी। कपिला को हंसते देखकर चोसठ कला में कुशल रानी समझ गई कि जरूर इसके पेट में कोई बात छिपी है। इतने में कपिला ने कहना शुरू कर दिया कि यह खूब सती बनी है। लोग आपकी और मेरी निंदा किया करते हैं मगर इसकी पोल कोई नहीं जानता।

रानी ने पूछा—कपिला इतना क्यों हंसती है। आखिर हंसने का कोई कारण होना चाहिए। कपिला ने कहा—यों ही हंस रही हूं। रानी ने जिद्द कर ली कि हंसने का कारण बताना पड़ेगा। मुझसे भी बात छिपाती है। क्या तुझे मेरी पर्वाह नहीं है? मैं हंसी का कारण सुने बिना न रहूंगी।

कपिला ने सोचा कि मैंने सुदर्शन के सामने यह भेद न प्रकट करने की सौगन्ध ली है। किन्तु मेरी यह सौगन्ध वक्त पर काम निकालने के लिए थी। मैं मतलब की यार हूं, सौगन्ध या त्याग की नहीं।

कपिला ने धीरे से इशारे से बताया कि यह सेठानी सुन्दरी है और अपने को सती बताती है। किन्तु यह दुराचारिणी है। यही सोचकर मुझे हंसी आ गई थी। रानी ने कहा—कपिले! तू भूलती है। मैंने सेठानी को नजदीक से देखा है। इसकी आंखों में ब्रह्मचर्य का तेज है। इसमें कोई दोष मालूम नहीं देता। कपिला ने कहा—रानीजी, मैं नहीं भूलती, आप भूलती हैं। इसका पति नपुंसक है और ये पांचों पुत्र किसी परपुरुष के हैं।

रानी ने कहा—कपिला तू धोखा खा गई है। यह सेठानी सती है और इसका पति सुदर्शन भी पुरुषत्व से हीन नहीं है। कपिला ने कहा—इसके पति सुदर्शन ने स्वयं मुझसे कहा था कि मैं नपुंसक हूं। रानी समप गई कि इसने कभी सेठ को फांसने का प्रयत्न किया होगा और सेठ ने अपनी शील की रक्षा के खातिर ऐसा कह दिया होगा।

रानी ने कहा—कपिला, तू अपने को बहुत चतुर समझती है मगर वह बनिया तुझसे भी अधिक चतुर निकला जो तुझे बहका कर तेरे जाल से निकल गया। वह नपुंसक नहीं है, तुझे धोखा हुआ है। कपिला ने कहा—यदि ऐसी बात है तब तो सेठ बड़ा चतुर है। जो मेरे चक्र से बच गया वह किसी के चक्र मे नहीं फंस सकता। रानी ने कहा—ऐसी बात नहीं है। सारी होशियारी का ठेका तुम्हीं ने नहीं ले रखा है। दुनिया बहुत बडी है और उसमें कई हस्तियां मौजूद है। देख, मै कोशिश करती हूं। कैसे यह सेठ अपने जाल से बच सकता है।

इस प्रकार दोनो सखियां आपस में बातचीत कर रही हैं। आगे की बात यथावसर कही जायेगी।

राजकोट
13.8.36

आत्म साक्षी से निर्णय करो

श्री जिन अजित नमू जयकारी, तू देवन को देवजी,
जित शत्रु राजा ने विजया रानी को आतम जात त्वमेवजी।
श्री जिन अजित नमो जयकारी ।। 1 ।।

प्रार्थना – यह भगवान् अजितनाथ की प्रार्थना है। भगवान् अजितनाथ के नाम के विषय में भक्त लोग बहुत बड़ी कल्पनाएँ करते हैं। उनकी प्रार्थना में महापुरुष आनन्ददायी विचार देखते हैं। और उनसे बहुत बड़ी आशायें रखते हैं।

भगवान् की प्रार्थना में उनका एक विशेषण जयकारी भी है। अजितनाथ जयवन्त हैं। उन्होंने अपनी आत्मा में रहे हुए काम क्रोध लोभ मोह मत्सर आदि शत्रुओं को जीत लिया है जो शत्रु अनन्त काल से उनकी उन्नति में बाधक थे और कष्ट दिया करते थे।

भगवान् अपने अन्तरंग शत्रुओं को जीतकर स्वयं देवों के भी देव बन गये और जगत् जीवों के लिए भी देवाधिदेव बनने का मार्ग प्रशस्त बना गये। इसी मार्ग से अर्थात अन्तरंग शत्रुओं को जीतने से आत्मा का परम कल्याण हो सकता है। काम क्रोधादि दुर्गुण आत्मा में रहे हुए गुणों को दबा रहे हैं। आत्मा का दूसरा कोई शत्रु नहीं है। ये दुर्गुण ही वास्तविक शत्रु हैं।

आप लोग देवों की सेवा करने के लिए दौड़े जाते हो किन्तु यदि अपने भीतर में रहे हुए काम क्रोधादि शत्रुओं को जीत लोगे तो देव स्वयं आपके चरणों में गिरने के लिए तत्पर रहेंगे।

के देव न बनकर देवों के दास बन रहे हैं। देवों से भीख मांगते हैं, उनकी मिन्नतें मानते हैं।

बाहर के देवों के पास भटकते फिरते हैं किन्तु अपने भीतर अनन्त शक्तियां छिपी पड़ी हैं उनको प्रकट करने की कोशिश नहीं करते।

आज से पर्वाधिराज पर्युषण पर्व आरम्भ होता है। यह पर्व आत्मा में रहे हुए क्रोधादि शत्रुओं को जीतने के लिए है। अतः इन दिनों भगवान अजितनाथ को इस प्रकार भजो कि जिससे भीतरी शत्रुओं को जीत सको। केवल कहने में ही न रहो मगर कुछ करो भी। शास्त्र में कहा है –

वाया वीरियमित्तेणं समासासेन्ति अप्पयं।

यानी वाक्शूर न बनकर कर्मशूर बनो। केवल बड़ी–बड़ी बातें करके अपनी आत्मा को सन्तुष्ट न करो। बातों से काम नहीं चलेगा। क्रिया किये वगैर आत्मा का उद्धार नहीं हो सकता। एक भक्त कहता है–

पन्थड़ो निहारूंरे बीजा जिन तणारे अजित अजित गुणधाम।
जे ते जित्या तिणहूं जीतियो रे पुरुष किसो मुझ नाम।। पंथड़ो।।

हे प्रभो ! जिन क्रोधादि शत्रुओं को आपने जीत लिया है वे आप से हार खाकर मुझ पर हमला कर रहे हैं। जिस प्रकार हारा हुआ कुत्ता किसी बडे कुत्ते से पराजित होकर छोटे कुत्ते पर अपना बल आजमाता है और अपनी हार छिपाता है। उसी प्रकार आप से हार खाकर ये काम क्रोध और ईर्ष्या द्वेष मुझ पर हमला कर रहे हैं। मुझे जीतकर अपनी झेंप मिटाना चाहते हैं। प्रभो। मैं कैसा पुरुष हूँ कि तेरे से हारे हुए शत्रु मुझे जीतना चाहते हैं। मैं तेरा दास हूँ अतः मुझे भी हारना तो न चाहिए।

भगवन् ! मैं इस विषम काल में पैदा हुआ हूँ अतः विकारों को जीतना वडा कठिन मालूम होता है। दूसरी बात मेरे पास केवल चमड़े की आंखें हैं जो कभी–कभी धोखा भी दे दिया करती हैं।

चरम नयन करी मारग जोवतां रे, भूल्यो सगलो संसार।
जे नयन करी मारग जोइये रे नयन ते दिव्य विचार।।

हे अन्तर्यामी। चर्म चक्षुओं से मार्ग देखकर चलता हूँ अतः संसार में भटक रहा हूँ। चमडे की आंखों से देखी हुई वस्तु में वडा फर्क हो जाता है। जैसे किसी मैदान में खडे होकर देखने से पृथ्वी और आकाश मिले हुए मालूम देते हैं। किन्तु वास्तव में मिले हुए नहीं हैं। क्योंकि उतनी ही दूरी पर और जाकर देखेंगे तो भी मिले हुए मालूम देंगे। रेल्वे लाइन पर सीधे खडे होकर देखने से दोनों पटरियां बहुत दूरी पर एक मिली हुई मालूम देती हैं। रेल में

बैठे हुओं को किनारे के वृक्ष दौडते हुए नजर आते हैं। सपाट मैदान में पानी न होते हुए भी पानी जैसा मालूम पडता है। मृग मरीचिका ग्रंथो में प्रसिद्ध ही है। इस प्रकार इन आंखों से जो नहीं है वह भी दिखाई देता है और जो है वह भी नहीं दिखाई देता। इन्द्रिय जन्य ज्ञान प्रामाणिक नहीं है। कारण कि उसमें दोष होने की पूरी सम्भावना रहती है।

इस प्रकार की चमडे की आंखों से मैं भगवान् अजितनाथ का बताया हुआ मार्ग कैसे देखूं ? अंतरंग शत्रुओं को जीतने का उपाय चर्म चक्षुओं से देखा जाना संभव नहीं है।

उत्तराध्ययन सूत्रमें भगवान् महावीर ने गौतम स्वामी से कहा है–

न हु जिणे अज्ज दीसई बहुमयदिस्सई मग्गदेसिओं।
संपइ नेयाउयपहं समयं गोयम मा पमायए ।।

हे गौतम ! तू छद्मस्थ है। छद्मस्थ अपूर्ण ज्ञानी होता है अतः वह पूर्ण ज्ञानी को नहीं देख सकता। वह जिनपने को नहीं देख सकता। जिनत्व देखने के लिए दिव्य दृष्टि चाहिए। किन्तु गौतम तू चिन्ता मत कर। जिनत्व नहीं देख सकता किन्तु जिनेश्वरों का बताया हुआ मार्ग तो देख सकता है। उस मार्ग पर विचार कर कि वह सत्य है या नहीं। वह मार्ग स्याद्वाद से परिपूर्ण अनेकान्तिक मार्ग है। उस मार्ग को अपनाने से जिनत्व प्राप्त हो जाता है।

चार ज्ञान के धनी गौतम स्वामी के लिए भी जब जिनत्व अदृष्ट है तो हम किस गिनती में हैं अतः हमें उनके द्वारा बताया हुआ मार्ग अपनाना चाहिए। चमडे की आखों से नहीं किन्तु दिव्य विचार रूपी नेत्रों से उस मार्ग का विचार करना चाहिए। दिव्य नेत्रों से किसी बात को किस प्रकार देखना चाहिए इसके लिए एक किस्सा सुनाता हूं।

दिल्ली में बादशाह अकबर राज्य करता था। उसका दिवान हिन्दू था। हिन्दू दिवान को देखकर अन्य मुस्लिम कर्मचारी मन में कुढा करते थे कि यह नापाक हिन्दू हम लोगों में कैसे आ घुसा है। अकबर दिवान की बुद्धिमत्ता

एक बार ताजियों के त्यौहार पर बादशाह ने दिवान से कहा कि आज मैं अमुक औलिया के यहां रात्रि को जाने वाला हूँ। तुम को भी मेरे साथ चलना है और मेरी तरह ज़ियारत करनी होगी। यह सुनकर सब मुसलमान बहुत खुश हुए कि इस काफिर को बादशाह सलामत ने अच्छा हुक्म दिया है। या तो यह जाने से इन्कार कर देगा या जायगा तो ज़ियारत न करेगा। इसका हिन्दुत्व नष्ट होने का मौका आया है। देखते हैं क्या होता है।

बादशाह का हुक्म सुनकर वजीर ने कहा– अच्छी बात है। हजूर के साथ हाजिर हो जाऊंगा। घर आकर वजीर विचार में पड़ गया कि क्या करना चाहिए। न जाना भी ठीक न होगा और अपना धर्म छोड़ना भी ठीक नहीं है। वजीरी तो कभी भी मिल सकती है मगर धर्म का मिलना महा कठिन है। यह विचार कर उसे एक उपाय सूझ गया। जाना भी और इन लोगों को ऐसी शिक्षा देना कि आयन्दा के लिए ऐसी हरकत न करें और मुझे याद रखें।

उसने शहर के होशियार मोचियों को बुलाकर कहा कि मेरे लडके के लिए अच्छी से अच्छी एक जूता जोड़ी बनाकर लाओ। ऐसी जोड़ी लाओ कि जिसकी शानी की दूसरी जोड़ी न मिले सलमा सितारा और मोती आदि लगाकर लाना। रुपयों की चिन्ता मत करना। जितना कहोगे उतना मोल दिया जाएगा।

वजीर की आज्ञानुसार मोची एक बहुत बढिया और बहुमूल्य जोडा बनाकर लाये। जिसकी कीमत लाखों रुपया थी। वजीर बादशाह के साथ रात को ओलिया के स्थान पर हाजिर हो गया है। उसे देखकर मुसलमान फूले न समाते थे कि आखिर यह काफिर मुसलमान हो ही गया। उनकी बातें सुनकर वजीर मन ही मन प्रसन्न हो रहा था। उसने ओलिया के मकबरे पर फूल आदि जो चढाने थे चढाये और जाते वक्त धीरे से अपनी जेब मे से उस जोडे का एक जूता वहीं एक तरफ पटक दिया।

जब सब लोग चले गये और भीड मिट गई तब वहां के मुजावर की नजर उस बहुमूल्य जूते पर पडी। उसने दूसरे को दिखाया। दूसरे ने तीसरे को दिखाया और इस तरह होते होते यह बात फैल गई कि रात को कल की जियारत से खुश होकर औलिया साहब खुद तशरीफ लाये थे। वे जाते समय अपना एक जूता भूल गये है यही उनके आने की सबूत है। दूसरे का ऐसा जूता हो नही सकता और हो भी तो यहा कैसे आ सकता है।

एक ने कहा– हां जनाब, रात को औलिया साहब जरूर तशरीफ लाये थे मैंने खुद कब्र का गलेफ हिलते देखा था। दूसरे ने कहा– मैंने [illegible]

पेर हिलते देखा है। तीसरे ने कहा– मैंने उनके हाथ देखे हैं। इस प्रकार गपगोला बढ़ता गया। और बात पक्की हो गई। सबूत में एक जूता था ही।

मुजावर लोग उस जूते को सोने की थाली में रखकर गाजे बाजे के साथ बादशाह की सेवा में लाये। क्योंकि ऐसी दिव्य चीज बादशाह के यहीं शोभा दे सकती है।

बादशाह ने पूछा– यह क्या लाये हो ? तब मुजावर ने सारा किस्सा सुना दिया कि आपके साथ वजीर साहब भी तशरीफ लाये थे। उनकी जियारत से प्रसन्न होकर रात को औलिया खुद आये थे। सबूत में यह जूता पेश है। वे एक जूता वहीं छोड़कर चले गये थे। बादशाह ने सोचा अभी ये लोग जुनून में चढे हुए है। यदि मैं भी इनके जैसा न बनूंगा तो ये लोग कुछ कर बैठेंगे। इसलिए बादशाह ने जूते का सत्कार किया और उसे तख्त पर रख दिया। तथा उसके सामने लोबान आदि जो कुछ खेना था खेया।

इतने में वजीर भी वहां आ पहुँचा। बादशाह ने कहा कि वजीर ! तेरी जियारत से खुश होकर रात को औलिया साहब स्वयं तशरीफ लाये थे और जाते वक्त अपना एक जूता वहीं पर छोड़ गये थे। वही यह जूता है। तू भी उसको सलाम कर।

वजीर ने उत्तर दिया– हजूर ! यह क्या निश्चय कि यह जूता औलिया साहब का ही है। किसी दूसरे शैतान का भी हो सकता है। मैं तो आपको सलाम कर सकता हूं। इसको सलाम नहीं करना चाहता।

बादशाह ने वह सारी हकीकत कह सुनाई जो जूते के सम्बन्ध में हुई थी। किस तरह किसी ने औलिया साहब का पेर देखा था और किसी ने हाथ आदि।

जोड़ का है न ? तब झेंप खाकर सब लोग कहने लगे कि हुजूर ! यह काफिर दरगाह शरीफ में आया ही क्यों था। बादशाह ने कहा कि यह मेरे हुक्म से आया था इसमें इसका कोई गुनाह नहीं है। मगर तुम लोग कैसे मूर्ख हो जो इस प्रकार बात का बतंगड़ बनाकर जूते का जुलूस निकाल कर लाये और मुझ को भी शर्मिन्दा बनाया।

वजीर ने अपनी सफाई पेश कर दी कि मेरे साथ मेरा लड़का भी आया था वह जाते वक्त जल्दी में अपना एक जूता वहीं पर भूल गया। मैंने हजूर को यह बात कहना इसलिए वाजिब न समझा कि पहली बार ही मैं दरगाह में आया था। और जूते चोरी की बात कहता तो हजूर को मेरा एतबार न होता।

मित्रों ! किसी बात का पूरा निर्णय किये बिना केवल अफवाह का शिकार होकर उसे मान लेना कितनी लज्जाजनक बात होती है, यह ऊपर के किस्से से रोशन है।

कहने का मतलब यह है कि लोग वस्तुतत्त्व का निर्णय नहीं करते और भेड़िया धसान की तरह प्रवाह में बह जाते हैं। मैंने रतलाम में भोपा लोगों को धुनते हुए देखा है। वे धुनते–धुनते तालाब पर जाते हैं और ज्यों ही तालाब के गंदे पानी के छींटे उन पर गिरे कि उनका देवता न मालूम कहां हवा हो जाता है। तालाब भी कैसा कि जिसमें स्त्रियां और बच्चे आदि नहाते और गन्दगी फैलाते हैं। कहिये देवता बड़े हुए या तालाब का गन्दा पानी ? यह सब धतिंग देखकर मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि लोग ढोंग बहुत करते हैं।

चर्मचक्षुओं से देखी हुई बात में भी इतना फर्क पड़ जाता है तो बिना देखी हुई, केवल सुनी सुनाई बात में कितना अंतर पड़ सकता है ? अतः दुनिया का बाहरी दिखावा देखकर न स्वयं भूलो और न दूसरों को भुलावे में डालो।

वजीर का कथन सुनकर सब लोग कहने लगे– क्या हम जूते को सलाम करने वाले हैं ? वजीर ने कहा नहीं, आप लोग जूते को सलाम करने वाले नहीं हो किन्तु अपनी भूल को सलाम करने वाले हो। आप लोगों से ऐसी अनेक भूलें हुवा करती हैं। अतः आयन्दा सावधानी रखने की जरूरत है।

वजीर की नसीहत भरी बात सुनकर बादशाह तथा दूसरे सब लोग बहुत खुश हो गये।

यह बात हुई हो या न हुई हो इससे हमें कोई प्रयोजन नहीं है। मेरे कहने का भावार्थ यह है कि किसी वस्तु का निर्णय बहुत सावधानी और दिव्य नेत्रों से करना चाहिए। किसी के कहने मात्र से न मानना चाहिए।

भगवान् महावीर गौतम स्वामी से कहते हैं कि केवली ही केवली को देख सकता है। दूसरा छद्मस्थ व्यक्ति नहीं देख सकता। फिर केवली को कैसे जानना चाहिए इसका उत्तर यही है कि केवलीनिर्मित शास्त्रों के द्वारा उसका स्वरूप समझना चाहिए। यदि कोई यह कहे कि हम न संस्कृत जानते न प्राकृत, तो शास्त्रों को कैसे समझ सकते हैं। जब शास्त्र नहीं जानते तो किसी के पीछे चलने का मार्ग ही हमारे लिए शेष रह जाता है।

किन्तु भगवान् कहते हैं कि किसी बात का निर्णय करने के लिए बहुत दूर जाने की जरूरत नहीं है। अपनी आत्मा से ही निर्णय कर लो। वह तुमको अच्छी से अच्छी सलाह देगी। वह आपको सच्चा मार्ग बतायेगी। जो बात आत्मसाक्षी से ठीक ठहरे उसे मानना चाहिए और जो आत्मसाक्षी से ठीक न उतरे उसे न मानना चाहिए। आत्मा के कांटे में बात को तौलकर निर्णय कर लेना चाहिए। कहा है :–

प्रत्याख्याने च दाने च सुखदुःखे प्रियाप्रिये।,
आत्मौपम्येन पुरुषः प्रामाण्यमधिगच्छति।।

आप में आत्मा है। आप ऊंचे से ऊंचे प्राणी हो। फारसी भाषा में कहावत है कि इन्सान कुदरत का बादशाह है। आपका इतना ऊंचा पद है। यह पद आपको केवल हाथ पांव और कान नाक के कारण नहीं मिला हुआ है। आपके शरीर के समान शरीर का ढांचा तो बन्दर का भी है। बल्कि एक पूछ और अधिक है। फिर भी बन्दर मनुष्य नहीं कहलाता क्योंकि उसमें आत्मसाक्षी से सत्यासत्य निर्णय करने की शक्ति नहीं है। मैंने महामना प. मदनमोहन मालवीय के एक भाषण में पढ़ा है कि यदि मनुष्य अपनी आत्मा को न भूले तो उसमें वे सभी गुण मौजूद हैं जो एक महापुरुष होने के लिए आवश्यक होते हैं।

यह मनुष्य शरीर मोक्ष का द्वार है। इस शरीर में रहने वाले सब जीव मोक्ष के अधिकारी हैं। आप में विवेक है। हिताहित का निर्णय करने वाला ज्ञान विवेक कहा जाता है। इस विवेक के द्वारा प्रत्येक बात को तोलो और तोलकर आचरण करो।

नहीं। और यदि क्रोध है तो उसका त्याग है या नहीं। यदि आप सदा के लिए क्रोध का त्याग नहीं कर सकते तो कम से कम इन आठ दिनों के लिए तो जरूर त्याग करो। ये आठ दिन आपकी परीक्षा के लिए हैं। आपको क्रोध आता है या नहीं और यदि आता है तो आप उस पर काबू रख सकते हैं या नहीं इस बात का इम्तिहान है। आपको इस परीक्षा में उत्तीर्ण होना है। क्रोध स्वभाव का दोष है। इस दोष को अपने ऊपर हावी न होने देना चाहिए। और कम से कम क्रोध का रूप हाथापाई और गाली गलौच तक न पहुंचने देना चाहिए।

अब इस बात का विचार करें कि क्रोध का प्रत्याख्यान त्याग आपकी आत्मा को कैसा लगता है। यदि आप पर कोई क्रोध करे तो आपको उसका क्रोध अच्छा लगेगा या नहीं ? यदि आपको कोई गाली देता है तो गाली देनेवाला कैसा लगेगा ? आपको न क्रोध अच्छा लगेगा और न गाली सुनना ही। इस बात का निर्णय आपने स्वयं ही कर लिया कि क्रोध और गाली बुरी चीज है। जो बात आपके लिए बुरी है वह बात दूसरों के लिए भी बुरी होगी इसमें आपको क्या संदेह रहा ? यह तो मानी हुई बात है कि जिस प्रकार का बर्ताव हम अपने लिए पसन्द नहीं करते वैसा बर्ताव दूसरों के साथ भी न करे। यह प्रत्याख्यान आत्मौपम्य हुआ।

किसी के द्वारा हम पर चिढ़ना, क्रोध करना या गाली देना हमें पसन्द नही है तो इसमें से यह फलितार्थ निकला कि ये काम बुरे हैं। और चूंकि जैसी हमारी आत्मा है वैसी ही दूसरे की आत्मा भी है। जो बात हम अपने लिए अच्छी नहीं समझते वह बात दूसरों के लिए कैसे कर सकते है। यह आत्म प्रमाण है। आत्मा की गवाही से यह सिद्ध हुआ कि दूसरों को कष्ट पहुंचाने जैसा बर्ताव करना बुरी बात है। कम से कम पर्युषण के पवित्र दिनों के लिए तो इस बात का नियम लो कि हम दूसरों पर गुस्सा न करेंगे।

आठ दिनों के लिए यदि ज्यादा न कर सको तो इतना तो करो कि क्रोध को सफल न होने दो, शीलव्रत का पालन करो, रात्रि भोजन न करो, आरम्भ समारम्भ, मकान बनवानादि कार्य मत करो, किसी के साथ विश्वास घात मत करो, झूठ न बोलो, बिना छना पानी न पीओ और न बिना छने पानी से स्नान करो।

हां, ऐसे भी प्रत्याख्यान होते हैं जिनको ग्रहण करने से हानि होती है। ऐसे प्रत्याख्यानों मे आत्मा की साक्षी नहीं होती। आत्मा उस चीज को कबूल नही करती। जैसे किसी ने यह नियम ले लिया कि अमुक तीर्थ में जाकर बकरे की बलि चढाऊंगा। किन्तु यह प्रत्याख्यान हमारी प्रकृति से मेल नहीं खाता। क्योंकि यदि कोई हमारा खुद का बलिदान करने की बात कहे तो सुनते ही हम घबरा जायेंगे। बलिदान *का बकरा क्या कहता है सो सुनिये–*

कहे पशु दीन सुन यज्ञके करैया मोहे,
होमत हुताशन में कौन सी बड़ाई है।
स्वर्ग सुख मैं न चहूं देही मुझे यों न कहे,
घास खाय रहूं मेरे यही मन भाई है।
जो तुम यह जानत हो वेद यों बखानत है,
यज्ञ जल्यो जीव पावे स्वर्ग सुखदाई है।
डारे क्यों न वीर या में अपने ही कुटुम्ब को,
मोहे जो जलावे जगदीश की दुहाई है।

यदि पशु से कहा जावे कि मैं तुझे देवता के अर्पण करके तेरा कल्याण करता हू, तुझे स्वर्ग मिलेगा तो पशु क्या कहेगा। यही कि मैं घास पात खाकर यहीं रहना पसन्द करता हू मुझे स्वर्ग नहीं चाहिए। यदि ऐसा करने से स्वर्ग मिलता है तो अपने कुटुम्ब का बलिदान करके उसे स्वर्ग पहुचा दे।

अब यह बात अपनी आत्मा से तौलो। यदि कोई आपसे कहता है कि हम तुमको स्वर्ग में पहुचाने के लिए तुम्हारा बलिदान करना चाहते है तो आप क्या उत्तर देंगे ? कम से कम आप अपना बलिदान देना कभी न चाहेंगे। इस बात का निर्णय आपने आत्मप्रमाण से किया है। आत्मा की साक्षी से ही ऐसा कहा है। यह आत्मसाक्षी से प्रत्याख्यान को जानना हुआ।

अब आत्मसाक्षी से दान की बात कहता हू। दान को आत्मसाक्षी से देखो। यदि आत्मा के प्रामाण्य से दूसरों पर दान की प्रामाणिकता घटायेंगे तो कभी भूल न होगी। शास्त्र में कहा है–*दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं*

छुड़ाना अधिक पसन्द करेंगे क्योंकि जीवन ही न रहे तो राज्य किस काम का! आपका यह कथन आत्मा की साक्षी से ही हुआ न? अपने पर से दूसरों के लिए भी सोचो कि मुझे सब जीवों को अभयदान देना है। ये आठ दिन विशेषरूप से अभयदान देने के लिए हैं।

इस प्रकार प्रिय अप्रिय और सुख दुःख के लिए भी समझो। जो बात आपको प्रिय लगेगी वही दूसरे को भी लगेगी। जिस प्रकार आपको सुख प्यारा है और दुःख खारा है उसी तरह सब को सुख प्यारा और दुःख खारा है। ऐसा समझकर यह भावना करो कि हे भगवान् ! मैं अपने दुख तो सहन कर लूं मगर पराया दुःख कभी सहन न करूं। अपने को दुःख में डालकर भी पराये का दुःख दूर करने की चेष्टा करूं। दूसरे को कभी दुःख न दूं। यही अहिंसा है। यह अहिंसा धर्मशास्त्र से नहीं निकली है मगर आत्म शास्त्र में से निकली है।

यदि एक आदमी दो सूइयां लेकर एक अपने पैर में चुभोता है और दूसरी किसी दूसरे व्यक्ति के पैर में चुभोता है तब उसे पता लगता है कि जैसी पीड़ा मुझे होती है वैसी ही पीड़ा दूसरे को भी होती है। मगर लोग अपनी पीड़ा तो याद रखते हैं किन्तु दूसरों की भूल जाते हैं। दूसरों की पीड़ा का ख्याल नहीं रखते। दूसरों को पीड़ा पहुंचाते वक्त आत्मसाक्षी की बात याद नहीं रखते। केवल अपना ही सुख देखते हैं। अपने ऐश आराम और मौज मजा को देखते हैं। किन्तु उनके पीछे कितने व्यक्तियों व जीवों को कष्ट पहुंच रहा है इस पर तनिक भी ख्याल नहीं करते। धर्म करने की इच्छा वाले को दूसरे के दुःख का ख्याल करना नितान्त आवश्यक है।

आपके घर मेहमान आये हैं। आपने बढ़िया रसोई बनाने का हुक्म दिया है। आपकी पत्नी रसोई बनाकर चख लेती है और निर्णय कर लेती है कि जो चीज मुझे अच्छी लगी है वह मेहमान को भी अच्छी लगेगी। इसमें यह सोचने की बात है कि उस बाई ने किस आधार पर यह निर्णय किया कि मेहमान को रसोई पसन्द आ जायेगी। अपनी आत्मा की साक्षी से ही बाई ने नक्की किया कि मेहमान को मेरी बनाई रसोई रुच जायगी।

भोजन के विषय तक तो यह नियम याद रहता है। किन्तु यदि यही नियम सास ससुर देवर जेठ देवरानी जेठानी और बहू के साथ वर्ताव करते वक्त भी याद रखा जावे तो कितना अच्छा हो। यदि यह नियम याद रखा जाय तो पिता पुत्र, पतिपत्नी, सासबहू, देवरानी जेठानी और भाई भाई आदि में कलहादि उत्पन्न होने का कभी प्रसंग ही न आवे।

मित्रों ! आत्मसाक्षी के प्रमाण को याद न रखने से संवत्सरी पर्व होने पर भी लोग उनसे खतम खमावणा नही करते जिनसे उनका वैर विरोध रहा है। पृथ्वी, पानी, वायु और अग्नि के जीवों को खमायेंगे, वनस्पति और त्रस जीवों को खमायेंगे, नरक निगोद और तिर्यंच तथा देवों को भी खमायेंगे। मगर जिन मनुष्यों या कुटुम्बियों से वैर विरोध है उनको न खमायेंगे उनसे अपने अपराध की क्षमा याचना न करेंगे। यह खमत खमावणा नहीं है किन्तु क्षमापना की मजाक करना है। अतः अपनी आत्मा के समान सब के सुख दुःख को समझ कर वैसा ही बर्ताव करो जैसा तुम चाहते हो कि दूसरे तुम्हारे साथ करें। यही धर्म का रहस्य है।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्

यदि हम को गाली सुनना पसन्द नहीं है, अपमानित होना और हिकारत की दृष्टि से देखा जाना पसंद नहीं है, लातें घूंसे और थप्पड खाना अच्छा नहीं लगता है, हमारे घर की कोई वस्तु चोरी में चली जाना बर्दाश्त नहीं है, हमारी बहिन बेटी की इज्जत खराब होते नहीं देख सकते तो हमारा फर्ज है कि हम अपनी तरफ से दूसरों के प्रति ऐसे बर्ताव न करें। कम से कम पर्युषण तक के लिए यह बात अवश्य ध्यान रखो।

चरित्र –

कैसे जाना हाल सुनाओ, कही बितक सब बात।
रानी बोली मतिमन्द तोरी, छली सुदर्शन तात रे।। धन.।।
छलकर तुझको छला सुघड़ ने तू नहीं पाई
भेद। त्रियाचरित्र का भेद न समझे व्यर्थ हुवा तुझ खेद रे।। ध.।।
मुझसे जो नहीं छला जायगा वह नर सबसे शूर।
सुर असुर नागेन्द्र नारि से टले न उसका नूर रे।। धन.।।

कपिला के छल में सुदर्शन नहीं फंसा। वह उसके साथ चरित्र से भ्रष्ट नहीं हुआ। उसने कपिला को ऐसा भाव बताया कि कपिला ने स्वयमेव उसको अपने घर से धिक्कार पूर्वक विदा कर दिया। उस बीती घटना की बात

उसका एकमात्र ध्येय ऐश आराम और मौज मजा उड़ाना है। वह जीवन की सफलता विषय वासना की पूर्ति में मानती है।

कपिला सोचती है – जीवन जो मिला है वह आनन्द लूटने के लिए है। न मालूम अपने को समझदार मानने वाले लोग क्यों इन्द्रिय सुख की निन्दा किया करते हैं। लोग निन्दा करते हैं इसी भय से ये काम छिपा कर करने पड़ते हैं।

कपिला का कथन सुनकर रानी कहने लगी कि तू मूर्ख है। यह स्त्री बहुत धर्मात्मा है और सती है। तू जिस प्रकार शरीर पाने का अर्थ मौज उड़ाना करती है उस प्रकार दूसरे नहीं करते। मनोरमा और उसके पति सेठ सुदर्शन जीवन की सार्थकता इन्द्रियों को काबू में करने में मानते हैं।

बुरा कार्य करने वाले लोग भला काम करने वालों को अच्छा नहीं समझते। वे अपने को ही अच्छा मानते हैं। बीड़ी पीने वाले लोग बीड़ी न पीने वालों को मूर्ख समझते हैं। वे यह नहीं सोचते कि मूर्ख हम हैं जो बीड़ी पीते हैं। उत्तम मनुष्य शरीर को इस गन्दी चीज के लिए खो देना कहां तक उचित है। कई लोग अपने कुल संस्कार को छोड़ कर शराब को लाल शर्बत कह कर पी जाते हैं और जो न पीते हैं उनकी निन्दा करते हैं। कई लोग दुराचार सेवन करके उसकी सराहना किया करते हैं। किन्तु दुराचार का सेवन कितने अनर्थ का कारण बनता है, कुछ कहा नहीं जाता।

अभी इन्हीं दिनों में आपके यहीं राजकोट की एक दु.खद घटना विश्वस्त रूप से सुनने में आई है। एक स्त्री का सम्बन्ध अपने यहां झाडने के लिए आने वाले भंगी के साथ हो गया। एक दिन उसके चौदह पन्द्रह साल के लडके ने अपनी माता को भंगी के साथ व्यभिचार सेवन करते हुए प्रत्यक्ष अपनी आखों देख लिया। लडका पढ़ा लिखा और होशियार था। किन्तु उसकी मां दुराचार में इतनी अंधी हो गई थी कि परदेश गये हुए अपने पति को भी भूल गई और घर में रहने वाले पुत्र का खयाल भी न कर सकी। अकस्मात् एक दिन लड़का बाहर से घर मे आ गया और अपनी माता का भंगी के साथ ससर्ग देख लिया।

दैवयोग से उसी दिन उसका पति भी परदेश से आ गया। आते ही अपने पुत्र के सम्बन्ध में पूछा कि लडका कहां गया है। उसने उत्तर दे दिया कि कहीं बाहर गया है अभी आ जाएगा। आप भोजन करिये। बाप ने कहा—बेटा आ जायगा फिर भोजन कर लूंगा जल्दी क्या है। किन्तु स्त्री ने बहुत आग्रह करके पति को भोजन करने के लिए बैठा दिया।

पाप छिपाया न छिपे छिपे तो मोटा भाग।
दाबी दूबी न रहे रूई लपेटी आग।।

पाप को छिपाने के लिए कितनी ही कोशिशें की जाय किन्तु वह कभी न कभी प्रकट हो ही जाता है। जब उस स्त्री का पति भोजन कर रहा था कि छत में से खून की बून्दें उसके कमीज पर गिरीं। खून की बून्दें देखकर पति ने पूछा कि ऊपर से खून क्यों टपक रहा है ? स्त्री ने कहा —बिल्ली ने चूहा मार दिया होगा। मगर बूंदे बहुत गिरने लगीं तब वह पुरुष मेड़े पर गया और वह गठरी पडी हुई पाई। पति को मेड़े पर जाते देखकर स्त्री बाहर का दरवाजा बन्द करके पुलिस में दौडी गई और रिपोर्ट कर दी कि मेरे पति ने मेरे पुत्र को मार डाला है। पुलिस आई और लडके के बाप को पकड लिया। आखिर में सब भेद खुल गया और स्त्री तथा भंगी को सजा हुई।

यह दुराचार का ही परिणाम था कि माता ने अपने पुत्र तक को मार डाला। अधिक चटक मटक से रहने से भी दुराचार में वृद्धि होती है। चरित्र की रक्षा करनी हो तो सादगी को अपनाना चाहिए।

कपिला से अभया रानी कहती है कि संसार का यह नियम है कि बुरा आदमी बुरे आदमियों की प्रशंसा किया करता है और अच्छे आदमियों की निन्दा। तू सेठ की निन्दा करती है और उसे हींजडा बताती है। मगर तू छली गई है। तेरी सब होशियारी धूल में मिल गई है। सेठ नपुंसक नहीं है। तू सेठ के पुत्रों को ध्यान से देख कि उनकी शकल सेठ से मिलती है या नहीं। मेरे ख्याल से तो ये लडके सुदर्शन के ही अनुरूप हैं।

अभया के कथनानुसार कपिला ने गौर से पांचों लडकों को देखा। देखकर कहने लगी कि ये लडके तो ऐसे मालूम देते हैं। जैसे सेठ स्वयं अपने पांच रूप धारण करके बैठे हैं। मुझे सेठ ने झूठ बात क्यों कही। कपिला ने कहा—मेरे माया जाल से छूटने के लिए ही सेठ ने झूठ बोलकर अपना पिण्ड छुड़ाया मालूम पड़ता है। कपिला ! तू अपने को त्रियाचरित्र में बहुत प्रवीण समझती है। किन्तु तेरे धोखा खा जाने से मालूम हो गया कि अभी तू त्रिया चरित्र में पूर्ण कुशल नहीं है। रानी के वचन सुनकर कपिला कहने लगी कि

जो सुदर्शन मेरे जाल से भी छूट निकला है तो वह किसी अप्सरा या देवांगना से भी छला जाने में समर्थ नहीं है।

कपिला की यह अभिमान भरी बात सुनकर अभया कहने लगी कि तू अपनी हार क्यों नहीं मान लेती। तू अपने लिए ही यह क्यों न कहती कि मैं त्रिया चरित्र में पूरी होशियार नहीं हूं। त्रिया चरित्र को जानने वाली तो इन्द्र और मुनियों को भी डिगा सकती है।

तिरया चरित्र बहुत गजब कर डालता है। इसीलिए शास्त्रकारों ने ब्रह्मचर्य की नव वाड़ में स्त्रियों के परिचय से पुरुष को रोका है। शास्त्र में कहा है कि सौ वर्ष की बुढ़िया जिसके नाक कान कटे हुए हों यदि किसी मकान में हो तो ब्रह्मचारी को उसके साथ अकेला नहीं रहना चाहिए यह कभी मन में अभिमान न लाना चाहिये कि मैं इन्द्रियों का दमन करने वाला हूं अतः मेरा क्या नुकसान हो सकता है। मन है, इसे बदलने में देरी नहीं लगती। शास्त्रकारों ने जो नियम बनाये हैं वे निष्कारण नहीं बनाये हैं। जो घटना होना शक्य होती है उसी को टालने के नियम बनाये हैं। अतः स्त्री संसर्ग से बचके रहना ही अच्छा है। सुदर्शन इस बात को समझ गया था अतः एकान्त में रहकर धर्म ध्यान करने लगा।

श्री आचारांग सूत्र की टीका में जिक्र है कि एक बार एक केवली के शिष्यों को जंगल में प्यास लगी थी। मार्ग में एक अचित्त जल का जलाशय आ गया। अचित्त पानी का तालाब भी हो सकता है। केवली ने फरमाया कि यद्यपि इस तालाब का पानी अचित्त है फिर भी मैं तुम लोगों को यह पानी पीने की आज्ञा नहीं दे सकता। कारण कि मैं तो केवल ज्ञान के जरिये यह जानता हूं कि यह पानी अचित्त है। किन्तु जो लोप पूर्ण ज्ञानी नही है वे भी अगर तालाबों का पानी पीने लग जायेगे तो अनर्थ हो सकता है। अतः व्यवहार का पालन करना बहुत जरूरी है। केवली हो जाने पर भी व्यवहार नही छोड़ते। इसी प्रकार यदि किसी ने इन्द्रिय दमन कर भी लिया हो तो भी व्यवहार पालन के खातिर स्त्री संसर्ग से दूर रहना चाहिए।

त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं, दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः।

कपिला ने कहा– ऐसे ऐसे महापुरुष भी हैं जिनको वश में करना स्त्रियों के बूते की बात नहीं है। उन पर त्रिया चरित्र नहीं चल सकता।

अभया बोली– ऐसा एक भी मर्द नहीं हो सकता जो त्रिया चरित्र के कारण स्त्रियों का दास न बनाया जा सके।

कपिला कहने लगी–तो क्या आप यह आशा रखती हैं कि आप सुदर्शन सेठ को अपने काबू में कर लेंगी ?

अभया ने कहा– हां, मैं सुदर्शन को भी फंसा सकती हूं।

कपिला– यदि आपने सुदर्शन को अपने चंगुल में फंसा लिया तो मैं समझूंगी आप त्रिया चरित्र में पूर्ण निष्णात हैं और स्त्रियों में शिरोमणि हैं।

अभया– देख, मैं किस प्रकार सेठ को अपने जाल में फंसाती हूं, तू देखती रहना मेरी कलाबाजी को।

इस प्रकार दोनों सखियों में बाजी लगी है। आप लोग ऐसी बाजी को कैसी मानते हैं। आप इसे बुरा ही बतायेंगे। और वास्तव में है भी यह बुरी बात। किन्तु किसी बात को एकान्त दृष्टि से न सोचना चाहिए। अनेकान्त दृष्टि से विचार करना चाहिए। मैं कहता हूं अगर इस प्रकार की इन सहेलियों में होड़ न होती तो सुदर्शन के शील की परीक्षा कैसे होती।

गज सुकुमार मुनि के मस्तक पर सोमिल ब्राह्मण ने जलते हुए अंगारे रखे थे। कहिये, इस प्रकार का घातक कार्य कितना निकृष्टतम और हृदय हीनता दर्शक है। किन्तु गजसुकुमार के लिए मस्तक पर अंगारे रखे जाना भी कल्याणकारी साबित हुए थे। सोमिल ब्राह्मण के लिए इस प्रकार का निर्दयता पूर्ण कार्य करना अत्यन्त हानि कर था। किन्तु गजसुकुमार ने उस चीज को कर्मों की निर्जरा का कारण बना लिया। वे अंगारों की पीड़ा से विचलित न हुए। बल्कि शुक्ल ध्यान के पाये पर चढ़कर अनन्त क्षमा धारण करके केवली बने गये और उसी वक्त शरीर रूपी पिंजड़ा सदा के लिए छोड़कर सिद्ध शिला मे जाकर विराजमान हो गये। अगर गजसुकुमार को यह सहारा न मिलता तो वे सम्भव है इतनी जल्दी मोक्ष में न पहुच पाते।

मित्रों ! दुनिया में कांटे बिछे हुए हैं अतः संभलकर चलना चाहिए दुनिया में बुरे भले सब प्रकार के आदमी हैं। आप यदि ज्ञानी हैं तो बुरे आदमियों को भी अपनी उन्नति में सहायक बना सकते हैं।

अभया और कपिला में होड़ लगी है। अब वे किस प्रकार सुदर्शन को फंसाने की चेष्टाएं करती हैं इसका विचार फिर किया जायगा।

राजकोट

14—8—36

कपिला ने कहा– ऐसे ऐसे महापुरुष भी हैं जिनको वश में करना स्त्रियों के बूते की बात नहीं है। उन पर त्रिया चरित्र नहीं चल सकता।

अनया बोली– ऐसा एक भी मर्द नहीं हो सकता जो त्रिया चरित्र के कारण स्त्रियों का दास न बनाया जा सके।

कपिला कहने लगी–तो क्या आप यह आशा रखती हैं कि आप सुदर्शन सेठ को अपने काबू में कर लेंगी ?

अनया ने कहा– हां, मैं सुदर्शन को भी फंसा सकती हूं।

कपिला– यदि आपने सुदर्शन को अपने चंगुल में फंसा लिया तो मैं समझूंगी आप त्रिया चरित्र में पूर्ण निष्णात हैं और स्त्रियों में शिरोमणि हैं।

अनया– देख, मैं किस प्रकार सेठ को अपने जाल में फंसाती हूं, तू देखती रहना मेरी कलाबाजी को।

इस प्रकार दोनों सखियों में बाजी लगी है। आप लोग ऐसी बाजी को कैसी मानते हैं। आप इसे बुरा ही बतायेंगे। और वास्तव में है भी यह बुरी बात। किन्तु किसी बात को एकान्त दृष्टि से न सोचना चाहिए। अनेकान्त दृष्टि से विचार करना चाहिए। मैं कहता हूं अगर इस प्रकार की इन सहेलियों में होड़ न होती तो सुदर्शन के शील की परीक्षा कैसे होती।

गज सुकुमार मुनि के मस्तक पर सोमिल ब्राह्मण ने जलते हुए अंगारे रखे थे। कहिये, इस प्रकार का घातक कार्य कितना निकृस्टतम और हृदय हीनता दर्शक है। किन्तु गजसुकुमार के लिए मस्तक पर अंगारे रखे जाना भी कल्याणकारी साबित हुए थे। सोमिल ब्राह्मण के लिए इस प्रकार का निर्दयता पूर्ण कार्य करना अत्यन्त हानि कर था। किन्तु गजसुकुमार ने उस चीज को कर्मों की निर्जरा का कारण बना लिया। वे अंगारों की पीड़ा से विचलित न हुए। बल्कि शुक्ल ध्यान के पाये पर चढ़कर अनन्त क्षमा धारण करके केवली बने गये और उसी वक्त शरीर रूपी पिंजडा सदा के लिए छोड़कर सिद्ध शिला में जाकर विराजमान हो गये। अगर गजसुकुमार को यह सहारा न मिलता तो वे संभव है इतनी जल्दी मोक्ष में न पहुंच पाते।

इसी तरह कपिला और अनया की किसी सच्चरित्र आदमी को चरित्र भ्रष्ट करने की होड़ एकान्त बुरी नहीं कही जा सकती इसी अग्नि में तप कर सुदर्शन खरा कुन्दन होकर जगत् के सामने उपस्थित होगा। हम लोग प्रतिदिन सुदर्शन का चरित्र गाते हैं और धन्यवाद देते हैं। उसमें कपिला और अनया का भी हाथ है। हाथ तो इनका है मगर प्रशंसा सुदर्शन की ही की जायगी।

मित्रों ! दुनिया में कांटे बिछे हुए हैं अतः संभलकर चलना चाहिए दुनिया में बुरे भले सब प्रकार के आदमी हैं। आप यदि ज्ञानी हैं तो बुरे आदमियों को भी अपनी उन्नति में सहायक बना सकते हैं।

अभया और कपिला में होड लगी है। अब वे किस प्रकार सुदर्शन को फंसाने की चेष्टाएं करती हैं इसका विचार फिर किया जायगा।

राजकोट

14—8—36

आत्मा ही परमात्मा बनता है

आज म्हारा संभव जिन के, हितचित सुंगुण गास्यां।
मधुर मधुर स्वर राग अलापी, गहरे साद गुंजास्यां राज।।आज.।।

प्रार्थना— यह तृतीय तीर्थंकर भगवान संभवनाथ की प्रार्थना है। प्रार्थना करने वाला भक्त कहता है कि आज मैं तेरा ही गुणगान करूंगा। भक्त के पूरे अभिप्राय को मैं नहीं बता सकता वह तो कोई ज्ञानी ही बता सकता है। लेकिन विचार करने से मालूम होता है कि इस प्रार्थना में आपका और हमारा भाव भी शामिल है। इस प्रार्थना में कहा हुआ शब्द आज बड़े महत्व का है।

संसार के लोग भी अपने सांसारिक कार्यों के लिए यही सोचते हैं कि अमुक कार्य आज ही करेंगे। आज का दिन फिर कब आने वाला है। अगर आज का दिन व्यर्थ चला गया तो कल का क्या भरोसा ? संभव है, कल का दिन भी व्यर्थ चला जाय। अथवा यह नक्की थोड़ा ही है कि कल का दिन हमारे लिए आयेगा ही। संभव है, कल हम ही न रहें।

विवाहोत्सव, सब प्रकार के त्यौहार और मित्र के आगमन पर यही कहा जाता है कि आज का दिन अच्छा है। आज का सा दिन फिर न आयेगा अतः जो कुछ करना है कर डालना चाहिए। इसी प्रकार भक्तजन भी कहते हैं कि आज का सा अवसर फिर कब आयेगा अतः भगवान् की प्रार्थना आज ही करूंगा। यह अवसर हाथ से न जाने दूंगा।

भक्त के कथन पर से आम श्रोताजनों को भी विचार करना चाहिए कि ये दिन पर्युषण पर्व के हैं। इन दिनों में दुनिया के प्रपंचों में न पड़कर उत्कृष्ट रीति से परमात्मा का भजन व प्रार्थना करेंगे। यद्यपि सब लोग यह चाहते हैं कि हम परमात्मा का भजन किया करें। और आप लोग भी घर का काम छोड़कर यहां इसीलिए आये हैं। किन्तु भजन में अनेक विघ्न उपस्थित हो जाते हैं।

श्रेयांसि बहुविघ्नानि्

अर्थात् अच्छे कार्यो में सदा बहुत विघ्न आ जाया करते हैं। इसी नियम के अनुसार प्रभु भजन में भी विघ्न आ जाते हैं और आपकी इच्छा पूर्ण नहीं होती। आप पूछेंगे कि इन विघ्नों को हटाने के उपाय क्या हैं ? भक्त कहते हैं कि विघ्नों को हटाने का उपाय भी परमात्मा की प्रार्थना ही है। उसी परमात्मा से आरजू करने से विघ्न विनष्ट हो जाते हैं। आज हम लोगों को प्रार्थना करने का यह सुअवसर प्राप्त हुआ है। अतः यह विचार करना चाहिये कि अनन्त काल से मेरी आत्मा इस संसार रूपी अनन्त समुद्र में इधर से उधर हिलोरें ले रही है। जन्म मरण और जरा के चक्र में यह आत्मा फंसी हुई है। जो कि निश्चय नय और वास्तविक दृष्टि से देखा जाये तो आत्मा और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं है। स्वरूप की दृष्टि से दोनों एक हैं। शुद्ध संग्रह नय की दृष्टि से 'एगे आया' अर्थात् सिद्ध और संसारी दोनों की आत्मा एक समान ही है।

फिर अन्तर क्यों पड़ रहा है, इसी बात पर विचार करना चाहिए। जो अन्तर है उसको समझ कर उसे मिटाने का प्रयत्न करना चाहिए। अन्तर मिटाकर परमात्मा स्वरूप में लीन हो जाना चाहिए। अन्तर मिटाने के लिए ज्ञानियों के कथन पर विचार करना चाहिए।

कुम्भकार मिट्टी से घड़ा बनाता है। मिट्टी में घडा है तभी तो कुम्भकार उसमें से घड़ा बनाता है। जब तक मिट्टी का घडा नही बनाया जाता तब तक मिट्टी में कोई पानी नहीं भरता। भरा भी नही जा सकता। और न कोई मिट्टी को घड़ा कह कर ही पुकारता है। जब कुम्भकार उपाय करके मिट्टी का घडा बना देता है तब उसमें पानी भरा जाता है और उसे घडे के नाम से पुकारा जाता है। मिट्टी उपादान कारण है और चाक आदि निमित्त कारण। कुम्भकार कर्त्ता है। मिट्टी और घडे में कितना अंतर है ? मिट्टी ही तो रूपान्तर होकर घड़े के रूप में परिणत हुई है। मिट्टी और घडे की पर्यायों में फर्क है। द्रव्य तो वही है। इसी प्रकार आत्मा के विषय में भी देखो। पण्डित देवचन्द जी कहते है :–

> उपादान आतम सहित पुष्टावलंबन देय,
> उपादान कारण पणे प्रकट करे प्रभु सेव।
> एक बार प्रभु वंदना आगम रीते थाय,
> कारण सहित कार्य नी सिद्धि प्रतीत कराय।

आत्मा ही परमात्मा वनने का उपादान कारण है। आत्मा ही परमात्मा के रूप में परिणत हो जाता है। मिट्टी को घड़ा वनाने में कुम्भकार भी कारण है इसी प्रकार आत्मा का परमात्मा वनने में ज्ञानी गुरु कारण वन जाते हैं। उनको सहकारी कारण कह सकते हैं। उपादान कारण तो आत्मा ही है। अगर आगम प्रतिपादित रीति से एक वार भी परमात्मा की वंदना कर ली जाय तो आत्मा परमात्मा वन जाता है। कारण कार्यरूप में वदल जाता है।

अव इस वात का विचार किया जाता है कि परमात्मा का अनन्य भाव से स्मरण कीर्तन करने से या उसको देवाधिदेव मानने से क्या लाभ है। अन्य मत वाले लोग तो परमात्मा को कर्त्ता मानते हैं। जिस प्रकार कुम्भकार मिट्टी का पिण्ड वनाकर उसे चाक पर चढ़ाकर घड़ा वनाता है उसी प्रकार परमात्मा भी जीव को परमात्म स्वरूप वनाता है। उसको दण्ड भी देता है और पुरस्कार भी। अतः यदि वे लोग परमात्मा की भक्ति प्रार्थना या कीर्तन करें तो ठीक कहा जा सकता है किन्तु जैनों का परमात्मा तो राग द्वेष रहित है। वह न किसी पर प्रसन्न होता है न नाराज। किसी को दण्ड या पुरस्कार भी नहीं देता। वह निरंजन और अकर्ता है। अतः उसे वंदना करने से क्या लाभ ?

वीच में थोड़ा इस वात पर भी विचार कर लें कि वस्तुतः परमात्मा कर्त्ता है क्या ? जो परमात्मा सांसारिक प्रपंचों से मुक्त हो चुका है। वह पुनः उनकी खटपट में क्यों पड़ेगा। न्याय से यह वात सिद्ध है कि जो पूर्ण है वह सांसारिक प्रपंचों में नहीं गिरता और जो गिरता है वह पूर्ण नहीं हो सकता। दूसरी वात परमात्मा दयालु है। यदि वह कर्त्ता है तो जीवों को दुःखी क्यों रखता है। क्यों नहीं सव जीवों को एकान्त सुखी वना देता। जैसे किसी आदमी का लड़का नदी में डूवता रहे और वह समर्थ होता हुआ भी किनारे खड़ा देखता ताकता रहे तो उस आदमी को पिता कहा जायगा या पुत्र घातक? पिता स्वयं वैद्य हो और उसका पुत्र वीमार हो। यदि वह उसे दवा न दे तो उसे क्या कहा जायगा ? अतः जिस रूप में लोग कर्त्ता मानते हैं उस रूप में तो परमात्मा कर्त्ता नहीं है।

अव मूल प्रश्न पर आ जाइये। परमात्मा को नमस्कार करने से क्या लाभ है ? एक भक्त आचार्य कहते हैं :–

त्वं तारका जिन ! कथं भविनां त एव,
त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्त :।
यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेष नून,
मन्तर्गतस्य मरुतः स किलानुभाव :।।

(कल्याण मन्दिर स्त्रोत–)

इस श्लोक में विरोधाभास अलंकार है। आचार्य कहते हैं– हे जिनेश्वर देव ! तू हमारा तारक कैसे है। बल्कि हमी भव्य प्राणी तेरे को अपने हृदय में धारण करके तैरते हैं। अर्थात् हम तुझको अपने हृदय में रखकर तैराते हैं। इतना कहकर आचार्य वापस अपनी बात को संभाल लेते हैं। नहीं नहीं मैं भूल गया। मैं परमात्मा को अपने हृदय में धारण करके नहीं तैरता हूं किन्तु मेरे हृदय में परमात्मा विराजमान होने से मैं तैरता हूं। संसार समुद्र से पार उतरता हूं। जैसे पानी की मशक तैरती है। मशक में तैरने की शक्ति नहीं है। किन्तु उसमें वायु भर करके उसका मुख बन्द कर देने से वह पानी पर तैरने लगती है। मशक के अन्तर्गत जो वायु है उसी का प्रभाव है कि वह पानी पर तैरती है।

मित्रों ! इस कथन पर से आप समझ गये होंगे कि परमात्मा स्वयं प्रेरक बनकर हमको संसार समुद्र से पार नहीं उतारता। किन्तु हम स्वयं ही उसका स्वरूप समझकर उसे अपने हृदय में जागृत करते हैं और इस तरह उसके सहारे से भव समुद्र से पार हो सकते हैं। परमात्मा नहीं तारता किन्तु फिर भी उसका सहारा लिए बिना न कोई तिरा है न तिरता है और न भविष्य में ही तिरेगा।

कोई शंका कर सकता है कि यह तो जैनियों के कथन की चालाकी है। एक तरफ तो कहते है कि परमात्मा तारक नहीं है और दूसरी तरफ कहते है कि उसकी सहायता के बिना कोई तिर नहीं सकता। यह चालाकी नही है। वस्तु स्वरूप ही ऐसा है तब क्या किया जाय। एक आदमी का पिता भी मौजूद है और पुत्र भी है। मैं पूछता हूं इस आदमी को क्या कहा जाय ? पिता कहा जाये या पुत्र ? यह पिता भी है और पुत्र भी। एक ही काल मे यह पिता पुत्र दोनों है। अपने बाप की अपेक्षा से पुत्र है और अपने पुत्र की अपेक्षा से पिता। दो तार से उत्पन्न होने वाली बिजली के लिए एक तार से उत्पन्न होने की बात कैसे कही जा सकती है।

इसी प्रकार दिशा के सम्बन्ध में भी समझो। आपसे कोई पूछे कि आपका मुख किस दिशा में है तो आप यही उत्तर देंगे कि अमुक आदमी की अपेक्षा अमुक दिशा में है और अमुक की अपेक्षा अमुक में। इस प्रकार अनेकान्त वाद की सहायता से वस्तु स्वरूप का निर्णय होता है। इसमें चालाकी क्या है। व्याकरण शास्त्र में भी कहा है

साभिधेयापेक्षावधि नियमो व्यवस्था।

अर्थात् अपेक्षा से ही वस्तु का प्रतिपादन हो सकता है। अपेक्षा से ही व्यवस्था दी जा सकती है। इसी नियम से भगवान् तारक भी हैं और तारक नहीं भी हैं। भगवान् तारक किस प्रकार है यह बात और खुलासावार बताता हूं।

मान लो एक आदमी नदी के उस पार खड़ा है। उसे नदी पार करनी है। वह तैरना नहीं जानता है। एक दूसरा आदमी वहां आ गया। उसने पूछा भाई, कोई नदी पार करने का उपाय बताओ। आगुन्तक व्यक्ति ने बताया कि इसमें क्या है। नदी पार करने का सीधा उपाय है। हवा के सहारे नदी पार करलो। इतना कह कर वह तो चला गया। इस आदमी ने सोचा कि हवा तो सर्वत्र है। मेरे मुख में, पेट में और नदी में भी हवा है। यह सोचकर वह नदी में कूद पड़ा। किन्तु वह तैरने के बजाय पानी में डूबने लगा। तुरन्त वापस वाहर निकल आया। थोड़ी देर बाद दूसरा आदमी फिर आ गया। उसने कहा– दोस्त ! तेरे कहने में आकर मैं नदी में कूद पड़ा था। मरते मरते बचा हूं। आगन्तुक ने कहा–भाई ! खाली हवा तैरने में सहायक नहीं होती। देख मैं बताता हूं कि हवा किस प्रकार मनुष्य को तैराती है। वह एक मशक ले आया। उसमें हवा भर कर उसका मुंह वंद कर दिया। फिर उस पर उस आदमी को बैठा दिया। वह मशक के सहारे सरलता पूर्व नदी पार कर गया।

आगन्तुक ने पूछा अब बताओ हवा पार उतारती है या नहीं ? उस आदमी ने कहा– हां भाई हवा पार उतारती है। पहले मैंने हवा को अपनाया न था। अज्ञानता से यों ही कूद पड़ा था।

इसी प्रकार परमात्मा के लिए भी समझियेगा कि जो उसको अपना लेता है, हृदय में उसको बंद करके इन्द्रियों के द्वार बंद कर देता है, परमात्मा उसको इस संसार समुद्र से पार उतार देता है।

कहने का सारांश यह है कि एक उपादान कारण होता है और एक निमित्त कारण होता है। उपादान होने पर भी निमित्त की आवश्यकता होती है। निमित्त कारण के होने पर ही उपादान कार्यरूप में परिणित होता है।

प्रधानता उपादान कारण की है। मिट्टी पानी आदि के होने पर भी बीज के बिना वृक्ष नहीं पैदा हो सकता। कितनी ही मिट्टी हो और पानी भी खूब हो किन्तु यदि छोटा सा बीज न हो तो वट वृक्ष पैदा नहीं हो सकता। बीज की मुख्यता है। बीज उपादान कारण है। उपादान कारण उसे कहते हैं जो पहले कारण रूप में हो और बाद में कार्यरूप में हो जावे। और कारण उसको कहते हैं जो कार्य में सहायक हो। कहा है– **नियमेन कार्य करोतीति कारणम्**

निश्चय से जो कार्य करता है वह उपादान कारण है। और जो स्वयं कार्य रूप में परिणत न हो किन्तु जिसकी सहायता के बिना कार्य न हो वह निमित्त कारण है। घड़ा मिट्टी का बनता है मगर कुंभकार की सहायता के बिना स्वयं नहीं बन जाता।

यही बात आत्मा और परमात्मा के लिए समझो। आत्मा उपादान तो है मगर परमात्मा की सहायता से वह उपादान कारण बन गया। वैसे आत्मा तो अनादि काल से ही है। फिर वह परमात्मा क्यों नहीं बन गया? परमात्मारूप निमित्त कारण का योग न मिलने से उपादान कार्य न कर सका।

परमात्मा का स्मरण सच्चे दिल से हो तभी वह हमारा सहायक बन सकता है। इसमें ऊपरी दिखावा नहीं चल सकता। परमात्मा की अदालत में बाहरी उठ बैठ का उतना महत्त्व नहीं है जितना भावना का है। आपकी भावना देखी जायेगी कि किस भाव से प्रेरित होकर आपने धर्म करणी की है। भावना के बिना की हुई करणी द्रव्य करणी गिनी जायगी ! परमात्मा का स्मरण करने में यदि काम क्रोध लोभ मोह आदि विकार न छूटे तो वह स्मरण दिखावटी गिना जायगा। काम क्रोध और परमात्मा दोनों को एक साथ हृदय मे स्थान नहीं दिया जा सकता। दो घोड़ों पर एक साथ सवार नहीं हुआ जाता। काम क्रोधादि को निकाले बिना परमात्मा का स्मरण नहीं हो सकता। ठाणांग सूत्र में कहा है कि हे गौतम ! जब तक दो बाते न छूटें जीव धर्म का अधिकार नहीं हो सकता। वे दो बातें हैं– आरम्भ और परिग्रह, धर्म प्राप्त करने के लिए इनको पतला करना आवश्यक है।

कहा है–

आरम्भ परिग्रह दोय ए, तेवीस विषय कषाय,
जब लग पतला नहीं पडे नहीं समकित पाय
इग समकित मन थिर करो पालो निरति चार

प्रभो ! कव मैं आरम्भ परिग्रह और विपय कपाय से निवृत्त होऊं। तव तक परमात्मा का भजन नहीं हो सकता।

जो व्यक्ति विपय कपाय और आरम्भ परिग्रह को वढ़ाता जाता है और साथ में परमात्मा का भजन भी करता जाता है वह भजन का रहस्य नहीं समझता। वह उल्टी गंगा वहाता है।

पर्युषण पर्व है। कई लोग इस वक्त तपस्या कर रहे हैं किन्तु किसी कामना को लेकर तपस्या नहीं करनी चाहिए। निष्काम भाव से तप होना चाहिए। इन दिनों में आपसे बने उतना त्याग करो। किन्तु अहंकार त्याग कर त्याग करो। जो कुछ आड़ अंतराय है वह अन्धकार की है। अतः अहंकार त्याग करके परमात्मा की प्रार्थना करेंगे तो सदा कल्याण है।

चरित्र–आज श्रावक सुदर्शन की परीक्षा है। परीक्षक कोई साधारण व्यक्ति नहीं किन्तु स्त्री चरित्र में पारंगत रानी अभया है। अभया ने सेठ सुदर्शन को चरित्र भ्रष्ट करने की प्रतिज्ञा ग्रहण की है। चार प्रकार की संज्ञाए हैं–आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा और परिग्रह संज्ञा। मनुष्य में मैथुन संज्ञा का अंश अधिक रहता है। जो इस संज्ञा को जीत लेता है वह सबको जीत लेता है। काम को सबसे बड़ा शत्रु कहा गया है। परमात्मा की प्रार्थना करने से काम विकार भी जीता जा सकता है। सुदर्शन मैथुन संज्ञा को जीतने के लिए कृत संकल्प है।

इधर अभया रानी भी सुदर्शन को शील से चलायमान करने के लिए कृत संकल्प है। कपिला अभया को समझाती है कि व्यर्थ प्रयत्न मत करो।

व्यर्थ गर्व मत धारो रानीजी मैं सब विधि कर छानी
सुदर्शन नहीं चले शील से यही बात लो मानी रे।। धन.।।
जो मैं नारी हूं हुशियारी सुदर्शन वश लाऊं;
नहीं तो व्यर्थ जगत् में जीकर तुझे न मुंह दिखलाऊं रे। धन.।

कपिला कहती है– रानीजी व्यर्थ गर्व न करो। दुनिया में किसी का भी अभिमान नहीं चला है। गर्व करने से राजा रावण भी हार गया था तो दूसरों की क्या वात कहना।

कपिला ऊपर से अभया को यह वात कह रही है कि सुदर्शन को तू डिगा नहीं सकती किन्तु उसके मन में यह भावना है कि रानी को जोश चढ़े और किसी तरह उस व्यक्ति को डिगा दे जिसने मुझको धोखा दिया है। वह उस व्यक्ति का मान मर्दन करना चाहती है जिसने उसको छका दिया था।

मन में कुछ और भाव रखना और शब्दों से कुछ और कहना यही मिथ्यात्व है। शास्त्र में कहा है–

समयं तिमन्नमाणे समया वा असमया वा समया होयति होय व्वा और
असमयं ति मन्नमाणे असमया वा समया वा असमया होयति होय व्वा

कलुषित हृदय होने पर सच्ची या झूठी बात भी झूठी ही गिनी जाती है। और शुद्ध हृदय से कही हुई झूठी या सच्ची बात भी सच्ची गिनी जाती है। हृदय शुद्ध है, विचार न्याययुक्त है फिर भी छद्‌मस्थ होने से चूक हो जाये तो वह समकिती माना जाता है। शुद्ध हृदय से यह माने कि जो केवली कहते है वह सत्य है। ऐसा मानते हुए भी छद्‌मस्थता के कारण भूल हो जाये तो भगवान् उसे सम्यग्दृष्टि ही कहते हैं। अतः धर्माराधन के लिए हृदय की पवित्रता प्रथम शर्त है। ऊपर से कोई कुछ भी कहे उसकी नियत पर ख्याल करके उसकी बात मानना चाहिए।

कई मुनियों को घानी में पीला गया और गजसुकुमार के सिर पर खीरे रखे गये तब भी वे अपने सत्य से चलायमान न हुए। वे समकिती थे और समकिती ही बने रहे। इसके विपरीत गौशालक और जमाली जैसे लोग भी हुए है जिन्होनें भगवान् की निन्दा करने में कसर नही रखी। इनका ऊपरी व्यवहार कुछ और था। और भीतरी भावना कुछ और थी। इसलिए इनकी करणी विपरीत ही रही। वे मिथ्यादृष्टि ही बने रहे।

कपिला के मुख से कहे हुए शब्द दूसरे हैं और भीतर मे आशय कुछ और है। भीतर में उसका आशय यह है कि दुनिया मे धर्म नाम की चीज न रहे। लोग धर्म धर्म चिल्लाते है, यह व्यर्थ है। मौज मजा करना और अपनी इच्छाओ की येन केन प्रकारेण पूर्ति करना ही कर्त्तव्य हैं।

आज इस जमाने में भी कई लोग धर्म और ईश्वर का नाम इस दुनिया से मिटा देना चाहते हैं। वे धर्म और ईश्वर का बॉयकाट करना चाहते हैं। किन्तु कई लोग इसके विरुद्ध मान्यता रखते हैं। वे धर्म और ईश्वर के नाम पर हसते हसते अपने प्राणो का बलिदान तक करने के लिए कटिबद्ध है। धर्म भगवान् का प्रवर्तीया हुआ है अतः कोई उस पर कितनी ही धूल उडाने की कोशिश करे जरा भी सफल नही हो सकता। हा, वह ऐसा दुष्प्रयत्न करके अपनी आत्मा को जरूर कलुषित कर लेता है।

ने कहा– अभी मैं अधिक कुछ नहीं कहना चाहती। अच्छी वात है आप अपने प्रयत्न में सफल हों यह मेरी हार्दिक कामना है। यदि आप सेठ को डिगाने में समर्थ हो गईं तो मैं आपकी प्रशंसा करूंगी।

अभया कहने लगी– सखी, अव से मैं हर वात व काम सुदर्शन को अपने काबू में करने के उद्देश्य से ही किया करूंगी। लोग ऊपर से कुछ भी समझें, मेरा हर काम सुदर्शन को लक्ष्य करके हुआ करेंगे। मेरा खाना पीना, शृंगार सजना, उद्यान विहार करना आदि सव कार्य इस मतलव की सिद्धि के लिए होंगे।

कपिला और अभया की, उत्सव देखते हुए रथ में बैठे बैठे, ये सव वातें हो रही थी। उधर मनोरमा उनके पीछे अपने रथ में नीचे दृष्टि किये बैठी थी मानो ईश्वर और पति का ध्यान कर रही हो। अथवा किसी ने उसको इधर उधर ताकने की मानो आण दिला दी हो। इस तरह चलते चलते सव के रथ जहां उत्सव का स्थान था वहां आ पहुंचे। रानी अपने डेरे में चली गई और मनोरमा अपने डेरे में।

अभया रानी की एक पंडिता नाम की धाय थी। उसने रानी को वहुत उदास देखकर पूछा कि आज आप इतनी उदास क्यों हैं ? रानी ने कहा– धाय ! क्या कहूं, कुछ कहा नहीं जाता। यदि मेरी मनोकामना पूरी न हुई तो मेरा जीवन टिकना कठिन मालूम देता है। मेरा जीवन गहरे संकट में है। मालूम पड़ता है, मेरा अंतिम काल निकट आ गया है। पंडिता ने पूछा– क्या वात है। आपकी यह युवावस्था, इतना सौन्दर्य, भोग विलास की सामग्री की कोई कमी नही फिर क्योंकर मरने की भावना पैदा हो गई।

अभया ने कहा– अपमानित होकर जिन्दा रहने की अपेक्षा मौत को स्वीकार कर लेना वेहतर है। मानधनी को मान चाहिए, जीवन नहीं।

धाय ने पूछा– आपका अपमान किसने किया है। कौन ऐसा व्यक्ति है जो आपका अपमान करने की हिमाकत कर सकता है ?

अभया– धाय ! तुम पुरोहितानी कपिला को जानती हो। उसके साथ रास्ते चलते चलते मेरा वाद हो गया था।

धाय– वाद हो गया तो क्या हुआ। तुम कभी वाद में किसी से हारी हो सदा तुम्हारी जीत हुई है और अव भी होगी। अतः चिन्ता छोड़ो।

अभया– धाय ! मैंने कपिला से वाद ही नहीं किया किन्तु वाद करते करते एक होड़ लगाली है। एक चैलेंज उसके सामने फेंक दिया है। मुझसे अकेले यह वात पार जाना कठिन जान पड़ता है।

धाय– क्या बात है सो मेरे सामने रखो। क्या मुझ से भी परहेज रखने लायक् बात है ?

अभया– धाय ! तेरे से परहेज कैसे रखा जा सकता है। अगर अपने मन की मुराद तेरे सामने भी प्रकट न करूंगी तो किसके सामने करूंगी। मैंने तेरे भरोसे पर ही होड़ की है। सुन, मैंने क्या होड की है। नगर सेठ सुदर्शन को तू जानती ही है। कपिला उसको अपने वश में न कर सकी। उल्टे उससे ठगी गई। उसने मेरे सामने बडे अभिमान से कहा कि इस जगत् में ऐसी कोई नारी नहीं है जो सुदर्शन को अपने चरित्र से भ्रष्ट कर सके ! मैं यह वचन सहन न कर सकी। मैंने उसको सुना दिया कि हम स्त्रियों की कला के सामने बड़े बडे देव और ऋषिमुनि भी हार गये तो बेचारा सुदर्शन किस बाग की मूली है मैं उसको काबू में करके रहूंगी। अगर काबू न कर सकूं तो तुझे अपना मुँह न दिखाऊंगी। धाय ! मैने प्रतिज्ञा तो कर ली है मगर इसको पार पहुंचाना तुम्हारा काम है। मुझे तुम्हारा ही भरोसा है। मुझे इस बात की बडी चिन्ता है कि उसे किस प्रकार वश में करूं क्योंकि वह किसी के घर तक नहीं जाता है।

पण्डिता कहने लगी– बस, इतनी सी बात के लिए इतनी चिन्ता ? हम कहो जैसा काम कर सकती हैं। हम आसमान से तारे उतार कर ला सकती है। हथेली में राई जमा कर नख पर छौंक लगाकर जिमा सकती है। अतः रानी, चिंता छोड़ो। तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी होगी। आप सावधान होइये। आप साधिका और मै साधन बनती हूं। आप जैसी साधिका और मुझ जैसी साधन रूप हो तब कौनसा ऐसा काम है जो पूरा न हो सकेगा। तुम जिसे कहो उसे पकड कर तुम्हारे पास ला सकती हू। मगर आप एक काम करना। आप ऐसा रूप दिखाना जिससे लोगों को यह विश्वास हो जाय कि आपको कोई देव लग गया है। आप बारंबार मूर्छित हो जाना और जमीन पर गिर जाना। फिर मै सुदर्शन को पकड लाने का उपाय करती हूं।

घाट घड बहुविध जब मन में, एक उपाय मन आया।
कौमुदी उत्सव निकट आवे, जब काम करूं मन चाया रे।। धन.।।
कामदेव की प्रतिमा बनाकर महोत्सव खूब मंडाया।
बाहर जावे भीतर आवे सब जन को भरमाया रे।। धन.।।

हो गया है। आप इसी वक्त शीघ्र चल कर रानी की हालत देखिये और उचित उपाय करिये। देखने से ही आप को ज्ञात होगा कि रानी की हालत कितनी खतरनाक हो गई है।

पण्डिता ने अपनी वातों की चतुराई और त्रिया चरित्र से राजा को रानी के डेरे पर आने के लिए विवश कर दिया। कहावत है– '

को गहनो वनो ? त्रिया चरित्रम्'

किसी ने पूछा कि गहन जंगल कौन सा है ? तो सामने वाले ने उत्तर दिया कि त्रिया चरित्र ही गहन वन है। इस जंगल में कितना भी सावधान व्यक्ति हो मार्ग भूल जाता है। दधिवाहन राजा भी पंडिता की वात में आ गया और तुरंत घवड़ाता हुआ रानी के खेमे पर आया। उसे इस वात का भय हो गया था कि आज रानी पहन ओढ़ कर बाहर निकली है कहीं कोई भूत न लग गया हो। संभव है इसी बात की गड़वड़ हो।

राजा के आने की आहट सुनकर रानी और अधिक ढोंग करके कपड़ा तानकर लम्वी होकर सो गई और ऊंहू ऊंहू करने लगी। राजा ने उसके पास जाकर पूछा कि प्रिये सुलोचना सुदेवी तुमको क्या हो गया है ? राजा उसके मुख पर का कपड़ा हटाकर बार बार पूछता था और रानी बार बार मुख पर कपड़ा ढक लेती थी और अधिक हू हूं करती जाती थी। वह यह भाव दर्शाती थी कि उसके शरीर में कोई देव प्रवेश कर गया है। राजा यह दृश्य देखकर घवड़ाने लगा तव पंडिता कहने लगी। महाराज ! मुझे अव याद आया कि ऐसा क्यों हो रहा है। यदि आप इजाजत दें तो मैं निवेदन करूं। राजा ने कहा– कहो, क्या बात है।

पण्डिता कहने लगी– जब आप युद्ध में गये हुए थे तव पीछे से पतिव्रता रानी ने आपकी क्षेम कुशल के लिए तपस्या शुरू की थी। पतिव्रता नारी के लिए पति ही परमेश्वर है। पति की अनुपस्थिति में वह विकल रहती हैं। उसे पति के विना कोई काम अच्छा नहीं लगता। रानी जी ने भी यह मनौती ले ली कि 'हे इष्ट देवी ! मेरे पतिदेव जीते जागते कुशल पूर्वक घर आ जायेंगे तो पहले मैं तेरी पूजा करूंगी तब घर से वाहर निकलूंगी'। उस देवी की कृपा से आप युद्ध से कुशल पूर्वक लौट आये। आपने आकर कौमुदी उत्सव में शामिल होने की घोषणा करवा दी। रानी अपनी मनौती पूरा न कर सकी। आपकी आज्ञा का पालन करना प्रथम धर्म समझ कर रानी जी वाहर निकल आई हैं। आपके हुक्म व प्रेम के सामने रानी जी देव को भूल गई। मगर देव कव रानी को भूलने वाला है। देव ने सोचा कि रानी की इच्छानुसार मैं

राजा को सकुशल युद्ध से लौटा लाया हूं। किन्तु काम पूरा हो जाने के बाद रानी मेरी मनौती पूरी करना भूल गई और इस प्रकार मेरी अवहेलना कर रही है। यह सोचकर देव ने ही यह उत्पात किया है ऐसा मुझे मालूम पड़ता है। अतः आप इस बात का कुछ उपाय करिये नहीं तो गजब हो जायगा।

पण्डिता का कथन सुनकर राजा और अधिक घबड़ाया। उसके मन में जो शंका थी वह सच्ची साबित हुई। राजा ने कहा– यह बात मुझको पहले क्यों नहीं कही ? पंडिता ने कहा– महाराज, यही तो बात है 'काम सर्या दुःख विसयां' काम निकल जाने पर लोग दुःख भूल जाया करते हैं। यही बात अपने यहां भी हुई है। आपके आने पर आपके दर्शन करके रानी जी सब बात भूल गई। राजा ने पूछा– पंडिता ! अब क्या करना चाहिए सो बताओ। पंडिता ने कहा महाराज! अब आप शीघ्र रानी को राजमहल में पहुंचाने का इन्तजाम करा दीजिये और देव का उत्सव मनाने की आज्ञा भी दीजिये। उत्सव छूट पूर्वक मनाया जा सके वैसी राज्य की तरफ से पूरी व्यवस्था करवा दें। ऐसा न हो कि बीच में आप हमें इधर आने का हुक्म दे दें और हमारा उत्सव अधूरा ही रह जाय।

एक बात और है। देव की पूजा और उत्सव के लिए हमें बार बार बाहर आना जाना पडेगा तथा जो देव को मानने वाले हैं उनको भी बुलाना पड़ेगा अतः पहरेदारों को हिदायत कर दें कि वे दखल न करे। पंडिता की इच्छानुसार राजा ने सारा इन्तजाम करा दिया। पंडिता रानी को रथ मे डाल कर महल में ले आई है। अब आगे क्या होता है इसका विचार आगे है ।

राजकोट
15–8–36

परमात्मा का प्रकाश प्राप्त करो

श्री अभिनंदन दुःख निकन्दन वन्दन पूजन योगजी
आशा पूरो चिन्ता चूरो, आपो सुख आरोप जी।। श्री.।।

प्रार्थना— यह भगवान् अभिनन्दनजी की प्रार्थना है। भक्त किस आशा से भगवान् की प्रार्थना करता है वह देखना है। ज्ञानियों ने भगवान् की यह पहिचान कराई है कि वह दुःखों का निकन्दन—नाश करने वाला है। जो दुःखों का नाशक होगा वही वंदन और पूजन करने के योग्य हो सकता है। भगवान् अभिनन्दन दुःख नाश करने वाले हैं अतः उनकी प्रार्थना की गई है। किस प्रकार भगवान् दुःखों का नाश करने वाले हैं। यह बात समझने की है।

यदि भगवान् दुःखों को मिटाने वाले हैं तो फिर संसार में इतना दुःख क्यों है। कोई धन के बिना दुःखी है। कोई संतानहीनता से चिन्तित है। कोई शारीरिक पीड़ाओं से त्रस्त है। कोई गृह क्लेश से परेशान है। इस प्रकार जिधर देखो उधर दुःख ही दुःख नजर आता है। यदि परमात्मा दुःख नाशक है तो फिर इतना दुःख क्यों है। क्या सूर्य के रहते भी अंधकार रहेगा। अंधकार और सूर्य का परस्पर विरोध है। इसी प्रकार परमात्मा का और दुःख का भी आपस में विरोध है। संसार दुःखों से भरा पड़ा है इससे मालूम पड़ता है कि परमात्मा दुःख नाशक नहीं है।

परमात्मा दुःख नाशक तो है किन्तु जो उसका सहारा लेता है उसका दुःख दूर करता है। यह बात कल के व्याख्यान में विस्तार पूर्वक बताई गई थी जैसे सूर्य प्रकाश फैलाता है। किन्तु आपका उपादान ठीक होगा तभी सूर्य का प्रकाश आपके काम आ सकता है। उपादान ठीक हुए बिना सूर्य का प्रकाश क्या काम आ सकता है। उदाहरणार्थ जो आंख से अंधा है उसके लिए करोड़ सूर्यों का प्रकाश भी क्या काम का है। इसलिए आंखे उपादान रहीं और सूर्य निमित्त रहा। उपादान ठीक होने पर निमित्त काम दे सकता है। चश्मा

क्या करे यदि लगाने वाला ही अन्धा हो। यदि कुछ दृष्टि हो तो चश्मा बडे अक्षर या दूर की वस्तुएं देखने में निमित्त भूत बन सकता है थोड़ी भी दृष्टि न हो तो अच्छे से अच्छा चश्मा बेकार है।

इसी प्रकार जिस आत्मा का उपादान ठीक होगा परमात्मा उसका दुःख दूर कर सकता है। परमात्मा अनन्त सूर्यो से भी बढ़कर ज्ञान रूपी प्रकाश प्रदान करने वाला है किन्तु जिस आत्मा का उपादान ठीक होता है वही उस प्रकाश को ग्रहण कर सकता है। इसी प्रकार जिन जीवों का उपादान ठीक होता है परमात्मा उनका दुःख अवश्य दूर करता है।

श्रद्धालु लोग मेरी इस बात को बिना शंका लाये मान लेंगे। उनको इसमें कुछ भी संदेह न होगा। मगर इस जमाने के अधिकांश पढ़े लिखे लोग किसी बात को तब तक नहीं मानते जब तक कि तर्क वितर्क करके अपनी बुद्धि से बात को पूरी तरह तोल न लें। मैं भी यही चाहता हूं कि लोग किसी बात को अपनी बुद्धि से तौल कर पूरा निर्णय कर फिर विश्वास करें। बुद्धि से बात को समझकर यदि ठीक जंचे तो विश्वास लाना चाहिये। बुद्धिपूर्वक किया गया विश्वास मजबूत और ठीक होता है। राजा प्रदेशी ने धर्म की बातो पर तभी विश्वास किया था जब उसकी बुद्धि ने उनको मान लिया था। और इसीलिए बाद में धर्म पर उसकी श्रद्धा अडिग रही थी। शास्त्र मे श्रावक के लिए कहा गया है कि बारंवार प्रश्नोत्तर करना चाहिए और धर्म की बातों का निर्णय करके फिर अस्थिमज्जा आदि में रुचाना चाहिये।

मैं अपने लिए भी यही बात कहता हू कि आप लोग मेरी बाते इसीलिए न मान लें कि वे मेरे द्वारा कही जाती है। मेरे कहने से एकदम विश्वास न करो। किन्तु अपनी बुद्धि और अनुभव की कसौटी पर कसकर यदि खरी उतरें तो मानों। यदि सुनते ही किसी बात को स्वीकार कर लेने की आप लोगों की आदत होगी और उसमें अपनी बुद्धि का तनिक भी उपयोग नहीं करेंगे तो ऐसी श्रद्धा कच्ची श्रद्धा कही जायगी। कारण कि जिसमे अपनी निर्णायक शक्ति न होगी वह मेरी तरह किसी और की बाते सुनकर भी तुरन्त विश्वास कर लेगा और इस प्रकार कभी मेरे कथन से विपरीत कथन पर भी

आप लोगों को जो बात अच्छी तरह समझ में न आये वह मुझसे पूछो। मैं अपनी शक्ति के अनुसार उत्तर देने व समझाने के लिए तैयार हूं।

अव प्रश्न यह है कि क्या परमात्मा दुःख निवारक है। यदि है तो किस प्रकार है; सूर्य को प्रकाश देते हुए हम प्रत्यक्ष देखते हैं किन्तु परमात्मा किस तरह दुःख निवारण करता है हमारे ध्यान में नहीं आता। एक भक्त ने भगवान् की प्रार्थना करते हुए कहा है–

चन्द्र सूर्य दीप मणि की ज्योति तेन उल्लंधितम्।
ते ज्योति थी अपरम ज्योति नमो सिद्ध निरंजनम्।।

संसार के जीव प्रकाश के विना नहीं रह सकते। यदि प्रकाश न हो तो संसार के अधिकांश काम रुक जाते हैं। किसी से पूछा जाय कि तुम किसके प्रकाश में कार्य करोगे तो वह यह उत्तर देगा कि मैं सूर्य के प्रकाश में कार्य करना पसन्द करता हूं। फिर उससे कहा जाय कि सूर्य दिन में ही रहता है, रात्रि में वह गैर हाजिर रहता है। यदि रात में काम करना पड़ेगा तो क्या करोगे। तव वह कहेगा कि रात में चन्द्रप्रकाश से काम लूंगा। चन्द्रमा भी कृष्णपक्ष में नहीं रहता तब क्या करोगे ? तव वह कहेगा ग्रह नक्षत्र और तारों के प्रकाश से काम लूंगा। जब बादल आसमान में छाये रहते हैं, तव ग्रह नक्षत्र और तारों का प्रकाश भी काम नहीं देता वैसी हालत में क्या करोगे ? तव वह कहेगा दीपक के प्रकाश में अपना कार्य करूंगा। दीपक के लिए तेल वत्ती आदि की जरूरत रहेगी और वह अग्नि के बिना जलाया नहीं जा सकता। यदि दीपक का योग भी न मिला तव किसके प्रकाश से काम चलाओगे ?

यहां आकर उत्तर देने की गति रुक जाती है। क्योंकि साधारण लोग ऊपर वताये हुए प्रकाशों के सिवाय एक विचित्र प्रकाश को नहीं जानते जिसके प्रकाश से उक्त सभी प्रकाश प्रकाशित होते हैं। ज्ञानीजन कहते हैं हम तुम को एक दूसरे ही प्रकार के प्रकाश की सूचना करते हैं। तुमने जिन सूर्यादि के प्रकाश का जिक्र किया है उससे तुम पराधीन वन जाओगे। किन्तु हम तुमको जिस प्रकाश की खवर देते हैं उसमें परतंत्रता नहीं है। वह प्रकाश स्वतंत्र है। तुम्हारे स्वाधीन है। वह कहीं वाहर खोजने नहीं जाना पड़ता। तुम्हारे भीतरी में ही विद्यमान है। सिर्फ तुम उसको भूल रहे हो।

जव तुम सोते हो और निद्रा में आंखे वंद रहती हैं, साथ साथ नाक कान जवान हाथ पैर आदि भी सुस्त पड़े रहते हैं तब किस प्रकाश से स्वप्न में वस्तुएं देखा करते हो ? उस समय सूर्य चन्द्र दीप आदि का प्रकाश काम नही देता क्योंकि आंखें वंद रहती हैं। आंखें खुली हों तभी सूर्यादि का प्रकाश

काम दे सकता है। जीव स्वप्न में वस्तुओं को देखता है यह बात अनुभव सिद्ध है। मैं आप लोगों से पूछता हूं स्वप्न में कौनसा प्रकाश है जिसके जरिये आत्मा विविध दृश्य देखता है ? स्वप्न में आत्मा केवल विविध दृश्यों को देखता ही नहीं है किन्तु दूसरों की बातें भी सुनता है, विविध व्यंजनों का आस्वाद भी लेता है, सुगन्धित और दुर्गन्धित पदार्थो की वास भी ग्रहण करता है और स्पर्श भी करता है। स्वप्न में जीव आंखों की सहायता के बिना देखता है, कान की सहायता के बिना सुनता है, नाक की सहायता के बिना गंध ग्रहण करता है, जीभ की सहायता के बिना बोलता और स्वाद लेता है और हाथ पैर की सहायता के बिना लोगों से लड़ाई झगड़ा करता है।

मित्रों ! जरा ध्यान लगाकर मेरी बात पर विचार करो कि आत्मा स्वप्नावस्था में किस प्रकाश की सहायता से सारे कार्य जागृत अवस्था के समान ही करती है। वह कौनसी ज्योति है ? ज्ञानी कहते हैं–

चन्द्र सूर्य दीप मणि की ज्योति तेन उल्लंघितम्।
ते ज्योति थी अपरम ज्योति नमो सिद्ध निरंजनम्।।

जिस ज्योति ने चन्द्र सूर्य दीपक और मणि की ज्योति को परास्त कर दिया है। जो इन सब ज्योतियों से विलक्षण ज्योति है उस सिद्धस्वरूप ज्योति को सदा नमन है। इस ज्योति में किसी प्रकार का अजन–कालिख नहीं है। यह प्रकाश विशुद्ध और अनन्त है। इस प्रकाश में सारा जगत हाथ में लिए हुए आमले की तरह स्पष्ट दिखाई देता है। यह प्रकाश ज्ञान रूप प्रकाश है। वह आत्मा का निजी प्रकाश है।

जब इन्द्रियां सो जाती है तब मन इन्द्रियो की सहायता के बिना भी अपना काम चला लेता है। किन्तु मन, बुद्धि के आधीन हैं। और बुद्धि आत्मा के आधीन है। आत्मा के चलते बुद्धि चलती है। अगर आत्मा न हो तो न बुद्धि होगी और न मन। किसी मरे हुए आदमी को कभी स्वप्न आया है ? जो जीवित है उसी को सपना आता है और वही सूर्यादि के प्रकाश के अभाव में भी सब कुछ देखता है। कहिये, वह ज्योति बड़ी रही या सूर्यादि ? वह ज्योति और कोई नहीं किन्तु आत्मा ही है। आत्मा की ज्योति से ही जागृत अवस्था, स्वप्नावस्था, सुषुप्तावस्था और समाधि की अवस्था में सब कुछ देखा सुना जाता है।

ज्योति मिलाओ। आत्मा और परमात्मा की एक ही जाति है। परमात्मा को आत्मा की अपेक्षा एक विशेषण अधिक लगा हुआ है। वह विशेषण है परम शब्द। हैं तो दोनों ही आत्माएं किन्तु एक परम आत्मा अर्थात् उत्कृष्ट आत्मा- पूर्ण विकसित आत्मा है जब कि दूसरी अविकसित और अपूर्णात्मा है। अपूर्ण को पूर्ण में मिलाने के लिए ही कहा जाता है-

श्री अभिनंदन दुःख निकन्दन वंदन पूजन योग जी।

मैं भगवान् अभिनंदन को नमन करता हूं, उनकी भाव पूजा करता हूं। क्योंकि चन्द्र सूर्य दीप आदि की ज्योति से मेरा काम नहीं चलता। मुझे परमात्मा की ज्योति चाहिए। मुझे अपनी ज्योति भगवान् की ज्योति में समर्पित करनी है। सूर्य चन्द्र दीप आदि पर तो आवरण भी आ जाते हैं। और कभी रहते और कभी नहीं भी रहते हैं। किन्तु परमात्मा की ज्योति पर न तो कभी किसी प्रकार का आवरण ही आता है और न कभी मिटती ही है। सदा शाश्वत रहने वाली है। उस ज्योति के प्राप्त हो जाने से मेरी सारी आवश्यकताएं ही नष्ट हो जायंगी। फिर बेचारा दुःख क्यों कर रहेगा। दुःख का और उस ज्योति का आपस में विरोध है। जिस प्रकार अंधकार और प्रकाश में विरोध है उसी प्रकार इनमें भी है।

यदि कोई आदमी अंधा है तो अंधा होने से उसे दुःख होगा। और अंधा होने के साथ यदि वह बहरा भी है तो और अधिक दुःख होगा यदि वह गूंगा भी है और पंगु भी है तो उसके दुःख का पार नहीं। एक एक इन्द्रिय के न होने से आत्मा अधिकाधिक दुःखी होता है। इस पर से समझना चाहिए कि आत्मा की वास्तविक ज्योति परतंत्र हो रही है। उसका देखना जानना और सुखानुभव करना इन्द्रियाधीन है। जैसे आंखों के लिए चश्मा चाहिए तो आंखें चश्मे की आधीन हुई। इसी प्रकार इन्द्रियां भी मन का चश्मा है। मन इन आंख आदि इन्द्रियों के वश में हो गया है। यदि कोई कहे कि चश्मे के विना देखा जा सकता है तो क्या आंखों के विना भी देखा जा सकता है ? इसका उत्तर दिया जा चुका है। स्वप्न में बिना आंखों देखते ही हैं। आत्मा में आंखों के विना देखने की शक्ति विद्यमान है। देहाध्यास के कारण आत्मा आंखों के वश में हो रहा है। चश्मे पर क्या भूलते हो तुम्हारी आत्मा में ही देखने की शक्ति विद्यमान है। उस शक्ति को पहचानो। उसे पहचान कर प्राप्त करने की कोशिश करो। उस शक्ति को जानने व पाने के लिए ही परमात्मा की प्रार्थना की जाती है

कयूं जाणूं कयुं बनी आवशे अभिनन्दन रस रीत हो मित्त।
पूद्गल अनुभव त्याग थीं करी जशुं परतीत हो मित्त।।
परमातम परमेश्वर वस्तुगते ते अलिप्त हो मित्त।
द्रव्ये द्रव्य भले नहीं भावे ते अन्य अव्याप्त हो मित्त।। कयुं।।

भक्त को भगवान् अभिनन्दन से प्रीत करने की भावना है किन्तु उसे कुछ कठिनाई दिखाई देती है। इसलिए वह अपने मित्र से सलाह लेता है। मित्र कोई बाहर का दूसरा मनुष्य नहीं है किन्तु निज आत्मा को मित्र बनाकर उससे सलाह लेता है।

आप लोग भी अपनी आत्मा को मित्र बनाकर उससे सलाह लो। आत्मा सबसे सच्चा मित्र है। सब मित्र तो थक जाते हैं किन्तु यह ऐसा मित्र है जो आपकी सहायता करते करते कभी थकता ही नहीं है। अन्य रोशनी थक सकती है मगर यह रोशनी कभी नहीं थकती। सिद्धान्त में नरक का वर्णन करते हुए कहा है–

ववगय चंद सूर गह नक्खत्त तारा पवाहा

अर्थात् नरक में चन्द्र सूर्य ग्रह नक्षत्र और ताराओं का प्रकाश नहीं है किन्तु आत्मा तो वहां पर भी मौजूद है अतः आत्मा को मित्र बनाओ, उससे सलाह लो। वह कभी साथ नहीं छोडता। आत्मा और परमात्मा का मेल होने में अन्तराय डालने वाला यह पुद्गल ही है। आत्मा पर वस्तु पर ममत्व करता है अतः वह गुलाम बना हुआ है यदि आप किसी दूसरे के धन पर अपना स्वामित्व जमायेंगे तो आपको राज्य दण्ड का भागी होना पडेगा। क्योंकि जिस वस्तु पर आपका अधिकार नहीं है उसे अपना मानना अपराध है। आत्मा भी परवस्तु को अपना मानकर परमात्मा का अपराधी बन रहा है। और उससे दूर पड रहा है।

शका की जा सकती है कि पुद्गलादि परवस्तु कैसे हैं ? इसका समाधान यह है कि जिस वस्तु पर आप अपना अधिकार मानते हैं वह यदि आपके अधिकार मे न रहे, आपके अधिकार से बाहर चली जावे तो वह वस्तु परवस्तु ही है। पुद्गल परवस्तु है। उसका नाम ही पुद्गल है। पुद् यानी मिलना और गल यानी बिखरना। मिलना और बिखरना पुद्गल का स्वभाव

इच्छा के विरुद्ध काले बाल सफेद क्यों हो जाते हैं। यदि उन पर आपका पूरा काबू होता तो आपकी इच्छा के विरुद्ध सफेद कैसे हो जाते हैं। इस शरीर को अपना मानते हो। क्या यह आपके ताबे में है ? क्या आपकी इच्छानुसार यह सदा तन्दुरुस्त और हृष्ट पुष्ट बना रहता है ? कोई बीमारी तो नहीं छूती? इस में बुढ़ापे की झुर्रियां तो नहीं पड़तीं ? जरा रूपी राक्षसी इस को पोला तो नहीं बना रही है ? यदि यह सब कुछ होता है तो शरीर आप का कैसे हुआ। इसे पर ही मानना पड़ेगा।

परवस्तु को अपना मानने के कारण आत्मा को परमात्मा बनने में बड़ी बाधा हो रही है। इस बाधा को मिटाने के लिए त्याग मार्ग को अपनाने की खास आवश्यकता है। लोग त्याग की निन्दा करते हैं किन्तु त्याग के बिना जीवन टिक नहीं सकता। मेरे पास कोद में वहां के ठाकुर सा. के लड़के आये थे वे मेरे सामने बैठे बैठे ही बीड़ी पीने लगे। मैंने कहा मेरी इतनी बातें सुनने के बाद भी आपने सभ्यता के विरुद्ध कार्य किया। क्या आप पर यही असर हुआ ? इन्होंने उत्तर दिया कि इस में क्या है। यह तो आग है इसके बिना हम लोगों का काम कैसे चल सकता है। मैंने कहा काम तो लुगाई के बिना भी नहीं चलता फिर उसे साथ क्यों नहीं लिए फिरते। अंत में वे समझ गये और उन्होंने मर्यादा का पालन किया। मतलब कि त्याग के बिना काम नहीं चल सकता। जो लोग त्याग को व्यर्थ मानते हैं वे यदि निष्काम भाव से त्याग करें तो उनको पता लगे कि त्याग का कितना महत्त्व है। त्याग मार्ग बड़ा विकट है। एक भक्त कहता है–

अभिनन्दन जग नायक तुम सो मैं विनती केहि भांति करूं।
अघ अनेक अवलोकि आपने अडघ नाम अनुमानि नरौ।।

हे प्रभो ! मैं आपसे किस भांति विनती करूं ! आप अनघ हैं और मैं अघ सहित हूं। तू पाप रहित है और मैं पाप सहित हूं। फिर आपके पास कैसे पहुंचू। तेरी प्रार्थना के लिए कैसे दौडूं।

भक्त को इस प्रकार का भय होता है। ऐसी दशा में क्या करना चाहिए। इसके उत्तर में रामचरित्र में भवभूति का दिया हुआ एक रूपक देखना होगा। पितृ कुल और श्वसुर कुल को उज्ज्वल बनाने वाली सती सीता को रामचन्द्र ने वन में छुड़वा दिया था उस समय का चित्र भव भूति ने इस प्रकार खींचा है। भव भूति कहते हैं कि रामचन्द्र ने सीता को वन में भेज तो दिया था किन्तु उनको बाद में पश्चात्ताप होने लगा। मैंने सीता को वन में भेजकर अच्छा नहीं किया। सीता गर्भवती थी फिर भी मैंने उसको वन में छुडवा दिया

यह अच्छा नहीं हुआ, इस प्रकार विचार करके रामचन्द्र रात दिन दुःखी रहते थे। वे वन में गये तो वहां जनक भी आये हुए थे। रामचन्द्र सीता को वन में भेज देने के अपराध के डर से पिता स्वरूप जनक के पास जाने में हिचकने लगे। श्वसुर को पिता भी कहते हैं। पति और पत्नी आपस में प्रेम सम्बन्ध में इस प्रकार बंध जाते हैं कि अनेक माता पिता भी एक दूसरे के माता पिता के समान गिने और माने जाते हैं। ऐसा बर्ताव रखने से ही पति पत्नी का सांसारिक जीवन सुखपूर्वक व्यतीत होता है। तभी संसार का गाड़ा ठीक तरह से चलता है।

रामचन्द्र को मन में बड़ा संकोच और लज्जा अनुभव हो रही है कि मैंने इनकी पुत्री को वन में त्याग दिया है, अब इनके सामने कैसे जाकर खड़ा होऊं। इनको अपना मुख कैसे दिखाऊं।

यह बात आप लोग भी जानते हैं कि निरपराधिनी सीता को रामचन्द्र ने महज इसीलिए त्याग दिया था कि लोग उसके विषय में अपवाद बोल रहे थे। रामचन्द्र को सीता के चरित्र के विषय में तनिक भी संदेह न था। वे सीता को पवित्र समझते थे। केवल लोकापवाद के कारण शुद्ध चरित्रा सीता को वन में छुडवा दिया था।

इस प्रकार के अपराध से संतप्त राम अपने पिता स्वरूप श्वसुर जनक से भेंट करने में संकोच का अनुभव कर रहे हैं। यही बात भक्त भी कहता है कि हे प्रभो ! मै अनेक वासनाओं के जाल में फंसा हुआ अपराधी व्यक्ति आप जैसे पवित्र स्वरूप की भेंट कैसे करूं। मुझे बड़ी लज्जा और संकोच होता है। तू अनघ है और मै अघसहित हूं। अघ पाप को कहते हैं। मै पापी तुझ निष्पापी से कैसे भेंट करूं। मेरे में क्या पाप है यह बताने के लिए भक्त कहता है :–

पर दुःख दुःखी सुखी पर सुख सौं सन्तशील नहीं हृदय धरौं,
देखि आन की विपति परम सुख, सुनि सम्पति बिन आग जरूं।

पराया दुःख देखकर स्वयं दुःखी होना और पराये को सुखी देखकर स्वयं सुखी होना संत, श्रावक या भगवान् अभिनन्दन के भक्त का स्वभाव है।

यदि कोई भाई यह शंका करे कि पराये के दुःख देख कर यदि दुःखी होने लगे तब तो हमारा जीवन सदा दुःखी रहेगा। कारण कि संसार में दुःखी

करते हैं। वे कहते हैं इस बात को अपनी आत्मा से तौल कर समझो। अपनी आत्मा से पूछो कि जब तुम दुःखी होओ और किसी भले आदमी के सामने जाकर अपनी दुःखगाथा कहो और यदि वह तुम्हारी दुःख भरी बातें सुनकर जरा भी सहानुभूति न बताये तब तुम्हें कैसा लगेगा। क्या तुम्हारी यह ख्वाहिश नहीं रहती कि तुम्हारी करुण कहानी सुनकर सामने वाला व्यक्ति दो आंसू बहाये और तुम्हारे दुःख में दुखी होकर तुम्हें आश्वासन प्रदान करे। जब तुम स्वयं यह चाहते हो कि कोई तुम्हारे साथ सहानूभूति दर्शाये तब क्या तुम्हारा यह फर्ज नहीं हो जाता है कि तुम भी दूसरों के साथ सहानूभूति प्रकट करो। यह एक सरल और अनुभूत नियम है। स्वयं प्रमाणित नियम है जिसके लिए किसी अन्य प्रमाण या साक्षी की आवश्यकता नहीं होती। तथा दूसरों को सुखी देखकर सुखी होने से निजी सुख व्यर्थ कैसे हो जायगा बल्कि निजी सुख द्विगुणित हो जायगा।

जो दूसरों को दुःखी देखकर दुःखी नहीं होते उनके लिए यह कहा जाता है कि इनका कलेजा पत्थर का बना हुआ है। वह भी कोई आदमी है जिसका हृदय पर दुःख से द्रवित न होता हो। मनुष्य स्वयं श्रेष्ठ बनना चाहता है किन्तु दूसरे के दुःख में हिस्सेदार नहीं होना चाहता तब वह श्रेष्ठ कैसे कहा जा सकता है। किसी आम्रवृक्ष का अधिष्ठायक देव यह कहे कि आम मेरा है। मैं इसके फल किसी को न खाने दूंगा। तो आप उस देव के विषय में क्या कहेंगे। यही कि यह देव नहीं कोई राक्षस है। इसी प्रकार कोई सरोवर या नदी आपको अपना घड़ा पानी से न भरने दे और घड़ा पकड़ ले तब आप इसके विषय में क्या कहेंगे। पवन यदि जीवन प्रदान न करे, पानी प्यास न बुझाये और अग्नि भोजन न पकावे तो आप क्या कहेंगे। यही कहेंगे कि इनका क्या उपयोग हुआ यदि ये चीजें दूसरों के काम में न आईं तो इनका होना न होना बराबर है। इसी प्रकार मनुष्य के लिए भी समझो कि जो दूसरे के उपयोग में नहीं आता वह किस काम का। वह पृथ्वी पर भार भूत है। भगवान् ने शास्त्रों में अनुकम्पा बताई है। अनुकम्पा का अर्थ यह है–

अनूकूलं कम्पनं इति अनुकम्पा

अर्थात् सामने वाले प्राणी को दुःखी देखकर दुःखी होना अनुकम्पा है। दूसरे के कष्ट में सहानूभूति रखना आवश्यक कर्त्तव्य है। किन्तु आप लोग केवल लेने में लगे हुए हैं, देना तो जानते ही नहीं हैं। दूसरों से मांगते फिरते हो कि हमें सुख दो सुख दो। इस प्रकार भिखारी बने हुए हो किन्तु सुख मांगने से नहीं मिला करता। दूसरों को सुख देने से हमको भी सुख मिल सकता है।

'सुख दियां सुख होत है, दुःख दियां दुःख होत' कहावत बहुत गहरा अर्थ रखती है। यदि आप दूसरों को सुख देते रहेंगे तो आप स्वयं सुख सागर बन जायेंगे। जिन लोगों ने दूसरों को सुख देने का मार्ग स्वीकार किया है उन्होंने सुख देते देते अपना शरीर तक दे डाला मगर उफ तक न किया।

मेघरथ राजा ने कबूतर की रक्षा के लिए अपना सारा शरीर तक तराजू पर चढ़ा दिया था। महाभारत में भी शिविराजा की कथा आई हुई है। शिवि ने दूसरों को सुख पहुंचाने के लिए अपना शरीर तक देना स्वीकार कर लिया था। हदीसों में मोहम्मद साहिब के लिए भी कहा हुआ है कि उन्होंने फाखता के लिए अपने गालों का गोश्त देना स्वीकार किया था। इस प्रकार महापुरुष दूसरों को अपना सर्वस्व देने में सुख मानते हैं। यदि इसी प्रकार आप लोग भी दूसरों को सुख देने में आनन्द मानने लगें तो आपका जीवन ही बदल जाय ! आप महान् आत्माओं की गिनती में आ जायं।

यदि आपके दिलों में यह शंका खड़ी हो कि हम सब को सुख कैसे पहुंचा सकते हैं क्योंकि सब तक हमारी पहुंच ही नहीं हो सकती तो इसका उत्तर यह है कि– मान लीजिये एक आदमी ने एक सार्वजनिक औषधालय कायम किया है। उसकी भावना है कि हर कोई व्यक्ति औषधालय से लाभ उठावे। उसके मन में किसी के लिए किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है। जो अस्पताल में पहुंचेगा वही दवा प्राप्त करेगा और स्वास्थ्य लाभ लेगा। वह दवाखाना सारे राजकोट शहर को दवा नहीं दे सकता और न सारा शहर ही उस दवाखाने में पहुंच सकता है। फिर भी वह औषधालय सार्वजनिक कहलाता है। कारण कि उसका द्वार बिना भेदभाव के सब जनता के लिए खुला है। इसी प्रकार आप सब लोगों तक पहुंचकर सब को सुखी नहीं बना सकते और न सब लोग आप तक पहुंच कर अपना दुःख दर्द ही बता सकते है। तब भी यदि आप सदा सर्वदा यह भावना रखते हैं कि जो मुझ तक पहुंच कर या मै जिन तक पहुंच सकता हूं उनको सुखी बनाऊं तो आप सबको सुखी बनाने वाले ही गिने जायेंगे। भगवान की गति अबाध है और वह सब जीवो तक पहुंचकर उनके कल्याण की कामना कर सकती हैं। शरीर स्थूल होने से उतना नही पहुंच सकता। भावना यह रखनी चाहिए–

त्रिभुवन की कल्याण कामना दिन दिन बढती जाय,
दयामय ऐसी मति हो जाय।

यदि आपने सब प्राणियो के सुख का ध्यान न रखा और अपनी स्त्री बच्चो तक ही सीमित रहे तो आप मे और बाघ बिल्ली मे क्या अन्तर गिना

जायगा। अपने बच्चों का ध्यान तो बाघ बिल्ली भी रखते हैं। मैं आपको उपालम्भ दूं या बाघ बिल्ली को। बिल्ली अपने बच्चों को कहीं रखना चाहती है तब पहले जाकर वह स्थान देख आती है। फिर उस स्थान पर अपने बच्चों को रखती है। किन्तु खेद है कि आप लोगों में से बहुत से लोग क्या करते हैं। जब आपको अपनी लड़की देनी होती है तब आप क्या देखते हैं ? लड़की के सुख को देखते हैं या जो आपको अधिक रुपये दे सके उसको देखते हैं? इसी प्रकार यदि लड़के का सम्बन्ध करना हो तब लड़की की तरफ देखते हैं या तिलक डोरा की तरफ ? यही कि जो अधिक रकम देवे उसी की लड़की आप पसन्द करते हो। यदि लड़का मेट्रिक या बी.ए. तक पहुंच गया है तब तो आपका दिमाग आसमान तक चढ़ जाता है। दस पांच हजार लेने के सिवाय अन्य बात भी न करेंगे।

बिल्ली आदि जानवर तो अपनी संतान के सुख का ध्यान रखकर स्थान देखते हैं और आप लोग इन्सान कहलाने वाले प्राणी होकर लड़के लड़कियों के सुख की तरफ न देखकर रुपयों की तरफ देखते हो, यह बड़ी हैरानी की बात है। जो अपनी संतान तक की दया नहीं कर सकता और उसकी कीमत लेकर बेच देता है वह दूसरों की क्या दया करेगा। कन्या व पुत्र की शादी के लिए सामने वाले को मजबूर करके कुछ भी रकम की लेन देन करना अन्याय है और अनुकम्पा को दूर हटाना है।

मतलब कहने का यह है कि भक्त कहता है कि राम को जनक के पास जाने में संकोच हो रहा था उसी प्रकार का संकोच अपने कृत्य देख देख कर मुझे हो रहा है। हे प्रभो ! मैं किस प्रकार तुझे अपना मुख दिखाऊं और तुझ तक पहुंचूं। पराये दुःख से दुःखी होना और पराये सुख से सुखी होना संत जनों का स्वभाव है। भगवन् ! तेरी शरण में आने वाले के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने को पर दुःखे दुखी और पर सुखे सुखी माने। किन्तु मेरा बर्ताव इसके विपरीत है। मैं दूसरों को सुखी देखकर ईर्ष्या की अग्नि में जलता रहता हूं और दूसरों को दुःखी देखकर बड़ा प्रसन्न होता हूं।

भगति विराग ज्ञान साधन कहि, बहुविधि डंहकत लोग फिरुं।.
सिव सरवस सुखधाम नाम तव बेचि नरकप्रद उदर भरुं।।

हे प्रभो ! एक बात और है। मैं दूसरे लोगों को भक्ति ज्ञान और वैराग्य की बातें बताता फिरता हूं। ज्ञान वैराग्य और भक्ति की बातें बताकर लोगों को अपने पर फिदा बना लेता हूं। मैं इस खूबी से धर्म की बातें व महात्म्य बताता हूं कि श्रोता जन प्रसन्न होकर गद्गद् होने लग जाते हैं। किन्तु मेरा खुद का

हृदय बिल्कुल कोरा ही रह जाता है। मेरे दिल में ज्ञान वैराग्य और भक्ति छूते तक नहीं हैं। जिस प्रकार हलुए को हिलाने वाला चम्मच हलुए का स्वाद नहीं लेता। उसी प्रकार मैं भी दूसरों का मनोरंजन मात्र करता हूं। स्वयं कोरा ही रह जाता हूं। हां, अपने पर अच्छा उपदेशक होने का अभिमान रूपी कचरा और चढा लेता हूं। अहो ! मैं कैसा अच्छा वक्ता हूं कि इतनी विशाल जन मेदिनी मेरे व्याख्यान में उपस्थित होती है। इस प्रकार नम्र बनने के बजाय अधिक अभिमानी बनता हूं। तथा तेरे नाम से आत्म कल्याण करने के स्थान पर अपनी पेट भराई करता हूं। अपनी मुराद पूरी करने के लिए तेरा नाम जपता हूं। यदि मेरी विषैली इच्छाएं पूरी नहीं होती तो नाम जपना भी छोड़ देता हूं।

रज सम पर अवगुण सुमेरु करि गुन गिरिसम रज ते निदरौं।,
जानत हौं निज पाप जलधिसम जलसीकर सम सुनत लरौं।।

मुझ में समुद्र जितने अवगुण भरे हुए है फिर भी यदि कोई एक बूंद जितना अवगुण प्रकट कर देता है तो मेरी आंखें लाल हो जाती हैं। मै महान् पापी हूं फिर भी यदि कोई जरा सा प्रकट कर देता है तो उससे लडने के लिए उतारू हो जाता हूं। इतना ही नहीं किन्तु दूसरों के रज के समान दोष को पहाड जितना करके बताता हूं और अपने पहाड समान दोष को राई जितना बताने की भी हिम्मत नही है। अपने छोटे से गुण को पहाड़ जितना महान् बनाकर बताने में बड़ा आनन्द आता है और दूसरे के बड़े गुण को देखकर आनन्द नहीं आता उल्टे दुःख होता है। उसकी निन्दा करने मे मजा आता है। इस प्रकार अनेक रूप बनाकर मै लोगो को ठगा करता हूं। किन्तु वासना रहित होकर तेरा स्मरण करने के लिए एक क्षण जितना समय भी नहीं मिलता। ऐसी दशा में हे प्रभो ! तेरा स्मरण करूं तो कैसे करूं। कैसे तेरी प्रार्थना करूं कैसे तुझ से भेंट करूं।

नाना वेश बनाय दिवस निशि पर बीति जेहि तेहि जुगति करूं।
एकौ पल न कबहूं अलोल चित्त हित दे पद सरोज सुमरूं।।

हे दयामय ! मेरे मे इतने अवगुण हैं। साथ साथ सन्तजनो से द्रोह करने का महान् दुर्गुण भी है। सन्तो से द्रोह करना धर्म की जड काटना है। मैं सन्तो से द्रोह करता हुआ भी भक्त मण्डली में अपना नाम आगे रखना चाहता

को भी पश्चात्ताप था कि मैंने निष्कारण जानकी को जंगल भेज दिया था। अव जनक को मुख कैसे दिखाऊं। राम जनक के सामने जाने में सकुचाते थे। जनक भी इस वात को ताड़ गये थे कि राम मुझ से मिलने में संकोच कर रहे हैं और उनको अपने कृत्य का पूरा पश्चात्ताप है। इसलिए स्वयं जनक ने राम से कहा कि राम ! तुमने जो कुछ किया है वह समयानुसार उचित ही है। ऐसा करना आवश्यक था। तुमने इस कार्य के द्वारा सीता को परीक्षा की कसौटी पर कसा है। अतः चिन्ता और संकोच छोड़ो।

जनक ने रामचन्द्र को इस प्रकार आश्वासन दिया था। पर भक्त क्या कहता है सो सुनिये–

अधम उद्धारन नाम तिहारो चावो इन संसार जी।

हे प्रभो ! मैं अधम हूं और आप अधम पापी के उद्धारकर्त्ता हैं। आज दिन तक आपने मेरा उद्धार इसलिए नहीं किया क्योंकि मैंने अपने पाप छिपा रखे थे। मुझे अपने कुकृत्यों का पछतावा नहीं था। कुकृत्य करके और अधिक प्रसन्न होता था। दुष्टकृत्यों को भले कृत्य मानता था। अव मैं आपकी शरण में आकर अपने पापों को प्रकट करता हूं और हृदय से पश्चात्ताप करता हूं। अव मेरा शीघ्र ही उद्धार कीजिये। संसार समुद्र से मेरी नैया को पार उतारिये।

लोग धर्मी वनना चाहते हैं। लेकिन अपने पापों को छिपाकर धर्मी वनना चाहते हैं, यही उल्टी वात है। पापों को छिपाकर धर्मी वनने की वात एक कथानक द्वारा वताता हूं।

एक वार श्रेणिक राजा ने अपनी वुद्धिशाली पुत्र अभय कुमार से पूछा कि पापी लोग अधिक हैं या धर्मी जन। अभय कुमार ने उत्तर दिया कि हैं तो पापी लोग ही अधिक किन्तु अपने को धर्मी कहलाने और वनने वाले लोग अधिक मालूम देते हें। पुनः राजा ने पूछा कि यदि लोग धर्मी वनना चाहते हैं तो वन क्यों नहीं जाते। अभय ने उत्तर दिया कि अपने पाप छिपाकर लोग धर्मी वनना चाहते हैं। यही कारण है कि वे वास्तविक धर्मी नहीं वन पाते। राजा ने कहा– यह वात मुझे प्रत्यक्ष वतलाओ तव मेरे ध्यान में आयेगी।

अभयकुमार ने नगर के वाहर दो खेमे (डेरे) तनवा दिए। एक खेमा काला था और दूसरा सफेद। खेमे तनवा कर यह घोषणा नगर में करवा दी गई कि जो लोग पापी हो वे काले खेमे में जावें और जो धर्मी हों वे सफेद खेमे में। राज्य की घोषणा सुनकर धडाधड लोग सफेद खेमे में घुसने लगे। जव सफेद खेमे में घुसने की जगह न रही तो लोग उसके वाहर वैठ गये मगर काले खेमे की तरफ जाने की किसी ने इच्छा तक नहीं की। केवल एक श्रावक काले खेमे मे जाकर वैठ गया।

जब सवेरा हुआ और अभयकुमार के साथ आकर राजा ने दोनों खेमों की हालत देखी तो उसके आश्चर्य का पार न रहा। सफेद खेमा लोगों से ठसाठस भरा है। बल्कि अनेक लोग जगह की कमी के कारण बाहर बैठे हुए हैं। काले खेमे में केवल एक श्रावक बैठा हुआ है अभयकुमार ने आज्ञा दी कि सफेद खेमें में से एक एक व्यक्ति निकल कर अपने धर्मीपन का सबूत पेश करे। हुक्म सुनते ही सबसे पहले वेश्या निकल कर आई और कहने लगी कि महाराज ! मै सबसे अधिक धर्मात्मा हूं। मैं जो खाती पीती हूँ, पहनती ओढ़ती हूँ, बनाव सिंगार करती हूं वह सब परोपकार के लिए ही करती हूं। पराये युवकों का मनोरंजन और वासनातृप्ति करना मेरा ध्येय है। मेरे समान परोपकारी जीव और कौन होगा।

इसी प्रकार चोर जुआरी रण्डीबाज आदि लोग आकर अपने अपने कार्य की उपयोगिता और औचित्य सिद्ध करने लगे। शराबी कहने लगे हमारे समान समाधि चढ़ाने वाला और कौन होगा। साधुओं को समाधि चढ़ाने में देरी लगती है। किन्तु हम तो एक बोतल पी कर तुरन्त समाधिस्थ हो जाते हैं। इसी प्रकार पर दारा से गमन करने वाले कहने लगे कि हमारे समान मुक्त जीवन बिताने वाला कौन होगा। हम किसी एक स्त्री के बन्धन में नही फंसते। हम सदा पक्षी की तरह स्वतंत्र रहते है जब मन चाहा किसी वृक्ष पर जा बैठते हे। हमारे समान निःस्पृह कौन होगा।

फिर महाजन लोग आये और अपने धर्मात्मापन की सबूते पेश करने लगे। हम लोग न खेती करते है न व्यापारादि। हम केवल ब्याज पर रुपये देते है और सीधा सामान लाकर अपना गुजारा करते है। हम किसी प्रकार का पाप नहीं करते।

मित्रों ! आज इस नाजुक जमाने में आलस्य ने कैसा पाप करा रखा है, कहते हुए लज्जा आती है। लोग समझते हैं कि हम ब्याज खाते हैं, दूसरा कोई काम नही करते अतः हमको किसी प्रकार का पाप नही लगता। मगर मै कहता हू ब्याज खाना ही एक बड़ा पाप हैं और ब्याज के कारण दूसरे भी अनेक पाप लगते हैं। पंचभदरा मे प्रतापचन्दजी श्रावक रहते थे। पहले उनकी श्रद्धा जीव रक्षा करने मे पाप होने की थी मगर बाद मे वे शुद्ध श्रद्धाधारी बने थे। एक बार वे गंगापुर में मुझसे मिले। मैंने पूछा कैसे आये हो ? उन्होंने उत्तर दिया कि आपके दर्शन की भावना तो थी ही किन्तु अभी एक दूसरे प्रयोजन से आया हू। एक शंका लेकर उपस्थित हुआ हू।

वताया था कि नमक खरीदने वास्ते रुपये लेता हूं। वह बहुत दिनों से मुझे नहीं मिला था अतः मेवाड़ में उसके होने की खबर पाकर यहां आया हूं। उससे रुपये मांगे तब कहने लगा कि नमक खरीदना न पोसाता था अतः आपके रुपयों से बकरे खरीद लिए हैं। अभी बकरों का भाव मंदा है। यदि आप कुछ समय तक ठहर जाते हैं तब तो ठीक है अन्यथा अभी बकरे कसाइयों को बेचकर आप के रुपये चुका दूं। वणजारे से यह हकीकत सुनकर मैं चुपचाप आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूं।

यह ब्याज खाने का पाप रहा या नहीं ? लेकिन लोग बिना परिश्रम की सीधी कमाई देखते हैं अतः ब्याज में पाप होने की कल्पना तक नहीं करते। वे यही कहते और सोचते भी हैं कि हम क्या पाप कर रहे हैं। तिजोरी में से रुपये निकाले और जरूरतमंद को दे दिए। तब वह वापस दे जाता है तब ब्याज सहित रुपये ले लेते हैं। इसमें क्या पाप हुआ। किन्तु इस मान्यता में बड़ी भूल है।

इस प्रकार सब लोग सफेद तम्बू में से निकल कर एक एक अपने अपने धर्मी होने की दलीलें पेश करते गये। सब कोई अपने पापों को छिपाना चाहते थे या पापों को धर्म का रूप देकर धर्मी बनना चाहते थे। राजा ने उन सबको अपने अपने घर जाने की इजाजत दे दी। अब वह काले खेमे की तरफ आया। वहां पर केवल एक श्रावक बेठा हुआ पाया। वह श्रावक धर्मात्मा माना जाता था और बहुत प्रख्यात भी था। राजा ने उससे पूछा कि आप इस काले तम्बू में कैसे बैठे हैं। आपको सारा शहर धर्मात्मा मान रहा है। फिर आप क्यों इस काले तम्बू में आकर बैठे हैं। आपके लिए सफेद तम्बू उपयुक्त है।

श्रावक ने उत्तर दिया कि महाराज ! मैं पापी हूं या धर्मात्मा यह बात सारे शहर के लोगों की अपेक्षा मैं अच्छी तरह जानता हूं। मेरे दिल को मैं पहचानता हूं। आपने मुझे अपने पाप प्रकट करने का अच्छा अवसर प्रदान किया। मैंने कई लोगों को कई तरह से धोखा दिया है; कइयों के साथ विश्वासघात किया है। मैं उचित अवसर की खोज में था कि आपने यह सुअवसर प्रदान कर मेरे पापों को प्रकट करवा दिया। मैं श्रीमान् का जितना उपकार मानूं उतना थोड़ा है। अब आप जैसा उचित समझें, करें। दण्ड दें या क्षमा प्रदान करें, यह आपकी इच्छा पर निर्भर है।

राजा श्रावक की बात सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसे अभयकुमार की इस बात पर विश्वास हो गया कि दुनिया में पापी अधिक हैं मगर अपने को धर्मात्मा कहलाने की अधिकांश इच्छा रखते हैं। धर्मी लोग कम हैं। किन्तु पापी लोग धर्मी का ढ़ोंग रचकर धर्मियों की श्रेणी में अपना नाम लिखाना चाहते हैं। पापी लोग अपना पाप छिपाकर दुनिया के सामने अपने को स्वच्छ और शुद्ध रूप में पेश करते हैं।

भाइयों ! उस श्रावक ने अपना पाप प्रकट कर जिस प्रकार अपने को हल्का बनाया था वही तरीका पाप नाश करने का है। लेकिन लोग अपने पापों को दबाकर जबान की सफाई से अपने को धर्मात्मा मनवाना चाहते हैं। कहा है कि–

जीभ सफाई करके भाई श्रावक नाम धरावे।
पोली मुट्ठी जहा असारे ज्ञानी यों फरमावें।।

भीतर कुछ और भावना है और जबान से कुछ और बात बताकर अपने को शुद्धाचारी बताने की कोशिश करना व्यर्थ है। शास्त्र में बताया गया है कि पोली मुट्ठी असार है। उसी तरह जिसका दिल कोरा है, सहानूभूति शून्य है वह धर्मात्मा नहीं हो सकता। भले ही कुछ लोग उसे धर्मात्मा मानने की भूल कर लें। किन्तु सदा के लिए सच्चाई छिप नहीं सकती। अनाथी मुनि के चरित्र में यह बात आगे आने वाली है कि पोली मुट्ठी की तरह भ्रम या पोल चलाना धर्म नहीं हो सकता।

मेरे कहने का नतीजा यह निकलता है कि अपने भीतर में छिपे हुए गुप्त पापों को प्रभु के सामने प्रकट करने से पाप छुप सकते हैं। प्रभु अशरण का शरण है। वह अधम से अधम व्यक्ति का भी उद्धारक है। किन्तु शर्त इतनी है कि उसके समक्ष कूट कपट नहीं चल सकता बच्चे के समान भोले बनकर निखालस हृदय से हृदय शुद्धि करनी चाहिए।

जो मन में सोई बैन में, जो बैननि सोई कर्म।
कहिये ताको सन्तवर, जाको ऐसो धर्म।।

जो बात मन में हो वही बात शब्दों द्वारा व्यक्त करना। और जो बात व्यक्त की जाय आचरण भी उसी के अनुकूल हो तभी मनुष्य संत कहा जा सकता है। मन में कुछ और रखना, शब्दों से कुछ और बताना, तथा आचरण कुछ और ही प्रकार का करना दुर्जन का लक्षण है। ऐसा व्यक्ति भक्त नहीं बन सकता।

आप लोग भी अपना पाप दबाओ मत। किन्तु परमात्मा के सामने प्रकट कर दो। वह अधम उद्धारन और पतित पावन है अत उसके सामने दिल खोलकर रखने से आपका पापों से छुटकारा हो जायगा। आप अधर्म को अधर्म मानोगे तभी सम्यग्दृष्टि होकर आत्म कल्याण कर सकोगे।

वैर से वैर शान्त नहीं हो सकता

सुमति जिनेश्वर साहिबा जी, मेघरथ नृप नो नन्द;
सुमंगला माता तणो, तनय सदा सुख कन्द।
प्रभु त्रिभुवन तिलो जी ।।1।।

प्रार्थना— यह भगवान् सुमतिनाथ की प्रार्थना है। इस प्रार्थना में भक्त ने भगवान् सुमतिनाथ से बड़ी आशा की है। उसकी आशा वाजिव है या गैर वाजिब इस बात का ख्याल किये बिना उसने आशा की है। वह किसी प्रकार के तर्क वितर्क में न पड़कर अनन्य भाव से हृदय में परमात्मा की भक्ति को स्थान दे रहा है। किसी के साथ वाद विवाद में पड़कर वह प्रभु भक्ति का अवलम्बन नहीं ले रहा है किन्तु स्वतः प्रस्फुटित हार्दिक भावों से प्रेरित होकर मालती पुष्प से भ्रमर की तरह प्रभुभक्ति का रसपान कर रहा है। वह किसी के द्वारा निन्दा किये जाने की पर्वाह नहीं करता और न किसी की स्तुति का ही ख्याल करता है। वह अपनी धुन में मस्त है। यदि भंवरे से कोई कहे कि मालती के फूल में अमुक दोष हैं तो वह बुरा नहीं मानता किन्तु रस पीने में मस्त रहता है। इसी प्रकार भक्त भी परमात्मा के स्वरूप के विषय में वाद विवाद और तर्क वितर्क में न पड़कर केवल भक्ति में ही लवलीन रहता है। कहा है—

वादो नावलम्बनीयः बाहुल्यावकाशत्वात् नियतत्वाच्च।

भक्त लोगों को चर्चा में न पड़कर परमात्मा की भक्ति अपनानी चाहिए। कारण कि चर्चा या वाद विवाद से बात बढ़ती ही जाती है। कोई खास नतीजा नहीं निकलता। महाभारत में कहा है कि—*तर्कोऽप्रतिष्ठः*

अर्थात् तर्क की कोई खास प्रतिष्ठा नहीं है। तर्क का अंत भी नहीं है। जिसकी जितनी बड़ी बुद्धि उतना ही बड़ा उसका तर्क होता है। प्याज के छिलके उतारे जाओ आखिर में कुछ न मिलेगा। अतः भक्त का कर्त्तव्य है

कि वह भ्रमर की तरह निन्दा स्तुति या वाद विवाद में न पड़कर प्रभु भक्ति करता जाय।

सूर्य विकासी कमल से यदि कोई कहे कि सूर्य की किरणें गरम होती है अतः तू सूर्य किरणें मत ग्रहण कर तो क्या वह उसकी बात पर ध्यान देगा? कदापि नहीं। पपीहा से कोई कहे कि सुन्दर सरोवर भरा हुआ है पानी क्यों नहीं पी लेता, क्यों स्वाति नक्षत्र की बून्दों के लिए प्यासा मर रहा है ? तो क्या पपीहा उसकी सलाह को मानेगा ? नहीं मानेगा। भक्त लोग भी ऐसे होते हैं। वे बुद्धिवाद में न उलझ कर अनन्य भाव से प्रभु भक्ति करने में ही व्यस्त रहते हैं। उनको किसी के द्वारा की हुई निन्दा से दुःख नहीं होता। किन्तु प्रभु भक्ति में विघ्न आने पर दुःख होता है। यदि प्रभु भक्ति बराबर होती रहे तो उन्हें बडा आनन्द आता है। इस बात के सिवा दुनिया की किसी बात में उनको सुख दुःख नहीं होता।

आपको भी प्रभु भक्ति करने का यह सुन्दर अवसर मिला है। पर्युषण पर्व के आधे दिन व्यतीत हो चुके हैं। अब चार दिन और बाकी हैं। इन चार दिनों में अनन्य भाव से ऐसी ही भक्ति करो। ऐसा अवसर फिर नही मिल सकता। जो वक्त हाथ से निकल गया वह पुनः नहीं आने का है।

अन्तगड सूत्र का जो प्रसंग चल रहा है उसमे से तीन चार भाव मेरे हृदय को अत्यन्त प्रसन्न करने वाले है। उसमें से गज सुकुमार के चरित्र से भगवान् सुमतिनाथ की भक्ति बताता हूं।

आप लोग यह बात जानते है कि गज सुकुमार का जन्म किस अवसर पर हुआ था। फिर भी उस प्रसंग को दुहरा कर कुछ सरल बना देता हूं। देवकी को अभी तक यही ज्ञात था कि उसके सात पुत्र हुए थे। जिनमें से एक ग्वाले के घर पर रह कर बड़ा हुआ और छ पुत्र कंस के द्वारा मारे गये थे। किन्तु जब उसने भगवान् अरिष्टनेमि से यह सुना कि उसके छ पुत्र संयम का पालन कर रहे है, तब उसकी खुशी का पार न रहा। उसे कितनी खुशी हुई होगी, हम अन्दाजा नहीं लगा सकते।

भी पुत्र थे। वे जितने मुझे प्यारे थे उतने उनको भी थे। किन्तु कंस के साथ वचन वद्ध होने से सत्य की रक्षा के लिए उन्होंने उसको सौप दिए थे। मुझे तर्क वितर्क करने की आवश्यकता न थी। जो कुछ उन्होंने किया है सत्य का पालन करने के लिए किया है। वे चाहते तो वचन का पालन करने के लिए कोई दूसरा मार्ग भी अपना सकते थे। किन्तु उन्होंने जिस रूप में वचन दिया था उसी रूप में पाला है।

मगर जब भगवान् अरिष्ट नेमी से यह सुना कि उसके पुत्र मारे नहीं गये बल्कि सुलसा ग्रहपत्नी के घर बड़े हुए और बड़े होकर भागवती दीक्षा अंगीकार की है तक देवकी को सत्य पर दृढ़ विश्वास हो गया। सत्य की अखण्ड महिमा का वह गुणगान करने लगी। देवकी को प्रसन्नता तो हुई। मगर साथ में मातृ प्रेम भी उमड़ आया। उसके मन में विचार आया कि मैंने सात पुत्रों को जन्म दिया मगर एक का भी लालन पालन व प्यार नहीं किया छः पुत्र सुलसा के घर बड़े हुए और कृष्ण यशोदा के यहां ! मैं व्यर्थ ही माता कहलाई। जिसका बचपन में मैंने लाड़ प्यार व पालन पोषण नहीं किया उसकी मैं माता कैसी हुई। मैंने केवल पेट में बोझा सहन किया है। पुत्रों के प्रति अपना कर्त्तव्य अदा नहीं किया है।

इस प्रकार की चिन्ता देवकी को हुई। महापुरुषों को चिन्ता होती ही नहीं है। और यदि होती है तो उसमें विधि का कोई संकेत छिपा रहता है। देवकी की चिन्ता में भी कई रहस्य हैं। देवकी चिन्ता मग्न अवस्था में बैठी है कि इतने में योगायोग से श्री कृष्ण उसको प्रणाम करने के लिए आ गये। देवकी को वंदन करने की बारी श्री कृष्ण को हर छ मास में आया करती थी, क्योंकि श्री कृष्ण की माताएँ बहत्तर हजार थी सभी को वे माता की तरह मानकर प्रणाम करते थे। दैव योग से वह बारी भी उसी दिन आ पड़ी और श्री कृष्ण आ गये। माता को उदासीन देखकर कृष्ण विचार सागर में डूब गये। वे मन में सोचने लगे कि मेरे रहते मेरी माता को किसी प्रकार की चिन्ता हो यह मेरे लिए तथा मेरे राज्य वैभव के लिए लज्जा की बात है।

श्री कृष्ण ने माता को पुकार कर कहा– माताजी ! आज आप उदासीन क्यों बैठी हैं जब मैं प्रणाम करने आया करता हू तब आप सदा प्रसन्न वदन होकर मुझसे बोला करती थी और लाड़ प्यार करती थी। किन्तु आज क्या कारण है जो आप इस प्रकार चिन्ता मग्न हो रही हैं ? मुझसे भाषण भी नहीं करती, मेरे सिर पर हाथ नहीं फेरती।

कृष्ण की बोली सुनकर देवकी का ध्यान भंग हुआ। उसने कहा– पुत्र कृष्ण ! मैंने तुम्हारा आगमन जाना ही न था। तुम मेरे योग्य और सच्चे पुत्र हो। अतः दुःख का कारण पूछते हो किन्तु अपना दुःख तेरे सामने क्या कहूं?

हू तुझ आगल शी कहूं कन्हैया,
बीतक दुःखड़ा री बात रे गिरधारीलाल।
दुःखनी तो जग में घणी कन्हैया,
पिण दुःखनी थारी मांय रे गिरधारीलाल।

इस विषय का महात्माओं ने सरल काव्यों द्वारा बड़ा सरस वर्णन किया है। उसका थोड़ा नमूना आपके सामने रखता हूं।

देवकी कहती है– पुत्र ! तू मुझ से मेरे दुःख की बात पूछता है। किन्तु मैं क्या कहूं। इस जगत् में अनेक स्त्रियां दुःखी हैं लेकिन मेरे समान दुःखियारी और कौन स्त्री होगी।

महापुरुषों को जब चिन्ता होती है तो वे उसको सच्चा रूप देते हैं। कई लोग झूठी चिन्ता करने लगते हैं और थूक लगाकर आंसू दिखाने लगते है। पहले तो महापुरुषों को चिन्ता होती ही नहीं है और यदि कोई चिन्ता होती है तो उसके समान कोई दुःख नहीं समझते। इसीलिए देवकी कहती है कि मेरे समान दुखियारी स्त्री इस जगत् में कौन होगी।

देवकी की बात सुनकर श्रीकृष्ण कहने लगे कि माता ! जब तेरे समान कोई दुःखी नहीं है तो मेरे समान दुःखी कौन होगा ! जब मेरी माता दुःखी है तो मै सुखी कैसे हो सकता हूं। मुझ को धिक्कार है जो मेरे रहते मेरी माता दुःखी है।

टगमग पग टकतो नहीं खाय सके नहीं खाद।,
उठी न सकतो आपथी लेश हती नहीं लाज।
ते अवसर आणी दया बालक न मां बाप ।,
सुख देखे दुख टेवने ए उपकार अमाप।
कोई करे एवे समय बे घड़ियक बरदास।,
सारी उमर तक रहे ते नर नो नर दास।

आज मातृ शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया जाता है। लेकिन जब तक माता और पुत्र के सम्बन्ध का पूरा ख्याल न दिलाया जाय तब तक शिक्षा अधूरी है। आज इस बात पर ध्यान दिया जाता है या नहीं, यह बात दूसरी है। किन्तु जब तक माता और पुत्र का सम्बन्ध रहेगा। इस कविता का भाव भी कायम रहेगा। लोग बड़े होकर मूंछों पर ताव देने लगते हैं। किन्तु उस समय को याद नहीं करते जब उनके पैर जमीन पर न टिकते थे, घिस–घिस कर चलते थे, स्वयं हाथों से खाना नहीं खा सकते थे, और अपनी रक्षा भी आप नहीं कर सकते थे। तब की बात याद करो कि माता का कितना उपकार है और उसका कितना महत्व है। जैन शास्त्र में माता–

"देवयगुरुजण संकासा" (श्री उपासक दशांगसूत्र अध्ययन तीसरा)

अर्थात् माता देव और गुरुजनों के समान है। इससे अधिक माता का और क्या महत्व हो सकता है कि उसे देव और गुरु तुल्य बताया गया है। जैन शास्त्र ऐसी बात बताता है। मगर आज लोग अपने बर्ताव के द्वारा शास्त्र वाक्य पर हड़ताल फेर रहे हैं। यह आधुनिक शिक्षा का दोष है। आज की शिक्षा मातृ प्रेम, धर्म प्रेम और गुरु प्रेम को बढ़ाने के बजाय घटा रही है। ऐसी शिक्षा कुशिक्षा कही जायगी। सुशिक्षा वही कही जाती है जो मातृ प्रेम, धर्म प्रेम और गुरुप्रेम की वृद्धि करे।

कृष्ण को महापुरुष मानने के सम्बन्ध में किसी का मतभेद नहीं है। वे भी जब अपनी माता के दुःख से दुखी हो गये तब आप किस गिनती में हैं। आपको तो उनसे अधिक मातृ सेवा करनी चाहिए।

माता की बात सुन कृष्ण कहने लगे कि माता जी ! आपने अपने को दुःखी तो बताया मगर दुःख का कारण नहीं बताया। कृपा करके कारण बताइये। आपको क्या दुःख है यह जाने बिना मैं क्या कर सकता हूं। कारण ज्ञात होने पर उसे मिटाने का प्रयत्न किया जाय।

क्या देवकी को खाने पीने या पहनने ओढ़ने का दुःख हो सकता है? या बहू कहना नहीं मानती उसका दुःख है ? अथवा उसकी आज्ञा नहीं चलती

थी इस बात का दुःख है ? नहीं, ऐसी बातों से उसको दुःख नही हो सकता था। कृष्ण स्वयं इस बात को समझते थे कि इन छोटी मोटी बातों का दुःख मेरी माता नहीं माना करती। कोई बडा दुःख है तभी इतनी चिन्ता में मग्न थी। धन, कुटुम्ब या मेरी चिन्ता से भी बढकर कोई चिन्ता है। जो चिन्ता साधारण व्यक्ति से नहीं मिटाई जा सकती वैसी चिन्ता होनी चाहिए। कृष्ण ने आग्रह पूर्वक पूछा कि शीघ्र चिन्ता का कारण बताने की कृपा करो।

कृष्ण का आग्रह देखकर देवकी कहने लगी– प्रिय पुत्र ! तेरे सामने मै अपनी चिन्ता का कारण व्यक्त न करूंगी तो किसके सामने करूंगी। तू ही मेरा दुःख पूछने और सुनने वाला है। तथा दुःख दूर करने वाला भी तू ही है। क्या कहूं, कहा नहीं जाता। कृष्ण ! मैंने सात पुत्रों को जन्म दिया मगर एक भी पुत्र को शिशु अवस्था में खेला नहीं सकी। व्यर्थ पेट में भार ढोया और व्यर्थ ही माता की पदवी पाई। छ पुत्र तो सुलसा के घर बड़े हुए और दीक्षित हुए जिसका दर्शन व परिचय अर्हन्त अरिष्टनेमि से मुझे हुआ। और सातवां तू यशोदा के घर गोकुल में बड़ा हुआ। मैं लाड़ प्यार करने से कोरी ही रह गई। जिसमें हीरे का गुण नहीं है उसे व्यर्थ हीरा कहा जाता है। चित्र के सूर्य को सूर्य कहने से क्या लाभ ? जो ताप आदि नहीं दे सकता।

कृष्ण ! माता वह है जो अपने पुत्र को नहलाती धुलाती हो, उसका मलमूत्र साफ करती हो, उसको दूध पिलाती हो और उससे लाड प्यार करती हो। मैं ये सब कर्त्तव्य पूरा न कर सकी। यों ही माता का नाम धराया है।

कृष्ण ने कहा– अच्छा, मै आपका दुःख समझ गया। मैं अभी आपका दुःख मिटाये देता हूं। कृष्ण लब्धिधारी थे। अतः तुरन्त वैक्रिय लब्धि का प्रयोग करके बाल रूप धारी कृष्ण बन गये। और अपनी बाल चेष्टाये और बाल क्रीडाये करने लगे। कृष्ण का बाल रूप देखकर देवकी प्रसन्न हुई और उनको खेलाने लगी।

मिल गई है। कृष्ण हठ करने लगे कि इसी दूध में से शक्कर कम कर दे। माता ने वहुतेरा समझाया कि अव यह शक्कर नहीं निकल सकती। किन्तु कृष्ण झगड़ने लगे, रोने लगे और उछलने कूदने लगे। माता देवकी परेशान हो गई और कहने लगी– कृष्ण ! अब तेरी माया समेट ले। मैं हैरान हो गई हूं।

कृष्ण को तो यही कहलाना था और माया समेट कर राज्यकार्य में लगना था। माता को परेशान देखकर बाल रूप समेट कर पुनः मूल रूप धारण कर लिया। जिस रूप में आये थे वही रूप बना लिया। देवकी कहने लगी– कृष्ण ! तू इस बात को समझता है कि दूध में मिली शक्कर नहीं निकाली जा सकती। फिर इतनी जिद्द क्यों पकड़ी थी ? कृष्ण बोले– माता, मैं इस बात को जानता हूं कि दूध में मिली शक्कर नहीं निकाली जा सकती। किन्तु बालक इस बात को क्या जाने। मैं उस समय बालक था। मैंने बालोचित हठ पकड़ी थी।

देवकी बोली– कृष्ण ! यह ठीक है। किन्तु इतने मात्र से मेरे मन को संतोष नहीं होता। इस बनावटी रचना से मेरे मन को तृप्ति नहीं होती।

कृष्ण ने कहा– माता ! अच्छी बात है। मैं ऐसा उपाय सोचता हूं कि जिससे मेरे छोटा भाई पैदा हो। आप चिन्ता और दुःख छोड़कर प्रसन्नवदन रहियेगा।

आप लोग श्रावक हैं अतः कृष्ण के कार्य पर ध्यान लगा कर विचार करिये। भाई की प्राप्ति के लिए कृष्ण ने कौनसा उपाय काम में लिया था इसको सोचो। आप लोग बार बार कहा करते हो कि महाराज ! हम श्रावक हैं, हमें घर वार संभालना पड़ता है, बाल बच्चों का रक्षण करना पड़ता है। अतः ऐसे कई कार्य करने पड़ते हैं जिनका धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं होता। आप साधु हैं अतः आपके लिए सब कुछ निभ सकता है किन्तु मित्रों ! मैं पूछता हूं कि क्या कृष्ण साधु थे? नहीं, कृष्ण आदर्श गृहस्थ थे। फिर भी भाई की प्राप्ति के लिए किसी भैरूं भवानी या पीर आदि के पास नहीं गये थे। जिस कार्य से धर्म लज्जित हो वैसा कार्य नहीं किया था।

कृष्ण जानते थे कि भाई होने का काम देव सहाय से पूरा हो सकता है और देव का आह्वान तप किये बिना नहीं हो सकता। अतः कृष्ण सीधे पौषधशाला में चले गये।

आप लोग ऐसे देवों के पास जाकर सिर तो नहीं रगड़ते, जिनके सामने वकरे भैंसे कटते हैं और रक्त की नदी वहती रहती है! यदि कहो कि यह देव हमको धन और पुत्रादि देते हैं अतः इनके पास जाते हैं तो मैं कहता

हूं कि यह कार्य आपके धर्म को लजाने वाला है। क्या मैं आशा रखूं कि ऐसे कार्य करके आप जैन धर्म को कलंकित न करेंगे। धर्म को कलंकित करके आप सुखी नहीं हो सकते। सुखी होने का रास्ता धर्म की रक्षा करना और उस पर कलंक न लगने देना है।

कृष्ण पौषधशाला जाकर ब्रह्मचर्य पूर्वक तीन दिन का उपवास (तेला) करके बैठ गये। किसी गादी तकिये के सहारे नहीं बैठे किन्तु घास के आसन पर बैठे थे। शास्त्र में कहा– 'दब्भ संथारा' अर्थात् घास का बिस्तर। घास के बिस्तर का बड़ा महत्व है। किन्तु आज मैं किसी श्रावक के पास घास का संस्तारक नहीं देखता हूं।

कृष्ण के तीन दिनों के तप के प्रभाव से देवता का आसन हिल गया। देवता ने उपयोग लगाया और कृष्ण के पास आकर उपस्थित हो गया। देव हाथ जोड़कर बोला– क्या आज्ञा है ? मुझे क्यों याद किया गया है ?

आज कृष्ण मौजूद नहीं है। मगर वह तप तो मौजूद है जिसके सहारे देव का आसन भी हिल जाता है। जिसके तप से देवासन भी हिल सकते हैं उस तप का आलम्बन न लेकर इधर उधर भटकते फिरते हो यह लज्जा की बात है।

कृष्ण ने देव से कहा कि मेरी माता को एक पुत्र की आवश्यकता है तुम ऐसा उपाय करो जिससे मेरे भाई हो। इसी प्रयोजन के लिए तुमको कष्ट दिया है।

कृष्ण की बात सुनकर देव ने कहा– कृष्ण ! आपने मुझको ऐसे समय याद किया है जब कि तुम्हारे भाई होने का योग है। तुम्हारे भाई होने वाला है। जब वर्षा होने वाली थी कि लोगों ने वर्षा के लिए मनौती मानी। वैसी ही बात तुम्हारी भी हुई है। किन्तु एक बात है कृष्ण, तुम्हारे भाई अवश्य होगा। लेकिन वह छोटी अवस्था में ही भगवान् अरिष्ट नेमी के पास ज्ञान सुनकर दीक्षित हो जायगा।

आप लोग इस बात का विचार करिये कि अपने भाई के दीक्षित होने की बात सुनकर कृष्ण को प्रसन्नता हुई होगी या रंज हुआ था। आज लोग दीक्षा का नाम लेते ही डरने लगते है। उनको अच्छे विद्वान् और संस्कार शील साधु तो चाहिए। लेकिन दीक्षा नहीं चाहिए। बिना योग्य व्यक्तियों के दीक्षित हुए योग्य साधु कहां से मिल सकते हैं। पुत्र की कामना तो करना मगर शादी न करना। यह बात कैसे हो सकती है कि बिना शादी किये पुत्र प्राप्ति हो। जब दीक्षा न होगी तो साधु क्या आसमान से टपकेंगे ? अच्छे साधु आप लोगों

की भावनाओं से पैदा हो सकते हैं। यदि आपकी यह भावना रहे कि हमारा पुत्र बड़ा होकर दीक्षा धारण कर संयम धर्म का पालन करे तो अच्छा है, तव योग्य साधु मिल सकते हैं। ऐसी भावना के अभाव में ऐसे ही साधु मिलेंगे जो दूसरों से सिर झुकवाने के अभिलापी हैं। अथवा कीर्ति आदि के कामी हों। उनसे आत्म कल्याण नहीं हो सकता।

मेरा भावी भाई दीक्षा ग्रहण करेगा यह जानकर कृष्ण अतीव प्रसन्न हुए। कृष्ण विचारने लगे कि इससे वढ़कर सौभाग्य की वात क्या हो सकती है कि मेरा भाई भागवती दीक्षा अंगीकार करके अपना और जगत् का कल्याण करेगा। मैं राज्य कार्य करके जग का भला करता हूं और मेरा भाई संयम ग्रहण करके स्वपर का भला करेगा यह अच्छा ही है।

पौषधशाला से उठकर कृष्ण अपनी माता के पास आये और आकर कहने लगे माता जी चिन्ता छोड़िये। आपको नौ मास और साढे सात रात्रि वाद पुत्र की प्राप्ति होगी। यह बात सुनकर देवकी बहुत प्रसन्न हुई। देवता की भविष्यवाणी के अनुसार नौ मास साढे सात रात्रि बाद देवकी ने पुत्र को जन्म दिया। पुत्र जन्म का उत्सव कितने ठाठ से मनाया गया होगा इसकी कल्पना करिये। पहले सात पुत्रों का उत्सव नहीं मनाया जा सकता था उसकी कसर इस उत्सव में निकाली गई। स्वयं कृष्ण जिस उत्सव के प्रबन्धक हों उनकी क्या वात कहना। उस समय यादव लोग पूर्ण समुन्नत और सुखी थे। देश पर बाह्य आक्रमण या भीतरी खटपट का जरा भी भय नहीं था। अतः कृष्ण ने अपने भाई के जन्म का उत्सव बड़े उत्साह के साथ मनाया। आजकल के उत्सवों की तरह ऊपरी आडम्बर की बहुलता न थी किन्तु जनता के कल्याण और मनोविनोद की अधिकता थी।

वालक का नाम गज सुकुमार रखा गया। पांच धाय माताओं से उनका पालन पोपण हुआ। जव गज सुकुमार युवावस्था में प्रवेश कर रहे थे तव उनकी शिवरमणी से शादी कराने के लिए ही मानों भगवान् नेमीनाथ द्वारिका के वाहर पधारे। कृष्ण को अत्यन्त प्रसन्न वदन देखकर गज सुकुमार ने पूछा भैया ! आज आप इतने खुश क्यों हैं ? क्या वात है ? आप कहीं जाने की तैयारी कर रहे हैं ? कृष्ण ने उत्तर दिया– जगत् के कल्याण कर्त्ता भगवान् नेमीनाथ पधारे हैं, उनके दर्शनार्थ उद्यान में जा रहा हूं गज सुकुमार ने कहा– भैया ! ऐसे पवित्रात्मा भगवान् के दर्शन के लिए मैं भी आपके साथ चलूंगा।

मित्रों ! कृष्ण को देव का कहा हुआ गज सुकुमार का भविप्य याद था। वह जानते थे कि गज सुकुमार भगवान् अरिष्टनेमी के पास आत्म ज्ञान

प्राप्त कर दीक्षा अंगीकार कर लेंगे। अब आप लोग बताइये कि कृष्ण अपने प्यारे भाई को भगवान् के पास ले जावें या नहीं ? यदि आपको किसी देव से यह मालूम हो जाय कि आपका पुत्र अमुक मुनि के पास दीक्षा अंगीकार करेगा तो क्या आप अपने पुत्र को उन मुनि के पास ले जाना पसन्द करेंगे? अथवा उस पुत्र को मकान में छिपा रखेंगे ? श्री कृष्ण दीक्षा लेना अच्छा समझते थे अतः कह दिया कि चलो गज सुकुमार हमारे साथ चल सकते हो।

गज सुकुमार को लेकर कृष्ण नगर के बाहर जा रहे हैं। मार्ग में उनको सोमिल ब्राह्मण की कन्या दिखाई दी। उसको उन्होंने गज सुकुमार के लिए पसन्द किया। इस बात में आज कल के सुधार की गई बातें आ जाती है। कृष्ण क्षत्रिय थे और सोमिल ब्राह्मण था किन्तु ब्राह्मण की कन्या को कृष्ण ने अपने भाई के लिए पसन्द कर लिया। आज कल वर कन्या के हक छीने जाते हैं। किन्तु वर कन्या के हक छीनना या वर कन्या का अति स्वछन्द हो जाना दोनों बातें ठीक नहीं हैं।

कृष्ण ने अपने कौटुम्बिक पुरुष के द्वारा सोमिल ब्राह्मण के पास संदेश पहुंचाया कि यदि तुम उचित समझो तो अपनी कन्या हमारे भाई गज सुकुमार के लिए प्रदान कर दो। सोमिल ने बहुत प्रसन्न होकर यह बात स्वीकार कर ली और अपनी कन्या को कुंआरे अन्तःपुर में पहुंचा दिया। उस जमाने में सगाई और विवाह साथ ही होते थे। अतः सोमिल विवाह योग्य सामग्री खरीदने के लिए चला गया और कृष्ण गज सुकुमार को लिए हुए भगवान् नेमीनाथ की सेवा में आये। भगवान् का उपदेश सुनकर गज सुकुमार ने कुछ दूसरी ही सगाई जोड़ ली। वह घर आये और माता से कहने लगे कि आज मैने भगवान् नेमीनाथ के दर्शन किये हैं। माता ने कहा पुत्र ! तेरे नेत्र पवित्र हो गये। मैंने अंजनादि से तेरे नेत्र साफ सुथरे रखे थे वे आज भगवत्‌दर्शन से सफल हो गये हैं।

फिर गज सुकुमार ने कहा– माता मैंने भगवान् की वाणी सुनी है। माता ने कहा– पुत्र तेरे कान पवित्र हो गये। आभूषणों से कानों की शोभा नहीं हैं। कानों की शोभा सत्पुरुषों के वचन श्रवण से है। फिर गज सुकुमार ने कहा– माता मैंने भगवान् के वचन श्रद्धे प्रतीते और रुचाये हैं। माता ने कहा– पुत्र तेरा जीवन और शरीर सफल हो गया।

गज सुकुमार ने विचार किया कि अभी तक माता मेरे मनोगत भावों को नही समझ पाई है। अतः स्पष्ट शब्दों में कहा कि माता जिस आदमी को भगवान् के वचनो पर श्रद्धा प्रतीति और रुचि हो जाती है उसे संसार का माया

जाल अच्छा नहीं लगता। भगवान् का उपदेश जिसकी हड्डी और मज्जा में प्रवेश कर जाता है, उसको संसार जहर के समान अप्रिय लगता है। मुझे भी संसार असार और जहर के समान लगता है अतः भगवान् की सेवा में दीक्षा अंगीकार करना चाहता हूं। गजसुकुमार की बात सुनकर देवकी माता को स्वाभाविक पुत्र स्नेह सहित हुआ। इससे उसको मूर्छा आ गई। मूर्छा से उठकर कहने लगी कि पुत्र तेरी उम्र छोटी है अतः मैं दीक्षा की आज्ञा कैसे दूं। गज सुकुमार ने कहा– माता यदि देश पर कोई शत्रु चढ़ाई करके आ जावे उस वक्त तू मुझे घर में छिपा कर रखेगी या शत्रुओं का सामना करने की बात कहेगी। माता ने कहा– भला ऐसे वक्त घर में कैसे छिपाकर रखूंगी। तुझे रण संग्राम में जाने के लिए प्रोत्साहन दूंगी। मैं वीर क्षत्रियाणी और वीर माता हूं अतः ऐसे प्रसंग पर मेरी यही इच्छा होगी कि यदि गर्भ में भी पुत्र हो तो वह बाहर निकल कर युद्ध में प्रयाण करे। ऐसे अवसर पर कायरता की बात कैसे कर सकती हूं।

गजसुकुमार बोले– माता जब साधारण शत्रु का सामना करने के लिए भी तू मुझे नहीं रोकना चाहती तो कर्म शत्रु से युद्ध करने के वक्त ऐसी बात क्यों कहती है। तू वीर माता है अतः अंतरंग युद्ध के प्रस्थान के वक्त तुझे प्रसन्न होना चाहिये।

गजसुकुमार का कथन सुनकर देवकी को जोश आ गया। मेरा पुत्र दीक्षा लेकर सिद्ध बुद्ध और मुक्त होवे इससे बढ़कर उसके हित की और क्या बात हो सकती है। यह प्रसन्नता की बात है और पुत्र के योग्य ही बात है।

कृष्ण को भी यह समाचार विदित हो गया कि गज सुकुमार संसार से उदासीन हो गये हैं और मुनि बनना चाहते हैं। उनके पास आकर कहने लगे– भैया ! तुम दीक्षा मत लो। मेरी इच्छा है कि मैं राजपाट छोड़कर तुमको सौंप दूं और तुम्हारी सेवा करूं। इससे अधिक भाई के लिए कृष्ण क्या त्याग कर सकते थे। किन्तु गज सुकुमार ने कहा– राज्य पाट स्वीकार कर लेने पर मुझे जरा मरण और जन्म आदि का दुःख तो न होगा ? कृष्ण ने कहा ये दुःख मिटाने की ताकत हमारी नहीं है। ये दुःख तो आत्मा स्वयं ही मिटा सकता है। दूसरा व्यक्ति नहीं मिटा सकता। गजसुकुमार बोले– "जब आप मेरे जन्म मरण नहीं मिटा सकते तो मुझे दीक्षित होने से क्यों रोकते हैं।" कृष्ण निरुत्तर हो गये, और कहने लगे, अच्छा, एक दिन के लिए राज्य करना स्वीकार कर लो।

गजसुकुमार ने एक दिन राज्य करने की बात यह सोचकर स्वीकार कर ली कि इससे मेरे हाथ में सत्ता आ जायगी जिससे दीक्षा की तैयारी में

सुगमता हो जायगी तथा मेरे वैराग्य की दीक्षा भी हो जायगी। राज्य अंगीकार करके वापस छोड़ देने से कच्चे पक्के वैराग्य की जांच हो जायगी।

कृष्ण ने अपना राज्य गजसुकुमार को सौंप दिया। राज्य सौंप कहने लगे यद्यपि हम आपको सब कुछ सौंप चुके हैं फिर भी आपकी कोई इच्छा या आज्ञा हो तो कहिये, हम उसे पूरा करें। तुरन्त गजसुकुमार ने हुक्म दिया कि मेरे लिए दो लाख सौनैया देकर कुन्त्यावन से दीक्षा के उपकरण मंगवाओ। तथा एक लाख सौनेया देकर नाई से मेरा सिर मुण्डन करवाओ।

दीक्षा के उपकरण ओघे पात्र आदि रत्नों के बने हुए न थे जिसके लिए दो लाख सौनैया देने की आवश्यकता हुई। किन्तु वे क्षत्रिय थे, दातार थे। बनिया न थे जो मोल तोल करते। अतः स्वतः इनाम के रूप में इतनी रकम देते थे।

गजसुकुमार की आज्ञा सुनकर कृष्ण समझ गये कि इनका वैराग्य सच्चा है। स्मसानिया वैराग्य नहीं है। यह रंग किरमीची रंग है, जो चढ़ने के बाद उतरता नहीं। उनकी आज्ञानुसार सब सामग्री मंगवाई गई और दीक्षोत्सव किया गया। फिर भगवान् नेमीनाथ की सेवा में उनको ले गये। भगवान् के पास पहुंच कर गजसुकुमार ने मुनिव्रत धारण कर लिया। मुनिव्रत लेकर विचारने लगे कि यह असिधारा के समान मैंने जो व्रत लिया है वह मुनियों के संरक्षण में रह कर जीवन बिताने वास्ते नहीं लिया है। किन्तु जल्दी से जल्दी जन्म मरण के दुःखों से छुटकारा पाने के वास्ते लिया है।

अरज करत तन देखत ऐसे सुनिये श्री जिनराज,
किला फतह तुरत हुवे मुझ ऐसी राह बताय।
द्वादशमी प्रतिमा वहने का हुक्म दिया फरमाय।।

गजसुकुमार भगवान् के पास जाकर कहने लगे-भगवन्! मैं शीघ्रातिशीघ्र इस शरीर रूपी पिंजडे को छोडकर जन्म मरण का अंत करना चाहता हूं। मुझे इस जाल में रहना पसन्द नही हैं मैं अशरीरी होना चाहता हूं। कृपा करके कोई ऐसा उपाय बताइये कि जिससे जल्दी मुक्ति प्राप्त कर सकूं।

आज ही दीक्षित हुए और आज ही गजसुकुमार को मोक्ष प्राप्त करने की भावना कैसे उत्पन्न हो गई ? यह प्रश्न पैदा होना स्वाभाविक है। बात यह है कि जब किसी बात की सच्चाई मालूम हो जाती है तब उसके बाद ज्ञानी व्यक्ति को उसके विपरीत आचरण करना कठिन हो जाता है। गजसुकुमार का वैराग्य इतनी उत्कृष्ट दशा को पहुंच चुका था कि उनके लिए यह शरीर रूपी कारागार असह्य हो गया था। यदि किसी सच्चे या प्रामाणिक व्यक्ति को जेल की सजा हो जाये तो क्या वह जेल में पड़े रहकर सड़ते रहना पसन्द करेगा या बाहर निकलने का तत्काल उपाय करेगा ? किसी अमीर के लड़के को जो सदा इत्र फुलेल के अन्दर रहने वाला हो कोई कारणसे टट्टी में बंद कर दिया जाय तो क्या वह उसमें बंद रहना चाहेगा ? वह यही चाहेगा कि मुझसे जो कुछ लेना चाहो लेलो मगर इस नारकीय दुर्गन्ध से शीघ्र निकालो।

यही बात भगवान् गजसुकुमार के लिए लागू होती है। उनकी आत्मा शरीर रूपी पिंजड़े में से उड़ने के लिए छटपटा रही है। एक क्षण के लिए भी वह देरी करना पसन्द नहीं कर रहे हैं। पातंजल योगशास्त्र में कहा है कि अन्य कारणों से समाधि देर से भी जागृत हो सकती है किन्तु तीव्र वैराग्य भावना से शीघ्र ही समाधिभाव पैदा होता है। उत्कृष्ट वैराग्य के कारण गजसुकुमार ने अपने को साथी मुनियों के बीच में रखना भी उचित न समझा और भगवान् से अनुनय विनय किया कि मुक्त होने का अचूक नुस्खा बताइये। भगवान् सब कुछ जानने वाले थे। वे सर्वज्ञ सर्वदर्शी थे। अतः नवपूर्व ज्ञानधारी और बीस वर्ष की दीक्षा पर्याय वाले के लिए जो बारहवीं प्रतिमा ग्रहण करने योग्य होती है वही बारहवीं प्रतिमा आज के दीक्षित गजसुकुमार के लिए बता दी। संसार से मुक्त होने का यह एक उत्कृष्ट साधन है।

भगवान् अरिष्टनेमी की आज्ञा पाकर गजसुकुमार महाकाल श्मशान में चले गये। वहां पहुंच कर एक रात्रि के लिए नासिका पर दृष्टि रखकर ध्यान में मग्न हो गये। खड़े–खड़े ध्यान में तल्लीन हो गये।

उधर से सोमिल आ निकला। उसने देखा यह कौन मनुष्य श्मशान में खड़ा है। निकट से देखने पर उसे मालूम हुआ कि यह तो गजसुकुमार है जिसके साथ मेरी कन्या का विवाह करने के लिए श्री कृष्ण ने मांगणी की है और जो कुंआरी अंतः पुर में बन्द है। बस देखते ही उसके मन में क्रोध उमड़ आया। अनेक लोग साधु को देखकर बड़े प्रसन्न होते हैं। साधु दर्शन से उनका हृदय प्रफुल्लित हो उठता है और उत्तेजित विकार भाव भी शांत हो जाता है। किन्तु सोमिल का क्रोध उमड आया, इसमें पूर्व जन्म के उसके संस्कार कारण भूत हैं।

सोमिल कहने लगा कि हे अपथ्य प्रार्थिक ! काली पीली अमावस्या में जन्म ग्रहण करने वाले ! लज्जा लक्ष्मी हीन ! अवांछित की वांछा करने वाले ! तुमने साधुपन ग्रहण करके मेरी कन्या का अपमान किया है। मैं तुझे ऐसा दण्ड दूंगा कि भविष्य में कोई ऐसी भूल न करे।

वह स्थान एकान्त था। कोई अन्य मनुष्य वहां न था। अतः अच्छा अवसर जानकर पास के तालाब से गीली मिट्टी ले आया। मिट्टी लाकर ध्यानस्थ खड़े गजसुकुमार के मस्तक पर चारों और पाल बांध दी। पाल इस प्रकार बांधी कि मस्तक पर रखी हुई चीज बाहर न गिर सके। यह पाल गजसुकुमार के मस्तक को ठंडाई पहुँचाने के लिए नहीं बांधी गई थी किन्तु उनको कष्ट पहुंचाने के लिए बांधी गई थी। मिट्टी में उतना कष्ट देने की ताकत न थी और न वह गर्म ही थी। अतः श्मशान में जलाये हुए मुर्दो की अवशिष्ट अग्नि उठा लाया और उनके मस्तक पर धर दी। चारों और मिट्टी की पाल पहले ही बनी हुई है ताकि अग्नि के धधकते अंगारे उनके मस्तक से नीचे न गिर सके।

कई लोग दुनिया में ऐसे भी होते हैं जो पहले गीली मिट्टी की पाल के समान मीठी मीठी बातें करते है। मगर उनकी वे मीठी बाते शांति पहुंचाने के लिए नहीं होतीं। उनके भीतर में कपट भाव छिपा रहता हैं। मीठी बातों के बाद वे ऐसा क्लेश खडा कर देते है कि जन्म भर तक वह बेचारा दु:खी रहता है और मन में घुलता रहता है। यही बात सोमिल ने भी की थी अधिक कष्ट पहुंचाने के लिए उसने गजसुकुमार के मस्तक पर गीली मिट्टी की पाल बांधी थी। जो लोग ऊपर से मीठी बाते बनावे और भीतर से आग लगावे वे सोमिल के समान है। उनकी लेश्या कौनसी गिनी जाए ?

साधुपन ग्रहण करके भी कई ऐसा वर्ताव करते हैं। कहते कुछ हैं और करते हुछ हैं। लोगों का विश्वास प्राप्त करने के लिए कई साधु नामधारी हृदय में कुछ और भावना रखते हैं और ऊपर से वर्ताव दूसरा करते हैं। उनका ऐसा कार्य सोमिल द्वारा गजसुकुमार के मस्तक पर पाल बांधने के समान है।

पांलरापोल के सेक्रेटरी ने आप लोगों के सामने सहायता के लिए अपील रखी है। आप लोग मन में समझते होंगे कि हम जो कुछ देते हैं वह दान करते हैं। लेकिन इस बात का विचार करो कि आप दान दे रहे हो या अपना कर्त्तव्य पूरा कर रहे हो। ऐसा कौन मनुष्य होगा जिसने अपने जीवन में गाय की सहायता न ली हो। घी दूध दही छाछ आदि का सब कोई उपयोग करते हैं। बैलों द्वारा उत्पन्न अनाज सब लोग खाते हैं। यदि पंचगव्य न हो तो आप क्या खावें और मूंछों पर ताव कैसे लगावें ? जिस गाय का दूध घी खा जावें उसका बदला न चुकाना कृतन्घ्नता नहीं तो क्या है। दूध पिलाने के कारण गाय माता कहलाती है। जो माता का पालन न कर सके वह भी कोई पुत्र है। आपका यह शरीर गाय की कृपा से बना हुआ है। गाय की कृपा से ही आपका चेहरा लाल लाल बना हुआ है।

जिस गाय का दूध पीकर आप पहलवान बने हुए हैं। उस गाय पर आज क्या आफत आई हुई है। आपकी पहलवानी क्या काम की। गाय माता दुःख पावे और उसके बेटे मौज करें यह कितना अनुचित है। पहले जमाने में गौरक्षा का प्रश्न ही नहीं खड़ा होता था। गाय को माता की उपाधि दी गई थी अतः उसकी रक्षा के लिए उपदेश की जरूरत ही न थी। दूसरी बात पहले गौहत्या न होती थी। आज गायें कसाई खाने में जाती हैं। इस वर्ष तो पानी न बरसने से उनका कष्ट और अधिक बढ़ गया है। माता दुःख पाये और बेटा निष्क्रिय बैठा रहे यह शोभा की बात नहीं है। अधिक क्या कहूं–

सत्य का शब्द तो एक ही बहुत है बार ही बार क्या बक्कना रे।
पाषाण के बीच में तीर भेदे नहीं मूर्ख से बहुत क्या झक्कना रे।
रैन दिन होत घन घोर बरसा घनी चीकने घड़े नहीं छांट लागे।
कहत कबीर ये जीव जड़ हो रहे मोह के मेल ते नाय भागे।।

गज सुकुमार के सिर पर माटी का पाल बांधकर सोमल ने अग्नि से धगधगते अंगारे रख दिये हैं। यदि गज सुकुमार उस पर क्रोध करना चाहते तो क्या नहीं कर सकते थे ? वे देवकी के पुत्र और कृष्ण के भाई थे तथा स्वयं भी वीर थे। उनकी एक हांक से उसके प्राण निकल सकते थे। सोमिल उनके सामने क्या चीज था वे संसार को थर्रा सकने वाले व्यक्ति थे। किन्तु

उन्होंने कुछ और सोचा है। वे विचारने लगे कि मैं जल्दी से जल्दी शरीर रूपी कारागार से मुक्त होना चाहता हूं और इसीलिए भिक्षु की बारहवीं प्रतिमा धारण की है। सोमिल ने मेरा क्या बुरा किया। अच्छा ही किया है। मैं जो चाहता हूं उसमें उसने मदद ही की है।

यदि गजसुकुमार इस प्रकार विचार करना चाहते कि मैंने इस आदमी का क्या बिगाड़ा है, मेरी इच्छा है मैं किसी की लड़की के साथ शादी करूं या न करूं, मैं स्वतन्त्र हूं, तो भी लोक व्यवहार में बुरा न माना जाता। लेकिन इस प्रकार के तर्क वितर्क में वे न पड़े। उन्होंने भक्ति मार्ग का आश्रय लिया था जिसमें तर्क को उतना स्थान नहीं है। अंगारों से उनको घोर वेदना शुरू हुई। शास्त्र में इस प्रकार पाठ है :-

तयणं से गज सुकुमाले अणगारे,
वेयणा पाउब्मूया उज्जला जाव दूरहियासा

मुनि का मस्तक खीचड़ी की तरह खदबद खदबद सीझने लगा। सोमल ने मिट्टी की पाल बांधी भी इसीलिए थी कि अग्नि नीचे न गिरने पावे। उस समय उनको कैसी वेदना होती रही होगी जरा कल्पना करिये। परन्तु मुनि यह विचार कर रहे थे कि मेरा हीरा पैदा हो रहा है। जैसे किसी थके हुए व्यक्ति को सवारी करने के लिए मोटर मिल जाय, प्यासे को पानी मिल जाय, भूखे को रोटी मिल जाय और अंधे को नेत्र मिल जाये तो उसको कितनी खुशी होगी। उक्त वस्तुएं देने वाले पर वह कितना प्रसन्न होगा। वैसे ही गजसुकुमार को मस्तक पर अग्नि रखने से बड़ी प्रसन्नता हुई है। मैं मुक्त होना चाहता हूं और यह शरीर मेरी मुक्ति में बाधक हो रहा है। सोमल ने इस बाधा को हटा दिया है अतः यह मेरा परम मित्र है। यह मेरा उपकारी है। मोक्ष प्राप्ति में साज देने वाला है।

इस प्रकार की निर्वैर भावना रखकर शुक्ल ध्यान के उच्च पाये पर आरूढ होकर गजसुकुमार सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो गये। यदि आप लोग भी गजसुकुमार की निर्वैर भावना अपना ले तो बड़ा भला हो जाय। गजसुकुमार का आदर्श जीवन भारत की परंपरागत के अनुकूल है। वैर से वैर शान्त नहीं होता किन्तु शांति रखने से, क्रोध न करने से वैर शान्त होता है। ऋद्धिशाली और सत्ताधारी इस राजकुमार की क्षमा आदर्श क्षमा है। उनका जीवन हमारे लिए आईना है जिसमें अपना मुख देखकर हम भी अपनी कालिख मिटा सकते है। जो उनका अनुसरण करेगा उसका सदा कल्याण है।

आत्मिक शान्ति का अचूक प्रभाव

पदम प्रभु पावन नाम तिहारो, पतित उद्धार न हारो।
जदपि धीवर भील कसाई, अति पापीष्ट जमारो,
तदपि जीव हिंसा तज प्रभु भज; पावें भवोदधिपारो।। पदम.

प्रार्थना– इस प्रार्थना में भक्त ने बहुत सरल और सीधी सादी भाषा में एक सुगम बात जगत् के सामने रखी है। वह कहता है कि भाइयों ! तुम काल का सहारा लेकर, कलियुग का नाम बताकर, शारीरिक कमजोरी अथवा कलहमय जमाना बताकर धर्म की गहन बातों का पालन न कर सको तो एक सरल काम करो।

महात्मा लोगों ने कलियुग की कठिनाई महसूस करके आम लोगों के लिए धर्म साधन करने का सरलातिसरल मार्ग बताया है। वह मार्ग सरल है मगर उसमें सब अच्छे कार्य गतार्थ हो जाते हैं। वैसे तो इस कलियुग में भी कई लोग कठिन करणी करते हैं लेकिन सब लोग कठिन करणी नहीं कर सकते। कहा जाता है महादेव शंकरजी ने अपने गले में सांपों की माला डाल रखी है। महादेव ने तो सांपों की माला पहन रखी है किन्तु साधारण लोग ऐसी माला नहीं पहन सकते। साधारण लोग फूलों की माला पहन सकते हैं। किसी के गले में फूल माला डाली जाय तो वह कैसे इन्कार कर सकता है। सांप को देखकर तो डर लगता है और लोग उससे दूर रहते हैं किन्तु फूल माला से किसी को भय नहीं होता। फूल माला गले में धारण करना सरल काम है। अतः गले में सांपों की माला पहनने के समान कठिन कार्य करने का अनुरोध जन साधारण से नहीं किया जाता। यदि कोई स्वतः कठिन धर्म करणी अपना लेता है तो उसकी बलिहारी है। यदि कठिन और कष्ट साध्य मार्ग नहीं अपना सकते तो सीधा और सरल मार्ग तो अपनाओ। यदि सीधा मार्ग भी न अपना सको तो ऐसी बात होगी जैसी किसी को लक्ष्मी स्वयं तिलक निकालने के लिए आये और वह मुंह फेर ले।

आप यह जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक हो रहे होंगे कि वह सरल और सीधा मार्ग कौनसा है जिसको अपना लेने से सब भले कार्यो का उसमें समावेश हो जाता है। वह मार्ग बताने के लिए भक्त कहता है–

तो सुमरन बिन या कलियुग में और नहीं आधारो
मैं वारी जाऊं तो सुमरन पर दिन दिन प्रेम बधारो।। पदम.।।

भगवान् ! इस कलियुग में तेरे स्मरण के बिना संसार समुद्र से पार पाने के लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

यदि आप लोग परमात्मा का पावन पवित्र और पाक नाम सदा जीभ से जपा करो, उसके नाम का घोष चलने दो, उसको हृदय में धारण किये रहो तो क्या आपको कुछ बोझा लगता है या कठिनाई मालूम देती है ? जब समय मिले तब प्रभु नाम का स्मरण करते रहने में क्या कुछ खर्च लगता है? यह सबसे सरल काम है। फिर भी अधिकांश लोग कामक्रोध और लड़ाई झगड़ों की बातों में समय बिता देते हैं, अथवा गन्दा साहित्य या गन्दे उपन्यासादि पढ़ने में कालयापन करते हैं। मगर प्रभु नाम का रटन नहीं करते। यह काम वैसा ही हुआ जैसा लक्ष्मी तिलक निकालने आये और अपना मुंह फेर ले, तिलक न निकलवाये। यदि आप और कुछ न कर सको तो परमात्मा के नाम का घोष चलने दो। इससे आपको वही फल होगा जो तपस्या आदि करने से होता है।

परमात्मा का नाम लेना सबसे सीधा काम है। मगर आलस्य और प्रमाद के कारण दूसरी बातों में मन लगा रहता है और भगवान् को भुला दिया जाता है। मै पूछता हूं आप घर से चलकर अथवा बाहर गांव से रेल मे बैठकर यहा आये है तो रास्ते में और रेल मे आपको समय मिला हुआ था। उस समय आप क्या करते थे ? क्या भगवान् का नाम स्मरण करते थे या कोई दूसरा पाट पढते थे ? क्या उस समय यह डर था कि कही रेल नही उलट जाय। या किसी अन्य प्रकार के विघ्न की आशंका थी जिससे कि आप नाम स्मरण न कर सके। मेरा तो ख्याल है यदि रेल उलटती हो अथवा कोई दूसरा विघ्न उपस्थित होता हो तो भी भगवान् का नाम लेने से रेल का उलटना और विघ्न का उपस्थित होना रुक सकता है। यदि ऐसा पक्का विश्वास होता तो नाम जपना छोड़कर व्यर्थ कामो मे समय बरबाद न किया जाता। भक्त लोग लोगों को सावधान करने के लिए कहते है–

नाम जप नाम जप नाम जप बाउरे
घोर भव नीर निधि नाम निज नाउरे।

आपको उपालम्भ न दिया जाय तो क्या किया जाय। भक्तजन कहते हैं कि ऐ पागल मनुष्य ! तू परमात्मा का नाम जपन क्यों नहीं करता है ! इस भयंकर भव समुद्र में परमात्मा का नाम जपन ही नौका के समान है। जिस नौका के सहारे अनन्त भव भ्रमण कट जाता है। इसीलिए तुझे पागल की उपाधि दी गई है। तू परमात्मा के नाम की प्रशंसा वहुत करता है मगर नाम स्मरण के वक्त आलस्य प्रमाद क्यों करता है ? तुझे वावरा न कहें तो क्या कहें। जिसको तू रत्न मानता है वह यदि मिल जाय तो उसे स्वीकार न करके फेंक दे अथवा स्वीकार करके अपनावे नहीं तो वावरापन ही कहा जायगा।

परमात्मा के नाम का इतना महत्व है फिर भी दूसरे तुच्छ कामों में फँसे रहना मिष्टान्न छोड़कर विष्ठा खाना है। अथवा जैसे कुत्ता किसी जीमनवार में झूठन चाटता है किन्तु यदि उसको बुलाकर भोजन कराया जाय तो वह नहीं आता। उस कुत्ते को वावरा ही कहेंगे। कुत्ते में भले बुरे और हिताहित का ज्ञान नहीं है। यदि उसमें ज्ञान होता तो शायद वह भूल न करता। किन्तु आश्चर्य है कि मनुष्य में अपना भला बुरा सोचने की शक्ति होने पर भी वह अपना हित नहीं करता। कुत्ता इतनी टेक रखता है कि यदि उसे भरपेट खुराक मिल चुकी हो तो वह इधर उधर नहीं भटकता। मगर ज्ञानी कहते हैं कि ऐ वावरे प्राणी ! तेरी आत्मा कुत्ते से भी गई गुजरी है जो कभी संतोष नहीं धारण करती।

परमात्मा का नाम स्मरण करने में द्रव्य क्षेत्र काल भावादि का कोई वन्धन नहीं है। जव मन में आवे तव नाम स्मरण किया जा सकता है। कैसी भी विषम परिस्थिति हो– चाहे आंधी आये या तूफान परमात्मा का स्मरण करने में कोई वाधा नहीं आ सकती। ये पर्यूषण के दिन हैं। इन दिनों में जिस तरह रत्नों को सोने के तार में पिरोकर सुरक्षा के लिए गले में डाल लिया जाता है उसी तरह परमात्मा के नाम को प्रेम के तार में पिरोकर हृदय में धारण कर लो। अखण्ड घोष चलने दो। ऐसा करने से आपके चेहरे का रंग वदल जायगा। आप में तेजस्विता आ जायगी। आपके हृदय के भाव कुछ दूसरे ही हो जायेंगे। आपको देखकर सव को शांति मिलेगी। कैसा भी संतप्त व्यक्ति आपके पास आवे आपके संसर्ग से शांति प्राप्त करने लगेगा।

परमात्मा के नाम का स्मरण करने का आग्रह इसलिए किया जाता है कि परमात्मा ने पहले वहुत तप किया था। तीर्थंकर का चरित्र कुछ असाधारणता लिए हुए होता है। उनके सारे काम और कल्याण मानव समाज के लिए होते हैं। उनको देवाधिदेव कहा जाता है किन्तु विचार करने पर

मनुष्याधिप कहना अधिक उपयुक्त मालूम होता है। मनुष्याधिप होने पर भी देवाधिपति इसलिए कहा गया है कि मनष्याधिपति तो राजा भी होते हैं। तीर्थंकर मनुष्यों के ही अधीन नहीं किन्तु देवों के भी अधिपति हैं। भगवान् का जन्म कल्याणक मनाने के लिए इन्द्र और देव इसलिए आते हैं कि उनके द्वारा जगत् और मानव समाज का कल्याण होने वाला होता है। जगत् कल्याण को अपना कल्याण मानकर ही इन्द्रादि देव तीर्थंकरों का जन्मोत्सव मनाते हैं। इससे स्पष्ट है कि जगत् कल्याण के कारण ही भगवान् तीर्थंकर देवाधिदेव कहे जाते हैं।

एक बात और है। भगवान् का जन्म रात्रि में होता है। उस समय इन्द्रादि देव आकर भगवान् को मेरु पर्वत पर ले जाकर उत्सव मनाते हैं और सूर्योदय के पूर्व वापस उनको उनकी माता के पास रख जाते हैं। वे तीर्थंकर के शरीर को धरोहर के रूप में ले जाते हैं और जन्मोत्सवादि की खुशियां मनाकर पुनः उनकी माता के पास रख जाते हैं। तीर्थंकर दीक्षा ग्रहण करने के पूर्व तक अपने घर में रहते हैं। फिर दीक्षित होकर तपस्यादि करके केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त करके मनुष्य समाज और संसार का कल्याण करते हैं। इससे भी यही सिद्ध होता है कि भगवान् मनुष्याधिप हैं।

भगवान् महावीर का जन्म भी मनुष्यों के कल्याण के लिए ही हुआ था। यद्यपि भगवान् महावीर का जन्म चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को हुआ था किन्तु यह परम्परा है कि कल्पसूत्र के अनुसार जिस दिन जन्म वर्णन पढ़ा जाता है उस दिन भी भगवान् का जन्म दिवस मनाया जाता है। अतः आज जन्मदिन न होने पर भी जन्मदिन मनाया जाता है। यह जन्म दिन वास्तविक नही किन्तु औपचारिक है। मेरी समझ में पर्यूषण के दिनों मे लोगों मे धार्मिक उत्साह अधिक रहता है। उस उत्साहपूर्ण वातावरण में आपके दिलों मे भगवान् के जीवन का महत्व बैठाने के लिए शायद जन्मोत्सव मनाने का पूर्वाचार्यों ने उचित समझा हो और यह परम्परा जारी की हो कारण कुछ भी हो। हमें तो आज भगवान् का गुण गान करना है और उनके द्वारा मानव समाज और इतर जगत का कल्याण संपादन किस प्रकार हुआ था यह जानना है।

श्री जिनराज को ध्यान लगावे ता घर आनन्द रंग बधावे।
सिद्धारथ राय के नन्द निरुपम रानी त्रिशला देवी कूंखे आवे।
चैत सुदी तेरस की रजनी जनम लियो प्रभु सब सुख पावे। श्री.।

समय व्यतीत हो चुका है, उनका जन्म क्षत्रियकुण्ड ग्राम में माता त्रिशला और पिता सिद्धार्थ से हुआ था, अब कैसे और कहां जन्म मनायेंगे। यदि राजकोट में भगवान् का जन्म करायेंगे। यदि इस भोजनशाला में भगवान् को जन्मायेंगे तो यह भी बहुत लम्बी चौड़ी है। कहां कहां जन्मायेंगे। यदि इस सभा में जन्माना चाहेंगे तो यहां कई लोग नींद ले रहे हैं और कई ऊंघ रहे हैं। मगर मित्रों ! मैं भगवान् का जन्म उन हृदयों में कराना चाहता हूं जो एकाग्र होकर उनको अपने हृदय में स्थान देना चाहते हैं जो मन और इन्द्रियों को वश में करके भगवान् को प्राप्त करना चाहते हैं उनके हृदय में भगवान् का जन्म अवश्य होता है।

जैन सिद्धांत का यह नियम है कि जिस मनुष्य का जहां उपयोग होता है वह वहीं बसता है ऐसा माना जाता है। अनुयोग द्वार सूत्र में इस विषय को समझाने के लिए एक रोचक प्रश्नोत्तर है। किसी ने किसी से पूछा कि अरे तू कहां निवास करता है ? सामने वाले ने उत्तर दिया कि मैं लोक में निवास करता हूं। प्रश्नकर्त्ता ने कहा कि लोक तीन हैं– ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक। तुम किस लोक में रहते हो। उत्तर दाता ने कहा मैं मध्य लोक में रहता हूं।

प्रश्नकर्त्ता– मध्यलोक में असंख्य द्वीप और समुद्र हैं, तुम कहां बसते हो सो बताओ ?

उत्तरदाता– मैं जम्बूद्वीप में बसता हूं।

प्रश्नकर्त्ता– जम्बू द्वीप असंख्य हैं। तुम कौन से जम्बू द्वीप में रहते हो ?

उत्तरदाता– मैं मध्य जम्बू द्वीप में रहता हूं।

प्रश्नकर्त्ता– मध्य जम्बूद्वीप में अनेक क्षेत्र हैं। तुम कहां रहते हो ?

उत्तरदाता– मैं भरत क्षेत्र में रहता हूं।

प्रश्नकर्त्ता– भरत क्षेत्र में कई देश हैं। तुम कहां रहते हो?

उत्तरदाता– मैं काठियावाड़ प्रदेश में रहता हूं।

प्रश्नकर्त्ता– काठियावाड़ में अनेक ग्राम नगर हैं। तुम कहां रहते हो ?

उत्तरदाता– मैं राजकोट में रहता हूं।

प्रश्नकर्त्ता– राजकोट में अनेक मोहल्ले हैं। तुम कहां रहते हो ?

उत्तरदाता– मैं सदर बाजार में रहता हूं।

प्रश्नकर्त्ता– सदर बाजार में अनेक भवन हैं तुम कहां रहते हो ?

उत्तरदाता– मैं अमुक भवन में रहता हूं।

प्रश्नकर्त्ता– अमुक भवन में कई कमरे हैं। तुम कहां रहते हो ?

उत्तरदाता– अमुक भवन के अमुक कमरे में बसता हूं।

प्रश्नकर्त्ता– उस कमरे में चूहे बिल्ली मक्खी मच्छर खटमल आदि कई प्राणी रहते हैं। तुम कहां रहते हो ?

उत्तरदाता– मैं साढे तीन हाथ के अपने शरीर में रहता हूं।

प्रश्नकर्त्ता– इस शरीर में रक्त मांस हड्डी आदि भी रहते हैं तथा अनेक कृमि भी रहते हैं। तुम कहां रहते हो ?

इस आखिरी प्रश्न के उत्तर में शब्द आदि तीन नय वाले कहते हैं कि तू कहीं नहीं रहता सिर्फ अपने उपयोग में रहता है। जहां जिस वक्त तेरा उपयोग होता है उस वक्त तू वहीं रहता है।

जिस मनुष्य के हृदय में भगवान् का विचार है उस वक्त भगवान् उसके दिल में बसते हैं यह शब्दादि तीन नयों का मत है। अतः भगवान् महावीर स्वामी का अपने हृदय में जन्म कराने के लिए अनन्य भाव से उनकी तरफ उपयोग लगाओ।

भगवान् के जन्म के विषय में शास्त्र में कहा है कि तेणं कालेणं तेणं समयेणं।

अर्थात् उस काल और समय में (भगवान् का जन्म हुआ)। काल और समय दोनों देने का उद्देश्य यह है जो मिति और सम्वत् देने का होता है। किसी भी प्रकार का खत लिखकर उसमें सम्वत् और मिति दोनों लिखे जाते हैं यदि सम्वत् लिखा हो और मिति न लिखी हो और संवत् न लिखा गया हो तो वह खत गलत माना जाता है। इसी तरह काल और समय दोनों दिये गये है। शास्त्रीय परिभाषा में दिये गये काल और समय का अर्थ लौकिक भाषा मे संवत् और मिति के रूप में समझना चाहिए।

भगवान् महावीर का जब जन्म हुआ था वह काल चौथा आरा था। यह समय भगवान् पार्श्वनाथ के शासन की समाप्ति का था। उस समय के सम्बन्ध में कहा है कि वह वसन्तु ऋतु थी, चैत्र का मास था और शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी थी। त्रयोदशी की आधी रात को भगवान् ने गर्भ में नौ मास और साढे सात रात्रि पूरी की थी।

नौ मास और साढे सात रात्रि गर्भ का पूरा काल गिना जाता है। जो बालक पूरा काल गर्भावस्था मे व्यतीत करता है उसमे क्या विशेषताएं होती हैं, यह बात टीकाकारो ने विस्तार से बताई है।

जिस रात में भगवान् का जन्म हुआ था उस रात में सब ग्रह उच्च स्थान पर आ गये थे। लोग मुहूर्त ढूंढते फिरते हैं मगर मुहूर्त कहता है कि जो जीव अच्छे संस्कार लेकर जन्म ग्रहण करता है उसको मैं ढूंढा करता हूं भगवान् के जन्म के वक्त सब ग्रह उच्च स्थान पर इसीलिए आ गये थे कि भगवान् अनन्त पुण्याई लेकर जन्मे थे। साथ साथ वे जगत् का कल्याण करने के वास्ते जन्मे थे।

ग्रहों के उच्च नक्षत्र पर आने का सबूत उस वक्त वातावरण की शान्तता थी। उस समय सब दिशाएं शांत थी और सब शुभ शकुन भी प्रकट हुए थे। उस वक्त पक्षियों का नाद मधुर था। पवन भी मन्द सुगन्ध बह रहा था। धीरे धीरे पृथ्वी को स्पर्श करता हुआ अनुकूल वह रहा था। सारी मेदिनी अन्न से परिपूर्ण थी। पृथ्वी पर सरस और शांति देने वाली फसल लहलहा रही थी। दुनिया में शांति का मुख्य कारण प्रकृति की अनुकूलता है जब प्रकृति अच्छी होती है और फसल अच्छी होती है तो वह समय अच्छा माना जाता है। महापुरुषों का जन्म ऐसे अच्छे समय पर ही हुआ करता है। उस समय सारे जगत् में हर्ष की एक लहर फैली हुई थी।

ऐसे अनुकूल और सुखदायक समय में जब उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र ने चन्द से योग जोड़ा तब महारानी त्रिशला देवी ने नीरोगानीरोगी रीति से भगवान् महावीर को जन्म प्रदान किया। सूर्य को पूर्व दिशा जन्म देती है। जिस दिशा से सूर्य निकलता है उसे पूर्वदिशा कही जाती है। इसी प्रकार महारानी त्रिशला भी पूर्वदिशा के समान महावीर की जन्म दात्री कहलाई। सूर्य किसके लिए उदय होता है ? यदि वह अपना प्रकाश अपने तंई सीमित रख ले तो उसे सूर्य कौन कहेगा ? सूर्य अपने प्रकाश से संसार को जीवन प्रदान करता है अतः उसके भक्त उसकी पूजा करते हैं। इसी प्रकार भगवान् महावीर ने जगत् में ज्ञान रूपी प्रकाश फैलाया था और जगत् का कल्याण किया था अतः उनके भक्त हम लोग उनकी पूजा करते हैं, उनको वंदन नमस्कार करते हैं और उनका गुणगान व स्मरण करते हैं। यदि आपने भगवान् का महत्त्व समझ लिया है तो इस तरह भक्ति करो कि अन्यत्र मन जावे ही नहीं। सदा यही भावना रहनी चाहिए कि स्मरण और सेवा करने योग्य कोई है तो वह महावीर ही हैं। दूसरा कोई नहीं।

किसी भाई को मन में शंका हो सकती है कि महावीर के प्रति इतना पक्ष पात क्यों ? इसका उत्तर यह है कि तीर्थंकर शब्द में सभी महापुरुष गतार्थ हो जाते हैं। उदाहरण के लिए सूर्य को देखिये। उसके प्रकाश के सामने ग्रह

नक्षत्र तारे चन्द्र और दीपक आदि का प्रकाश नहीं दिखाई देता। इन सबका प्रकाश सूर्य प्रकाश में मिल जाता है। इसी प्रकार तीर्थंकर महावीर के चरित्र में अन्य सबका चरित्र और नाम गतार्थ हो जाते हैं।

वैसे जगत् में अनेक महापुरुष हुए हैं किन्तु महावीर के समान उज्ज्वल जीवन चरित्र किसी का नहीं है। महावीर ने बहुत कष्ट सहे हैं जितने किसी ने नहीं सहे हैं। मैं जैन साधु हूं और उनका भक्त हूं अतः उनका गुणगान करता हूं यह बात सत्य है। मगर अन्य लोग भी उनकी प्रशंसा करते हैं। कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ टैगोर ने जिन्होंने गीतांजली पर नोबल प्राइज़ प्राप्त किया है, लिखा है कि महावीर का जन्म उस जमाने में हुआ था जब दुनिया में अन्धाधुन्धी मची हुई थी। पशु की क्या बात कहें मनुष्य तक यज्ञ में होम दिये जाते थे। लोग सच्चे सिद्धांत छोड़कर पाखण्ड में पड़े हुए थे उस समय कश्यप गोत्रीय भगवान् महावीर का जन्म हुआ था। उन्होंने सत्य ज्ञान के द्वारा जगत् का अज्ञानान्धकार मिटाकर वास्तविक तत्त्व समझाया था। उनके अहिंसापूर्ण आचरण और उपदेश से लोग किसी जीव को कष्ट देने से डरने लगे थे।

लोकमान्य तिलक को आप सब लोग जानते हैं। उनसे अहमदनगर में मेरी भेंट हुई थी। उन्होंने बड़ौदा जैन कॉन्फरंस के समय जो कुछ कहा था उसे गौण रखकर मेरी मुलाकात में जो बात कही थी वह बताता हूं। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि हिन्दू धर्म पर जैन धर्म की गहरी छाप है। हम हिन्दू लोग यज्ञ याग में इतने व्यस्त थे कि कुछ कहा नहीं जाता। जिसको चम्बल नदी कहा जता है वह चर्मवती नदी है। उसके दोनों किनारे चमड़े से भर गये थे और नदी रक्त से बह चली थी। इतने पशु यज्ञ में मारे जाते थे। इस प्रकार हम हिन्दुओं में उस समय हिंसा बढ़ी हुई थी। भगवान् महावीर ने उस हिंसा को मिटाया और हिन्दू धर्म पर जैन धर्म की छाप जमाई।

जब अन्य गणमान्य विद्वान् भगवान् के जीवन की उत्कृष्टता स्वीकार करते है तब हमारा फर्ज हो जाता है कि हम भी उनकी कीर्ति और उनके द्वारा दिया हुआ अहिंसापूर्ण उपदेश जगत् में फैलायें। उनके नाम और उपदेश को फैलाने की जिम्मेवारी हम लोगों पर है।

बिगड़ी कौन सुधारे।

शासन नायक सब गुण लायक वीतराग जिन राया रे।। बि.।।
साधु सरोषी हुआ चण्डकोशी पन्नग महादु:ख दाई रे
डंक दियो तब प्रभुपति बोध्यो दियो स्वर्ग सुखदाई रे। बि.।

भगवान् महावीर जगत् के कल्याण कर्त्ता व बिगड़ी के सुधारने वाले किस प्रकार बने इसके दाखले शास्त्र व उनके जीवन चरित्र में भरे पड़े हैं। उन सबका परिमित समय में वर्णन करना शक्य नहीं है। उनमें से एक दाखला आपके सामने पेश करता हूं।

एक साधु की दशा बहुत बिगड़ी थी। उसने अपने शिष्य पर प्रचण्ड क्रोध किया था। क्रोध निष्कारण न किया था किन्तु सच्चे कारण से क्रोध किया था। मगर भगवान् का फरमान है कि सच्चा कारण होने पर भी क्रोध करना उचित नहीं है।

यदि आप पर कोई झूठा कलंक लगा दे तो भी यह मान कर संतोष करना चाहिए कि दूसरा व्यक्ति मुझ पर कलंक नहीं लगा सकता। मेरी आत्मा ने कलंक का कार्य किया है अतः मुझ पर कलंक लगा है। शास्त्र में कहा है--

अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाणय सुहाणय

दु:ख और सुख का कर्त्ता अपना आत्मा ही है। दूसरा व्यक्ति सुख दुख में निमित्त मात्र होता है। मूल कारण आत्मा ही है। अतः कलंक लगाने वाले पर मुझे क्रोध क्यों करना चाहिए। गजसुकुमार ने सोमिल ब्राह्मण का क्या अपराध किया था जिससे उसने उनके मस्तक पर अग्नि के अंगारे रखे थे ? फिर भी गजसुकुमार ने सोमिल पर तनिक भी क्रोध नहीं किया। बल्कि शीघ्र मुक्ति प्राप्त करने में निमित्त बनने के कारण उसका उपकार स्वीकार किया। हम गजसुकुमार के गुणगान इसीलिए गाते हैं क्योंकि क्रोध करने का कारण होने पर भी उन्होंने क्रोध नहीं किया था।

विकार का कारण मौजूद होने पर भी जिन के चित्त में काम क्रोध मद मोह और लोभ आदि का विकार जागृत न हों वे धीर पुरुष कहे जाते हैं। उन धीरपुरुषों को थोडा भी गुण यदि आप लोग अपने जीवन में अपना सकें तो कल्याण है। ज्ञानी जन कहते हैं-- क्रोध किसी हालत में न करना चाहिए चाहे कोई झूठी बात कहकर आपको उत्तेजित करने की कोशिश करे। वह तो आपकी परीक्षा की कसौटी है उस वक्त यदि आप फैल हो गये तो आपकी क्षमा का क्या अर्थ होगा। क्रोध करने से साधुव्रतधारी की दशा भी कैसी

विगड़ती है कि उसे चण्डकौशिक सांप की योनि धारण करनी पड़ती है।

चेले ने अपने गुरु पर झूठा कलंक लगा दिया। गुरुजी अपना क्रोध को न दबा सके। वे चेले को ओघे से मारने के लिए दौड़ पड़े। आप जानते हैं कि क्रोध अंधा होता है। क्रोध का आवेश जिस व्यक्ति को चढ़ जाता है वह भी बेभान हो जाता है। गुरुजी क्रोध में बेभान होकर दौड़े कि रास्ते में खंभे से सिर टकरा गया और जमीन पर गिर पड़े। सिर में घातक चोट लगने से उसी वक्त काल करके चण्ड कौशिक सर्प की योनि में पैदा हुए। वह सर्प दृष्टि विष था। जिधर वह दृष्टि कर देता उधर के लोग उसके जहर से परेशान हो जाते थे उसने सारे जंगल को तबाह कर दिया और सारा मार्ग बन्द कर दिया उस ओर कोई आदमी भूल से चला न जाय इसके लिए दयालु व्यक्तियों ने मार्ग में आदमी नियुक्त कर दिए जो लोगों को सावधान कर दिया करते थे।

मित्रों ! जरा महावीर के जीवन पर दृष्टिपात करो। उन्होंने किस प्रकार उस प्रचण्ड विषधर का विष उतार दिया था। महावीर ने सोचा कि बेचारा वह साधु सर्प की योनि में अपना जीवन नष्ट कर रहा है। उसकी गति विगड रही है। मेरा कर्त्तव्य है कि मैं अन्य लोगों की तरह इस सर्प को भी सुधारूं तब मैं सच्चा महावीर कहलाऊंगा।

अक्सर देखा गया है कि महापुरुषों के जीवन के साथ सर्प का सम्बन्ध आता है। कृष्ण का कालिया नाग से सम्बन्ध होना, बुद्ध का सर्प के साथ ससर्ग होना, बाइबल के अनुसार मौसिया और मोहम्मद का सर्प से सम्बन्ध होना यह बताते है कि महापुरुष सर्प पर अपनी आत्म शक्ति की आजमायश करते हैं।

पौराणिक कल्पना है कि समुद्र मंथन करने से अमृत अप्सरा आदि अनेक वस्तुएं निकली थीं उनको सब देवों ने ग्रहण कर लिया था। किन्तु जब हलाहल विष निकला तब सब देव भाग खड़े हुए। उस समय विष्णु ने शंकर से कहा आप यह विष पी जाइये नहीं तो यह सारे जगत् को विनष्ट कर देगा। विष्णु का कहना मान कर शंकरजी विषपान कर गये। इसलिए वह नीलकंठ महादेव कहलाये।

जिस तरह अमृत आदि पदार्थो को अन्य देवों ने अपना लिया था उसी तरह मान बडाई ग्रहण करने के लिए सब कोई तैयार हो जाते हैं। किन्तु विष के समान गालियां और अपमान जनक बर्ताव महापुरुष ही सहन कर सकते हैं। जो गालियां, मार और हीनतापूर्ण वर्ताव सहन करके इस विष

को हजम कर जाता है और जगत् का कल्याण करता है वह देवाधिदेव बन जाता है।

आज कल लोग महादेव की पूजा करते हैं। किन्तु मैं जानना चाहता हूं कि वे विष को हजम करने के लिए पूजा करते हैं या विष को फैलाने के लिए ? विष फैलाने की शक्ति प्राप्त करने के लिए शंकरजी की पूजा मत करो। विष को पचाकर दूसरों की रक्षा के लिए पूजा करो। जिस प्रकार धर्मरुचि अणगार चींरियों की रक्षा के लिए जहर पी गये थे उसी प्रकार आप लोग भी जहर को पचाकर दूसरों की रक्षा का प्रयत्न करो।

भगवान् महावीर ने देखा कि चण्डकौशिक सर्प के आतंक से लोग बहुत संतप्त और भयग्रस्त हैं। अतः लोगों को भी भय मुक्त करना चाहिये और सांप का भी सुधार करना चाहिए। यह सोचकर भगवान् विहार करके उसी ओर गये जिस ओर वह सांप रहता था। मार्ग में पहरेदारों ने भगवान् से कहा कि आप कहां जा रहे हैं ? इस ओर एक प्रचण्ड विषधर रहता है। वह साधुओं को भी कुछ नहीं गिनता। आप पीछे लौट जाइये। इधर मत जाइये।

भगवान् इस बात को जानते थे कि वह सर्प नहीं है मगर साधु है। क्रोध के कारण साधु ने सांप की योनि में जन्म ग्रहण किया है। यह नियम है कि जीव जिस भाव से मरण प्राप्त करता है उसी भाव में आगे की योनि धारण करता है। जैसी मति वैसी गति। अच्छी या बुरी गति की प्राप्ति भावों से सम्बन्ध रखती है। भगवान् इस बात को जानते थे। अतः पहरेदारों की बात सुन कर मौन पूर्व हंसते रहे। भगवान् को हंसते देखकर पहरेदार कहने लगे कि हमने आपकी भलाई के लिए उधर जाने से रोका है और आप हमारी हंसी कर रहे हैं। भगवान् फिर भी मुस्कराते रहे। उनका पैर आगे तो पड़ता था मगर पीछे न हटता था। पहरेदारों ने फिर कहा कि इस सर्प की दृष्टि से ही विष बढ़ जाता है अतः आप उधर न जायें।

इतना मना करने पर भी जब भगवान् का कदम आगे बढ़ते देखा तब एक पहरेदार बोला– भाइयों ! इसको जाने दो यह मौत के मुख में जाना चाहता है, हमारी बात नहीं मानता है तो उसको जाने दो। इसको अपनी साधुता का घमण्ड है तो जाकर देखले कि क्या फल पाता है।

भगवान् इस पहरेदार की बात पर भी मन्द हंसी हंसते रहे। वे सांप को और पहरेदारों को एक दृष्टि से देखते थे। उन्होंने सोचा इसमें जितनी बुद्धि है उसी के अनुसार यह बात कह रहा है। इससे अधिक बेचारा क्या कह सकता है। इस प्रकार भगवान् का न किसी पर राग भाव था और न किसी

पर द्वेष भाव। सब का कल्याण करने की भावना थी।

भगवान् आगे चल दिए। पहरेदार आपस में कहने लगे कि इस महात्मा के चेहरे पर कितना अलौकिक तेज है। हम लोगों ने इतना कहा मगर इसके चेहरे पर क्रोध की रेखा तक नहीं खिंची। शांत दांत और गंभीर रहते हुए चल दिया। चलो, हम लोग इसके पीछे पीछे जाकर देखें कि यह कहां जाता है और क्या करता है। सांप इसकी क्या दशा करता है सो चलकर देखें तो सही। दूर दूर भगवान् के पीछे पीछे पहरेदार भी चलने लगे।

ईर्या समिति का पालन करते हुए मेरु पर्वत के समान अडोल भगवान् महावीर सर्प की बांबी के पास पहुंचे। वहां पहुंचकर बांबी के समीप ही ध्यान लगाकर खड़े हो गये। भगवान् के शरीर की छाया सर्प की बांबी पर पड़ी जिससे सर्प को भान आया कि कोई मनुष्य यहां आया है। वह विचारने लगा कि ऐसा कौन मनुष्य है जो मेरी बांबी के निकट आने की हिम्मत कर सका है ! उसने अपनी दृष्टि से भगवान् की तरफ विष फैंका। किन्तु भगवान् की शांति के सामने उसका विष बेकार हो गया। भगवान् को विष का कुछ असर नहीं हुआ।

सर्प विचारने लगा कि मैंने कई मनुष्यों पर दृष्टिविष फैंका था और जिससे वे मौत की घाट उतर गये थे। ऐसा एक भी व्यक्ति न देखा जो मेरी नजर से भागता न बना हो। भागते हुए व्यक्ति को भी मैंने कभी नहीं छोड़ा। मै अपने आकर्षण से उसको अपने पास खींच लिया करता था और मार डालता था। लेकिन यह मनुष्य बड़ा विचित्र है। स्थिर और अडोल खड़ा है। इसको इसकी ढीठता का दण्ड देना चाहिए। वर्ना मेरा विष वृथा चला जायगा।

इस प्रकार सोचकर सर्प अत्यन्त क्रोध में भरकर अपनी बांबी से बाहर निकला। इधर उधर घूम कर क्रोध को और अधिक उत्तेजित कर लिया। फिर लाल लाल नेत्र करके निर्निमेष दृष्टि से भगवान् की तरफ देखने लगा। वह अपनी दृष्टि से भगवान् को जहर चढ़ाने का प्रयोग कर रहा था। मगर उसका यह प्रयोग महावीर के सामने व्यर्थ चला गया। भगवान् की आंखों से न मालूम कैसा अमृत झर रहा था कि सांप का जहर शान्त हो गया।

यदि किसी भाई को यह शंका हो कि क्या यह संभव है कि दृष्टि के कारण इतने प्रचण्ड विषधर सर्प का विष भी शान्त हो सकता है ? तो इस बात का समाधान पाने के लिए उसे योग शास्त्र का अध्ययन तथा योगाभ्यास करना चाहिए। तब उसको पता लगे कि योग साधना मे कितनी शक्ति है।

जिसने योग का थोड़ा भी अभ्यास किया है वह ऐसी शंका नहीं कर सकता और न ऐसी बात को असंभव मान सकता है।

आप लोगों ने मेस्मेरिजम का प्रयोग देखा होगा। जिस पर दृष्टिबांध कर मेस्मेरिजम का प्रयोग किया जाता है वह आदमी लकड़ी की तरह पड़ा रहता है और लकड़ी के समान कड़ा भी हो जाता है। फिर उस पर दस दस पांच पांच आदमी कूदा भी करें तब भी उसको कुछ नहीं होता। उसके एक हाथ को पचास आदमी मिलकर भी मोड़ नहीं सकते। मेस्मेरिजम में प्रयुक्त दृष्टि शक्ति को तो मानें और भगवान् की अमृतमय दृष्टि की शक्ति को न मानें या उसमें शंका लायें यह कहां तक उचित है।

आंखों से विष चढ़ाने का साँप का प्रयोग जब निष्फल हो गया तब और अधिक गुस्सा लाकर उसने भगवान् के पैर के अंगूठे पर डंक मारा। अंगूठे को काटने पर भी भगवान् सहज प्रसन्न मुद्रा में खड़े थे। मानों कुछ हुआ ही न हो। ज्यों ही भगवान् के रक्त की धारा सर्प के मुख में पहुंची कि उसका सारा विष शान्त हो गया। जब निर्विष हो कर सर्प शान्त हो गया तब भगवान् ने कहा– अरे चण्ड कौशिक ! तू बोध प्राप्त कर, बोध प्राप्त कर। यदि तू सत्य तत्त्व को जान जायगा तो मेरे समान बन सकता है।

कहाँ जगत् कल्याण कर्ता भगवान् महावीर और कहां तिर्यंच योनिधारी दूसरों को सताने वाला सर्प ! कितना अंतर है। किन्तु महावीर का मार्ग कुछ निराला ही है। वह सांप को भी अपने समान बनाना चाहते हैं। वह शत्रु को मारना नहीं चाहते, मित्र बनाना चाहते हैं। आप लोग भी चाहें तो संसार के सारे झगड़े शान्तिमय तरीकों से मिटा सकते हैं। शत्रु को मार डालने से अथवा उसको कष्ट पहुंचाने से शत्रुता कम नहीं हो सकती। वह और अधिक बढ़ती जाती है। मान लीजिये आपके मार डालने से आपका दुश्मन मर गया। मगर उसके दिल में आपके प्रति रही हुई शत्रुता या दुर्भावना तो नहीं मरी। वह तो ज्यों की ज्यों कायम है। वह व्यक्ति दूसरा जन्म ग्रहण करके आपसे बदला लेगा। और यदि वह जान से मर नहीं गया है और जिन्दा रह गया है तो फिर कभी मौका पाकर वैर वृत्ति धारण कर बदला लेगा। वैर मिटाने का असली तरीका भगवान् महावीर ने अपने जीवन से बताया है कि शत्रु को मित्र बनालो। किसी को दुश्मन मान लेने की भावना ही गलत है।

क्रोध से क्रोध नहीं मिटता। क्रोध से क्रोध बढ़ता है। उपशम अथवा क्षमा धारन करने से क्रोध कम हो सकता है। शास्त्र में कहा है–

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे।

उपशम–शांतिभाव से क्रोध भाव को जीतो और नम्रता से अभिमान को।

सर्प ने भगवान् को डंक मारा और भगवान् ने उसकी एवज में सद्‌बोध दिया। दोनों ने अपने अपने स्वभाव के अनुसार कार्य किया।

भगवान् की नजर से निकली अमृतधारा से शान्त होकर सर्प सोचने लगा कि यह कोई विलक्षण व्यक्ति है जो डंक मारने पर भी मुझे उपदेश देता है। इसके शरीर का रक्त भी मुझे अन्य लोगों के रक्त के समान खारा नहीं मालूम देता। इसके रक्त में मिठास है। इस तरह सोचकर सर्प ने अपनी दृष्टि भगवान् की तरफ फैलाई। भगवान् की दृष्टि से उसकी दृष्टि मिलते ही उसमें और शांति भावना आ गई। रहा सहा क्रोध भी चला गया।

शास्त्र में शुक्ल लेश्या का वर्णन किया हुआ है। उस वर्णन में शुक्ल लेश्या के वर्ण गन्ध रस और स्पर्श का विस्तृत वर्णन है। आप लोग बाहर के वर्ण गन्ध रस और स्पर्श के पीछे पड़े रहते हो। किंतु यदि शुक्ल लेश्या के वर्ण गन्ध रस और स्पर्श को समझो और समझकर शुक्ल लेश्या धारण करो तो बहुत ही आनन्द आ जाय। संसार में जो उत्तम से उत्तम सुगन्धित द्रव्य माने जाते हैं उनसे अनन्त गुणी अधिक श्रेष्ठ गन्ध शुक्ल लेश्या की होती है तथा इसी प्रकार उत्तम से उत्तम वर्ण रस और स्पर्श युक्त पदार्थों से अनन्त गुण उत्तम वर्ण रस और स्पर्श शुक्ल लेश्या का होता है। अधिक क्या कहें आप शुक्ल लेश्या प्राप्त करके इस चीज का अनुभव कीजिये। यद्यपि पहुंचना अलेशीपद तक है परन्तु शुक्ल लेश्या उसका सोपान है।

यदि कोई कहे कि शुक्ल लेश्या का वर्ण गंध रस और स्पर्श हमें मालूम नहीं देता, हम कैसे मान लें। शुक्ल लेश्याधारी मनुष्य को देखने सूंघने चखने और स्पर्श करने से शास्त्र प्रतिपादित वर्णादि का बोध नहीं होता। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए आधुनिक विज्ञान हमारी बहुत मदद करता है। सुना जाता है कि जर्मनी में कोयले आदि कूड़े कर्कट के ढेर लगे पड़े हैं। उन ढेरों को चखने से उनमें मिठास नहीं मालूम देती। किन्तु वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि उस कूड़े कर्कट में साधारण शक्कर से तीन सौ गुनी अधिक मिठास है। और अब तो कहते हैं कि पांच सौ गुनी मिठास है। उस कूड़े कर्कट से साधारण शक्कर से पांच सौ गुनी मिठास निकलती है। यों चखने पर मिठास नहीं मालूम होती किन्तु यंत्रों की सहायता से इतनी उत्कृष्ट मिठास निकाली जाती है। यही बात शुक्ल लेश्या के सम्बन्ध में भी जानो।

सुना है कि मन का भी फोटो लिया जा सकता है। जिसका जैसा

मन होता है वैसा ही फोटो भी आता है। मन उज्जवल हो तो फोटो का रंग शुक्ल होता है और यदि मन कलुषित हो तो फोटो का रंग कृष्ण होता है। जब मन के उतारे हुए फोटो में भी भावों का रंग दिखाई दे सकता है तो लेश्या के वर्ण गन्ध रस और स्पर्श में शंका करने की कहां गुंजायश रह जाती है।

यहां आजकल शहर में सर्कस का खेल आया हुआ है। उसके विज्ञापन के चित्र जगह जगह चिपकाये हुए हैं। उन में से एक चित्र मैंने भी देखा है। उसमें दोनों ओर दो शेर खड़े हैं और बीच में बकरा खड़ा है। सिंह और बकरा एक साथ कैसे खड़े हो सकते हैं। मैंने तो यह दृश्य चित्र में देखा है मगर आप में से कइयों ने सर्कस में यह दृश्य साक्षात् देखा हेगा। इसी प्रकार सर्कस में सिंह और बकरा एक साथ पानी पीते हैं। एक सिंह पर आदमी खड़ा हो जाता है। सर्कस में सिंह को भय लालच या अन्य तरीकों से काबू में किया जाता है। जब अन्य तरीकों से सिंह वश में हो सकता है तो महात्माओं की अनन्त शान्ति के प्रभाव से उनकी गोद में सिंह लोटने लग जाये तो इसमें क्या आश्चर्य की बात है। वैसे हम देखते ही हैं कि एक हिंसक मनुष्य और दयालु मनुष्य के नेत्रों में कितना फर्क होता है। इसी तरह शुक्ल कृष्ण आदि लेश्याओं में महान् अन्तर होता है।

भगवान् महावीर की आंखों के प्रताप से चण्डकौशिक सर्प में शुक्ल लेश्या का प्रवेश हुआ जिससे वह निर्विष हो गया। वह भगवान् के चरणों में लोटकर कहने लगा कि प्रभो ! आपकी मुद्रा देखने से मुझे भान हुआ कि मैंने वहुत पाप किये हैं। मैंने अनेक मनुष्य और पशु पक्षियों को सताया है। इस प्रकार विचारपूर्वक पश्चात्ताप करते करते सर्प को जाति स्मरण ज्ञान हो गया। पूर्वजन्म का ज्ञान हो जाने से कहने लगा कि भगवान् ! मैं पहले साधु था किन्तु क्रोध के कारण सर्प की खोली में पैदा हुआ हूं और लोगों को जहर चढाया है। प्रभो ! मेरा यह पाप कव छूटेगा।

जिन्होंने विषधर को भी प्रतिवोध देकर उसका सुधार कर दिया उस महावीर को न भेजोगे तो किसको भेजोगे? महावीर विगड़ी को सुधारने वाले हैं। सर्प की विगडी दशा को सुधार दिया। इसलिए उठते वैठते,चलते फिरते उनके नाम का घोष चालू रखो। उससे आपको अनन्त शान्ति मिलेगी।

चण्डकौशिक शान्त हो गया। अव यह शंका अवशिप्ट रह जाती हे कि चण्डकौशिक ने भगवान् क पैर के अंगूठे में काटा था फिर भी उनको विष क्यों नहीं चढा। इसका समाधान यह हे कि विष दूसरे विष के साथ मिलने से जगता हे। जिस तरह विजली के दो तार मिलने से विजली जगती है।

इसी तरह यदि हममें विष होगा तो सर्पादि का विष चढ़ेगा अन्यथा नहीं चढ़ सकता। यदि हमारी आत्मा में क्रोध नहीं है तो दूसरे व्यक्ति का क्रोध हम पर कुछ भी असर नहीं कर सकता। विष के लिए भी यही बात लागू होती है।

भगवान् में विष या क्रोध था ही नहीं। अतः चण्डकौशिक का विष उन पर कैसे असर कर सकता था। आपके हाथ में यह बात नहीं है कि आप दूसरों को निर्विष या क्रोध रहित बना दो। किन्तु यह बात तो आपके हाथ की है कि आप स्वयं निर्वैर और शान्त दान्त बन सकते हैं। यदि आपने अपनी आत्मा को वश में कर लिया तो किसी प्रकार के जहर का आप पर असर नहीं हो सकता।

चण्डकौशिक आत्मालोचन कर रहा है कि मैंने कइयों को विष चढ़ाया है और तो और मैंने स्वयं भगवान् महावीर तक को न छोड़ा। उनको भी काटा है अब आयन्दा मैं किसी को न काटूंगा। जो हुआ सो हुआ अब से किसी को विष न चढ़ाऊंगा। इस तरह निश्चय करके अपना मुख बांबी में डाल दिया और अन्य सारा शरीर बाहर रख दिया। ताकि जिसको जो कुछ करना हो शरीर से करे। सर्प की ऐसी वृत्ति देखकर भगवान् वहां से चल दिए।

जो पहरेदार भगवान् के पीछे पीछे तमाशा देखने आये थे वे कहने लगे कि यह मोड़ा बड़ा करामाती निकला। देखो, सर्प कितना शान्त होकर पड़ा है। कहीं यह मर तो नहीं गया है। यह मुर्दे के समान पडा हुआ है। वे लोग सांप जिन्दा है या मर गया है यह जानना चाहते थे। किन्तु सांप के पास आकर देखने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। अतः दूर से कंकड़ फेंक कर जांच करने लगे कि यह हिलता है या नहीं। कंकड़ लगने पर भी जब सर्प न हिला तो वे डरते डरते उसके समीप आये और लकड़ी से उसको हिलाने लगे। सर्प इधर से हिलाने पर उधर हो जाता था और उधर से हिलाने पर इधर हो जाता था। मगर मुख बाहर न निकालता था। और न उनकी तरफ देखता था।

पहरेदार समझ गये कि यह जिन्दा है मगर शान्त स्वभावी बन गया है। यह उस साधु की करामात है। लोग कौतुक भी देखना चाहते हैं और डरते भी हैं। तब पहरेदारों को विश्वास हो गया कि अब यह सर्प लोगों को विष नही चढ़ायेगा तब ग्राम ग्राम में यह खबर पहुंचा दी गई कि सर्प अब शान्त हो गया है। यह खबर सुनकर गांवो से लोग उस सर्प को देखने के लिए दौंडे आये। उसका लोगो पर आतंक तो था ही। लोग आकर उसकी पूजा करने लगे। घी दूध आदि चढ़ाने लगे। लोग शक्ति की पूजा करते है। मगर पूजा करने का तरीका नही जानते। सर्प के लिए अब पूजा करने वाले और कष्ट

देने वाले समान थे। न कोई उसका शत्रु था और न कोई मित्र। सब पर एक ही दृष्टि थी। घी दूध के कारण असंख्य चींटियां वहां इकट्ठी हो गई और उसके शरीर को काट काट कर चलनी बना दिया। मगर सर्प यही विचार करता था कि यह मेरे पापों का प्रायश्चित्त है। चींटियां मेरी सहायक हैं जो मेरे पाप नाश करने में मददगार बन रही हैं। गज सुकुमार ने भी यही भावना रखी थी।

यद्यपि वह जाति से सर्प था मगर उसकी भावना इतनी निर्मल हो गई कि वह शुक्ल लेश्या धारी हो गया। जो लेश्या भगवान् महावीर में थी वही लेश्या सर्प की भी हो गई। वह समाधि भाव में मर कर शुक्ल लेश्या से आठवें देव लोक में उत्पन्न हुआ। शुक्ल लेश्या का प्रारम्भ छठे देव लोक से हो जाता है। आठवें में वह और अधिक उज्ज्वल हो जाती है। यह नियम है कि जीव जिस लेश्या में मरता है उसी लेश्या में दूसरी योनि में जन्म ग्रहण करता है। भगवान् महावीर की शुक्ल लेश्या में और आठवीं देव लोक में उत्पन्न देव की शुक्ल लेश्या में तरतम भाव अवश्य है। भगवान् की लेश्या विशुद्ध तर थी।

सर्प ने अपनी लेश्या बदल दी थी। मगर आप अपनी तरफ देखिये। साधु साध्वी श्रावक और श्राविका चारों भगवान् के शिष्य कहलाते हैं। यदि आप क्रोधादि विकारों को न त्यागेंगे तो इस सर्प से भी गये बीते न कहलायेंगे? अतः क्रोध को त्याग कर महावीर को हृदय में धारण करो। यदि आप भगवान् को हृदय में जन्माओगे तो देवता लोग आपके पास भी दौडे आयेंगे शास्त्र में कहा है कि–

देवावि तं नमंसन्ति जस्स धम्मे सया मणो।

अतः तन धन की प्रीति लगाओगे तो कल्याण है।

18–8–36
राजकोट

16– ब्रह्मचर्य का साधक तप

प्रतिष्ठेसन नृप को सुत, पृथ्वी तुम महतारी;
सुगुण सनेही साहिब साचो, सेवक ने सुखकारी।
श्री जिन राज सुपार्श्व, पूरो आश हमारी।। 1 ।।

प्रार्थना–यह भगवान् सुपार्श्वनाथ की प्रार्थना है। इस प्रार्थना की कड़ी में वह बात कही गई है जो सब प्राणियों को इष्ट है। ऐसा कौन प्राणी है जो अपनी आशा पूरी न करना चाहता हो ! सब लोग यह चाहते हैं कि हमारी मनोबांछा पूरी हो। भक्त भी भगवान् से यही प्रार्थना करता है कि हे प्रभो ! मेरी आशा पूरी करो। यदि तू मेरी आशा पूरी न करेगा तो कौन करेगा? मेरी आशा पूरी किये बिना तू मेरा स्वामी भी कैसा ?

व्याकरण के नियम के अनुसार प्रत्येक वाक्य के दो विभाग होते है। एक उद्देश्य और दूसरा विधेय। जो न जाने हुए अर्थ को बतावे वह उद्देश्य है और जो जाने हुए अर्थ को बतावे वह विधेय है। प्रत्येक समझदार व्यक्ति इस बात का विचार करता है कि मेरे कहे हुए वाक्य का क्या उद्देश्य है और क्या विधेय है इस प्रार्थना का विधेय कोई अपूर्व आशा है। उस अपूर्व आशा की पूर्ति के लिए भक्त भगवान् से प्रार्थना करता है कि भगवान् मेरी आशा पूरी करो।

इस जगत् में ऐसा कौन प्राणी है जो आशा पूरी कराने के लिए प्रयत्न न करता हो। सब प्राणियों के सारे प्रयत्न आशा पूर्ति कराने के लिए ही होते है। फिर भक्त को यह कहने की क्यों आवश्यकता हुई कि मेरी आशा पूरी करो। दूसरी बात परमात्मा की प्रार्थना कामना रहित होकर करनी चाहिए। किसी कामना की पूर्ति के लिए प्रार्थना न होनी चाहिए निष्काम भाव से की गई प्रार्थना सच्ची प्रार्थना है। मगर इस प्रार्थना में भक्त अपनी कामना प्रकट कर रहा है। यह विरोधाभास क्यों है ?

इस विरोधाभास को मिटाने के लिए प्रार्थनावाक्य का विधेय देखिये। वाक्य का अर्थ उसके विधेय से लगाना चाहिए। विधेय को समझकर फिर उसके विषय में प्रश्न उठाना चाहिए। यद्यपि इस प्रार्थना में आशा पूरी करने की भावना की गई है मगर हमें यह देखना चाहिए कि वह आशा कौन सी है। जीव अनादि काल से अपनी आशा पूरी करना चाहता है मगर अभी तक अनन्त काल व्यतीत हो चुकने पर भी उसकी आशा पूरी नहीं हुई है। अतः गंभीरता से विचार करना चाहिए कि भक्त कौनसी आशा पूरी कराने की प्रार्थना करता है। इस वाक्य में आशा विधेय है। मगर वह विधेय किस आशा के लिए है, यह देखो।

भक्त कहता है कि भगवन् ! मैं अनन्त काल से आशाओं की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील हूं। आशा का दास बनकर दर दर भटकता फिरता हूं। मगर ये आशाएं, जैसे घासलेट तेल या पेट्रोल डालने से आग बुझने के बदले और अधिक भड़कती है, वैसे ही ज्यों ज्यों इनको पूरा करने का यत्न करता हूं, दिनों दिन अधिकाधिक बढ़ती जाती है। अतः प्रभो ! मैं तेरी शरण में आया हूं। मेरी आशा इस तरह पूरी करो कि फिर कभी आशा ही न हो। प्रभो ! मैं आपसे 'आशायें ही न हों' इस बात की आशा करता हूं। आशा मिटाने की आशा करता हूं। कामना मात्र से रहित होने की आपसे प्रार्थना करता हूं। आशा तृष्णा वांछा या कामना ही न रहे' यह प्रार्थना करता हूं। बस प्रभो ! मेरी यही एक अंतिम आशा है कि 'मैं आशा रहित हो जाऊं'।

यदि किसी भण्डार में चिन्तामणि रत्न के साथ साथ अन्य अनेक बहुमूल्य रत्न भरे पडे हों, और किसी को मनोवांछित वस्तु लेने की इजाजत मिल गई हो तो वह कौन सी वस्तु लेना पसन्द करेगा? यदि वह मनुष्य बुद्धिमान् होगा तो चिन्तामणि रत्न लेना ही सबसे अधिक पसन्द करेगा। कारण कि चिन्तामणि के मिल जाने से अन्य रत्न आदि अपने आप इच्छा करते ही मिल सकते हैं। परमात्मा से भी ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए जिससे सब कामनाएं पूरी हो जाय। अथवा दूसरे शब्दों में कहें तो तेरी प्रार्थना से मुझ में कोई आशा ही अवशिष्ट न रहनी चाहिए।

तू दयालु दीन हौं, तू दानी हौं, भिखारी।

भगवन् ! तू दयालू है, मैं दीन हूं। तू दानी है, मैं भिखारी हूं। मैं संसार के लोगों के सामने अपनी दीनता प्रदर्शित करता हूं और वे कदाचित् दया करके मेरी दीनता मिटा भी देते हैं, किन्तु इससे मेरी दीनता और बढ़ती जाती है। यदि कोई मुझ को राज्य भी प्रदान कर दे तो वह भी मेरी दीनता या

बन्धन बढ़ाने वाला ही होगा। अतः मेरी दीनता मिटाने वाला एक मात्र तू ही दानी है। तेरे जैसा दानी इन्द्र नरेन्द्र आदि कोई भी नहीं है।

यदि कोई कहे कि मनुष्यों को अनेक दुःखों ने घेर रखा है। उन दुःखों को मिटाने के लिए रात दिन चिन्ता लगी रहती है। किसी को पुत्र की शादी की चिन्ता है तो किसी को आजीविका की चिन्ता सता रही है। इन सब चिन्ताओं को मिटाने का जो वाजिब उपाय है उसे छोड़कर परमात्मा से प्रार्थना करने लगना दुःखों की वृद्धि करना है। इस तरह हमारा मानव जीवन व्यर्थ चला जायगा।

इसका उत्तर यह है कि मनुष्य जीवन ही एक ऐसा जीवन है जिसमें परमात्मा की प्रार्थना की जा सकती है। मनुष्य जन्म ही प्रार्थना का पात्र है। देव और इन्द्र भी प्रभु प्रार्थना करने के उतने पात्र नहीं है जितना मनुष्य है। अतः ज्ञानी कहते हैं कि ऐ जीव ! तू दुखों से घबड़ाता क्यों है ? जिन दुखों से घबड़ा कर तू प्रभु प्रार्थना करने से हिचकता है वे दुःख तेरे अपने ही किये हुए हैं। परमात्मा की सहायता लेकर उन दुःखों को तू सरलता से मिटा सकता है। दूसरी बात दुःख दुःख चिल्लाकर रोते रहने से कोई पूरा नहीं हो सकता। तू यही विचार कर दुःख मेरे किये हुए हैं अतः इनको मिटाने की सामर्थ्य भी मुझ में ही है। मैं इन दुःखों को सहायता देता हूं इसलिए ये टिके हुए हैं। अब भगवान् की शरण पकड़ता हूं जिससे ये सब दुःख दूर हो जायेंगे। दुःख या आशा तृष्णा मिटाने का अचूक उपाय परमात्मा की प्रार्थना ही है।

परमात्मा से दुःख नाश करने की प्रार्थना करने के पूर्व यह जान लेना चाहिये कि दुःख क्या है ? जीव ! अभी तू दुःख और सुख को भी नहीं समझता यह तेरी नादानी है। कहा है–

> दुःख को सुखकरि मानियो भमियो काल अनन्त,
> लख चारासी योनि में भाष्यो श्री भगवन्त।
> मुक्ति का मारग दोयलो जीवा चतुर सुजान,
> भजलो नी भगवान तज दो नी अभिमान मुक्ति।।

आत्मा को सुख प्राप्त करने वाला मार्ग आत्मा ने ही अवरुद्ध कर रखा है। अपनी अज्ञानता ने इस मार्ग को कठिन बना रखा है।

आत्मा ने सुख को दुःख और दुःख को सुख किस तरह मान रखा है यह बात समझाने के लिए कुछ प्रमाण देता हू। आप लोग समझदार हैं अतः थोड़े से दाखलों पर से बात समझ जायेंगे और आगे का विचार भी कर लेंगे।

मान लीजिये एक आदमी को कड़ी भूख लगी है। उस समय वह भोजन करने में ही आनन्द मानता है। इत्तिफाक से उसके सामने भोजन का थाल आ गया और उसने बड़ी रुचि से भोजन कर लिया। उसे भोजन कर लेने से तृप्ति हो गई। भोजन कर लेने के बाद उसे और लड्डू परोसे गये। अब उसे खाने की रुचि नहीं है। एक दो लड्डू और खा गया। अब एक भी लड्डू खाना उसकी शक्ति के बाहर है। फिर भी बड़ा आग्रह करके उसको लड्डू खाने की बात कही गई। अब उसे लड्डू की बात ही नहीं सुहाती। मैं पूछता हूं कि क्या अब लड्डू का स्वाद बदल गया है ? थोड़ी देर पहले जो लड्डू आनन्द देने वाले थे वे अब अरुचि पैदा करने वाले क्यों हो गये ? वस्तुतः बात यह है कि भूख जन्य जो दुःख था वह मिट गया इसलिए अब सुख के कारण माने जाने वाले लड्डू सुख के कारण न रहे। बल्कि अब खाने का अधिक आग्रह करने पर दुःख का कारण बन गये हैं। इससे हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि लड्डुओं में सुख नहीं है। केवल भूख के दुःख से घबड़ा कर उनमें सुख मान लिया गया था।

कोई यदि यह बात कहे कि लड्डू भूख अवश्य मिटाते हैं तो यह बात भी भूल से भरी हुई है। लड्डू सदा के लिए भूख नहीं मिटाते। आपने कल लड्डू खाये थे, आज और खायेंगे या नहीं ? आज यदि और खायेंगे तो कल वाले लड्डूओं ने क्या किया ? यदि कहें कि कल के लड्डुओं ने कल भूख मिटाई और आज के लड्डू आज भूख मिटाते हैं तो यह सिलसिला सदा जारी रखना पड़ेगा। इस तरह सदा खाते रहना पड़ेगा। यह तो उस फोड़े वाली बात हुई जो भरा निंगर हो जाता है। पस सूख जाता है, फिर पस तैयार हो जाता है। यह एक बीमारी है जिससे पीछा छुड़ाना कठिन काम है।

जिस प्रकार जीव क्षुधावेदनीय कर्म के उदय से भोजन में सुख मानता है। उसी प्रकार ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीयादि कर्मों के उदय से घबडा कर किसी न किसी वस्तु में सुख की कल्पना करता है और सुख मानने लगता है। परन्तु संसार के भौतिक पदार्थों में सुख है ही नहीं।

आप लोग कहेंगे कि महाराज ! आप चाहे संसार के पदार्थों में सुख न मानें मगर हमें तो उनमें बडा आनन्द मालूम देता है। इसके उत्तर में मैं कहता हूं कि जो आदमी जो काम करता है उसमें सुख मान कर ही करता है। यदि वह दुःख मानता तो वह काम करता ही क्यों ? चोर चोरी करने मे ही सुख मानता है, रंडीबाज जुआरी और शराबी अपने अपने कार्यों में सुख मानकर ही करते हैं किन्तु देखना यह है कि उनको जिन कामों में सुख मालूम देता

है उन कामों में दूसरों को क्या मालूम देता है ? इज्जतदार और समझदार व्यक्ति चोरी जुआरी आदि कार्यो में महान् दुःख का अनुभव करते हैं। अतः ज्ञानी जन कहते हैं कि जीव ! तू जिन पदार्थो में सुख मान रहा है उनमें सुख नहीं है। तू दुःख को सुख मान रहा है।

सब कुछ कहने का भावार्थ यह है कि सुख और दुःख को ज्ञानियों की दृष्टि से देखने की कोशिश करो। इतना तो मानो कि तुम्हारी दृष्टि में विपर्यास है। ज्ञानियों को धन्यवाद दो जिन्होंने सुख दुःख का वास्तविक ज्ञान कराया है।

अब इस बात पर विचार किया जाता है कि भगवान् से आशा पूरी करने की प्रार्थना की गई है वह अपूर्व आशा भगवान् के द्वारा किस प्रकार पूरी होती है भगवान् ने आशा पूरी करने का मार्ग धर्म बताया है। और धर्म का उपदेश पात्र को ध्यान में रख कर दिया है। जिसकी जैसी सामर्थ्य हो उसके अनुसार धर्माचरण करे। धीरे धीरे आगे बढ़ता जाय मगर पीछे कदम न हटाये। भगवान् ने जिस धर्म का उपदेश दिया है उसके सम्बन्ध में कहा है–

दान सुशिल तपायुत भाव चहूं विधि धर्म महा सुख दाता।
मोक्ष करे सुख स्वर्ग भरे नर लोक विषे बहु ऋद्धि मिलाता।।
दारिद दुःख करे चकचूर लहे जीव उत्तम सम्पति साता।
तीरथनाथ बखानत है युत धर्म कथा सुनते बहु ज्ञाता।।

भगवान् ने धर्म के चार भेद बताये हैं। दान शील तप और भाव ये चारों धर्म के भेद और मोक्ष के मार्ग हैं। किसी नगर के यदि एक ही द्वार हो तो लोगों को प्रवेश और निर्गम में बाधा होती है। किन्तु चारों दिशाओ में चार द्वार हों तो कठिनाई नही होती। इसी प्रकार धर्मरूपी नगर के यदि एक ही द्वार होता तो सब लोग सरलता पूर्वक उसमे प्रवेश नहीं कर सकते थे। अतः भगवान् ने चार मार्ग बताये है। जैसी जिसकी शक्ति हो तदनुसार मार्ग अपना कर धर्म मे प्रवेश कर सकता है।

सबसे पहला मार्ग दान बताया गया है। दान को पहला नम्बर इसलिए प्रदान किया गया है कि दुःखी जीवो को इससे कुछ तृप्ति मिले। दान के द्वारा दुःखियो का दुःख मिटाया जाय इसलिए पहले इसका निर्देश किया गया है। आज दान धर्म की कमी देखी जाती है। लोगो मे निर्धनता दरिद्रता और अनुदारता आ गई है। इसलिए दुःख का कारण बढ़ गया है। ज्ञानी जन कहते हैं कि यदि दान के द्वारा एक दूसरे की सहायता की जाय तो दुःख नहीं
।

हो सकता। मगर आज कृपणता का साम्राज्य छाया हुआ है। अपने ही खाने पीने और ऐश आराम की तरफ बहुत अधिक ध्यान है। दीन दुखियों के दुःख दर्द मिटाने की तरफ बहुत कम ध्यान है। कृपणता के कारण दुःखों में वृद्धि हो रही है।

परन्तु शास्त्रों में श्रावक के लिए कहा गया है कि उसके द्वार अभंग होते हैं। दान देने के लिए उसके घर के द्वार सदा खुले रहते हैं। यह भेद नहीं है कि जैन साधुओं को तो देना और दूसरे साधु या अन्य आवश्यकता वाले लोगों को न देना। इस्लामी मजहब में भी मोहम्मद साहब ने कहा है कि अपने भाइयों की मदद करो। यदि तुम स्वयं गरीब हो तो अपने सामर्थ्यवान् भाइयों से सहायता ग्रहण करो। और यदि तुम सामर्थ्यवान् हो– सम्पत्ति वाले हो तो अपनी आय में से चालीस प्रतिशत जकात दो। वह जकात एकत्रित करके अपने दुःखी भाइयों की सहायता करो। जिससे कि कोई दुःखी न रहने पाये।

मुसलमानी मजहब में दान के सम्बन्ध में ऐसी बात कही हुई है। मगर आपके सम्बन्ध में ऐसा मालूम देता है मानो आप दान करना बुरा समझते हो। दान या देने की बात ही आपको बुरी लगती है। देने का नाम ही आपको नहीं सुहाता है। कोई दान की अपील करने के लिए खड़ा हुआ कि वह आपको खबीस जैसा जान पड़ने लगता है। यह दशा देखकर बाहर से संस्थाओं को लिए मांगने के हेतु आये हुए लोगों को चुप हो जाना पड़ता है।

जैसे आपके यहां पांजरापोल खुली हुई है वैसे ही घाटकोपर में जीवदया खाता खुला हुआ है। बम्बई के लोगों को दूध पिलाने के लिए जो भैंसें गौरी लोग बाहर से खरीद कर लाते हैं, वे जब दूध देना बंद कर देती हैं तब उनको कसाई खाने ले जाते हैं। बहुत दिनों तक बेचारी भैंसें तबेले में बंद रहती हैं। जब दूध से उतर जाती हैं तब उनको तबेले में से खोलते हैं। बहुत दिनों से तबेले में बंद रहने से जब वे खोली जाती हैं तो बड़ी प्रसन्न होती हैं और कूदने लगती हैं कि आज हम को बाहर की हवा खाने को मिली है। लेकिन उन बेचारी भैंसों को क्या पता है कि वे क्यों खोली गई हैं ! उन भैंसों को कत्ल खाने में ले जाया जाता है। वहां उनके चारों पैर बांध दिए जाते हैं। फिर उनको लाठियों से इस प्रकार पीटते हैं कि उनका चमडा ढीला पड जाय और अधिक चर्बी दे सकें। इसके बाद उनका बूंद बूंद दूध निकाल लिया जाता है और फिर कत्ल कर दिया जाता है। उनके चमडे खून मांस और चर्बी का

उपयोग अलग अलग कार्यो में किया जाता है। चर्बी का अधिकांश भाग मीलों में कपड़ों पर लगाने के उपयोग में लाया जाता है। मुझे जहां तक पता है एक छोटे कपड़े के मील में भी साल भर में सवा छ सौ मन चर्बी लगती है। अहमदाबाद की मीलों के सम्बन्ध में सुना है कि वहां वर्ष में एक लाख इक्यासी हजार मन चर्बी लग जाती है।

यह चर्बी कहां से आती है ? कत्ल खानों से यह चर्बी आती है। मैंने बम्बई के उपनगर बांदरा और कुरला के कत्ल खानों का हाल सुना है। हाल सुनकर आश्चर्य होता है कि उन दूध पीने वाले भाइयों के पीछे मूक पशुओं की कैसी हत्याएं होती हैं। फिर भी लोगों को विचार नहीं आता। मीलों में जो चर्बी लगती है वह इन दो कत्लखानों से पूरी नहीं हो सकती। अतः बाहर से चर्बी मंगाई जाती है। विदेशों में सुना है कि चर्बी के लिए एक एक मील लम्बे खून के हौज बने हुए हैं।

क्या आप लोग इस नृशंस हत्याकांड को नहीं रोक सकते ? क्या इन मारे जाते हुए मूक पशुओं की रक्षा नहीं कर सकते ? घाटकोपर के जीवदया खाते ने कत्लखाने के लिए बेची जाने वाली भैंसों को बचाने का काम अपने हाथ में लिया है। कसाई खाने के लिए जाती हुई भैंसों को खरीदकर उनको पांजरा पोल में रखा जाता है और इस प्रकार उनकी रक्षा की जाती है। क्या आप इस रक्षा के कार्य में किसी प्रकार का भाग नहीं ले सकते ? यदि आप अधिक कुछ न कर सकें तो कम से कम वह दूध तो छोड़ सकते हैं जिसके पीछे नृशंस हत्याकाण्ड होता है। क्या कोई भाई ऐसा नियम ले सकता है कि मैं बम्बई कलकत्ता में दूध न पिऊंगा।

मतलब यह है कि साधुमार्गी समाज में उदारता की कमी है। मोटर नाटक सिनेमा और फैशनेबल सामान खरीदने का खर्चा तो बढ़ा हुआ नजर आता है। मगर परोपकार के कार्यो में खर्च करने में कृपणता देखी जाती है। इसलिए ज्ञानी कहते हैं कि दान दो। यदि तुम को शांति चाहिए तो दान दो यह सोचो कि शक्ति रहते हुए मैं दूसरों की सहायता जरूर करूंगा। यदि आप लोग अपनी शक्ति का व्यय ठीक रास्ते से करें तो आपको दान की महत्ता का पता लग सकता है।

जो उपकारी है उसका प्रत्युपकार करने में कोई विशेष महत्व नहीं है। वह तो साधारण कर्त्तव्य है। किन्तु जिनका आप पर कोई खास उपकार नहीं है उनका यदि भला करो तो विशेषता है। हम साधु लोग यों तो नहीं कह सकते कि अमुक संस्था को या अमुक कार्य में इतने रुपये दो। क्योंकि ऐसा

कहने से रुपयों के हिसाव किताव की हम पर जिम्मेवारी आ जाती है अतः इस प्रपंच में हम नहीं पड़ सकते। हम समुच्चय उपदेश दे सकते हैं कि गरीवों या दुःखियों की सहायता करना अच्छा काम है। इसलिए यही कहते हैं कि दान देकर दुःखी पशुओं की सहायता करो। ऐसा कौन मनुष्य होगा जिसका गाय भैंस से तालुक न हो। आप पर उनका उपकार है। अतः फैशन का खर्च वचाकर उनकी सेवा या सहायता या दया करो तो कोई विशेष बात नहीं है कठिन काम भी नहीं है। अतः दान धर्म की ओर ध्यान लगाओ।

दूसरा शील धर्म है। इस पर वहुत कहा जा सकता है किन्तु आज अन्य बातें कहनी हैं अतः संकोच कर कहता हूं। आज फैशन शील को खा रही है। उसने शील को दूर भगा दिया है केवल ऊपरी नखरा ही नखरा रह गया है। भीतर पोलंपोल है। अतः ब्रह्मचर्य रक्षा की ओर भी ध्यान लगाओ।

तीसरा तपो धर्म है। तप धर्म की जितनी महिमा जैन समाज में है उतनी विरल ही कहीं हो। शास्त्र में वारह प्रकार के तप वताये गये हैं। उनमें से पहला अनशन तप है। अनशन का मतलव है भोजन न करना। महाभारत में भी कहा है–

तस्मादर्थे च कामे च तपो न अनशन समम्।

अर्थात् अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति के लिए अनशन के समान कोई दूसरा तप नहीं है। जैन शास्त्र में भी अनशन को प्रथम नम्बर दिया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विविध धर्म शास्त्रों में अनशन तप का वड़ा महत्व वताया गया है। फिर भी आजकल लोग तप करने से हिचकते हैं। वल्कि कई तो तप से घृणा तक करते हैं। वे कहते हैं कि इस तरह के एक एक दो दो मास तक के लम्वे तप करने से और भूखों मरने से क्या लाभ है? जिसको तप करना है वे तो करते ही हैं। किन्तु जिन को नहीं करना है वे करने वालों की टीका करते हैं। मगर तप की टीका करना तप द्वारा सुरक्षित शीलादि गुणों की जड काटना है।

तप से होने वाले लाभ का अनुभव तपस्या करने वाला व्यक्ति ही अनुभव कर सकता है। तप के विषय में यह बात खास ध्यान में रखने की है कि तप की समाप्ति होने पर पारणा और खान पान पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। पारना न विगड़ना चाहिये। पारणा व वाद में खान पान पर पूरा ध्यान न देने से रोग होने की संभावना रहती है। जव रोग हो जाता है या कोई मर भी जाता है तव लोग तप को वदनाम करने लगते हैं। तप से न तो कोई बीमार होता है और न मरता है। वल्कि रोग हो तो भी तप से मिट जाता है।

जैन धर्म तो तप का समर्थक है ही। मगर आज कल अमरिका निवासी भी तप का महत्व समझने लगे हैं। वे भी रोग मिटाने का तप को एक खास साधन मानते हैं। वस्तुतः तप सर्व प्रकार से लाभप्रद है किन्तु धारण और पारणा पर बहुत ध्यान रखने की जरूरत है।

जो तप के महत्व को समझता है वह उसकी कभी निन्दा नहीं कर सकता। गांधीजी को उनके मित्रों व हितैषियों ने कहा कि आप वृद्ध हो गये हैं अतः अब तप मत करिये। इस पर गांधीजी ने उत्तर में कहा कि मेरे तप छोड़ने की बात कहना गोया जिन्दगी छोड़ने की बात कहना है। मैं तो उपवास से ही जीता हूं। इस प्रकार गांधीजी तप का समर्थन करते थे। मगर जिन्होंने कभी उम्र में तप नहीं किया वे उसका क्या महत्त्व समझ सकते हैं। गीता में कहा है–

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं हृष्ट्वा निवर्तते।।

इस श्लोक पर टीका करते हुए लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने कहा है कि विषयों से निवृत्त होने के लिए अनशन तप करना अनुचित है। यह तो एक प्रकार का हत्या कांड है, आत्मघात है। क्योंकि भूखों मरने पर भी विषयों की वासना तो बनी ही रहती है। वासना को मिटाने का उपाय करना चाहिए। भूखों रहकर रक्त मांस सुखाना एक प्रकार का कसाई पन है।

तिलक ने अनशन तप की इतनी हद तक निन्दा क्यों की ? इसका कारण मेरी समझ में यह आता है कि उन्होंने कभी तप नहीं किया। कभी एकादशी व्रत भी किया हो या न किया हो। ऐसी दशा में बिना अनुभव के वे तप का महात्म्य क्या समझ सकते हैं। मगर गांधी ने तप करके अनुभव किया है अतः इसी श्लोक का अर्थ करते हुए लिखते हैं कि विषयों से निवृत्त होने और पांचों इन्द्रियों को काबू में करने के लिए अनशन तप के बराबर कोई दूसरा साधन नही है।

ऊपर उल्लिखित श्लोक का अर्थ यह है 'निराहार रहने से विषय निवृत्त हो जाते है मगर रस बाकी रह जाता है। वह परमात्मा दर्शन से मिट जाता है।'

निराहार का मतलब किसी प्रकार का आहार न करना है। छाछ पीना या धोवन पानी पीना आहार में शामिल है। इनके सहारे किया गया अनशन तप नहीं कहा जा सकता। शास्त्र में तेले के पश्चात् तप में धोवन पानी लेने

का निषेध है। केवल गर्म पानी ही लिया जा सकता है।

तप करने से विषय किस प्रकार शान्त हो जाते हैं यह बात एक दाखले से साफ करता हूं। एक सम्पन्न कुटुम्ब था। उसमें तीन ही प्राणी थे। पिता पुत्र और पुत्र वधू। दैवयोग से पुत्र युवावस्था में ही मर गया। पुत्र वधू विधवा हो गई। घर में ससुर और वधू दो ही व्यक्ति रह गये। ससुर ने विचार किया कि पुत्र वधू युवावस्था में विधवा हो गई है अतः शील की रक्षा के लिए इसके सामने मुझे सादगी आदि द्वारा आदर्श उपस्थित करना चाहिए। यदि मैं कर्त्तव्य न निभाऊंगा तो यह कैसे निभायेगी। यह सोचकर श्वसुर ने ऐसी सादगी धारण की कि मानो उसी पर वैधव्य आ गया हो।

आजकल लोग अपना कर्त्तव्य तो नहीं पालते मगर बेचारी विधवा बहू या पुत्री को उसका धर्म पालने के लिए मजबूर करते हैं। एक बूढे सेठ की स्त्री मर गई और उसकी बेटी भी विधवा हो गई। सेठ ने दूसरी शादी कर ली और इस प्रकार आचरण किया कि उनको देखकर उनकी बेटी भी दुराचारिणी बन गई।

मगर उस श्वसुर ने वधू को विधवा देखकर अपना आचरण इतना पवित्र निर्मल और सादा बना लिया कि पुत्र वधू भी वैसा ही आचरण करने लगी। वह भी श्वसुर की तरह सादा खान पान और सादा वस्त्र पहनने लगी। उसे काम वासना का खयाल तक न आता था।

एक बार पुत्र वधू के पीयर में किसी की शादी थी। उसको विवाह में शामिल होने के लिए लेने वास्ते आदमी आया। श्वसुर ने बहूतेरा समझाया कि विवाह की धाम धूम और रागरंग में इसको मत ले जाओ। मगर अत्याग्रह के कारण बहू को भेज दिया। बहू अपने पीयर गई। विवाह के अवसर पर कैसी धाम धूम होती है और कैसा खान पान होता है यह आप लोगों से छिपी हुई बात नहीं है। उस धामधूम को देखकर और वैसा गरिष्ठ खान पान करके शील धर्म की रक्षा करना साधारण व्यक्ति के लिए कितना मुश्किल काम है।

बहू ने यह सब देखा और खान पान पर भी उसका अंकुश न रहा। अतः उसका मन बदल गया। उसके श्वसुर ने उसको यह बात समझा रखी थी कि बेटी ! यदि कभी तेरे से शील न पले तो सत्य को मत छोडना। क्योंकि सत्य और शील का जोडा है। जो भावना मन में आवे उसे मेरे सामने प्रकट कर देना। किन्तु छिपाना मत। श्वसुर की यह शिक्षा उसे याद थी। अतः घर आकर एक पत्र लिखकर अपनी इच्छा श्वसुर को दर्शादी कि मेरा मन अब

काबू में नहीं रहता है अतः मेरे योग्य पति ढूंढ दीजिये और उसके साथ मेरा पुनर्विवाह कर दीजिये। मैं गुप्त पाप सेवन नहीं करना चाहती अतः पति की तलाश कर दीजिये।

आज यदि कोई बहू इस प्रकार का पत्र अपने श्वसुर को लिख दे तो श्वसुर जूता मारने के लिये उतारू हो जायेगा। स्वयं चाहे कितना ही आचरण भ्रष्ट हो मगर बहू की ऐसी गुस्ताखी सहन नहीं कर सकता। मगर वह श्वसुर ऐसा न था। वह समझदार था तथा दूसरे के कष्टों को महसूस करने वाला था। अतः बहू का स्पष्ट भाव दर्शक पत्र पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। कम से कम, बहू का मन शील पालने से विचलित हो गया है मगर सत्य पर अभी तक दृढ़ है इस बात पर वह बहुत प्रसन्न था। यदि सत्य बचा हुआ है तो शील भी बच जायगा। उसके मन में दृढ़ विश्वास था कि—*सच्चं खलु भगवओ*

सत्य खरोखर भगवान् है। बहू ने सत्य नहीं छोड़ा है और अपने मनोभावों को खुले शब्दों में प्रकट कर दिया है, यह कम बात नहीं है।

श्वसुर ने उत्तर में लिख दिया कि बहू, तुम धन्य हो जो सत्य पर कायम हो। यदि अन्य बहू होती तो अपने मनोभावों को छिपाती और गुप्त पाप सेवन का आश्रय लेती। मैं आज से तुम्हारी इच्छा पूरी करने के काम में लगता हूं। मुझे तभी चैन पड़ेगी जब तुम्हारी इच्छा पूरी हो जायेगी।

बहू को पत्र लिखकर श्वसुर विचार करने लगा कि मेरे कुल का धर्म, मेरे कुल की लाज और मर्यादा तथा मेरी और मेरी वधू की लाज व मर्यादा किस प्रकार रहे। बहू का इसमें कोई दोष नहीं है। दोष हमारी सामाजिक व्यवस्था का है। विधवाओं के लिए कैसा वातावरण चाहिये तथा उनका खान पान सहन और जीवन यापन का तरीका कैसा चाहिये इस बात पर समाज गौर नही करता है। सबके लिये समान वातावरण रहे और फिर शील की रक्षा की आशा करना कठिन काम है। समाज के दोष के कारण बहू में शैतान प्रवेश कर गया है। वह शैतान जब तक उसके मन में से न निकले तब तक काम नहीं बन सकता। अतः स्वयं कष्ट सहन करके भी बहू का शैतान निकालना चाहिए। शास्त्र में कहा हुआ है कि अनशन तप करने से यह काम रूपी शैतान शान्त हो जाता है अतः मुझे इसी उपाय की अजमायश करनी चाहिये।

इस प्रकार विचार करके श्वसुर अनशन तप ग्रहण करके दूकान पर बैठ गया। दासी को पत्र देकर मौखिक कहला दिया कि मैं जिस काम मे हाथ डालता हूं उसे पूरा किये बिना चैन नहीं लेता हू। मै भोजन भी तब करूंगा जब कार्य पूरा हो जायगा। बहू भोजन के लिए मेरी प्रतीक्षा न करे। वह स्वयं भोजन करले।

श्वसुर ने यह बात कहला दी। मगर बहू के भी यह नियम था कि वह श्वसुर को भोजन कराये बिना स्वयं भोजन न करती थी। कहावत है–

मांटी पेला बइरो खाय, तिको जमारो एलो जाय।

यद्यपि यह कहावत पति पर लागू होती है। मगर वह बहू अपने श्वसुर को जिमाये बिना न जीमती थी। उनका इतना अदब रखती थी और सेवा करती थी।

दासी के द्वारा श्वसुर का पत्र पाकर बहू बहुत प्रसन्न हुई। मन में मनसूबे बांधने लगी कि अब क्या है, अब तो श्वसुर मेरे लिए नया पति ढूंढ लायेंगे। अच्छा हुआ जो यह बात मैंने मन में छिपाकर नहीं रखी। नहीं तो, न मालूम गुप्त पाप सेवन का अवसर आ जाता, जिससे मैं और श्वसुर दोनों बदनाम होते। अब श्वसुर स्वयं दलाल बनकर मेरे लिए वर ढूंढ रहे हैं। मैं स्वयं रूपवती और यौवन सम्पन्न हूं। तथा धन की भी कमीं नहीं है। कौन युवक मुझे व मेरे घर को पसन्द न करेगा !

बहू अच्छे वस्त्राभूषण पहिन कर इत्र फुलेल लगाकर नये पति के आगमन की प्रतीक्षा में बैठी है मेरे श्वसुर मेरे लिए पति लेकर आ ही रहे होंगे। भोजन के वक्त दासी को कहा कि श्वसुर जी को भोजन करने के लिये बुला ला। दासी गई मगर श्वसुर ने कह दिया कि मैं काम सिद्ध हुए बिना भोजन न करूंगा। यह बात मैं पहले कह चुका हूं। बहू से कह देना कि मेरा इन्तजार न करे वह भोजन कर ले।

अपने नियम में बंधी होने से बहू ने भी भोजन नहीं किया। शाम को बहू के मन में विचार आया कि मैंने बहुत जल्दी की है। चंचलता के वश होकर दागीने पहन लिए हैं। अभी इनको उतार देना ही अच्छा है। इस तरह विचार कर सब श्रृंगार व दागीनें उतार डाले। प्रातःकाल बहू ने पारणे के लिये भोजन बनाया और श्वसुर को बुलावा भेजा। मगर श्वसुर ने यही बात कहला दी कि मैं कार्य सिद्ध हुए बिना भोजन नहीं करूंगा। मेरे कारण बहू ने भी भोजन नहीं किया है यह दुःख की बात है। वह भोजन कर ले।

इस प्रकार दूसरा दिन भी दोनों का निराहार बीत गया। तब बहू के मन में विचार आया कि मैंने यह कैसा नीच विचार किया है कि जिसके कारण पूरे दो दिनों से श्वसुर भूखे हैं। श्वसुर को धन्य है जो मेरी नीच इच्छा पूरी करने के प्रयत्न में लगे हुए हैं।

तीसरे दिन फिर पारणा करने के लिये बहू ने रसोई बनाई और श्वसुर को बुलावा भेजकर कहलाया कि अब मुझ से भूखा नहीं रहा जाता है। कृपा करके आप भोजन कर लीजिये। मगर श्वसुर का उत्तर निश्चित था कि काम हुए बिना भोजन न करूंगा।

तीसरे दिन की रात में बहू की विषयेच्छा एकदम शांत हो चुकी थी। वह विचारने लगे कि मैंने यह क्या मूर्खता की है। श्वसुर क्यों तीन दिनों से भोजन नहीं कर रहे हैं, यह बात अब मेरी समझ में आ रही है ! जो मेरी विषय वासना पूरी करे उसी को अपना पति बनाना चाहिये।

चौथे दिन प्रातःकाल बहू ने फिर श्वसुर को बुलाने वास्ते दासी को भेजा। उनका वही उत्तर था कि अभी काम पूरा नहीं हुआ है। बहू ने पुनः दासी को भेजा कि उनसे कहना कि एक बार घर आकर मुझसे मिल लें।

श्वसुर घर आये। बहू पैरों पड़कर कहने लगी कि मुझे क्षमा करना। मुझे अपने नीच विचारों पर अफसोस है। आपकी मैं बहुत ऋणी हूं जो आपने मुझे अपने धर्म से बचा लिया है। आपके जैसा ससुर मिलना कठिन है। मेरा कार्य पूरा हो चुका है। अब आप भोजन कर लीजिये।

श्वसुर ने कहा बहू ! अभी तुम भूखी हो अतः ऐसा कह रही हो। जब पेट में रोटियां पड़ जायेंगी तब वही बात फिर जाग्रत हो जायगी। मैं बूढा आदमी हूं, यदि फिर तुम्हारा मन बिगड़ गया तो मैं क्या करूंगा। अतः अच्छी तरह विचार कर लो। फिर जैसा जँचे वैसा निश्चय करना।

बहू ने कहा– पूज्य श्वसूर जी ! मैंने अच्छी तरह सोच विचार कर निश्चय कर लिया है कि अब मैं पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत पालूंगी। कदाचित् मन मे बुरा विचार पैदा हो जायगा तो उसे मिटाने की औषधि मुझे मिल चुकी है। आपने इन तीनों में काम दिनों में काम को जीतने की अचूक औषधि मुझे बता दी है। वक्त जरूरत पर इस दवा से मैं काम लिया करूंगी। जिस अनशन के प्रताप से मेरे मन का शैतान निकलकर भाग गया है उसी अनशन को अब मैं अपना पति बनाती हूं। दो तीन उपवास किये कि मन का विकार अपने आप शांत हो जायगा।

श्वसुर बहू का निश्चय सुनकर कहने लगे कि तुमको धन्य है और तप को भी धन्य है। मेरी और मेरे कुल की लाज तप ने रख ली है।

कहने का सारांश यह है कि तिलक ने कभी उपवास न किये होंगे अतः उसका महत्त्व न समझ सके। किन्तु गांधी जी ने अपने जीवन मे कई बार लम्बे उपवास किये हैं अतः वे उनका महत्त्व समझ सके है। एक बार गांधी जी ने स्वराज्य के सिलसिले में भी इक्कीस उपवास किये थे। जिनके उपलक्ष्य में देश भर के लोगों ने करोडों उपवास किये थे।

तप से शील धर्म की रक्षा होती है। हजारो विधवा स्त्रियो के ब्रह्मचर्य की रक्षा अनशन तप के प्रभाव से ही होती है। तपस्या के धारण और पारणा के दिन खास ध्यान रखना चाहिये। उपवास मे 'चउत्थ भत्त' अर्थात् चार भक्त

(खुराक) का त्याग किया जाता है। जिसका मतलब यह होता है कि उपवास के पहले दिन भी एक समय भोजन करना और उपवास के दूसरे दिन भी एक वार भोजन करना। यह न होना चाहिये कि कल उपवास है। अतः आज खूब डट के खालें अथवा पिछली रात को उठकर दूध पी लें और फिर उपवास ग्रहण कर लें।

कई लोग उपवास क्या करते हैं, उपवास का परिहास करते हैं। उपवास के दिन सदा की अपेक्षा और अधिक खा लेते हैं। कहा है–

गिरी और छुहारे खात किशमिस और बदाम
चायसांटे और सिघाड़े से होत दिल राजी है।
गूंद गिरी कलाकंद अरवी और सकरकंदकुंदे के पेड़े
खात, लोटें बड़ी गादी है।।
खरबूजा तरबूजा और आम जामू झकोर
सिंघाड़े के सीरे से भूख को भगा दी है।
कहत नारायण करत दूनी हानि,
कहने को एकादशी पर द्वादशी की दादी है।।

तप का बहुत महत्त्व है। मगर आज इतना ही कहता हूं कि–

तप बडो संसार में जीव उज्जवल थावे रे,
कर्म रूपी इन्धन जले शिवपुर नर सिधावे रे।। तप.।।

जब तक संसार में तप की प्रतिष्ठा है तब तक संसार की लाज है। जब तप न रह जायगा तब संसार की लाज भी न रह जायगी। तप के प्रभाव से सूर्य और चन्द्रमा अपना प्रकाश फैला रहे हैं। जब तप न होगा सूर्य सारी पृथ्वी को अपने तेज से तपा देगा। चन्द्र अत्यन्त शीतलता प्रदान कर लोगों को ठंडा कर देगा और पृथ्वी आधार देना छोड देगी। मनुष्यों के तप के कारण प्रकृति शांत है। वेद पुरान और कुरान आदि सब धर्म शास्त्रों ने तप की महिमा गाई है। यह बात दूसरी है कि किसी सम्प्रदाय की तपो विधि दूसरी सम्प्रदाय को मान्य या पसंद न हो। किन्तु तप की प्रशंसा सब कोई करते हैं। सब ने तप के आगे सिर झुकाया है।

चौथा भाव धर्म है। यह धर्म प्रथम वर्णित तीनों– दान शील और तप को पुष्ट करने वाला है। भाव पूर्वक दान हो, भाव पूर्वक शील हो और भाव पूर्वक ही तप हो तब इनकी सार्थकता है। वैसे अकेला भाव भी स्वतंत्र रूप से लाभदायक है। कृष्ण और श्रेणिक किसी प्रकार का त्याग प्रत्याख्यान नहीं कर सके थे किन्तु शुभ भावना के कारण वे तीर्थंकर गोत्र बांध सके थे।

आज हम लोगों के भाव कैसे हैं, इस पर ध्यान लगावें। कृष्ण को कोई किसी भी रूप में मानते हों मगर उनकी महापुरुषता में किसी को सन्देह नहीं है। कृष्ण की भावना को समझ कर गृहस्थ में रहते हुए भी आत्म कल्याण किया जा सकता है।

गज सुकुमार मुनि को मोक्ष प्राप्त हो चुका है, यह बात कृष्ण को अभी तक मालूम नहीं हुई थी। अतः दूसरे दिन सपरिवार और ससैन्य उनके दर्शनार्थ निकले। वे हाथी के हौदे पर विराजमान थे। उन पर छत्र चंवर हो रहे थे। वे द्वारका के आम रास्ते पर होकर जा रहे थे। बड़े बड़े लोग उनसे मुजरा कर रहे थे। ऐसे ठाठ से जाते हुए भी उनकी दृष्टि किस तरफ रहती थी यह समझने की बात है। उनकी दृष्टि एक पुरुष पर पड़ी। वह बहुत वृद्ध था। जरा से उसका शरीर जर्जरित हो रहा था। हाथ पैर धूज रहे थे। हड्डी हड्डी निकल चुकी थी। मांस सूख चुका था।

मुख से टपके लार कान दोऊ बहरा पड़िया,
नहीं साता को तार हाड़ सब ही खड़ खड़िया।
घर में सके न बोल पुत्र को खारो लागें,
कहे जैनी जिनदास जरा में ये दुःख जागे।।
घटी आंख की जोत छूत सब घर का करता,
देखत आवे सूग डोकरा क्यों नहीं मरता।
जीह्वा करे फजीत रीत लोकां में खावे,
कहे जैनी जिनदास जरा में ये दुख जागे।।

बूढापे में यह सब बात होती है। ऐसा ही एक बूढा व्यक्ति हाथी पर बैठे हुए कृष्ण की नजर में आया क्या वहां द्वारका में नौजवान और सम्पत्तिशाली व्यक्ति न थे जिससे कृष्ण की नजर इस बूढ़े पर पड़ी है ? ऐसी बात नहीं है। द्वारका मे सब प्रकार के मनुष्य थे। किन्तु जैसे डाक्टरों की नजर बीमारों की तरफ रहती है और नाई की नजर दाढी की तरफ रहती है उसी प्रकार कृष्ण की नजर दीन दुःखियों की तरफ रहा करती थी।

वह वृद्ध पुरुष लकड़ी के सहारे चलते हुए घर के बाहर रखी हुई ईटो मे से एक एक ईट उठाकर घर के अन्दर रख रहा था। कृष्ण को उसकी यह दशा देख कर दया आ गई। उनका दिल बूढे के प्रति करुणार्द्र हो गया। मेरे नगर में ऐसे दुखिया लोग भी रहते हैं जानकर दुःखी होने लगे।

आत्मवत् सर्व भूतेषु यः पश्यपि स पण्डितः।

जो दूसरे को अपनी आत्मा के समान देखता है वह पण्डित है।

कृष्ण ने सोचा कि या तो इस बूढे के घर के लोग इससे घृणा करते हैं या स्वयं आराम में पड़े होंगे और इस बूढे से काम ले रहे हैं। कृष्ण ने महावत से कहा कि हाथी को ईटों के पास ले चल। महावत हाथी को ईटों के पास ले आया। हाथी पर बैठे बैठे ही कृष्ण ने एक ईट उठा ली और नीचे उतर कर उसके घर में ईट पहुंचादी। जब कृष्ण स्वयं ईट उठाने लगे तब दूसरे लोग कैसे रुक सकते थे ? सब का यही विचार था कि बड़ा आदमी जो काम करे, हमें भी करना चाहिये।

महाजनो येन गतः स पन्थाः।

बड़ा आदमी जिस मार्ग से गमन करे वही सच्चा मार्ग है। तर्क वितर्क में न पड़ कर श्रेष्ठ जनाचरित मार्ग पर गमन करना अच्छा है।

कृष्ण की सेना के सब सैनिकों ने भी एक एक ईट उठाकर बूढे के घर में रख दी। इस प्रकार थोडी सी देर में सारी ईंटें घर में रख दी गई। बूढा प्रसन्न होकर एक तरफ बैठ गया। कृष्ण भी प्रसन्न होकर हाथी पर सवार हो गये। एक प्रश्न उपस्थित होता है कि कृष्ण ने स्वयं ईंट क्यों उठाई ? हुक्म देकर क्यों नहीं उसकी ईंटे उठवा दीं ? अथवा उसके घर के लोगों को बुलाकर डांटा क्यों नहीं कि तुम लोग इतने वृद्ध से काम लेते हो ? मगर मित्रों! सेवा का कार्य हुक्म से नहीं हुआ करता। हुक्म में उतना प्रेम मिश्रित नही होता। जहां सच्चा भाव होता है वहां हुक्म काम नहीं आता। जो कार्य अच्छा समझ लिया जाता है उसे स्वयं ही किया जाता है। हुक्म देने जितनी प्रतीक्षा करने का उसमें धीरज नहीं होता।

आप लोग अपने ही ऐश आराम में मस्त हैं। गरीबों की ओर ध्यान नहीं लगाते। आप सोचते हैं कि हमारे पास पूंजी है, हमें क्या करना है। आपके पास पूंजी है इसलिए आपकी जवाबदारी बढ जाती है। आप अपनी जवाबदारी नहीं समझ रहे हैं। जब जवाब देना पड़ेगा तब मुश्किल हो जायेगा। कहा है—

करत प्रपंच इन पंचन के बस पर्यो,
परदार रत भयो अंत है बुराई को।
पर धन हरे पर जीवन की करे घात,
मद मांस भखे लवलेश न भलाई को।
होयगो हिसाब तब मुख से न आवे ज्वाब,
सुन्दर कहत लेखो लेगो राई राई को।
यहां तो किया विलास जगकीन तौहू भारा,
वहां तो नहीं है कछू राज पोपा बाई को।

कृष्ण की ईट उठाने की बात का लोगों पर कैसा अच्छा प्रभाव पडा था ? आज दिन तक उस बात का कितना असर है ? यहां के ठाकुर साहिब यदि आपसे बूढे बाप की ईट उठाले तो आप कितने शर्मिन्दे होंगे ? इसी प्रकार उस बूढे के घर वालों पर भी असर पड़ा होगा। इसी प्रकार यदि कृष्ण हुक्म के द्वारा ईटें देते तो शास्त्र में इस बात का कौन जिक्र करता ! और आज दिन तक यह अच्छा उदाहरण हम लोगों तक कैसे पहुंच पाता ? इस पुण्य कथा से *आज तक न मालूम कितने लोगों का भला हुआ होगा और भविष्य में* होगा ?

आज न कृष्ण है और न वह बूढा है जिसकी ईट उठाई गई थी। किन्तु उनकी याद अवशिष्ट है। अच्छे कार्यो का असर बहुत स्थायी होता है। इसीलिए हम उनके इस प्रकार गुण गाते हैं :—

याद हम करते हैं जी उन सत्पुरुषों की बात
श्रीकृष्ण ने ईट उठाई द्वारका दरम्यान।
वृद्ध पुरुष की दया जो कीनी शास्त्र के दरम्यान। याद.।

वर्तमान जमाने को देखकर यह बात याद करके हृदय प्रसन्न होता है कि हे प्रभो ! तुम्हारे शासन में कैसे कैसे दयालु पुरुष हो गये हैं। अंधेरे को देखकर ही प्रकाश की याद आती है। इसी तरह वर्तमान दूषित वातावरण को देखकर उस जमाने की याद आती है। भारत की दशा फिर भी कुछ अच्छी कही जा सकती है। यहां कम से कम लोग अपने बाप को कुछ मानते है। किन्तु विलायत की दशा बहुत बदतर है। वहां यदि बाप आ जाता है तो भी घर में न ठहरा कर होटल मे ठहराया जाता है और बिल चुका दिया जाता है।

मुझे कहना पड़ता है कि आज भारत देश के लोगों के दिलो मे वह प्रेम भाव और दयाभाव नहीं रह गया है जो पहले के जमाने में था। दया की भिक्षा मांगने पर भी लोग दया नहीं करते दिखाई देते है। जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने हाथी पर से उतर कर बूढे की दया की थी उसी प्रकार आप लोग भी मान रूपी हाथी से उतर कर गरीब और दुःखियो की सेवा शुद्ध भावना पूर्वक करिये। सेवा या दया आदि करना अच्छा है। मगर भावना की शुद्धि के साथ की हुई सेवा का विशेष महत्व है। निष्काम भावना से सहायता करिये। यह भाव धर्म की बात हुई। दान, शील, तप और भाव ये चारों धर्म के पाये हैं। इन चारों में से किसी एक पाये को गिराना धर्म के पाये को गिराना धर्म को गिराना है। जो धर्म के इन चारो पायो की रक्षा करता हैं वह सदा अपना कल्याण साधता है।

सतोगुण का चमत्कार

जय जय जगत शिरोमणि, हूं सेवक ने तू धनी,
अव तो सूं गाढ बनी, प्रभु आशा पूरो हम तणी।
मुझ म्हेर करो चन्द्र प्रभु, जग जीवन अंतर यामी;
भव दुःख हरो, सुनिये अरज हमारी त्रिभुवन स्वामी।।

प्रार्थना—यह भगवान् चन्द्रप्रभु स्वामी की प्रार्थना है। हमें यह विचारना चाहिये कि भक्त किस रूप में भगवान् को देखता है। भक्त भगवान् को जगत् शिरोमणि के रूप में देखता है। वह भगवान् को इस अखिल विश्व का शिरोमणि मानकर उन की जय जयकार पुकारता है। हे जगत् के शिरोमणि ! तेरी जय जय कार हो।

यह वात कहने में जितनी सरल है उतनी ही उसके पीछे जवाव दारी रही हुई है। विचार करने पर ज्ञात होता है कि भगवान् को जगत् का नेता मानकर उसकी जयकार वोलने में वडा तत्व समाया हुआ है। भगवान् को जगत् शिरोमणि मानकर उनकी प्रार्थना करने वाले कम लोग निकलेंगे। महंगा सौदा कम लोग खरीदते हैं। मैं आपके समक्ष इस विषय पर कुछ विचार उपस्थित करता हूं। आशा हे उन पर मनन करके आप अपना आत्म हित साधेंगे।

में घुस जाय तो उसे कायर कहा जायगा या वीर ? ऐसा कर्त्तव्य च्युत व्यक्ति यदि राजा की जय बोलता रहता है तो वह जगत् में निन्दा का पात्र गिना जाता है। सच्ची जय कर्त्तव्य पालन में रही हुई है।

भगवान् को सारे जगत् का मुखिया मानकर उनकी प्रार्थना करने वाले भक्त का संसार में रहे हुए प्राणियों के साथ मैत्री का बर्ताव होना चाहिये। भगवान् राजा से बड़े हैं। एक राजा की जय बोलने में भी उसके प्रति अपनी कठिन सेवा समर्पित करनी पड़ती है। तब जगत् शिरोमणि परमात्मा की जय कार बोलने पर तो अधिक कर्त्तव्य निष्ठा की जरूरत होती है। आप उसकी जय के लिए क्या त्याग करने को तैयार हैं। किस वस्तु की कुर्बानी करने की आपकी तैयारी है। यदि आप केवल जबानी जमा खर्च करना चाहते हैं और उसके लिए किसी प्रकार का त्याग करने के लिए तैयार नहीं हैं तो यह दिखावटी भक्ति है। इस प्रकार की जयकार का आध्यात्मिक अर्थ में कोई मूल्य नहीं है।

परंमात्मा की जय बोलने के लिए अपना सर्वस्व तक छोड देना पडता है।

हरि नो मारग छे शूरा नो, नहिं कायर नुं काम जो ने।

प्रभुपथ शूर व्यक्तियों के लिए है। कायरों की वहां गति नहीं है। सारांश इतना ही है कि प्रभु की जय बोलने के साथ साथ संसार में स्थित प्राणियों के साथ आदर्श व्यवहार होना चाहिये। किसी भी प्राणी को कष्ट पहुंचाये बिना अपना जीवन व्यवहार चलाने की चेष्टा होनी चाहिए। शुद्ध व्यवहार चलाने के लिए बडे त्याग की आवश्यकता होती है। जो वीर पुरुष अपने प्रति कठोर और जगत् के प्रति नम्र रह सकता है वह सच्चा भक्त है। वही सनाथ भी है।

अनाथी मुनि की अनाथता का जो चरित्र आपको सुनाया जाता हैं वह आप में कायरता लाने के लिए नहीं सुनाया जाता अपितु वीरता सिखाने के लिए। जिस प्रकार सैनिक राजा की जय कराने के लिए अपना मस्तक तक कटवा डालता है उसी प्रकार सच्चा भक्त भगवान की जय के लिए सर्वस्व त्याग कर सकता है। केवल शरीर मोह ही नही छोडता किन्तु कीर्ति का मोह भी छोड़ सकता है।

दुर्लभ है। वड़े पुण्य के प्रताप से यह मानव देह प्राप्त हुई है। उसका उपयोग करने में वड़े विवेक की आवश्यकता है। देव और इन्द्र भी मानव देह के लिए लालायित रहते हैं। मानव देह से प्रभु की भेंट हो सकती है। देव और इन्द्र भी देवयोनि में रहकर प्रभु का साक्षात्कार नहीं कर सकते। प्रभुमय वनने के लिए उनको भी मनुष्य देह धारण करनी पड़ती है। मानव देह वडा कीमती है। ऐसा होते हुए भी मानव देह पाकर जो परमात्मा का जय जयकार नहीं वोलता उसने मनुष्य जन्म धारण करके भी क्या लाभ कमाया ? उसका जन्म व्यर्थ वीतता है। आध्यात्मिक कवि आनन्द घनजी ने कहा है–

चन्द्र प्रभु मुख चन्द्र सखी मोहे देखन दे।
उपशम रस नो कन्द सखी मोहे देखन दे।
गत कलिमल दुःख द्वन्द सखी.।।

सूक्ष्म निगोद न देखियो सखि! वादर अति ही विशेष।
पुढवी आउ न लेखियो सखि! तेऊ वाउ न लेष।। सखी.
वनस्पति अतिघणा दीठा सखी दीठो नहीं दीदार।
वीती चोंरेन्द्रिय जल लिहा सखी गत सब हिय धार।। सखी.
सुर तिर नरय निवास मां सखी! मनुष्य अनार्य नी साथ।
अप्रज्जता प्रतिपालता सखि! चतुरन चढियो हाथ।। सखी.

इस पद्य का विस्तार करने के लिए समय अपेक्षित है। संक्षेप में इतना कहना चाहता हूं कि चाहे किसी का विश्वास जैन शास्त्रों पर हो चाहे विकासवाद पर, देखना यह हे कि यह जीव आत्मा कहां कहां से किस किस प्रकार विकास करता हुआ इस अवस्था तक पहुंचा है। निगोद अवस्था से विकास करता हुआ जीव मनुष्ययोनि तक पहुंच गया है, इस वात पर गौर करिये। इस प्रकार एकाग्र होकर विचार करने से जीव को यह प्रतीति होने लगती है कि मैं अनादि काल से हूं ओर साथ साथ अनन्त भी। मैंने अनेक योनियां धारण कीं मगर चन्द्र प्रभु के दर्शन न हुए। सूक्ष्म एकेन्द्रिय के भव में जहां चन्द्रप्रभु के आत्म प्रदेश रहे हुए हैं वहां भी रह आया हूं किन्तु अज्ञान के कारण उनसे भेंट न कर सका उनसे साक्षात्कार न हो सका। वादर योनिया में भी प्रभो! तेरे दर्शन न कर सका।

के गले में हीरे का कण्ठा डाल दिया जाये तो वह उसके महत्व को क्या समझ सकता है। वही हीरे के कण्ठों को चखेगा और स्वाद न लगने पर उतार कर फेंक देगा। किन्तु क्या आप लोग हीरे के कण्ठे को फेंक देंगे ? आप मनुष्य है और हीरे का मूल्य जानते हैं अतः फेंकने के बजाय सुरक्षित रखने का यत्न करेंगे।

आपको हीरे से बढ़कर यह मानवदेह रूप महान् हीरा प्राप्त हुआ है। क्या इस मूल्यवान हीरे को पत्थर के हीरे की पहचान के पीछे गुमा देंगे ? अथवा आपके भीतर जो हीरा छिपा पड़ा है उसकी पहचान का प्रयत्न करेंगे? जो मनुष्य अभ्यन्तर हीरे को पहचानता है वही परमात्मा को जगत् शिरोमणि कह कर उसकी प्रार्थना करने का अधिकारी है। ऐसा मनुष्य अपना जीवन सफल बनाता है।

आपके मन में यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि अपने भीतर रहे हुए हीरे को कैसे पहचाना जाय। उसके लिए क्या करना चाहिये ? क्या आज ही मास खमण व्रत लेकर बैठ जायं अथवा अन्य कुछ करें ? इसका उत्तर यह है कि मैं वैसे तो अनशन तप का समर्थक हूं किन्तु वर्तमान काल में उस पर अधिक भार न देकर जिस बात पर भार देना आवश्यक है उस पर भार देना चाहता हूं। यदि आप तपस्या करें तो अवश्य कीजिये। भगवान् महावीर ने भी कठोर तप किया था। अतः उनके शासन में सदा तप होता आ रहा है और वर्तमान में भी हो रहा है। किन्तु केवल तप करके ही महावीर न बनना चाहो। अन्य आवश्यक बातों पर भी ध्यान दो। जिस प्रकार वस्त्र की मील में छोटी सी कील की भी जरूरत रहती है और बड़े बायलर की भी। उसी प्रकार महावीर के शासन काल में तप भी आवश्यक है और साथ साथ अन्य काम भी। यदि आप केवल तप को लेकर ही बैठ जायेंगे तो अन्य काम कौन करेगा। अन्य काम भी महावीर के शासन में रहने वाले व्यक्तियों को ही करने हैं। वे अन्य काम दान शील और भावना है। इनसे तप तेजस्वी और आभ्यन्तर बन जाता है। चाहे तप से, चाहे दान, शील और भाव से किन्तु चन्द्र प्रभु की भेंट अवश्य कीजिये। यदि इस मानव देह में भेंट न करेंगे ? आपने महान् समुद्र पार कर लिया है। अब तीर पर आकर क्या रुक गये हैं। पार उतरने के लिए शीघ्रता कीजिये।

कि परभव में बहुत कुछ करके आये हैं, उसका मीठा फल अभी भोग रहे हैं। अब और कुछ करने की क्या जरूरत है। उच्च सिंधी खानदान में जन्म हुआ है, बड़ी जागीरी मिली हुई है, हुकूमत हाथ में है, पांव में पहनने को सोना मिला हुआ है और रहने को हवेली। विशाल कुटुम्ब और नौकर चाकर प्राप्त हैं। अब धर्म ध्यान करके क्या लेना है। रघुनाथजी महाराज ने कहा– सिंधी जी, यह तो ठीक है कि आप को परभव की करणी से यह सुन्दर सामग्री मिली हुई है। किन्तु आगे के भव में यदि श्वानयोनि मिल गई तो क्या ये कुटम्बी जन आपको आपकी हवेली में रहने देंगे ? आप भविष्य की खर्ची के लिए कुछ प्रयत्न करते नहीं है अतः कुत्ते की योनि अथवा अन्य कोई निकृष्ट योनि मिली तो वैसी दशा में आपके ये कुटुम्बी जन लकड़ी मार कर आपको हवेली से बाहर निकल देंगे। सिंधी जी ने मुनि महाराज की कटुक सत्यवाणी को सविनय स्वीकार करके सिर पर चढ़ाई और भविष्य के लिए खर्चा जुटाने का संकल्प कर लिया।

इसी प्रकार मित्रों ! मैं भी आप लोगों से कहता हूं कि आपको यह सम्पत्ति मिली है, त्रिलोक के राज्य से भी बढ़कर मूल्यवान् यह मानव शरीर प्राप्त हुआ है। इसके द्वारा परमात्मा का जय जयकार करिये। ज्ञानी इस बात को जानते हैं अतः कहते हैं कि हे सखे! मुझे चन्द्र प्रभु के दर्शन कर लेने दे।

आत्मा में सुमति और कुमति ऐसी दो प्रकार की प्रकृति हैं। कुमति सदा लड़ाई झगड़ा करने के लिए तत्पर रहती है किन्तु सुमति लड़ना नहीं जानती। अतः वह कुमति से कहती है कि सखी ! अब तो मुझे चन्द्र प्रभु के दर्शन कर लेने दे। मेरे पति को भटकते भटकते बहुत काल व्यतीत हो गया है। तू उसको और अधिक बेभान बनाकर नाच नचाती है। अतः हे सखि ! मैं नम्रता पूर्वक तेरे से कहती हूं कि अब मुझे उसके दर्शन कर लेने दे।

आप पूछेंगे कि क्या भगवान् चन्द्र प्रभु के दर्शन इन चमड़े की आंखों से करें ! किन्तु यह बात उचित नहीं है। आंखें तो चतुरिन्द्रिय जीवों को भी होती हैं। मगर वे प्रभु के दर्शन नहीं कर सकते। पंचेन्द्रिय तिर्यंच भी आंखों के रहते विवेकरूपी चक्षु के अभाव में ईश्वरदर्शन नहीं कर पाते। ईश्वरदर्शन का वास्तविक साधन विवेक है और वह मनुष्य में अधिक मात्रा में पाया जाता है। अतः वही विवेकसम्पन्न होकर प्रभुदर्शन कर सकता है।

दोनों में एकता कैसी ? इसका समाधान इतना ही है कि दोनों का भौतिक शरीर भिन्न भिन्न था किन्तु आत्मिक गुण समान हैं। आप गुणों की तरफ नजर दौड़ाइये फिर आपको भेद नजर न आयेगा। गुणों से दोनों समान हैं– एक हैं। कहा है–

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धि बोधात्।
त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रय शंकरत्वात्।।
धातासि धीर! शिवमार्गविधेर्विधानात्।
व्यक्त त्वमेव भगवन्! पुरुषोत्तमोऽसि।।

अर्थ है– भगवान् ऋषभदेव ! पण्डितों द्वारा पूजित बुद्धि का बोध देने वाले होने से आप ही बुद्ध हैं। तीनों जगत् में आनन्द और कल्याण करने के कारण आप ही शंकर (महादेव) हैं। मोक्षमार्ग की विधि का विधान करने से आप ही धाता–विधाता (ब्रह्म) हैं और आप ही प्रकट रूप में पुरुषोत्तम (विष्णु) हैं। श्लोक का फलितार्थ इतना ही है कि नाम भिन्न भिन्न हैं किन्तु परमात्मा एक ही है। हमें गुणों के प्रयोजन है न कि नाम से। गुण हों तो नाम चाहे कोई भी क्यों न हो। परमात्मा के अनन्त नाम हैं। अभिनन्दन भगवान् की प्रार्थना के प्रसंग में मैंने भक्त तुलसीदास का भजन गाकर यही बात स्पष्ट करने की कोशिश की थी कि नाम कोई भी क्यों न हो यदि परमात्मा के गुण उसमें विद्यमान हैं तो हमें कोई आपत्ति न होनी चाहिए। तुलसीदास जी का बनाया हुआ भजन होने से कोई यह न समझ बैठे कि मै खींचातान करके बात की संगत बैठा देता हूं। मेरा उद्देश्य परमात्मा का स्वरूप समझाने का है। विषय को सरल और स्फुट बनाने के लिए जहां कहीं से तत्त्व मिलता है मै ग्रहण कर लेता हूं। मेरे उद्देश्य की तरफ आप लक्ष्य रखेंगे।

सुदर्शन सेठ ने भगवान् महावीर के दर्शन कब और किस परिस्थिति में किये थे यह बात संक्षेप में बताता हूं।

राजगृही नगरी मे श्रेणिक राजा राज्य करता था। वह साम दाम दण्ड और भेद नीति में प्रवीण था। राजनीति और धर्म नीति में बड़ा अन्तर है। राजनीति अपूर्ण है जबकि धर्मनीति पूर्ण और विशुद्ध है। लौकिक धर्म परिस्थितियों पर अवलम्बित है किन्तु पारलौकिक धर्म परिस्थितियो को पार कर जाता है। पारलौकिक धर्म किस प्रकार मनुष्य को ऊंचा उठाता है यह सुदर्शन के जीवन मे देखिये।

युवक भी। राजा का कोई कठिन कार्य पूरा करके उन्होंने राजा को प्रसन्न कर लिया था। राजा ने उनको कहा कि तुम लोग इच्छित वस्तु मांग सकते हो, मैं देने के लिए तैयार हूं। राजा की कृपा होने से मनुष्य भलाई भी कर सकता है और यदि राज्य कृपा का दुरुपयोग करे तो बुराई भी। विषयेच्छा के वशीभूत वने हुए उन युवकों ने अपनी कमीनी इच्छाओं को पूरा करने और उनमें विघ्न करने वाली वाधाओं को दूर करने की दृष्टि से राजा से यह वरदान मांग लिया कि हमारी किसी भी हरकत की शिकायत न सुनी जाय। हमारे सव अपराध क्षम्य गिने जायं। हमारी शिकायत न सुनी जाय ! वचन में वंधा हुआ राजा उनकी मांग को अस्वीकार न कर सका।

मनुष्य प्राण देने के वक्त चाहे विचार करे या न करे किन्तु वचन देने के पूर्व अवश्य विचार करना चाहिए। मैं जो वचन दे रहा हूं उसका नतीजा आगे जाकर क्या होने वाला है यह अवश्य विचारना चाहिये। बिना विचारे वचन दे देने से वड़े वड़े अनर्थ होने की संभावना रहती है। राजा दशरथ ने कैकेयी को विना विचारे वचन दे दिया था जिसका कितना भयंकर परिणाम आया था यह सर्व विदित वात है। श्रेणिक राजा के वचन का कितना दुष्परिणाम हुवा है यह ध्यान से सुनिये।

राजा ने उन उद्धत युवकों की वात स्वीकार कर ली। जवानी का नशा चढा हुआ था। धन सम्पत्ति प्राप्त थी ही। राजदण्ड का भय मिट चुका था। अव केवल विवेक ही था जो वुराई से रोक सकता था। किन्तु दुर्भाग्य से उन छहों युवकों में विवेक का भी पूरा अभाव था। वे विवेक विकल थे। धन हो यौवन हो और राज्यसत्ता भी हो किन्तु यदि मनुष्य में विवेक बुद्धि हिताहित सोचने की शक्ति विद्यमान है तो वह बुराई की ओर आकर्षित नहीं हो सकता। वल्कि इन सव साधनों का भलाई के लिए उपयोग कर सकता है। विवेक प्रधान गुण है जिससे मनुष्य उन्नति के शिखर पर पहुंच सकता है। उन युवकों में विवेक न था अतः वे दुर्व्यसनों में फंसकर विनष्ट हुए। नीतिशास्त्र में कहा है–

यौवनं धन सम्पत्ति : प्रभुत्वमविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्।।

राज्यसत्ता भी यदि युवा धनवान् को प्राप्त हो जाय तो उसकी शक्ति 111 हो जाती है। युवक धनवान् राज्य सत्ता पाकर अपनी 111 शक्ति का सदुपयोग कर सकता है यदि उसमें विवेक शक्ति जागृत हो। यदि विवेक न रहा तो 111 जितनी शक्ति 1111 जितनी बनकर महान् अनर्थ का कारण बन जाती है। इन छः दोस्तों की विवेक हीनता के कारण कैसी दुर्दशा होती है यह ध्यान से सुनिये।

राजा से निर्भयता का वचन पाकर वे छओं मित्र स्वैर विहार करने लगे। स्वच्छन्दता पूर्वक मन माना आचरण करने लगे। किसी की पुत्र वधू को किसी की कन्या को और किसी मां बहिन को पकड़ने लगे और उनका सतीत्व नष्ट करने लगे। दिन रात इसी ताक में रहते कि किसकी बहू बेटी सुन्दर है उससे अपनी दुष्टवासना को बुझावें।

इस प्रकार राजगृही नगरी की जनता इन दुष्ट स्वेच्छाचारी युवकों की हरकतों से तंग आ गई। प्रजा की इज्जत जाने लग गई। प्रजा बहुत दुःखी हो गई। ऐसे वक्त प्रजा का कर्त्तव्य स्पष्ट था। किन्तु प्रजा में कायरता आ गई थी अतः वह कर्त्तव्य पालन नहीं कर सकी। प्रजा का कर्त्तव्य था कि वह राजा के पास पहुंचती और उन उद्दण्ड युवकों की शिकायत करती। अथवा राजा से ही कहती कि आप को इस प्रकार बिना विचारे वचन देने का क्या अधिकार था जिसका फल प्रजा इज्जत में हतक होना था। सत्य हकीकत से राजा को अवगत कराकर बिना विचारे दी गई राजाज्ञा वापस खिचवाती। किन्तु प्रजा में इतनी हिम्मत व जागृति न थी। प्रजा का मन मरा हुआ था अतः इस प्रकार विचारने लगी कि किसके पास जावें और किसको अपनी शिकायत सुनावें। राजा ने प्रसन्न होकर इनको छूट दे रखी हैं। अतः इनकी शिकायत राजा के पास कैसे करें। हम लोग बनिये हैं। हमारी मूंछ ऊंची नहीं किन्तु नीची ही सही। इस प्रकार के कायरता पूर्ण विचार प्रजा के दिलों में घर किये हुये थे।

आज कल भी ऐसे कायर लोगों की कमी नहीं है जो अन्याय या अत्याचार का विरोध करने में हिचकते है। 'हमारी कौन सुनता है यदि कुछ मुंह खोल कर शिकायत करेंगे या आवाज उठायेंगे तो राज विरोधी समझे जायेंगे'। ऐसी पस्त हिम्मत की बातें कई लोग किया करते हैं। मगर मित्रों ! धर्म कायरों के लिए नही है वीरों का है। वीर पुरुष ही धर्म सिद्धान्तों का पालन कर सकते हैं। जिनको अपने शरीर का मोह है, जो कुटुम्ब के पीछे अपमान और अनादर भी सहन कर लेते है, ऐसे भीरु लोग धर्म का पालन नहीं कर सकते।

यदि राजगृही की प्रजा बलवान् और जागृत होती तो वे छः साथी

मित्र प्रजा की बहू बेटियों के शील पर हाथ डालने की कभी हिमाकत नहीं कर सकते। अन्याय या अत्याचार सहन करना उसको बढ़ावा देना है। यदि कोई सत्ताधारी या शक्तिशाली व्यक्ति अपनी सत्ता और शक्ति के मद में आकर किसी व्यक्ति विशेष या समूह विशेष पर अत्याचार करता है और वह व्यक्ति या समूह बिना किसी प्रकार का प्रतिकार किये उस अत्याचार को सहन कर लेता है तो वह अत्याचार की वृद्धि में प्रोत्साहन देने वाला है। जिस आचरण को मनुष्य अन्याय या अत्याचार रूप समझता है, मन में वह असह्य लगता फिर भी यदि कायरता या सामने वाले को सशक्त समझ कर उसका किसी प्रकार का विरोध नहीं करता वह उस अत्याचारी के अत्याचार में एक प्रकार से सहयोग प्रदान करता है। मान लीजिये कि एक स्त्री पर एक गुण्डा बलात्कार करता है। यदि स्त्री गुण्डे की शक्ति के सामने अपने को कमजोर पाकर किसी प्रकार का विरोध या प्रतिकार नहीं करती है और अपना शरीर गुण्डे को सौंप देती है तो वह अत्याचार में सहायता करती है ऐसा कहने में बाधा नहीं मालूम देती। माना कि वह गुण्डे की शारीरिक शक्ति से लोहा नहीं ले सकती। किन्तु शब्दों से इन्कार कर सकती है। अपनी शारीरिक चेष्टा से विरोध प्रदर्शित कर सकती है। ऐसा कुछ भी न करके मन में इच्छा न होते हुए भी अपने को अत्याचारी के सुपुर्द कर देना कायरता है और अत्याचार में सहायक होना है।

राजगृही की प्रजा में इस प्रकार की भीरु मनोवृत्ति घर किये हुई थी। अतः वे छओं गोठीले मनमाना अत्याचार करने लगे ओर मदमस्त होकर घूमने लगे। किन्तु यह प्रकृति का अटल नियम है कि चाहे कोई किसी भी पशुबल से मस्त होकर अपने को भूला हुआ हो और धर्म की अवहेलना करता हो, उसे उसका प्रतिफल भोगे बिना छुटकारा नहीं हो सकता। हां, यह हो सकता है कि किसी को किसी बात का बदला देरी से भुगतना पड़ता है ओर किसी को तत्काल। मगर किये हुए कर्म का फल भुगते बिना छुटकारा नहीं है। प्रकृति के राज्य में अंधेर नहीं है, देर चाहे हो सकती है।

इसी राजगृही में अर्जुन नाम का एक माली रहता था। उसके बन्धुमती नाम की एक सुन्दर रूपवती भार्या थी। पति पत्नी में बड़ा प्रेम था। जिस प्रकार आज की पत्नी पुरुष के लिए भाररूप है उस प्रकार वह न थी। वह अपने पति के कार्य में हाथ बटाती थी ओर पूरी सहायिका थी। इसी प्रकार अर्जुन माली भी स्त्री का गुलाम न था किन्तु वास्तविक मित्र था और उचित सत्कार करता था।

होकर अपना स्वत्व खो बैठते हैं। स्त्री और पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं। कोई किसी का गुलाम नहीं है। दोनों का पारस्परिक मैत्री सम्बन्ध है। विवाह करने के पश्चात यदि पुरुष यह अनुभव करने लगे कि उसका कुछ भार हल्का हुआ है, उसे जीवन में सच्चा साथी मिल गया है, उसके धार्मिक और लौकिक कार्य में वृद्धि हुई है तथा उसका दिमागी बोझा हल्का हुआ है तब तो समझना चाहिए कि विवाह करके वह चतुर्भुज बना है नहीं तो चतुष्पद बन जाता है और चतुष्पद में भी गदहा बन जाता है जो जीवन भर गृहस्थी का भार ढोता रहता है। न देश सेवा, न जाति सेवा और न धर्म सेवा ही उससे बन पड़ती है। सारी उम्र स्त्री और कुटुम्ब की गुलामी में बीत जाती है। इसका कारण स्त्री का उसके कार्यो में सहयोग न देना है।

जिन कार्यो में स्त्री सहयोग दे सकती है उसमें सहयोग देना उसका कर्त्तव्य है। पुरुष के लिए एकान्त बोझारूप बनकर गृहस्थ जीवन को कठिन नहीं बनाना चाहिए। जो स्त्री अपने शृंगार और सजावट के कार्य में ही तल्लीन रहती है, फैशन में फंसी रहती है, वह भार रूप नहीं तो और क्या है ! फैशन इस वक्त इतनी बढ़ी हुई है कि स्त्रियां अर्द्धनग्न रहने में अपना सौभाग्य समझती हैं। रेशमी और बारीक वस्त्र पहन कर लज्जा को विदाई दे दी गई है। लज्जा शील होना स्त्रियों का भूषण है किन्तु फैशन ने लज्जा को विदा कर दिया है। इतने महीन वस्त्र पहने जाते हैं कि शरीर के अंग प्रत्यंग दिखाई देते हैं। ऐसा भी सुनने में आया है कि शरीर के वर्ण के समान वर्ण वाले वस्त्र निकले है। जिनको धारण करने से दर्शक को यह नहीं मालूम हो सकता कि वस्त्र पहने हुए हैं या नहीं। ऐसी दशा में वस्त्र से क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ ! लज्जा ढांकने रूप प्रयोजन सफल नहीं होता।

मैं यह कह रहा था कि स्त्री पति की सहायिका है। औरों की मै क्या बात करूं आप महाजन लोगों की स्त्रियां आपके लिए क्या है ? भार रूप है या भार हल्का करने वाली ? मेरा अनुभव कहता है कि वे भार रूप बनी हुई है। सब स्त्रियों को मै यह प्रमाण पत्र नही दे रहा हू कि वे भार रूप है किन्तु देखा जाता है कि अनेक स्त्रियां अपने पति के लिए भाररूप है। यदि कही मुसाफिरी में चले गये तो जिस प्रकार दागीनो या जोखमी वस्तुओ का ध्यान रखा जाता है उस प्रकार स्त्रियों का भी ध्यान रखना पडता हैं। यह स्थिति स्त्री और पुरुष दोनों के लिए अच्छी नही कही जा सकती।

अर्जुन और बन्धुमति दोनों मिल कर गृहस्थी का भार वहन करते थे। दोनो मिलकर उद्यान मे पुष्प इकट्ठा करते थे दोनो मिलकर माला बनाते और

वाजार में वेचकर अपना निर्वाह करते थे।

एकदा एक उत्सव का प्रसंग आया। इस प्रसंग पर पुष्पों की और मालाओं की विक्री अधिक होगी ऐसी आशा से दोनों वाग में फूल चुनने के लिए गये। फूल चुनकर मालायें आदि वनाकर उस वाग में स्थित यक्ष मन्दिर में यक्ष के दर्शनार्थ आये। उन दोनों का यह नियम था कि वे यक्ष की पूजा और दर्शन किये विना व्यापार में न लगते थे।

संयोग से वे छओं साहूकार के पुत्र भी घूमते घामते उसी वगीचे मे आ पहुंचे और उनकी दृष्टि वन्धुमति पर जा पड़ी। उसे देखकर एक युवक कहने लगा—अहो ! यह स्त्री कितनी सुन्दरी है ! इसे गौरी कहा जाय या लक्ष्मी? इसका मोहकरूप चित्त को हठात् अपनी और आकर्पित करता है। तव दूसरा युवक वोला– यार ! खाली रूप की प्रशंसा करके ही रह जाओगे या कुछ अन्य प्रयत्न भी करोगे। यह तो हमारी खुशकिस्मती से ही इधर आई मालूम देती है।

मित्रों ! मैं आपसे पूछता हूं कि यह वन्धुमति स्त्री इन युवकों की है या अर्जुन की ? यदि युवकों की नहीं है तो ये कैसे कह रहे हैं कि हमारे सद्भाग्य से ही यह इधर आ रही है। इप्ट रूप, इप्ट शव्द, इप्ट गन्ध और इप्ट स्पर्शादि की प्राप्ति पुण्यकर्म का फल माना जाता है। क्या वन्धुमति का उद्यान में आना इन छहों दोस्तों के लिए पुण्यकर्म का फल है ? इन लोगों ने यह वात मान ली कि हमारे शुभ कर्म उदय से यह सुन्दरी नारी इधर आई है और हमको आनन्दित करने में कारण वनेगी। क्या इस प्रकार पाप वासना को मन में स्थान देने वालों के लिए किसी वस्तु का संयोग हो जाना अथवा वलात् उनके द्वारा संयोग कर लिया जाना पुण्योदय गिना जायेगा ? कदापि नहीं। यदि इस तरह पुण्य का अर्थ लगाया जायगा तो फिर पाप किसको कहेंगे। परस्त्री का संयोग होना अथवा अपनी शक्ति से संयोग जुडा लेना पुण्यकर्म का फल नहीं माना जा सकता। इस तरह तो चोरी करके धन जुटाना भी पुण्यफल गिना जाना चाहिये। किन्तु पुण्य शव्द का यह अर्थ ठीक नहीं हो सकता। फिर पाप शव्द का क्या अर्थ किया जायगा और किस काम को पाप माना जायगा।

इसको दूर हटाकर अपनी इच्छा पूरी करें। छठे युवक ने कहा– भाइयों ! कोई भी काम सोच समझ कर तरकीब से करना चाहिये। बिना विचारे एकदम कर डालना ठीक नहीं है। एक व्यक्ति भी यदि बिगड़ जाय तो हमारा अनिष्ट कर सकता है। अतः शांति रखकर युक्तिपूर्वक काम करना चाहिये।

आपस मे सब मिलकर सोचने लगे कि किस तरह इस रूप सुन्दरी को काबू में किया जाय और मनोवांछा पूरी की जाय। सोचने के बाद सब इस निर्णय पर पहुंचे कि हम सब लोग मन्दिर में जाकर किवाड़ों के पीछे छिप जायें और जब यह पुरुष यक्ष को नमस्कार करने के लिए नीचे झुके तब इसे पकड़ कर बांध दिया जाय। तदनुसार सब यथा स्थान छिपकर खड़े हो गये।

अर्जुन माली निर्भय था। उसे इस आकस्मिक खतरे की कतई आशंका न थी। परम्परा और दैनिक नियम के अनुसार वह यक्ष मन्दिर में गया। पुष्प चढ़ाये और नमस्कार करने के लिए नीचे झुका। ज्योंही वह नीचे झुका कि छओं साथी एक दम उस पर टूट पड़े और उसको पकड कर बांध दिया। साथ साथ बन्धुमति को भी पकड़ लिया और अर्जुन के सामने ही उसके साथ संभोग करने लगे। यदि बन्धुमति सती स्त्री होती तब तो अपने प्राण दे देती पर उन गुण्डों की पकड में न आती। किन्तु वह अर्जुन से सच्चा प्रेम न रखती थी, दिखावटी प्रेम रखती थी। अतः उन युवकों के साथ स्वयं रम गई।

हमारे सामने ऐसे कई दृष्टान्त हैं कि स्त्री की इच्छा के विरुद्ध किसी भी गुण्डे की यह हिम्मत नहीं है कि वह उससे संभोग कर सके। यदि स्त्री नहीं चाहती है तो वह कई तरीकों से अपना बचाव कर सकती है और कुछ न बने तो अपनी जबान काट कर भी प्राण दे सकती है। जबान काट कर प्राण देने का महारानी धारणी का दाखला प्रसिद्ध है। किन्तु यह कार्य सरल नही है। धर्म का पालन करना भी तो बड़ा कठिन है।

गोड़ा लकड़ी एक उल्टी मुस्की से बंधा हुआ अर्जुन यह लीला अपनी आंखों से देख रहा था। उसके क्रोध की सीमा नहीं थी। कौन पुरुष ऐसा होगा जो अपने सामने अपनी स्त्री को पर पुरुष से सयोग करते देख कर क्रोधित, दुःखित और अपमानित न होगा ? ऐसे प्रसंग पर पशु भी आपस मे लड पडते है तो पुरुष इस अपमान को कैसे सहन कर सकते हैं।

पडा पडा अर्जुन विचारने लगा कि अहो ! इस यक्ष की मैं जन्म भर से सेवा कर रहा हूं फिर भी यह मेरा सहायक नही बन रहा है। मेरी आज्ञा

के सामने यह कांड गुजर रहा है। यक्ष की मूर्ति के समक्ष यह जघन्य कृत्य किया जा रहा है फिर भी यह यक्ष प्रकट होकर अपनी शक्ति प्रदर्शित नहीं करता। यह निरा काष्ठ का पुतला ही है। सच्चा यक्ष नहीं है।

इस प्रकार विचार करते हुए अर्जुन का मन एकाग्र हो गया। उसमें जो एकाग्रता थी वह रजोगुणी थी। सतोगुणी एकाग्रता में दूसरों की भलाई संनिहित होती है। उसमें क्रोध या बदला लेने की भावना नहीं होती। उस एकाग्रता की शक्ति से यक्ष उसके शरीर में प्रवेश हो गया और उसके बंधन टूट गये। यक्ष मूर्ति के पास पड़ा हुआ मुद्गर लेकर वह उन छओं साथियों पर टूट पड़ा। उनके सिर फोड़ दिये। फिर सोचा कि मेरी स्त्री भी दुराचारिणी है कारण कि विना कुछ आनाकानी किये इसने अपने को इन दुष्टों की हरकत में शामिल कर दिया। अतः इसको भी दण्ड देना चाहिये। छओं की तरह स्त्री को भी मार डाला। फिर विचार किया कि इस शहर के लोग भी दुष्ट हैं। यदि ये दुष्ट या कायर न होते तो ये छः लड़के इस प्रकार उद्दण्ड और मस्त होकर कभी घूम नहीं पाते। इनकी मस्ती बढ़ाने में शहरी लोग ही कारण हैं। अतः शहर के लोगों को भी मार डालूंगा।

बेदरकारी या पड़ौसी का ख्याल न करने का कितना भयंकर परिणाम हो सकता है यह बात हम इस कथा से समझ सकते हैं। कई लोग इस प्रकार सोचते हैं कि हमारे पड़ौसी ग्राम नगर या देश की हानि होती है तो इससे हमारा क्या बिगड़ता है। हमारा घर सुरक्षित रहना चाहिये। किन्तु उनका यह विचार बड़ा संकुचित और दीर्घ दृष्टि रहित है। जब पड़ौसी के घर में आग लगी है तो वह तुम्हारे घर तक भी पहुंच सकती है क्यों न उस आग को वहीं रोक दिया जाय ताकि पड़ौसी का भी भला हो और तुम्हारा भी। परहित में स्वहित समाया हुआ है, यह समझना बुद्धिमता है।

अर्जुन ने अपने मन में यह निश्चय कर लिया कि इस नगरी के राजा और प्रजा दोनों दुष्ट हैं। इनकी दुष्टता का इनको फल चखाये विना मैं न रहूंगा। मगर उसकी हिम्मत नगर में प्रवेश करने की न हुई। नगर के बाहर ही प्रतिदिन छः पुरुष और एक स्त्री को मार डालने का धंधा अख्तियार कर लिया। उसको यही धुन बंध गई। इस बात की सारे शहर में शोहरत हो गई कि अर्जुन हत्याकांड पर उतारू है। लोग घबडाने लगे। राजा को भी इसका पता लगा। मगर वह यक्षाधिष्ठित अर्जुन को काबू में न कर सका और शहर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि कोई भी व्यक्ति नगर के बाहर न जाय। अर्जुन [illegible] [illegible] हुआ है।

प्रजा की रक्षा करने का था। किन्तु उसने यह कर्त्तव्य पूरा नहीं किया। यह शंका हो सकती है कि अर्जुन में दैवशक्ति प्रविष्ट हो गई थी अतः राजा उसे पकड़ने में असमर्थ रहा और इसीलिए वह प्रजा रक्षण के कर्त्तव्य से च्युत रहा। किन्तु राजा का फर्ज इतने मात्र से अदा नहीं हो जाता कि वह खाली प्रजा को सूचना मात्र करवा दे कि कोई नगर के बाहर न निकले और निश्चिंत होकर बैठ जाय। नगर के बाहर मारे गये 1141 स्त्री पुरुषों की मौत की जिम्मेवारी या रक्षण का कर्त्तव्य राजा की तरफ ही आता है। पांच मास और तेरह दिन यह हत्याकांड होता रहा और राजा देखता रहा। इसे कायरता पूर्ण व्यवहार न कहा जायगा तो क्या कहा जायगा !

नगर में त्राहि त्राहि मची हुई थी। कार्य कारण की ठीक ठीक घटना तो ज्ञानीजन ही जान सकते हैं। किन्तु व्यवहार में यही कहा जायेगा कि उसका पाप किसको भुगतना पड़ रहा है। पाप किया उन छः मित्रों ने और उसका फल नगर निवासियों को भी भुगतना पड़ रहा है। अथवा राजा के बिना विचारे वचन प्रदान करने से या राजा की असावधानी से प्रजा को कष्ट उठाना पड़ रहा है। जहां के लोग स्वयं कायर हो जाते हैं वहां उन पर अचिन्त्यमान आपत्ति आ पड़ना असाधारण बात है।

नगरवासी घबड़ा गये। किसी नगर का द्वार एक दिन के लिए भी बंद रहे तो हाहाकार मच जाता है। नगर के बाहर जाये विना काम नहीं चल सकता। कम से कम पशुओं को चरने के लिए बारह निकले विना छुटकारा न था। मनुष्यों के भी अनेक प्रयोजन ऐसे थे जो नगर बाहर जाने पर ही पूरे हो सकते थे। फिर राजगृह का द्वार पांच मास और तेरह दिन बंद रहा तो वहां के लोगों की परेशानी का अनुमान लगा लीजिये, कि वे कितने दुःखित और हैरान हुए होंगे। लोग पश्चात्ताप करने लगे कि हम समय पर न चेते। पश्चात्ताप करने से भी पाप हल्का हो जाता है अथवा गल भी जाता है। उसी अवसर पर भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विचरते हुए राजगृह नगर के बाहर पधारे।

किसी भाई के हृदय में यह तर्क उपस्थित हो सकती है कि भगवान् महावीर दयालु थे। वे इससे पहले ही क्यों न पधार गये और लोगों के दुःख को दूर करने मे निमित्त क्यों न बने ? जब 1141 व्यक्तियों की हत्या हो चुकी तब पधारे। इसका क्या कारण है ? बात यह है कि भगवान् अपने ज्ञान के द्वारा सब बात समझते थे। जो काम जिस तरह होने का होता है वह उसी तरह होकर ही रहता है और जिस काम को करने का जो समय होता है वह उसी वक्त किया जा सकता है। उससे पूर्व नहीं हो सकता। काल पके बिना

कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती।

भगवान् महावीर नगर के वाहर वगीचे में ही ठहरे। सारे नगर में भगवान् के पधारने और उद्यान में विराजने की वात विजली की तरह प्रसिद्ध हो गई। राजगृह में भगवान् महावीर के अनेक भक्त भी थे। वे दर्शनार्थ नगर के वाहर जाना चाहते भी थे मगर अर्जुन के डर के मारे वाहर जाने का किसी का साहस न होता था। सव यह कहते रहे होंगे कि भगवान केवल ज्ञानी हैं, वे घट घट के भाव जानते हैं, यही वैठे वैठे ही भाव वंदन कर लेते हैं, हमारी वंदना मंजूर हो जायगी।

आजकल भी कई लोग यही वात कहते हैं कि हमारे भाव अच्छे होने चाहियें वाहरी क्रिया करने में क्या रखा है। यदि मन में आध्यात्मिकता है तो वाहरी क्रिया कांड किया तो क्या और न किया तो क्या। मगर ऐसा कहने वाले एकान्तवादी हैं। वे निश्चय दृष्टि को आगे रख कर ऐसा कहते हैं। किन्तु निश्चय के साथ व्यवहार हो तभी वह कार्यसाधक होता है। विचारों में आध्यात्मिकता होना वड़ी अच्छी वात है किन्तु यदि कृत्य में आध्यात्मिकता न हो तो वे कच्चे विचार हवा की तरह उड़ जाते हैं और मनुष्य पथभ्रष्ट हो जाता है। आचार से विचार को पुष्टि मिलती है और विचार से आचार को। दोनों का गहरा सम्बन्ध है।

सुदर्शन सेठ कोरा अध्यात्मवादी ही न था। वह क्रिया के साथ होने वाले अध्यात्मवाद में विश्वास रखने वाला व्यक्ति था। जो सच्चा आध्यात्मिक होगा वह वाहरी विघ्नों के भय से तदनुकूल क्रिया करने में कभी नहीं हिचकेगा। सुदर्शन ने भगवान् के आगमन की खवर सुनी। वह तत्काल दर्शन करने के लिए जाने के वास्ते तैयार हो गया। उसने मन में सोचा कि जो सिपाही प्रतिमास वेतन लेता रहे और जव युद्ध में जाने का अवसर आये तव कहीं जा कर छिप जाय तो वह वहादुर नहीं गिना जा सकता, लोग उसे कायर ही कहेंगे। मैं महावीर का श्रावक हूं। वे मेरी नगरी के वाहर पधारे हैं। मैं डर के मारे यह सोचकर कि भगवान ज्ञानी हैं मेरे भावों पर खयाल करके

सुदर्शन अपने मन में किये हुए संकल्प की गुरुता को जानता था वह समझता था। कि मैं जो कदम बढ़ा रहा हूं वह खतरे से खाली नहीं है। संभव है इस कदम से भौतिक शरीर का त्याग तक करना पड़े। उसने अपने माता पिता की आज्ञा लेकर जाना उचित समझा। मातापिता ने पूछने पर वही उत्तर दिया जो साधारण माता पिता दिया करते हैं। पुत्र ! यहीं पर बैठे बैठे वंदन कर लो, सर्वज्ञ सर्व दर्शी भगवान् तुम्हारे भावों को जान कर तुम्हारी हुण्डी सिकार देंगे। किन्तु पुत्र कहां मानने वाला है। उसने अपने बुद्धि चातुर्य से माता पिता को मना लिया। यह शरीर आपका दिया हुआ अवश्य है किन्तु इसे मैं प्रभु के समर्पण कर चुका हूं। अतः वीरोचित मार्ग पर चलना पसन्द करता हूं इत्यादि दलीलें देकर माता पिता को राजी कर लिया। सुदर्शन दर्शन करने के लिए चल दिया।

कई लोग अच्छे कार्य जैसे देश सेवा, धर्म सेवा या इसी प्रकार के अन्य अन्य कार्य करने के लिए माता पिता की आज्ञा प्राप्त करना आवश्यक नहीं समझते। कई लोग केवल पूछ लेते हैं। आज्ञा न मिलने पर या मना करने पर भी कार्य में जुट जाते हैं। किन्तु यह शिष्ट सम्मत तरीका नही है। शिष्ट तरीका तो यही है कि अच्छे कार्यो के लिए भी माता पिता की आज्ञा प्राप्त की जाय। माता पिता को अपने कार्य की विशेषता, उपयोगिता और गुण दोष बताकर उनके मन का समाधान करके, आज्ञा प्राप्त कर कार्य में जुटना सज्जनोचित मार्ग है। ऐसा नहीं हो सकता कि माता पिता सच्ची दलील को न समझें और न मानें। तत्काल न मानें तो धीरे धीरे मनवाने का यत्न करते रहना चाहिये मगर पीछे कदम न हटाना चाहिये और न इस बहाने अपनी उन्नति को रोकना ही चाहिये।

सुदर्शन सच्चा सत्याग्रही था। उसने अपने माता पिता को आज्ञा देने के लिए प्रसन्न कर लिया और चल दिया। उस दिन वह अकेला ही था। कोई साथ न था। पहले जब कभी दर्शनार्थ जाता था, अनेक लोग उसके साथ होते थे किन्तु आज तो परीक्षा का अवसर था। आज शरीर संकट का प्रसग था। ऐसे अवसर पर साथ देने वाले व्यक्ति विरले ही होते हैं।

सुदर्शन के दर्शनार्थ जाने की बात नगर मे फैल गई। लोग चर्चा करने लगे कि सुदर्शन हमारी नगरी का नाक है। यदि वह अर्जुन माली के हाथ से मारा गया तो हमारे नगर की नाक चली जाएगी। कई लोग आकर सुदर्शन को मना करने भी लगे कि क्या शरीर को त्यागना है जो देखती आंखों अपने को जलती भट्ठी मे झोकने जा रहे हो। यहीं से वदन कर लो।

लोग ऐसी बात कह रहे हैं जो ऊपर से सुदर्शन के लिए भलाई की बात मालूम देती है। आप लोग जरा ध्यान दीजिये कि सुदर्शन लोगों की बात माने या अपने हृदय की। आधुनिक लोग आत्मा की अपेक्षा दूसरे लोगों की बात पर अधिक ध्यान देते हैं। आत्मा जिस सत्य को स्वीकार कर रही है उसे केवल लोगों के कहने मात्र से छोड़ देना, सत्य से दूर हटना है। लोगों का क्या है, वे उलट भी बोल देते हैं और सुलट भी ! साधारण लोगों के मुख पर लगाम नहीं होती अतः किसी बात का निर्णय करते वक्त शुद्ध आत्म साक्षी को प्रमाणभूत मानना चाहिये। यदि आत्मा निर्णय न कर सके तो चरित्रवान ज्ञानी पुरुष से निर्णय लेकर कार्य में लगना उचित मार्ग है।

सुदर्शन लोगों के साथ तर्कवाद में न उलझ कर आगे बढ़ता ही गया। जो आगे कदम रखता जाता है, उसकी टीका टिप्पणी भी होती है और स्तुति भी। समझदार लोग सुदर्शन के इस प्रयत्न की प्रशंसा करने लगे और धन्यवाद देने लगे। किन्तु जो ईर्षालु थे वे दुर्गुण ढूंढने लगे। कहने लगे कि यह वड़ा हठी है, बड़ा अभिमानी है, जो सब की बात न मान कर मौत के मुख में जा रहा है। जाने दो। इसने अनेकों को लूटा है, उसका प्रतिफल भोगने दो। मरने दो। आदि।

निन्दा और स्तुति की परवाह किये बिना सुदर्शन आगे बढ़ता गया। उन्नति में निन्दा भी बाधक हो सकती है और स्तुति भी। कभी कभी निन्दा की अपेक्षा स्तुति में फूल जाने वाले का पतन शीघ्र होते देखा गया है। जिसे आगे वढ़ना है उसे निन्दा और स्तुति दोनों से मुख मोड़ लेना होगा। जो निन्दा से घवड़ाता है और स्तुति से फूल जाता है वह उन्नति शब्द का अर्थ भी नहीं समझता। उन्नति करना तो उसके लिए बहुत दूर की बात है।

सुदर्शन के पास अपना बचाव करने के लिए छड़ी तक भी न थी। वह उसी तरफ जा रहा था जिधर संकट मंडरा रहा था। जिधर जाने से राजा और उसकी सेना भी भय पाती थी उधर सुदर्शन बढ़ता चला जा रहा था। उसके पास केवल एक वल था। वह था ईश्वरीय वल— आत्मिक वल। जिसके पास यह वल होता है वह वड़ा वीर पुरुष गिना जाता है। लोग बनियों को कायर कहते हैं। किन्तु सभी वनिये कायर होते हैं, यह बात सत्य नहीं है। वनियों को कायर कहने की बात मुझे अच्छी नहीं लगती। क्योंकि मेरा जन्म भी वनिया जाति में ही हुआ है। मेरा आप लोगों से अनुरोध है कि आप कायरता को भगाकर वीर वनिये। महात्मा गांधीजी और सुदर्शन सेठ आपकी जाति के ही हैं। किन्तु उन्होंने ऊंचे दर्जे की वीरता दिखाकर दुनिया के समक्ष सुन्दर उदाहरण रखा है।

किसी भाई के मन में शंका उत्पन्न हो सकती है कि वीर तो वह कहलाता है जो अपने पास तलवार बंदूक रखता हो। किन्तु तलवार, बंदूक या अन्य शस्त्र रखने वाले का आधा बल तो वैसे ही क्षीण हो जाता है। क्योंकि वह उन शस्त्र अस्त्रों पर आधार रख कर लड़ता है। सच्चा वीर वह है जो बाह्य साधनों का सहारा न लेकर स्वयं के आत्मबल से ही युद्ध करता है।

सुदर्शन आड़े टेढ़े मार्ग से नहीं जा रहा है। वह उस तरफ होकर जा रहा है जिधर अर्जुन का अड्डा है। वह यह विचार करता हुआ जा रहा है कि यह शरीर एक न एक दिन अवश्य छूटने वाला है फिर भगवद् भक्ति के लिए यदि इसे छोड़ना पड़े तो इसमें आनाकानी क्यों होनी चाहिये।

यह वीरों का मार्ग है। वीर वह होते हैं जो आपत्तियों से नहीं डरते। बल्कि आपत्तियों को निमंत्रण देते हैं और बड़ी बहादुरी से उनका सामना करते हैं। जो लोग सुख सुविधा या निरापद् परिस्थिति की ताक में बैठे रहते हैं उनसे कोई खास काम नहीं बन सकता। वे अपने शरीर को पंपोला करते हैं और जरासी कठिनाई आने पर विचलित हो जाते हैं। ऐसे लोग कायर कहे जाते हैं।

मान लीजिये कि आपके पास एक बहुमूल्य रत्न है। आपको उसके कारण चोरों से भय भी है। एक विश्वस्त व्यक्ति आपसे उस वक्त यह कहता है कि यह रत्न मुझे दे दो। मैं इसे सुरक्षित रखूंगा और द्विगुणित करके वापस लौटा दूंगा। क्या आप ऐसे सुन्दर अवसर को हाथ से जाने देंगे ? कदापि नही। इसी बात को जरा अपने शरीर पर लागू कीजिये। यह शरीर रूपी रत्न, आधि व्याधि और उपाधि रूपी चोरों से घिरा हुआ है। यदि इसको परमात्मा की सेवा में समर्पण कर दिया जाय तो कितना भला हो सकता है। हाड मास के शरीर के बदले दैवी शरीर भी प्राप्त हो सकता है।

सुदर्शन को आते देखकर अर्जुन विचारने लगा कि यह कौन वीर पुरुष है जो बेधडक इधर चला आ रहा है। मैंने इतने पुरुषों का वध किया मगर इतनी निर्भयता से आते किसी को न देखा। जो आये वे सब हाथ जोडते और क्षमा मांगते ही आये। मैंने उन कायरों को मार ही डाला किसी को नही छोडा। यह निर्भय होकर आ रहा है किन्तु मेरे हाथो में से यह कैसे बच सकता है अभी इसका सफाया किये देता हूं।

इस प्रकार विचार करता हुआ अर्जुन हाथ मे के मुद्गर को घुमाता हुआ सुदर्शन की तरफ चला। सुदर्शन और अर्जुन की मुठभेड को कई लोग दूर दूर खडे होकर देख रहे थे। कई मन मे सुदर्शन की रक्षा की कामना कर

रहे थे और कई मरने की। किन्तु शास्त्र कहता है कि सुदर्शन अर्जुन को निकट आते देखकर भी निर्भय ही बना रहा। उसका एक रोम भी चलित नहीं हुआ। सुदर्शन के मन में यही भावना काम कर रही थी कि यह मेरा परीक्षक है। आज तक मैंने शरीर और कुटुम्ब को अपनी आत्मा से भिन्न मानने का पाठ याद किया था उसकी आज यह परीक्षा ले रहा है। मैं वस्तुतः भगवान् का भक्त हूं या इस शरीर और कनक कामिनी का। इस बात की परीक्षा है। मुझे धर्म की ही शरण लेनी चाहिये। इस पर तनिक भी क्रोध न आना चाहिये।

इस प्रकार निश्चय करके पृथ्वी को उत्तरासन से साफ करके सुदर्शन पालथी मार कर स्थिरासन से बैठ गया। उसने अर्हन्तों की साक्षी से कहा कि हे भगवन् ! अर्जुन के प्रति मेरे रोम में भी क्रोध न आने पाये, मैं इसे अपना हितैषी मित्र मानूं यह भावना बनी रहे। इसके उपरान्त उसने अठारह पापों का सर्वथा त्याग भी किया। यदि शरीर छूट गया तो सर्व पाप का त्याग है।

सुदर्शन की यह निश्चलता देखकर अर्जुन का क्रोध और अधिक बढ गया। निकट आकर बड़े जोश से उसने मुद्गर ऊंचा उठाया। किन्तु सुदर्शन की आध्यात्मिक शक्ति के सामने बेचारा काष्ठ का बना मुद्गर ऊपर उठा ही रह गया, नीचे न गिर सका। आप श्रोताजनों को आश्चर्य होगा कि ऐसा कैसे हो सकता है। आप सच्ची आध्यात्मिकता से दूर पड़ गये हैं और इतर वाचन मनन में लग गये हैं। शास्त्र कथित इस कथा पर विश्वास लाना इसी कारण कठिन मालूम देता है। किन्तु इस घटना को सिद्ध करने के लिए अनेक प्रमाण हैं।

मैंने आप लोगों को मद्रास से चली ट्रेन को आंखों के तेज से रोक लेने वाले योगी की बात सुनाई थी। इसी प्रकार मेस्मेरिजम के प्रभाव से मनुष्य इतना कड़ा शरीर बना सकता है कि दस पांच आदमी उस पर कूदा करें तब भी उसका कुछ नहीं बिगड़ता। जब भौतिक बल से इतनी बातें हो सकती हैं तो आध्यात्मिक बल से मुद्गर ऊपर ही उठा रह जाय इसमें क्या आश्चर्य जैसी बात हैं और क्यों इसे असम्भव माना जाय।

अर्जुन लाल लाल आंखें करके सुदर्शन के समक्ष खडा है। जिसमें रजो गुण की अधिकता होती है उसकी आखें लाल रहती हैं और जिसमें सतोगुण का आधिक्य होता है उसकी आंखें शीतल और प्रेम भरी होती हैं। सेठ की आत्मा में से शांति की शक्ति निकल रही थी और अर्जुन के शरीर

यक्ष शांत होकर विचारने लगा कि यहां मेरी दाल गलने वाली नहीं है। यह सेठ तो भगवान् बन रहा है, भगवान् की शक्ति को अपना रहा है। वहां मेरी आधिदैविक शक्ति क्या काम कर सकती है। वह घबराया और अर्जुन के शरीर से निकल कर भाग गया। यक्ष के निकल भागते ही अर्जुन धड़ाम से नीचे गिर पड़ा। अर्जुन कई दिनों से भूखा है। वह बहुत कृश हो गया है। जो कुछ उत्पात हुआ था वह तो यक्ष के बल से था। यक्ष के चले जाने से अर्जुन नीचे गिर पड़ा।

अर्जुन को इस प्रकार गिरते देखकर सुदर्शन ने ध्यान खोला और उस पर दया लाकर उसे ऊंचा उठाया। यदि कोई साधारण व्यक्ति होता तो गिरने पर एक लात और लगाता। अक्सर देखा जाता है कि गिरे हुए पर लात लगा कर लोग बड़े प्रसन्न होते हैं। किन्तु हीन मनोवृत्ति वाले लोगों का ऐसा काम होता है। कमीने लोगों में और उच्चमानस के व्यक्तियों में यही तो अंतर है कि बड़े आदमी गिरे हुए को सहारा देते हैं और तुच्छ प्रकृति वाले एक लात और मार देते हैं। सुदर्शन उच्च प्रकृति वाला महापुरुष था उसने अपने स्वभाव के अनुकूल काम किया।

अर्जुन ने सुदर्शन की ओर देखकर पूछा कि आप कौन हो और कहा जा रहे हो ? सुदर्शन ने अपना परिचय देकर बताया कि मैं श्रमण भगवान् महावीर के दर्शन करने जा रहा हूं। अर्जुन ने कहा, सेठ ! आपका देव कैसा है और मेरा देव कैसा है। मैंने अपने देव के प्रभाव से 1141 व्यक्तियों का खून किया जिससे सारा नगर मेरा दुश्मन बन गया है और आपका देव कैसा है कि जिसके प्रभाव से आपने मुझ शत्रु को भी मित्र बना लिया है। मैंने रजोगुण की सेवा की इसलिये रजोगुण प्राप्त हुआ और आपने सतोगुण की सेवा की इसलिए सतोगुण प्राप्त हुआ। मैं भी अब आपके साथ महावीर भगवान् के दर्शन करने चलूंगा। अब रजोगुण का त्याग करके सतोगुण को अपनाऊंगा। सुदर्शन ने कहा– चलो। मुझे इसमे क्या आपत्ति है। दोनो की इस जोडी को देखकर दूर वाले दर्शक आश्चर्य में पड़ गये। सच्चा कारण ज्ञात होने मे किसी को देरी न लगी।

अर्जुन ने भगवान् के दर्शन करके दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा अंगीकार करके अर्जुन माली बेले बेले पारणा करने लगा बेले के पारणे के दिन भिक्षा लेने के लिए वह राजगृह नगर में जाते। वहां लोग पुराना वैर याद करके कोई उनको गालियां देते और कई थप्पड मार देते। कोई [illegible]

डाल देता और कोई उनको दूसरी तरह से सताते किन्तु सतोगुण का अभ्यास करने वाले अर्जुन तनिक भी क्रोधित न होते। यह विचार करते कि यहां के लोग कितने भले हैं जो मनुष्य मारने के वदले में मुझे केवल गालियां आदि देकर ही छोड़ देते हैं। मेरा अपराध वहुत वड़ा है, उसके प्रमाण में यह सजा वहुत छोटी है।

इस प्रकार की निर्मल भावना से अर्जुन ने अपना आत्म कल्याण साधा और अन्त में सिद्धि वुद्ध और मुक्त हो गये। यदि आप लोग भी अर्जुन की तरह अपने स्वभाव पर काबू रखेंगे तो आपका और जगत् का दोनों का कल्याण होगा।

राजकोट

20—5—36,

संवत्सरी और चार भावनायें

श्री सुविधि जिनेश्वर वंदिये रे।

प्रार्थना—इस प्रार्थना में भक्त ने श्रीसुविधि नाथ भगवान् के यथावस्थित रूप का वर्णन किया है। भगवान् सुविधि नाथ नौंवे तीर्थंकर हैं। आज पर्वाधिराज पर्यूषण का संवत्सरी दिवस है और आज ही इस पर्व का पूर्णाहुति दिन है। प्रतिदिन के प्रार्थना क्रम में आज नौवें तीर्थंकर की प्रार्थना करने का नम्बर है। यह सुन्दर सुयोग बड़े भाग्य से प्राप्त हुआ है। संवत्सरी के परम पवित्र दिन नववें तीर्थंकर के गुणगान का योग विरल ही प्राप्त होता है। नौ का अंक बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। संख्याशास्त्र के जानकारों का कथन है कि यह अंक अभंग है। नौ के अंक को किसी भी संख्या से गुणा किया जाय गुणनफल से नौ का अंक निकलेगा ही।

जैसे नव दूनी अठारह। अठारह के एक और आठ को जोड़ने से नव संख्या होती है। नव तिया सत्ताईस। सत्ताईस के दो और सात को जोडने से भी नव संख्या होती है। नव चौक छत्तीस। छत्तीस के तीन और छः को जोड़ने से भी नौ होते हैं। इसी प्रकार आगे भी चाहे जितनी संख्या से गुणा करते जाइये उसके अंकों को जोड़ से नव का अंक निकल आता है। हमें इस नव के अंक को भगवान् सुविधि नाथ की प्रार्थना के साथ जोड़ना है। जिस प्रकार नौं का अंक किसी भी संख्या से गुणा किये जाने पर भी अन्त में परिपूर्ण ही रहता है इसी प्रकार किसी भी तरीके से और किसी भी भाषा में भगवान् सुविधि की प्रार्थना की जाय उनके स्वरूप का रूप अखण्ड ही रहता है।

भगवान् सुविधि नाथ से हम लोगो का निकटतम सम्बन्ध है। जैन शास्त्र कहते हैं कि ऐ प्राणियों ! घबड़ाओ मत। जरा धीरज से शान्त चित्त

होकर इस बात पर विचार करो कि तुम्हारा और भगवान् का निकटतम सम्बन्ध कैसे है। तुम और भगवान् एकरूप कैसे हो इस बात पर मनन करो। तुम ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय रूप आठ कर्मो से घिरे हुए हो और सुबुद्धि नाथ ने इस आवरण को चीर कर दूर फेंक दिया है। एक दिन सुबुद्धि नाथ भी तुम्हारी ही तरह कर्मरूप पिजडे में वंद थे किन्तु उन्होंने अपने पुरुषार्थ से उसको तोड़ फेंका है। इससे उनकी आत्मा सर्वतंत्र स्वतंत्र होकर मुक्त विचरण कर रही है। तुम्हारी आत्मा भी यदि पुरुपार्थ करे तो इस बंधन से मुक्त हो सकती है। दोनों के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं है। शुद्ध संग्रह नय की दृष्टि से दोनों एक हैं। केवल कर्म–संस्कार का अन्तर हैं।

शुद्ध संग्रहनय की अपेक्षा से संसार के सब जीवों की आत्मायें परमात्मा के समान हैं। उनमें भी साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाओं की आत्मायें भगवान् से अत्यधिक समान हैं। क्योंकि इनकी आत्माओं पर लगा हुआ कर्म रूप आवरण हल्का पड़ चुका है। अतः प्रिय श्रावकों ! यदि आप लोग कायरता त्याग कर वीरता को अपनाओ और पुरुपार्थ करो तो सुबुद्धि नाथ के और अधिक निकट पहुंच जाओगे। आप अपनी पूर्व स्थिति पर विचार करो कि किस स्थिति में से किस स्थिति तक पहुंच गये हो। आप अनेक घाटियां और मंजिलें तय करके अर्थात् छोटी मोटी अनेक योनियों में जन्म धारण करते करते वड़े शुभ योग से मानव देह में आये हो। यदि मानवदेह पाकर के भी भगवान् के समीप न पहुंच सके तो फिर कब पहुंचोगे ? उदाहरणार्थ समझिये कि एक मनुष्य वड़ा गहन वन पार करके नगर के द्वार तक पहुंच गया है। जब नगर का द्वार खुला और उसमें प्रवेश करने का अवसर आया तब वह खुजलाता रह गया और द्वार को छोड़कर नगर के गोल किले की कोट के पास पहुंच गया। अब वह फिर से नगर की परिक्रमा करता है और न मालूम कब तक द्वार तक पहुंचेगा। पहुंचने पर भी संभव है कोई अन्य विघ्न उपस्थित हो जाय और नगर में प्रवेश न कर पाये।

इसी प्रकार आप लोगों को मानव शरीर प्राप्त है, साथ में श्रावक धर्म भी। पूर्वजन्म के सुकृत के फल से और इस जन्म के पुरुषार्थ के कारण

सोचते हैं कि हमारा जन्म विषय सुख भोगने के लिए है। किन्तु ऐसा सोचना महान् भूल है। इस प्रकार की भूल से विषयों में जीवन हार कर किस गति में चले जाओगे और कितना पतन हो जायगा यह विचार करके ही ज्ञानियों ने मनुष्य जन्म को सफल बनाने का उपाय बताया है और ऐसी व्यवस्था की है कि मनुष्य जन्म व्यर्थ न चला जाय।

ज्ञानियों ने कहा है कि विषय कषायों से दूर रहो। यदि इनसे दूर न रह कर इनमें आसक्त हो गये तो मोक्ष के द्वार से दूर भटक जाओगे। फिर न मालूम कब ऐसा अवसर आयेगा।

आज संवत्सरी है। आज किसके मन में उत्साह और उमंग न होगी! छोटे छोटे बच्चों में भी उपवास करने का उत्साह और होंस देखा जाता है। छोटी बालिकायें भी अपने माता पिता के सामने उपवास करने की हठ करती हैं। वे कहती हैं कि माता ! आज तो मैं अवश्य उपवास करूंगी। किन्तु माता प्रेमवश यह कहती है कि बेटी, तू भोजन कर ले तेरे से उपवास न होगा। मगर बेटी नहीं मानती है और उपवास कर दिखाती है।

मैं जब छोटा बच्चा था तभी मेरे माता पिता काल प्राप्त हो गये थे। मैं अपने मामा के यहां रहता था। संवत्सरी के अवसर पर मैं उपवास करने की जिद किया करता था। एक बार का प्रसंग मुझे याद है। संवत्सरी के दिन मैंने अपने मामाजी से कहा कि मैं उपवास करूंगा। मामी ने कहा, भैया तुम से उपवास न होगा। भोजन कर लो। मैं कब मानने वाला था जब तक कि पेट में चूहे न कूदने लगे। मामी चुप हो गई। जब कुछ दिन चढ़ गया और मुझे भूख लग आई तब फिर मामी ने कहा तुम्हारा उपवास पला देऊं तुम्हारा उपवास हो चुका है। इस प्रकार कह कर मामी ने उपवास पला दिया। जब मैं कुछ बड़ा हो गया और समझ पकड़ ली तब इस प्रकार उपवास पालना छोड दिया और सच्चा उपवास करने लग गया।

कहने का मतलब यह है कि इस पवित्र पर्व पर छोटे से लेकर बड़े आदमी तक में बड़ा उत्साह होता है। बिना उत्साह के साहस का काम नहीं हो सकता। उपवास करना बड़े साहस का काम है। कायर लोग इस युद्ध में हार खा जाते है। दान, तप और युद्ध ये तीनों काम वीरता के बिना करना शक्य नही है। वीर पुरुष ही दान दे सकता है, तपस्या कर सकता है और संग्राम में भाग ले सकता है। जो कायर है वह अपने हाथों से अपने धन का दान देकर सदुपयोग नही कर सकता। चोर भले उसकी सम्पत्ति चुरा कर ले जा सकते हैं इसे वह सहन कर लेगा किन्तु अपने हाथों से इच्छा पूर्वक दान

नहीं कर सकता। तप भी कायर व्यक्ति नहीं कर सकता। वैसे अन्न न मिलने से या पराधीनता में भूखों मरना पड़े तो जबरन सहन करता है किन्तु सामग्री रहते स्वाधीनता से उपवास करना कायर के काबू के बाहर की बात है। उसकी पोची आत्मा इतनी हिम्मत नहीं दिखा सकती।

विषयों को त्याग कर अपनी आत्मा को वश में रखने वाला वीर ही तप कर सकता है। कई लोग तो इतने बहादुर होते हैं कि पर्युषण के आठों दिनों में पानी के सिवा कुछ नहीं खाते पीते। कोई कह सकता है कि यह पर्व पर्युषण पर्व है या पिंडचूसन पर्व है ? जो शरीर के रक्त मांस का शोषण कर लेता है। उपवास से शरीर का मांस और लोही सूख जाते हैं और मनुष्य कमजोर हो जाता है। किन्तु यह कथन भूल भरा है। यह बात ठीक है कि उपवासों के आधिक्य से शरीर दुर्बल हो जाता है। मगर पारणे में सावधानी रखने से दुर्बलता चली जाती है और नफे में शरीर का विकार धुल जाता है। शरीर में जो कूड़ा कर्कट भरा पड़ा रहता है वह उपवास करने से साफ हो जाता है और शरीर शुद्ध तथा स्वस्थ बन जाता है। शारीरिक विकास नाश करने का उपवास ही अचूक साधन है। बाद में वजन, प्रमाण से बढ़ जाता है। फिर भी कई लोग कहते हैं कि हमें लम्बे उपवास करना पसन्द नहीं है। तुमको पसन्द नहीं है तो न सही। मगर जो उपवास करते हैं उन्हें तो पसन्द है। तुम्हें दूसरों की निन्दा या टीका टिप्पणी करने का क्या अधिकार है। दूसरों की निन्दा करना बुद्धिमत्ता नहीं है। खुद उपवास न करना और करे उसकी निन्दा करना कितनी मूर्खता है। उपवास करने से हानि तो होती ही नहीं है। किसी को असावधानी से यदि हानि हो तो इसमें उपवास का क्या दोष है? दोष असावधानी का है। जो काम अधिक लाभ का है वह किया जाना चाहिए। शरीर के क्षीण होने पर उपवास से अंत में जय प्राप्त होती है। जिसका अंत भला उसका आरम्भ भी भला है। आत्मा को विजय दिलाने वाला यह व्रत आदरणीय है, यह निःसंशय है। कौरवों के पास सेना अधिक थी और पाण्डवों के पास कम। कौरवों की अधिक सेना क्या काम आई जो पराजय का कारण बनी। पाण्डवों की अल्प सेना अच्छी रही जिसने विजय प्राप्त करवाई। स्थूल शरीर क्या काम का जो विषय विकारों को बढ़ाता हो। इससे तो वह दुर्बल शरीर ही कहीं अच्छा है जो विषयों को घटाकर आत्मा को मजबूत बनाता है।

उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि क्या शास्त्र की बात आंख मींच कर मान ली जाय या उसको अनुभव की कसौटी पर कस कर खरी उतरने पर मानी जाय। ठीक बात है। मैं भी यह नहीं कहता कि अपने बुद्धि के द्वार को बंद करके अंध श्रद्धा से किसी बात को माना जाय जो कि बुद्धि से तोली जा सकती है। हां, जो बात बुद्धि का विषय न हो सके उस पर बुद्धि न लड़ाना ही ठीक है। किन्तु जो बुद्धिगम्य वस्तु है उसमें अपने तर्क को लगाना उचित ही है। किन्तु किसी बात को स्वीकार करने में बुद्धि भी मंजूरी देती हो और शास्त्र भी समर्थन करते हों तब तो और भी अच्छा है।

मैं साधारण शास्त्र की बात नहीं कह रहा हूं। वीतराग पुरुषों के द्वारा प्रणीत शास्त्र की बात कर रहा हूं। राग द्वेष से रहित पुरुषों ने संसार की हित कामना से प्रेरित होकर जिन शास्त्रों में अपने जीवन का अनुभव और वस्तु का वास्तविक स्वरूप वर्णित किया है उनकी प्रामाणिकता स्वीकार करने की बात पर मैं भार देना चाहता हूं। शांकर भाष्य में आई हुई वेद की एक श्रुति में कहा गया है कि केवल शब्द को ही न देखो किन्तु उस शब्द के कहने वाले की तरफ भी देखो। आगम प्रमाण को स्वीकार करते वक्त आगम के निर्माता का भी ख्याल करो।

जैनागमों के निर्माता भगवान् महावीर की तरफ देखो वे वीतराग थे। उनके आगमों में भी यदि रागद्वेष हो तब तो उनकी वीतरागता में संदेह पैदा हो सकता है। किन्तु भगवान् रागद्वेष से रहित थे अतः उनका फरमाया हुआ आगम सर्वथा प्रामाणिक है। यह बात दूसरी है कि कोई बात हमारी समझ में आती है और कोई नहीं भी आती। जो समझ में न आये उसके लिए नम्रता पूर्वक यही कहना चाहिए कि हे भगवन् ! आपका कथन सर्वथा सत्य है, मान्य है, किन्तु मेरी समझ अभी उतना विकास नहीं कर पायी है कि हर बात को गले उतार सके। शास्त्र बहुत प्राचीन है। करीब ढाई हजार वर्ष पूर्व के रचे हुए है। कौनसी बात किस उद्देश्य को सामने रखकर कही गई है यह बात हमारे छोटे दिमाग में न बैठे तो भी इस श्रद्धा से मानना चाहिये कि जब मेरे ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय हो जायगा तब समझ में आ जायगी। तप का अभ्यास करने से भी तप की उपयोगिता ज्ञात हो सकती है।

संवत्सरी कब से मनाई जाती है इसका कोई इतिहास उपलब्ध नहीं है। हां, समवायांग सूत्र में यह जिक्र आया हैं कि भगवान् महावीर ने आषाढी पूर्णिमा का प्रतिक्रमण करके एक मास और बीस दिन बाद पर्युषण मनाया। शास्त्र के इस वक्तव्य को ध्रुव मान कर तब से अब तक इस दिन को बहुत

महत्त्व दिया गया है और इसी दिन ढ़ाई हजार वर्षों से प्रतिवर्ष संवत्सरी पर्व मनाया जाता है। दिगम्बर जैन दश लाक्षणी पर्व के प्रथम दिन को महत्त्वपूर्ण मानते हैं और श्वेताम्बर जैन पर्युषण के अन्तिम दिन को किन्तु वह दिन प्रायः आषाढ़ी पूर्णिमा से पचासवां दिन ही होता है। दुर्भाग्य से जैन संघ में अनेक भेद प्रभेद हो गये हैं किन्तु भगवान् महावीर को सभी जैन एक दृष्टि से देखते हैं और उनकी भक्ति करते हैं। जैसे कि पाठशाला में जगह की कमी से एक ही कक्षा के अनेक सेक्शन (विभाग) होते हैं किन्तु मूल उद्देश्य और अभ्यासक्रम एक ही प्रकार का होता है। वैसे ही भगवान् महावीर के झंडे के नीचे सारे जैनी एक हैं। यदि सम्प्रदाय भेद मिट जाय तब तो अच्छा है किन्तु यदि ऐसा न हो सके तब भी जैन के नाते महावीर के अनुयायी होने के नाते सब एक हैं। इस दृष्टि से संवत्सरी पर्व सभी जैनों को मान्य है।

आज के दिन हर साधु साध्वी और श्रावक श्राविका के मन में यह भावना होनी चाहिये कि संसार के प्रत्येक प्राणी के साथ मेरा मैत्री भाव है। सब जीव मेरे मित्र हैं। जैन शब्द का अर्थ है रागद्वेष को जीतने वाले का अनुयायी। जो वीतराग का अनुयायी है उसकी किसी के प्रति बुरी भावना न होनी चाहिये। सब के प्रति मैत्री भावना रख कर सब को इस भावना में लाने का यत्न करना चाहिये। जैन धर्म व्यापक और उदार है। इस धर्म में इस प्रकार की संकीर्णता नहीं है कि यह अमुक के पालन करने योग्य है और अमुक के लिए नहीं। भंगी, भंगी का धन्धा करता हुआ और ब्राह्मण पूजा पाठ करता हुआ जैन धर्म का पालन कर सकता है। हां, इस धर्म का पालन करने के लिए जिन कार्यों का त्याग करना आवश्यक है उन्हें अवश्य छोड़ना पड़ता है। जैसे सप्त कुव्यसन छोड़ना, पन्द्रह कर्मादानों में बताये धन्धे त्यागना आदि। शराब या मांस की दुकान न की जाय तो इसमें किसी की हानि नहीं है। ये उपकारी धन्धे नहीं हैं बल्कि अपकारी धन्धे हैं। जनता को गुमराह करने वाले धन्धे हैं। जैन धर्म अपकारी खातों को निकाल कर उपकारी खाते रखता है और इस कारण राजा से लेकर रंक तक इसका पालन निर्बाध कर सकते हैं। बड़े से बड़ा राजा अपने राज्य का संचालन करता हुआ जैन धर्म का पालन कर सकता है। भगवान् महावीर के जमाने में गणराज्य की प्रथा थी। गणराज्य का यह नियम था कि जो उसमें सम्मिलित होता उसका कर्तव्य होता था कि निर्बल की सहायता करना और उसको अन्याय से बचाना।

ने यह उत्तर दिया था कि मैं तुम्हें अपना दोहित्र समझ कर सहायता नही करना चाहता। किन्तु अपना धर्म कर्त्तव्य समझ कर सहायता करना चाहता हूं। किसी सबल द्वारा निर्बल के सताये जाने पर निर्बल की रक्षा करना मैं अपना धर्म समझता हूं। यदि कोणिक दूसरे दस भाइयों की तरह तुमको भी अपने हिस्से का राज्य देता हो अथवा तुम अपनी इच्छा से उसके बदले केवल हार और हाथी से ही राजी हो तब तो ठीक है। किन्तु यदि कोणिक न तो राज्य देता है और न हार हाथी रहने देता है तब तो उसका बड़ा अत्याचार है। अत्याचार सहन करना, जैन धर्म का सिद्धान्त नहीं है। जैन धर्म वीरता सिखाता है कायरता नहीं।

चेटक ने गणराज्य संघ के अठारह सदस्य राजाओं की सभा बुलाकर उनसे सलाह की कि क्या करना चाहिये। कोणिक अपने भाई बहिल कुमार को उसका उचित राज्य का हिस्सा नहीं देता है और ऊपर से उसके पास रहे हुए हार और हाथी को भी छीनना चाहता है। बहिलकुमार हमारी शरण में आया है। न्याय की भिक्षा लेने के लिए आया है। आप लोगों की क्या सम्मति है? आप कहें तो इसे कोणिक के हवाले कर दिया जाय और यदि उसके हवाले नहीं करते हैं तो उसके साथ युद्ध करने के लिए तैयार होना पडेगा।

सब राजाओं ने मिलकर यह तय किया कि बहिल कुमार का पक्ष न्यायोचित है और कोणिक का पक्ष अन्यायपूर्ण है। न्याय को छोडकर अन्याय का पक्ष लेना अनुचित है। न्याय खोने के बदले अपना नाम मिटा देना बेहतर है। इसलिए बहिलकुमार की रक्षा करनी चाहिये और उसका उचित हिस्सा दिलाना चाहिये।

मित्रों ! मैं आप से पूछता हूं कि राजाओं का यह विचार आस्तिकता पूर्ण है या नास्तिकता पूर्ण ? आज आध्यात्मिकता का नाम लेने मे ही आस्तिकता मानी जाती है। किन्तु जो सच्ची आध्यात्मिकता को समझता है वह विशेष क्रिया का आह्वान करता है। क्रिया से दूर नहीं भागता। जो क्रिया से दूर भागता है वह जैन धर्मी नहीं है। स्वार्थत्याग कर निराश्रित की सेवा करना और इस प्रकार धर्माराधन करना जैन धर्म का मुख्य सिद्धांत है।

कोणिक के अत्याचार के विरुद्ध अठारह राजाओं ने मिलकर सामना किया। उस युद्ध में एक करोड़ और अस्सी लाख मनुष्य काम आये। जैन शास्त्र के अनुसार इस हिंसा काण्ड का पाप किसकी तरफ जाता है ? इस पाप का जबावदार कोणिक है या चेटक ? कोणिक का लोभ और क्रोध इस हिंसा का कारण बना। हार और हाथी के लोभ ने कोणिक को युद्ध में प्रेरित किया।

इसलिए शास्त्रानुसार इस हिंसा का जवाबदार कोणिक रहा। चेटक और अन्य राजाओं को अत्याचार हटाने के लिये लड़ना पड़ा। उनकी लड़ने की कोई ख्वाहिश न थी। ऊपर आई हुई बात को निपटाना पड़ा। शास्त्र में कहा है कि कोणिक छठी नरक में गया और अपने कर्त्तव्य का पालन और न्याय की रक्षा के कारण चेटक बारहवें स्वर्ग में गया।

कहने का सारांश यह है कि जैन धर्म में संकुचितता को स्थान नहीं है। इसलिए जाति पांति का भेदभाव किये बिना हर इन्सान जैन धर्म का पालन कर सकता है। आज सब के साथ मित्रता का नाता जोड़कर सारे विश्व को इस पवित्र धर्म में लगाने का प्रयत्न करना चाहिये।

अब हम इस बात को देखें कि किस किस महापुरुष ने इस पर्युषण पर्व की आराधना की है। भगवान् महावीर की तरह उनके पट्टधर श्री सुधर्मा स्वामी और उनके भी पट्टधर श्री जम्बू स्वामी ने इसी दिन इस पर्व की आराधना की है। उनके बाद आचार्य भी इसी दिन इसी प्रकार आराधना करते आये हैं।

हमारी सम्प्रदाय के नायक, आचार विचार का पूरी तरह पालन करने वाले, साधु जीवन का उद्धार करने वाले धुरंधर आचार्य पूज्य श्री हुक्मी चंद जी महाराज ने भी इस पर्व की इस तरह आराधना की थी। पूज्य श्री ने इक्कीस वर्ष तक बेले बेले पारणा किया। वे सारे वर्ष भर एक ही पछेवड़ी से काम चलाते थे, चाहे वर्षा हो या शीत। वे तली हुई वस्तु न खाते थे। केवल तेरह वस्तुओं के उपरान्त अन्य सब वस्तुओं के खाने का उनको त्याग था। मिष्ठान्न खाने का भी उनको त्याग था। ऐसे उत्कृष्ट आचारवान् वे महापुरुष थे। वे पर निन्दा करना न जानते थे। मुझे उन महापुरुष के साक्षात् दर्शन करने का सद्भाग्य प्राप्त नहीं हुआ। मैंने उनके सम्बन्ध में पूज्य श्री चौथमलजी महाराज से सुना है और उन्होंने भी अपने पूर्ववर्ती संतो से सुना था। वे कहते थे कि एक बार पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज जावद में विराजमान थे। वे शौचनिवृत्ति के लिए बाहर जंगल गये हुए थे। पीछे से एक साधु उनका दर्शन करने आया। पूज्य श्री को वहां न पाकर वह वापस लौट गया। पूज्य श्री के आने पर उनके किसी शिष्य ने कहा कि महाराज ! वह गेल्या (अर्ध विक्षिप्त) साधु आपके दर्शनार्थ आया था।

हल्का बताना या कहना अनुचित है। माना कि इस वक्त वह गेल्या है, समझ कुछ कम है। किन्तु कौन कह सकता है कि भविष्य में पुरुषार्थ करके वह हमारे से पहले ही मुक्त हो जाय। किसी के भविष्य का किसी को क्या पता। ज्ञानीजन किसी व्यक्ति का अपमान करना अनुचित मानते हैं, पूज्य श्री ने अपने शिष्य से कहा कि तुमने उसे गेल्या कहा इसका प्रायश्चित लो और अपनी आत्मा को शुद्ध करो। कितनी विशालता थी उनमें।

पूज्य श्री पहले कहीं का चातुर्मास नहीं स्वीकार करते थे जहां उनकी इच्छा होती वहां जाकर चातुर्मास के लिए निवास कर देते थे। एक बार पूज्य श्री चातुर्मास करने की इच्छा से जोधपुर पधारे। संघ की विनती के बिना स्वेच्छा से पूज्य श्री पधारे थे। जोधपुर में विराजमान इतर सम्प्रदाय के साधु कहने लगे कि जहां ऐसे घोर तपस्वी और शुद्ध चारित्र सम्पन्न साधु महात्मा का चातुर्मास होने वाला हो वहां हमारी क्या पूछ होगी। अतः हमें कहीं अन्यत्र जाकर चातुर्मास करना चाहिये। पूज्य श्री को इस बात का पता लग गया कि मेरे कारण अन्य संतो को कष्ट होता है, तुरन्त वहां से विहार कर दिया और फलौदी जाकर चातुर्मास किया। यह बात रामनाथजी मूथा से मालूम हुई है।

ऐसे महान् आत्मा का हमारा यह संप्रदाय है। वे तो निःस्पृह थे। उनके मन में चेले या सम्प्रदाय बढ़ाने की तनिक भी इच्छा न थी। उसके पास जो चेले आये उनको उन्होंने अपने गुरु आचार्य श्री की नेश्राय में ही दीक्षित किये। अपना कोई चेला नहीं बनाया। फिर भी सच्चे त्यागी महात्मा की कीर्ति को कौन रोक सकता है। उनके नाम से संप्रदाय चली और चल रही हैं। मुझे इस संप्रदाय का साधु कहलाने में बड़ा गौरव है।

पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज के बाद पूज्य श्री शिवलालजी महाराज हुए। उन्होंने इस सम्प्रदाय की बडी उन्नति की। मारवाडी लोग सारे भरतवर्ष में फैले हुए है अतः उनके द्वारा सारे भारत में उक्त दोनो आचार्य प्रसिद्ध हो गये।

पूज्य श्री शिवलालजी महाराज के पश्चात् पूज्य श्री उदयसागरजी महाराज हुए। वे जोधपुर के बीसा ओसवाल थे। उन्होंने दीक्षा दूसरी सम्प्रदाय मे अंगीकार की थी किन्तु पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की कठोर साधना से आकर्षित होकर इधर चले आये थे। उन्होंने भी इस सवत्सरी पर्व को पूर्वाचार्यो की परिपाटी के अनुसार मनाया था। मैं भगवान् महावीर से लेकर आज तक की आचार्य परम्परा की पाटावली नहीं सुना रहा हू क्योंकि इनके

लिए विशेष समय अपेक्षित है। दोपहर को समय मिला तो अन्य संत पाटावली सुनायेंगे।

चतुर्थ पाट पर पूज्य श्री चौथमलजी महाराज हुए। मैंने उदयसागरजी महाराज और चौथमलजी महाराज की सेवा की है। पूज्य श्री चौथमलजी महाराज की मुझ पर विशेष कृपा रही है। वे अनेक शास्त्र के ज्ञाता थे। उन्हें थोकड़े भी बहुत याद थे। आठ पहर में से छ पहर जागृत रहते थे ज्यादा न सोते थे। केवल दो पहर नींद लेते थे। स्वाध्याय भी खूब करते थे। वे ऊनोदरी (अल्पाहार) करते थे जिसके चिन्ह उनके पेट पर थे।

पंचम पाट पर पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज हुए। उनके गुणों का वर्णन मैं क्या करूं ! मेरे द्वारा उनके गुणगान करना छोटे मुख बड़ी बात होगी। आप लोगों में अनेक व्यक्ति ऐसे होंगे जिन्होंने उनकी प्रत्यक्ष सेवा की है। उनकी व्याख्यान धारा इस राजकोट शहर में भी बहुत प्रवाहित हुई है। यहां के संघ के उद्यान को पूज्य श्री श्रीलाल जी महाराज ने बहुत सींचा है। मैं उनके साथ यहां चातुर्मास करना चाहता था किन्तु बहुत इच्छा होने पर भी न कर सका। आप लोग बड़े भाग्यशाली हैं जिन्होंने यहां भी उनकी सेवा की और अन्यत्र जाकर भी। आपने उनकी सेवाएं की हैं, यह उत्तम है, मगर वे जो वस्तु प्रदान कर गये उसे सुरक्षित रखना आपका कर्त्तव्य है। मैं भी उनकी देन को सुरक्षित रखूं यह मेरा परम कर्त्तव्य है। यह न समझिये कि पूज्य श्री मौजूद नहीं हैं। वे आज भी अनेकों के हृदय में विद्यमान हैं। उनके उपदेश ने बहुतों के धर्म की रक्षा की है।

पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज के बाद मेरा नम्बर आता है। मेरे अवगुणों का मैं क्या वर्णन करूं। मुझमें बहुत अवगुण व त्रुटियां हैं। न मालूम मुझमें क्या बात देखकर पूज्य श्री ने यह बोझा मेरे सिर पर रख दिया है। मैं पूज्य महाराज की आज्ञा लेकर दक्षिण देश में चला गया था और वहां शिष्यों का अध्ययन जारी किया गया। उस समय मैं खान के हिवरे में था और पूज्य श्री उदयपुर में। उदयपुर से खान के हिवरे में पत्र आया जिसमें लिखा था कि जवाहरलालजी महाराज को युवाचार्य बनाया जाता है। अर्थात् पूज्य श्रीलालजी महाराज के बाद मुझे आचार्य नियुक्त किया जाता है।

मैं इस भार को अपने पर आता देख बहुत मुर्झाया। उस वक्त मुझे मुनि श्री मोतीलालजी महाराज और राधेलालजी महाराज ने बहुत समझाया

कहा कि यह बोझ स्वीकार कर लो। मैंने कहा कि मेरी ऐसी शक्ति नहीं है कि यह भार मैं झेल सकूं। बडे ऊहापोह के बाद मैंने इतना स्वीकार किया कि मैं रूबरू पूज्य श्री की सेवा में उपस्थित होकर उनके समक्ष अपनी कठिनाई रखूंगा और तब वे जो कहेंगे मंजूर करूंगा। मुझे दक्षिण से लौटने में देरी हो गई तो भीनासर के सेठ बहादुरमल जी बांठिया और रतलाम के सेठ वर्धमानजी पितलिया आये और मुझे कहने लगे कि देर क्यों कर रहे हो। जल्दी पधारो।

मैं रतलाम आया। वहां मैंने पूज्य श्री से अर्ज की कि मुझसे यह गुरुतर भार न उठाया जायगा। इस पर पूज्यश्री ने फरमाया कि इस बात की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। मैंने सब इन्तजाम कर दिया है। तू मेरा कहना मान और मैं कहूं वह कर। इस प्रकार पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज ने संप्रदाय की जिम्मेवारी का काम मुझ पर डाल दिया।

मैंने दक्षिण, मालवा, मेवाड़ और मारवाड़ में बहुत समय विताया है। दिल्ली की ओर भी मैं विचरा हूं। काठियावाड़ बाकी रह गया था सो यहा के लोगों के आकर्षण से इधर भी आना पड़ा। आप लोगों के अति आग्रह के उपरान्त भी बीकानेर की तरफ जाने का विचार अधिक था। किन्तु संत सूरजमलजी और सिरेमलजी ने मुझे इधर आने के लिए बहुत उत्साहित किया। उन्होंने कहा कि जीवन का क्या भरोसा हैं। श्रावको की आशा पूर्ण करनी चाहिये। इसके उपरान्त दुर्लभजी भाई ने बार बार कई पत्र मेरे पास भेजे जिनमें लिखा था कि एक लाख श्रावकों की इज्जत बचानी है तो सब काम और सब देश छोड़ कर इधर पधारो। इन सब कारणो से मैं इधर आया हूं। यहां के संघ के सेक्रेटरी ने विनती के वक्त यह बात कही थी कि विहार में यहां के आदमी आपके साथ रहेंगे जिससे मार्ग में कठिनाई न रहेगी। इस पर मैने कह दिया था कि ऐसा करने की आवश्यकता नहीं है, दूसरो के सहारे रहना ठीक नही है। हम अपने पुरुषार्थ के बल पर ही विचरेंगे। मुझे रोटी नही चलती है। रोटी खाने का त्याग नहीं है। किन्तु रोटी हजम नही होती हैं। कभी कभी अन्य साधन के अभाव में थोडी रोटी भी खा लेता हूं। इसलिए मेरे शरीर का निभाव होना कठिन कार्य था। फिर भी सतो की परिचर्या और सावधानी से मैं यहां तक आ पहुंचा हूं। मुनि बख्तावरमलजी की सेवा विशेष उल्लेखनीय है। मुनि चांदमलजी भी पालनपुर से साथ है। इनसे भी मुझे बहुत सहायता प्राप्त हुई हैं।

दुकान चला रहे हैं। इनको मोक्ष जाने की बड़ी उत्कण्ठा है। इनके रोम रोम में वैराग्य भरा है।

फूलचन्दजी संत को आप देख ही रहे हैं। किस शांति के साथ ये तपस्या कर रहे हैं। आज इनको पंद्रह दिनों की तपस्या है।

श्रीमलजी, चुन्नीलालजी और गोकुलचन्दजी साधु गूगलिया परिवार के हैं और कुड़गांव (दक्षिण) के निवासी हैं। इन लोगों ने बड़े वैराग्य से दीक्षा स्वीकार की है। सूरजमलजी संत भी इन्हीं के सम्बन्धी हैं जो बहुत तपस्वी और सेवाभावी हैं।

ये सब सन्त मेरी सहायता करने वाले हैं। सन्त सहायता करते हैं किन्तु सतियों का मामला बड़ा कठिन होता है। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि यहां की सतियों के सम्बन्ध में सिवा ज्ञान ध्यान के और कोई बात सुनने में नहीं आई। मैं इनसे यही कहता हूं कि हर समय इसी प्रकार ज्ञान ध्यान में मस्त रहें और आदर्श व्यवहार करके शांति रखें।

अब श्रावकों की बात है। यहां के श्रावक मुझे हर प्रकार से शांति प्रदान करने में तत्पर रहते हैं। बाल वृद्ध और युवा सब मुझे प्रसन्न रखने की चेष्टा में रहते हैं। किसी ने मुझे किसी काम के लिए आग्रह नहीं किया। मैं कहता रहा कि यहां का कोई खास रीति रिवाज या तरीका हो तो मुझे बताते रहना। तथा मैं यह भी पूछता रहा हूं कि मेरी कोई बात ठीक न लगे तो मुझे बताते रहना। किन्तु यहां के संघ के लोगों ने अपनी ही कमी बताई है। मेरी तथा मेरे शिष्यों की कोई खामी नहीं निकाली। यह संघ की गुणग्राहकता का परिचायक गुण है।

मणिभाई वनमाली शाह यहां के सुव्यस्थित संघ के सेक्रेटरी हैं। इनको भारत सरकार की तरफ से राव साहब की उपाधि भी मिली हुई है तथा पेंशन याफ्ता भी हैं। फिर भी ये तहेदिल से संघ की सेवा करते हैं। सेवा के बदले कुछ वेतन नहीं लेते हैं। सेवा की भावना होने पर भी छद्मस्थता के कारण इनसे किसी प्रकार की सेवाकार्य में त्रुटि हो सकती है। आप लोग इनकी त्रुटि पर ध्यान न देकर इनकी नीयत की तरफ ख्याल कीजियेगा।

राजकोट संघ का बंधारण देखकर मुझे कहना पड़ता है कि यदि ऐसा बंधारण मालवा मेवाड़ और मारवाड़ में भी होता तो समाज कितना संगठित और व्यवस्थित होता। सम्प्रदाय भेद होने पर भी संघ के बंधारण

काठियावाड़ (सौराष्ट्र) देश की पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज भी प्रशंसा करते थे। वे युवा थे और उनकी मगज शक्ति भी बडी तीव्र थी। मैं तो वृद्ध हो गया हूं और पेंशन के योग्य हूं। फिर भी मुझे बोलना पड़ता है। उपदेश करने का काम बड़ा कठिन है। कितनी भी सावधानी रखी जाय तब भी सब प्रकार के श्रोताओं को प्रसन्न रखना और उनकी रुचि के अनुसार बातें सुनाना बड़ा विकट काम है। किसी भाई को मेरे न चाहते हुए भी अनजान में मेरे शब्दों से दुःख हो सकता है। मेरी इच्छा नहीं रहती कि मेरे कारण किसी का दिल दुःखे। किन्तु फिर भी किसी को दुःख हो सकता है। मैं अन्तःकरण से उन भाइयों को तथा सबको खमाता हूं।

यहां की बहिनें बड़ी विवेक शीला मालूम देती हैं। मालवा, मेवाड और मारवाड़ की अपेक्षा यहां की बहिनें अधिक कार्यदक्ष और सावधानी पूर्वक काम करने वाली हैं। अहिंसा धर्म का पालन वहीं होता है जहां सफाई होती है। कूड़ा कर्कट इकट्ठा कर रखना, शाक दाल आटा आदि सडाना जैन धर्म के सिद्धान्त से प्रतिकूल है। ऐसा करने से जैन धर्म का पालन नहीं होता। अहिंसा धर्म सफाई और पवित्रता से पलता है। यहां की बहिनें पवित्रता और सफाई पर अधिक ध्यान देती हैं अतः इस विषय में उनको कुछ कहने की आवश्यकता नहीं मालूम देती। किन्तु फैशन के सम्बन्ध मे मुझे बहनो से कुछ कहना है।

बहनों को विचार हो सकता है कि महाराज तो हमारी टीका टिप्पणी करते हैं किन्तु मैं बहनों की टीका कैसे कर सकता हूं। बहनों का हम पर बडा उपकार है। यदि बहनों की सहायता न हो तो हम साधु लोगो का तीन दिन के लिए टिकना भी दुष्कर हो जाय। फिर भी जिनको मैं मा बहिन और पुत्री के समान मानता हूं उनको फैशन में जकडी हुई देखकर कुछ कहने से अपने आपको रोक नहीं सकता। मेरी मां बहिनों की फैशन के कारण इज्जत नष्ट होती हो, भला उस वक्त मै चुप कैसे रह सकता हू। माताओ और बहिनो ! आप इस फैशन रूपी पिशाचिनी के चक्र से सदा दूर रहियेगा। ये बारीक वस्त्र और दूसरा साज आपकी चिरकाल से सुरक्षित कीर्ति में बट्टा न लगा पावे इस बात की सावधानी रखियेगा। आपको कई बार इस विषय मे कुछ कहना पड़ा है। इसके लिए मै आज इस पर्व पर क्षमा मागता हू।

चारो तीर्थो की हकीकत मैंने अपनी जवाबदारी की दृष्टि से कही है। अब हमारी सम्प्रदाय की परम्परा के सम्बन्ध मे जो कुछ कहना बाकी रह गया है, वह कहता हू।

अजमेर साधु सम्मेलन के समय वहां पर एकत्रित सन्तों ने मुझ से व संघ से पूछे बिना महात्मा गणेशीलालजी को मेरा युवाचार्य नियुक्त कर दिया था। तदनुसार जावद (मालवा) में उनको जगजाहिर रीति से युवाचार्य पदवी प्रदान करने पर भी सम्प्रदाय का भार मैं अपने पर रखूं या उनको सौंप दूं यह मेरी इच्छा व अधिकार की बात है। फिर भी मैंने गत वर्ष यह जाहिर कर दिया है कि संघ व सम्प्रदाय का ज्यादा काम युवाचार्य गणेशीलालजी ही करेंगे। मेरी सलाह की जरूरत होगी तो मैं देता रहूंगा। युवाचार्य गणेशीलालजी बहुत ही योग्य, विनीत और सज्जन हैं। मेरे मुख से उनकी तारीफ नहीं की जा सकती है। अजमेर में करीब चालीस पचास हजार लोग इकट्ठा हुए थे। सभी ने उनको युवाचार्य बनाये जाने में प्रसन्नता प्रकट की थी। इस समय उनका चातुर्मास उदयपुर (मेवाड़) में है।

अब मैं संक्षेप में यह बताना चाहता हूं कि इस पर्युषण पर्व में क्या करना चाहिये। आज के पवित्र दिन में किस प्रकार की उज्ज्वल भावना करनी चाहिये, यह बताता हूं। समस्त धर्म कार्यों का मूल भावना में निहित है। मैं ऐसी भावना बताता हूं जिसका मनन करने से आत्मा का परमहित साधन हो सकता है। स्त्री, पुरुष, राजा, प्रजा, धनवान् और गरीब सब इस भावना का अभ्यास कर सकते हैं। गाय का दूध आबाल वृद्ध सबके लिए उपयोगी होता है। वह किसी के लिए हानिकर्त्ता नहीं होता। अमेरिकन लोगों का कहना है कि ताजा बढ़िया और निर्दोष खुराक यदि कोई है तो गाय का दूध है।

जिस प्रकार गाय के चार पैर होते हैं और पैरों के बीच उबाडा होता है, उस उबाडे में चार स्तन होते हैं, जिन से दूध निकाला जाता है। उसी प्रकार ज्ञानियों ने धर्म की चार भावनायें बताई हैं। जैसे गाय के चारों स्तनों के दूध में किसी प्रकार का अन्तर नहीं होता। चारों स्तनों से निकाला हुआ दूध समान रूप से उपयोगी होता है। वैसे ही चारों भावनायें समानरूप से उपयोगी और लाभदायक हैं। ये चारों भावनायें काम धेनु के स्तनों की तरह अमृत दायिनी हैं। वे भावनायें ये हैं :

सत्वेषु मैत्री, गुणिषु प्रमोद क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीत वृत्तौ सदा ममात्मा विदधातु देव!।।

ये चारों भावनायें— मैत्री भावना, प्रमोद भावना, कारुण्य भावना और माध्यस्थ भावना पर्युषण पर्व तथा जीवन को सार्थक करने वाली भावनायें हैं लड्डू खाने या चाय पार्टी उड़ाने के लिए आप कोई मित्र बनाते होंगे किन्तु पर्युषण पर्व में जगत् के समस्त प्राणियों के साथ मित्रता की भावना साधना है। यह शंका की जा सकती है कि संसार के सब जीवों को मित्र कैसे बनाया जा सकता है। मित्र बनाना कोई सरल काम नहीं है। जिसको मित्र बनाया जाता है उसका सुख दुःख अपना सुख दुःख मानना पड़ता है। जीवन निर्वाह के लिये कई प्राणियों को कष्ट देना पड़ता है। यदि सबसे मैत्री करके बैठ जायें तो मुख की मक्खियां उड़ाना भी कठिन हो जाय।

शंका ठीक है। शंका होना स्वाभाविक है। शंका किये बिना तत्व समझ में नहीं आ सकता। शंका करने से विरोधी रुख भी समझ में आ सकता है। मैत्रीभाव रखने का अर्थ समझना चाहिये। नदी में अमाप पानी होता है। सब का सब पानी पिया नहीं जा सकता। किन्तु सारे पानी में प्यास मिटाने की क्षमता है। जिसको जितनी प्यास हो वह उतना पानी पिये। इसी प्रकार ज्ञानियों ने सर्वजीवों के साथ मित्रता रखने की बात कही है, वह सामान्य नियम बताया है। जिसकी जितने जीवों के साथ मैत्री निभ सके वह उतनों के साथ मैत्री भाव रखे। लक्ष्य सर्वजीवों के साथ मित्रता का होना चाहिये। शक्ति, सामर्थ्य और परिस्थिति के अनुसार लक्ष्य तक पहुंचने का प्रयत्न करते रहना चाहिये। यदि दृढ़तम भावना और प्रयत्न जारी रहा तो एक दिन पूर्ण लक्ष्य तक भी पहुंचा जा सकता है।

स्वयं भगवान् भी किसी नरकगामी जीव को उसके दुःखों से छुटकारा नहीं दिला सकते और न केन्द्रिय जीव को वे इन्द्रिय बना सकते है। जब तक कि उनके किये कर्म स्वयं भुगत न लिये जायं। किन्तु उनकी भावना तो यही कहती है कि सर्व जीव सुखी हों।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्व जीव कल्याणकारी काम करें और निरोग रहें। यह भावना पवित्रता की ओर ले जाती है। भगवान् की भावना पवित्र होती है इसलिए वे त्रिलोकीनाथ कहलाते है। आप लोग भी भावना शुद्ध रखो। किसी का अनिष्ट चिंतवन मत करो। आपके अनिष्ट चितंन करने से सामने वाले का अनिष्ट हो भी सकता है और नहीं भी। इसमे संदेह को पूरा स्थान है। किन्तु अनिष्ट चिंतन से आपका अनिष्ट अवश्य होता है। यह निःसन्देह बात है। किसी की भलाई का विचार करने से [illegible]

है ? यदि नहीं तो फिर इसी क्षण से परहित वांछा करना आरंभ कर दीजिये। आपका जीवन सफल हो जायगा। केवल हृदय की विशालता अपेक्षित है। यदि आपका दिल संकुचित है तो आप बहुत छोटे और गंदे दायरे तक सोचते हैं और यदि आपका हृदय विशाल है तो उसमें अपनी तरह संसार के सब जीव स्थान पाते हैं और अपने हितचिंतन के समान उनका हितचिंतन भी अनिवार्य हो जाता है।

व्व भूयप्प भूएसु सम्मं भूयाइं पास ओ।

संसार के सब प्राणियों में अपनी आत्मा को देखना और अपनी आत्मा में सर्व प्राणियों को देखना यह उदार सिद्धान्त दशवैकालिक सूत्र में प्रतिपादित किया हुआ है। यही मैत्री भावना का रहस्य है।

योग्यतानुसार मैत्रीभाव का विकास होता है। जिसकी आत्मा जितनी निर्मल है वह उतना ही लोगों का मित्र बनता है। मित्रता का आरंभ अपने घर से ही करना चाहिये। माता–पिता का किस पर उपकार नहीं है ? सब लोग माता पिता से पैदा हुए हैं। आसमान से कोई नहीं टपका है। प्रकृति के नियमानुसार सब मां बाप से उत्पन्न हुए हैं अतः उनका संतान पर महान् उपकार गिना जाता है। आप कितने ही प्रतिष्ठित और महान् क्यों न बन गये हो, माता–पिता का उपकार मानना पड़ेगा। उनकी सेवा भक्ति और धर्म में सहायता करना आपका परम कर्त्तव्य है। माता–पिता से यह प्रार्थना करनी चाहिये कि आप संसार का झंझट छोड़कर धर्म मार्ग में समय लगाइये तथा उनका बोझा अपने पर लेकर उन्हें धर्म करणी करने के लिए अवसर प्रदान करना चाहिए।

इसी प्रकार माता–पिता को यह विचार करना चाहिये कि हमने संतान को जन्म देकर कोई महान् उपकार नहीं किया है। हमारा उपकार तो तब है जब हम संतान को सुसंस्कारी बनाकर धर्म के मार्ग में लगा सकें। पुत्र के धर्म मार्ग में बाधक न होकर साधक बनना माता–पिता का कर्त्तव्य है। आपने पर्युषण के आठों दिनों में अंतकृद्दशांग सूत्र सुना है। उसमें गजसुकुमार और एवन्ता मुनि का वृत्तान्त भी सुना है। क्या इन दोनों के मा बाप न थे ? अवश्य थे। साधारण मां–बाप नहीं किन्तु राज परिवार के विशिष्ट व्यक्ति उनके मां–बाप थे। किन्तु उन्होंने अपने पुत्रों की परीक्षा करके उन्हें आध्यात्मिक मार्ग अपनाने की सहर्ष अनुज्ञा दे दी।

लिये शादी नहीं करता है या सादगी से जीवन बिताने के लिए खादी पहनता है और मिर्च मसाले नहीं खाता है तो मां बाप रोते हैं और दुःख प्रकट करते हैं। कहने लगते हैं, महाराज ! हमारा पुत्र कुछ खाता पीता पहनता ओढता नहीं है, संसार की मौज नहीं करता, वैरागी सा जीवन बिताता है। मगर यह मोह भावना है, यह मैत्री भावना नहीं है। माता पिता और संतान का कर्त्तव्य है कि एक दूसरे मार्ग में बाधक न बनकर साधक बनना चाहिये।

इसी प्रकार पति पत्नी का क्या सम्बन्ध और कर्त्तव्य है, समझना चाहिये। यदि पत्नी यह सोचने लगे कि पति ने मेरे से विवाह किया है अतः अच्छा खाना, अच्छा वस्त्र और बहुमूल्य दागीने देना उसका फर्ज है। और पति सोचने लगे कि मैं शादी करके लाया हूं अतः हर प्रकार की सेवा करना पत्नी का कर्त्तव्य है तो गृहस्थ जीवन सुखमय बनने के बजाय महान् क्लेश का कारण बन जाय। दोनों अपना अपना फर्ज अदा करें यह उचित है किन्तु एक दूसरे पर फर्ज लादना और मजबूरी से फर्ज अदा कराना गृहस्थ जीवन के लिये कांटे बोना है। आज के अधिकाशं पति पत्नियों में आपसी क्लेश देखा जाता है। यदि एक दूसरा एक दूसरे का फर्ज न देखकर अपना फर्ज देखने और अदा करने लगे तो जीवन बड़ा सुखमय बन जाय। त्याग भाव के बिना इतनी उत्कृष्ट भावना आना कठिन है। त्याग मार्ग अपना कर्त्तव्य करना सिखाता है, दूसरा क्या करता है और क्या नहीं करता इस पर ध्यान नही देता। यह पर्व त्याग मार्ग का अभ्यास करने के लिए है। यदि इसमें त्याग भाव सीख लिया तो आपका गृहस्थ जीवन स्वर्गीय जीवन बन जायगा। मैत्री भाव और त्याग भाव में कुछ अंतर नहीं।

मयणरेहा और जुगबाहू के दाम्पत्य जीवन पर नजर दौडाइयें। मयणरेहा पर कितनी आपत्ति थी। उसके पति पर उसके जेठ ने तलवार से वार कर दिया था। तलवार की चोट से जुगबाहू छटपटा रहा था और अपने भाई पर बहुत क्रोधित हो रहा था कि क्यों इस दुष्ट ने मुझे तलवार से घायल किया है। मगर मयणरेहा ने सोचा कि यह समय बड़ा नाजुक है। मेरे पति

में आपकी पत्नी न होती और साथ में रूपवती न होती तो यह तलवार आपके कंधों पर क्यों पडती। मेरे रूपवान शरीर को देखकर आपके भाई के मन में विकार भाव उत्पन्न हुआ। उसमें आपको वाधक मानकर आपको मिटा देने का विचार जागा और तलवार गिरी। इसके पूर्व आप पर आपके भाई का कितना स्नेह था जिससे प्रेरित होकर आपको युवराज बनाया था। मेरे रूप से मोहित होकर वह स्नेह भाव लुप्त हो गया। अतः वस्तुतः इस कांड की वास्तविक अपराधिनी तो मैं हूं।

मुझ अने बांधव ऊपरे हो, प्रीतम राग द्वेष परिहार।
सम परिणाम राखजो हो, प्रीतम उतरोगा भवपार।
हिरदे राखीजो हो प्रीतम, मांगलिक शरणा चार।।

नाथ ! मुझ पर तथा अपने बान्धव पर रागद्वेष न लाकर सम भाव धारण करो जिससे संसार समुद्र से पार उतर जाओगे।

एक आदर्श पत्नी का अपने पति के लिए कितना सुन्दर उपदेश है। पति पत्नी का ऐसा ही सुन्दर सम्बन्ध होना चाहिये। मयणरेहा ने आखिरी वक्त अपने पति के साथ सच्ची मित्रता निभाई। इनके जीवन से पाठ ग्रहण करके आप लोग भी आपस में ऐसी मित्रता निभाओ। आज का दिन ऐसी मित्रता जोडने का है, सबसे सम भाव रखने का है। आप यदि अपने दुश्मन न बनेंगे तो कोई आपका दुश्मन नहीं बन सकता। दुश्मन कोई बन भी जाय तो भी बिगाड कुछ नहीं कर सकता। शत्रु को मित्र बनाने की कला सीखने का आज का दिन बड़ा शुभ है। यह अवसर बार बार नहीं आता है। ऐसा न हो कि आज तो खमत खमावणा कर लिए और कल फिर लडाई कर ली। जिससे एक बार मित्रता जोडली उससे वापस शत्रुता करना उचित नहीं है। भारतीय विवाह पद्धति के अनुसार एक बार लग्न हो जाने पर जीवन पर्यंत सम्बन्ध नहीं टूटता। जिसके साथ एक बार प्रेम कर लिया उसके साथ सदा के लिए मैत्री हो चुकी। सदा यह भावना भाते हो :-

खामेमि सव्वे जीवा सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्ति मे सव्व भूयेसु वेरं मज्झं न केणई।।

चिन्ह है। मैत्री भावना का चिंतन करते करते उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो तीर्थकर गोत्र का बंध हो सकता है। यह भावना मोक्ष की कुंजी है।

यदि युगबाहू क्रोधयुक्त भावना में मृत्यु पाता तो न मालूम किस अशुभ गति में जाता। किन्तु जीवन की सच्ची साथिन मयणरेहा के समयोचित उपदेश से वह पांचवें देवलोक में गया। आप लोग अपने लिए विचार करो कि आपका दाम्पत्य सम्बन्ध स्वर्ग प्राप्त करने के लिए है या नरक। यदि स्वर्ग प्राप्त करने के लिए सम्बन्ध है, ऐसा मानते हो तो स्वर्ग मुफ्त में नहीं मिला करता। उसके लिए बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है। उसके लिये खरा त्याग करना पड़ता है। जुगबाहू ने क्रोध का त्याग किया था जिससे वह स्वर्ग में गया। जब मदनरेखा पर आपत्ति आई तब देव बने हुए पति ने भी उसकी सहायता की है। मित्रता निभाना सरल काम नहीं है। त्याग भावना होना उसके लिए आवश्यक शर्त है।

मैंने घर से शुभारंभ करने की बात कही है। माता पिता और पति पत्नी का सम्बन्ध कुछ बताया जा चुका है। अब इसी प्रकार स्वामी सेवक का सम्बन्ध भी आदर्श होना चाहिये। अपने सेवकों के साथ मित्रता का नाता होना चाहिये। आप पर मजदूरों का कितना उपकार है, क्या कभी इस बात पर विचार किया है? किसने ईट पत्थर उठाये हैं? किसने चूना पकाया और किसने लोह लक्कड का काम किया है? जो सुन्दर वस्त्र आपने धारण कर रखे हैं उसके पीछे किसका श्रम है? किसने कपास बोया है और किसने उसके लिए भूमि साफ की है? किसने रुई बनाई और किसने धागे निकाले ? किसने उसे बुना और किसने उसे रंगा है ? तथा किसने सिलाई की है ? जो अन्न, दूध और घी आप खाते हैं, उन सब के पीछे किन किन का महान् श्रम रहा हुआ है, क्या आपने कभी इन बातों पर ठंडे दिमाग से कुछ सोचा है ? यह सब उन मजदूरों का परिश्रम है जिसके कारण आप आनन्दोपभोग करते हैं। क्या उन मजदूरों का आप पर उपकार नहीं है ? अवश्य है। अतः उनके साथ सच्ची मित्रता का व्यवहार करो। इसी प्रकार जिन गायों और भैसों का आप घी दूध खाते है उनका भी आप पर उपकार है। उन पर भी मैत्री भाव रखो। जिन जिन का आप पर उपकार है कम से कम उनके साथ तो मित्रता अवश्य रखो। मैत्री भाव रखने के लिए फैशन, आभूषण और नखरों का त्याग करना भी आवश्यक है।

स्त्रियां भी मोक्ष प्राप्त करने की अधिकारिणी मानी गई हैं। ये दसों सतियां कर्मरज मिटाकर मोक्ष पधारी हैं। इन सतियों का गुण वर्णन करने के लिए हृदय उमड़ रहा है किन्तु समय की कमी के कारण आवेग को रोकना पडता है। ये सब सतियां राजा श्रेणिक की रानियां थीं। फिर भी जैन दीक्षा अंगीकार करके तपोमय जीवन बिताती थीं। इन सतियों में एक महासेन कृष्णा नामक सती ने आमिल वर्धमान नामक तप किया था। इस तप में एक आमिल एक उपवास फिर दो आमिल एक उपवास फिर तीन आमिल एक उपवास इस प्रकार चार पांच छः आदि बढ़ते बढ़ते सौ आमिल और एक उपवास करना होता है। जिस क्रम से बढ़ना होता है उसी क्रम से घटना भी पड़ता है। अर्थात् सौ आमिल करके एक उपवास फिर निन्यानवे आमिल करके एक उपवास, फिर इठयानवे आमिल करके एक उपवास। इस प्रकार एक आमिल और एक उपवास पर उतर आना पड़ता है।

इन सतियों ने इतना उत्कृष्ट तप क्यों किया था ? राजा की रानी बनकर भिक्षुणी बनना इन्होंने क्यों पसन्द किया ? इन सब बातों का यदि आप ऐतिहासिक पुरावा ढूंढना चाहो तो मिलना मुश्किल है। त्याग का वर्णन इतिहास में नहीं मिल सकता। इतिहास में लडाई का वर्णन मिलेगा। दो राजाओं का आपस में युद्ध हो तो उसका वर्णन इतिहास में मिल सकता है। किन्तु यदि दोनों आपस में लडे ही नहीं, समझदारी पूर्वक बिना युद्ध के मामला तय करलें तब इतिहास में उनका जिक्र क्यों आने लगे। विशेष घटना घटे बिना सामान्य बातों की कौन नौंध लेना पसन्द करेगा और किसी ने नोंध ले ली तो याद कौन रखेगा। इसलिए त्यागियों के जीवन का इतिहास ढूंढने की झंझट में न पड़कर उनका अनुसरण करने में लगना अच्छा है।

बौद्ध ग्रंथों में लिखा है कि सम्राट अशोक की बहिन भी भिक्षुणी बनी थी। बल्कि यह भी कहा जाता है कि उसके हाथ का लगाया हुआ पीपल का वृक्ष अभी तक सीलोन में मौजूद है। जब अशोक की बहिन भिक्षुणी बन सकती है तो राजा श्रेणिक की रानियां भिक्षुणी बनीं, इसमें संदेह करने की क्या बात है।

चावलों को उनकी दासियां भी खाना पसन्द नहीं करती थी उनको कैसे आनन्द के साथ खाती हैं। पूर्व में भोगे हुए पकवान और विविध व्यंजनों की याद उनके चित्त को विहल नहीं करती है। स्वेच्छा से इस तपोयज्ञ में अपने आप को होम दिया है। मानो पूर्व में दास दासियों की जो सेवायें ली थीं उनका प्रायश्चित्त कर रही हैं। आज आपके लिए भी प्रायश्चित का दिन है। कम से कम इतना तो त्याग करो कि जिन गायों का आप दूध पीते हैं। उन गायों की चर्बी जिन वस्त्रों में लगती हैं, वे धारण न करो। मिल के बने वस्त्रों का त्याग करो।

दूसरी भावना प्रमोद भावना है। साधु, साध्वी, आचार्य, उपाध्याय श्रावक, श्राविका आदि जो भी गुणाधिक हैं, उन्हें देखकर प्रसन्न होना चाहिये। उनके गुणों का अनुमोदन करो।

तीसरी करुणा भावना है। दुःखी जनों की करुणा करनी चाहिये। सुखी और सम्पन्न व्यक्तियों की सेवा करने के लिए सदा तैयार रहते हो किन्तु जो दुःखी और अभावग्रस्त हैं उनको सेवा की खरी जरूरत है। वह डाक्टर कितना मूर्ख गिना जाता है जो बीमारों को दवा न देकर स्वस्थ लोगों को पकड पकड कर जबरन दवा पिलाता है। क्या वे लोग उस डाक्टर से कम मूर्ख हैं, जो भूखों को न खिलाकर लखपतियों को पकड पकड कर जबरदस्ती खिलाते हैं। एक भक्त कहता हैं :-

उत्तम जन्मा ये उनी रामा गेलो भी वाया।
दुष्ट पातकी शरण मी आलो सत्वर तव पाया।
व्यंजलें बहु लवण भंजने व्याया जेवाया।
क्षुधित अतिथि कदी नाही घेतला प्रेमे जेवाया।।

भक्त कहता है कि मेरा उत्तम जन्म व्यर्थ चला गया। मैंने ब्याही और जमाइयों को मनुहार कर कर के खूब जिमाया। उनके जीम चुकने पर भी खूब आग्रह करके उनकी थाल मे मिष्ठान्न डाला और चूरण देकर उसे हजम करवाया। किन्तु उसी समय भूख के मारे मरता हुआ व्यक्ति भोजन मांगने आया उसे मैंने दुत्कार दिया और घर से बाहर निकाल दिया। भगवन् ! यह कैसी विडम्बना है !

की निन्दा करते हैं। स्वयं अच्छे बनते हैं और दूसरों को बुरा बताते हैं। ऐसे लोगों के प्रति उपेक्षा भाव धारण करना चाहिये। ऐसा सोचना चाहिये कि मैंने जैन धर्म पाया है तो उसका सार सहन करना है न कि दूसरों को कोसना या बदला देना। गज सुकमार के सिर पर सोमिल ने जलते अंगारे रखे थे। श्रीकृष्ण के पूछने पर भगवान् अरिष्ट--नेमी ने इतना ही कहा था कि कृष्ण ! गजसुकुमार को एक आदमी सहायक मिल गया जिससे आज रात्रि में ही वे अपना कार्य साध गये, मुक्ति में पहुंच गये। क्या सोमिल ने सहायता करने की दृष्टि से गज सुकुमार के सिर पर अंगारे रखे थे ? नहीं, किन्तु गज सुकुमार मुनि ने समता भाव धारण करके उसे सहायक मान लिया। अनिष्ट में से इष्ट प्राप्त कर लिया शत्रु को मित्र मान लिया जिससे अपना प्रयोजन सिद्ध कर गये।

इसी प्रकार जो आपके निन्दक हों उनके लिए यह सोचना चाहिये कि ये स्वयं पाप करते हैं किन्तु मेरे लिए तो भलाई ही करते हैं। मेरे दोष प्रकट करके मुझे सावधान करते हैं और धर्म पर अधिक दृढ़ रहने की प्रेरणा देते हैं। बिजली का महत्व अंधेरे से है। सज्जनों का महत्त्व भी दुर्जनों के कारण दृष्टिगत होता है। अपनी धर्म रूपी रोशनी बढ़ाओ, अंधेरा अपने आप हट जायेगा।

इन चारों भावनाओं को हृदय में स्थान दोगे तो धर्म रूपी कामधेनु आपके घर में ही है। चारों को न अपना सको तो किसी एक के अपनाने पर भी गाय के एक स्तन से दूध की तरह धर्मरूप अमृत प्राप्त होगा। जिससे इह लोक और परलोक दोनों सुधरेंगे।

राजकोट

21–8–36.

निर्बल के बल राम

जय जय जिन त्रिभुवन घनी।

प्रार्थना—यह दसवें तीर्थकर भगवान् शीतलनाथ की प्रार्थना है। भगवान् शीतलनाथ की प्रार्थना करते हुए मन में क्या भावना होनी चाहिये, यह बताने के लिए भक्त कवि, स्तुति रूप में वाक्य धारा छोडते हैं। भक्तों की छोडी हुई वाक्य धारा वही काम करती है जो एक धारा दूसरी धारा के लिए करती है। जब पानी की एक धारा पर दूसरी धारा गिरती है तब पहिली धारा दूसरी को अधिक उत्तेजित करती है। शान्त पानी पर यदि कोई धारा गिरती है तो वह पानी मे खलबली पैदा कर देती है। यह बात दूसरी है कि जैसी धारा होगी वैसी ही हरकत भी पैदा करेगी, किन्तु अच्छी या बुरी कोई न कोई हरकत किये बिना नही रहेगी। यदि हमारे शान्त हृदय मे परमात्मा की चाह होगी तो भक्तों की छोडी हुई वाक्य धारा खलबली मचाये बिना न रहेगी।

जय जय त्रिभुवन धनी। करुणा निधि करतार,
सेव्यां सुरतरु जेहवो, वांछित फल दातार। जय जय.।।

हे तीनों लोक के नाथ ! तेरा जय जयकार हो। तू त्रिभुवन धनी है और मैं अपूर्ण हूं। मैं इस शरीर में सीमित हूं, इसमें रुका हुआ हूं। तू ज्ञान रूप से सर्वत्र व्यापक है। तेरा ज्ञान रूपी प्रकाश लोक और अलोक में फैला हुआ है। तेरी जयकार इसलिए बोलता हूं कि तू कल्प वृक्ष के समान मनोवांछित फल देने वाला है। जैसे कल्प वृक्ष को कोई बंधन में नहीं बांध सकता कि तू अमुक को फल देना और अमुक को मत देना। वह सब को फल देता है। वैसे ही हे भगवान् ! तू भी सबको फल देने वाला है, तू किसी के बंधन में नहीं है।

भगवान् को कल्पवृक्ष कह देना सरल है मगर इस बात की संगति बैठाना उतना सरल नहीं है। यदि परमात्मा कल्पवृक्ष है तो कई लोग अन्न वस्त्र के लिए क्यों तरस रहे हैं ? और यदि कोई अपनी मूर्खता से अपने लिए विष की चाहना करता है तो क्या परमात्मा विष भी प्रदान करता है ? हां, यदि कोई विष की चाहना करता है तो उसे विष भी मिलना चाहिये। जो मुक्ति की कामना करे उसे मुक्ति और जो सांसारिक भोगों की कामना करे उसे भोग सामग्री मिलनी चाहिये। तब उसके लिए कल्प वृक्ष की उपमा ठीक बैठ सकती है।

इसका उत्तर यह है कि कल्पवृक्ष जड़ है और परमात्मा ज्ञानधन है। जड़ को हिताहित सोचने का ज्ञान नहीं होता। किन्तु चेतन परमात्मा यह जानता है कि जीव के लिए वास्तविक हितकारी क्या वस्तु है। कल्पवृक्ष जड़ होने से अहितकारी वस्तु भी दे सकता है। किन्तु ज्ञानधन प्रभु अनिष्टकारी पदार्थ कैसे प्रदान कर सकता है। उदाहरणार्थ, माता-पिता पुत्र को सब कुछ देते हैं किन्तु यदि कोई पुत्र अपनी ना समझी से विष मांगे तो क्या वे देंगे ? पिता देने वाला है। किन्तु अपने पितृपक्ष को तिलांजली देकर अनिष्ट वस्तु नहीं देता। इसी प्रकार परमात्मा भी सब कुछ देने वाला है मगर ज्ञान पूर्वक जो कामना करता है उसकी मनोवांछा सफल होती है। जो भूखों मरते हैं वे अपने आलस्य और अज्ञान के कारण मरते हैं।

अब एक और प्रश्न खड़ा होता है कि क्या सचमुच परमात्मा कुछ देता है ? हां, परमात्मा प्रार्थी की मनोकामना पूरी करता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। यदि परमात्मा कुछ न देता होता तो भक्त लोग उसकी प्रार्थना [illegible] स्तुति में कहा गया है–

प्राप्ति) और उत्तम समाधि प्रदान करो। यदि परमात्मा कुछ देता न होता तो इस स्तुति में आरोग्य आदि की मांग कैसे की गई है ? वह देता है इसीलिए मांग की गई है।

परमात्मा सब कुछ देता है किन्तु निमित्त रूप बनकर देता है। उपादान रूप बनकर नहीं देता। उपादान उसी का काम आता है जिसे कामना है। जिसका उपादान ठीक है उसे वस्तु मिल जाती है। अतः परमात्मा से वांछित पदार्थ प्राप्त करने वालों को अपना उपादान ठीक करना चाहिये। अपनी आत्मा में उसके लायक तैयारी होनी चाहिये तभी परमात्मा देता है। आत्मा में जो शक्ति सोई हुई है उसे जगाने के लिए परमात्मा प्रार्थना की सहायता ली जाती है। किसी कार्य की सिद्धि न केवल उपादान कारण से होती है और न निमित्त कारण से। दोनों कारणों का योग मिलने पर सिद्धि होती है। दृष्टान्त के तौर पर समझियेगा कि आटा रखा हुआ है किन्तु रोटी तब तक नहीं बन सकती जब तक कि इतर साधनों का संयोग न हो जाय। आटा अपने आप रोटी नहीं बन जाता। उसके लिए कोई बनाने वाला होना चाहिये। आटा हो, साधन हो और बनाने वाला हो तब रोटी बनती है। इसका अर्थ यह हुआ कि कार्य की सिद्धि के लिए आटा समान उपादान हो, चूल्हा तथा बेलन चकला आदि की तरह साधन हों और रोटी बनाने वाली बाई के समान कर्त्ता मौजूद हो तब कार्य बनता है। यदि जीव स्वयं प्रयत्न करता है तो परमात्मा उसमें निमित्त बन जाता है। जिस वक्त जिस कारण का वर्णन किया जाता है उस वक्त उस पर भार दिया जाता है। इसका अर्थ यह नहीं होता कि दूसरे कारणों की उपेक्षा है। इस वक्त भक्त परमात्मा की प्रार्थना कर रहा है।

भी हमारे अनजान में हमारे विकारों को मिटाती है और हमें निर्विकार बना देती है। उपमा देने के लिए अन्य वस्तु मौंजूद न थी अतः कल्पवृक्ष की उपमा दी गई है।

परमात्मा की प्रार्थना से सब कुछ सिद्ध होता है। किन्तु प्रार्थना करने के लिए वीरता की जरूरत है। किस प्रकार की वीरता आवश्यक है इसके लिए कामदेव श्रावक के जीवन पर दृष्टि डालिये। कामदेव पर अनेक आपत्तियां और विघ्न उपस्थित हुए किन्तु उसने धर्म नहीं छोड़ा। वह सोच सकता था कि धर्म छोड देने पर सारे विघ्न और दुःख मिट जायेंगे किन्तु उसने ऐसे कायर विचारों को मन में स्थान नहीं दिया। उसने इस अवसर को अपनी परीक्षा का समय माना। यह देव यदि कष्ट देकर मेरी परीक्षा न लेता तो मैं धर्म पर दृढ हूं या नहीं इसका क्या पता लगता। जो परीक्षार्थी वर्ष भर तैयारी करता है, वह यदि परीक्षा के ऐन मौके पर परीक्षक को या प्रश्नों को देखकर घबडा जाये तो वह कैसे उत्तीर्ण हो सकता है? कामदेव बेधड़क होकर परीक्षा के लिए तैयार है।

जब देव उसके शरीर के टुकड़े टुकड़े कर डालने की बात कहता है तब कामदेव यह सोचता है कि शरीर तो विनाश होने के स्वभाव वाला है ही, एक दिन अवश्य छूट जाने वाला है। उसके यदि टुकडे कर डाले जायें तो इसमें मुझे कुछ डर नहीं है। मेरी अविनाशी आत्मा के टुकड़े न होने चाहियें। आत्मा के टुकड़े करने में इन्द्र भी समर्थ नहीं है। यदि मैं धर्म से विचलित हो जाऊ तो मैं स्वयं अपनी आत्मा का हनन करता हूं। इसलिए शरीर के नाश होने से न डरकर आत्मा को भय के भूत से सुरक्षित रखूं, यही मेरे लिए परम कर्त्तव्य है।' इस प्रकार विचार कर कामदेव धर्म पर दृढ़ रहा। जरा भी विचलित न हुआ।

इस कथा को इसी रूप में देखना चाहिये। किन्तु लोगों को धर्म की बातों पर बहुत कम विश्वास होता है अतः अनेक प्रकार के संदेह पैदा करते हैं। जैसे, वह देव सात आठ ताड वृक्ष जितना ऊंचा था और पौषधशाला इतनी ऊंची न थी। फिर वह देव पौषधशाला में खड़ा किस प्रकार रहा होगा। शंका करने वाले इस बात को भूल जाते हैं कि कामदेव की परीक्षा लेने वाला देव था, साधारण मनुष्य न था। देव मे कितनी शक्ति होती है इसका भगवती सूत्र में जिक्र है। एक मनुष्य अपनी टांग ऊपर उठाकर नीचे रखे उतनी देर में देव, मनुष्य का सिर काटकर उसका चूरा चूरा करके एक एक परमाणु उड़ाकर [illegible] उन परमाणुओं को संघट कर यथावस्थित सिर को जोड़ सकता है।

इसलिए खडा रहने में कोई बाधा नहीं है। जिसे दैविक शक्ति मे ही विश्वास न हो उसका समाधान करना कठिन है। जिसे शास्त्रों पर विश्वास है उसके मन का समाधान हो जाता है। देव अपनी शक्ति से छोटा बडा आडा टेढ़ा कैसा भी रूप बना सकता है।

इस कथा का उद्देश्य धर्म पर किस हद तक दृढ़ता रखना यह बताना है। आप लोग मन से भूत की कल्पना करके उससे भी डर जाते हैं। किन्तु कामदेव के सामने ऐसा पिशाच आया जिसके रूप का वर्णन सुनकर भी कंपकंपी छूट सकती है फिर भी वह निडर रहा और धर्म से चलित नहीं हुआ। इस कथा का उद्देश्य धर्म पर दृढ़ रहने का आदर्श पूर्ण पाठ पढाना मात्र है। इस कथा को इसी दृष्टि से देखना चाहिये और किसी प्रकार का संदेह न करना चाहिये। संदेह किया जाता है अतः इस विषय में कुछ और कहता हूं।

आजकल मकानों में खुली जगह बहुत कम रखी जाती है। पूर्व काल में मकान में चौक बहुत रखा जाता था। पुराने ढांचे के मकानो में अब भी चौक देखा जाता है। यदि वह पिशाच खुली जगह में खडा रहा हो तो सात आठ ताड जितना शरीर क्या इससे भी कितना ही अधिक ऊंचा क्यों न हो, समा सकता है। खुला हुआ चौक पौषधशाला के अहाते मे होने से पौषधशाला ही कहा जायगा। इसी प्रकार उस देव ने खुली जगह मे हाथी का रूप बनाकर सूड से कामदेव को खींचकर ऊपर उछाला हो तो क्या यह न कहा जायेगा कि हाथी ने पौषधशाला में कामदेव को ऊपर उठाकर उछाला था। यह शंका भी निर्मूल है कि शरीर के टुकडे कर डालने पर कामदेव जिन्दा कैसे रहा होगा। कारण कि देव शक्ति का भगवती सूत्र प्रतिपादित स्वरूप पहले बताया जा चुका है। आजकल के डाक्टर भी सिर की खोपडी उतार कर उसका ऑपरेशन करके वापस जोड देते हैं फिर भी मनुष्य जिन्दा रह जाता है। ऐसा सुनने मे आया है तो भला देव शक्ति से शरीर के टुकडे होकर पुनः जुड जाना और जिन्दा रह जाना कौन बडी बात है।

डाले गये। मगर वीर कामदेव धर्म पर दृढ रहा।

वर्धमानजी सेठ कहते थे कि हम कलकत्ता में सिनेमा देखने गये। प्रवेश करते ही ऐसा मालूम हुआ कि कोई स्त्री गायन कर रही है। मगर निकट जाने पर मालूम हुआ कि फोटो बोल रहा है। इसमें विचारणीय बात है कि क्या फोटो बोलता है या उसके पीछे रही हुई कोई दूसरी शक्ति बोलती है ? फोनोग्राफी की चूडी बोलती है या उसके पीछे रही हुई कोई दूसरी शक्ति बोलती है ? वस्तुतः ध्वनि का अनुकरण संग्रहित किया हुआ रहता है जो वैसी ही आवाज पुनः पुनः निकाला करता है। इसी प्रकार हाथी या सांप नहीं बोले थे। किन्तु उनके पीछे रही हुई देवी शक्ति बोली थी।

अब यह शंका और बच गई है कि कामदेव बड़ा सम्पन्न व्यक्ति था। उसके अनेक नौकर चाकर थे। वे यह कोलाहल सुनकर उसकी रक्षा या सहायता करने क्यों नहीं आये ? यह शंका डरपोक वृत्ति के कारण पैदा होती है। आज कल लोग दूसरों के संरक्षण में रहते हैं और अत्यन्त भीरु बन चुके हैं। अतः उस जमाने के लोगों के लिए भी वैसी ही कल्पना करते हैं। मगर उन्हें ध्यान में रखना चाहिये कि आज की तरह पहले के लोग डरपोक न होते थे। जो वीर होते हैं वे दूसरों की सहायता नहीं लिया करते। कामदेव स्वयं वीर था और महावीर भगवान् का अनुयायी था। जिसके आदर्श भगवान् महावीर ने इन्द्र की सहायता को भी ठुकरा दिया उनका चेला नौकरों की सहायता लेना कैसे पसंद करता ?

रघुवंश का वर्णन करते हुए कवि कालीदास ने बताया है कि दिलीप राजा स्वयं ही गाय की निगरानी करने जाता था। क्या उसके नौकर चाकर न थे जो स्वयं वह जाता था ? किन्तु

स्ववीर्यगुप्तः मनुप्रसूतिः

वीर लोग अपने ही पराक्रम से सुरक्षित रहते हैं। दूसरों की मदद लेना उन्हें अच्छा नहीं लगता यही कारण है कि नौकरों की मदद की कामदेव ने इच्छा तक नहीं की। दूसरी बात उस जमाने के लोग एकान्त में पोषधशाला में बैठकर धर्म जागरण करते थे, जहां संसार का कोलाहल सुनाई नहीं पड़ता

नहीं है।

युद्ध में जाते वक्त योद्धा यह नहीं सोचा करता कि मैं भाग कर आऊंगा तो कहां रहूंगा और कहां छिपूंगा ? साधु बनने वाला यह नहीं सोचता कि यदि साधुपना न पला तो कैसे गुजारा करूंगा। वह तो कृतसंकल्प होकर कार्यारम्भ करता है। वीरों की ऐसी कायर कल्पना नहीं हुआ करती। मतलब कि कामदेव की पौषधशाला एकांत स्थान में रही होगी। जहां के शब्द सुनना संभव न रहा होगा और इसीलिए नौकर दौड़कर न आये होंगे। नौकरों के आने पर भी कामदेव किसी की सहायता स्वीकार करने वाला कहां था।

अब यह प्रश्न खड़ा होता है कि महाराज ! आपने शुरू में प्रार्थना करते हुए बताया है कि भगवान् कामधेनु के समान हैं और सब के कष्ट मिटाने वाले हैं। फिर कामदेव तो भगवान् का बड़ा भक्त था। भगवान् ने उसकी रक्षा क्यों नहीं की ? इसका उत्तर यह है कि कामदेव ने अपनी रक्षा की चाहना कब की थी। उसने मन में तनिक भी यह न सोचा कि हे प्रभो ! इस कष्ट से मुझे बचा। वह तो अपने आत्मिक बल से आये हुए संकट को सहर्ष सहन कर रहा था। उसने उस कष्ट को कष्ट ही न माना था। साधारण लोग अपने मानस से महापुरुषों के मानस की तुलना करते हैं और भूल खा जाते हैं। महापुरुष आपत्तियों से कुश्ती करते हैं। इसमें उन्हें बडा अपूर्व आनन्द आता है। अंत में कामदेव की विजय हुई। कष्ट देते देते देव हार गया। उसका प्रयत्न थक गया। उसने क्षमा मांगी और उनका गुलाम बन गया। सच है, जो धर्म पर दृढ रहता है देवता भी उसकी सेवा करते हैं।

आप लोग भी यदि धर्म पर दृढ रहेंगे तो देवगण आपकी सेवा मे उपस्थित रह सकते हैं। मगर आप लोग बनिये ठहरे। आप नफे का सौदा करने वाले हैं। जहां एक रुपये के सत्रह आने होते हों वहां आप दिमाग लगाते है। किन्तु धर्म का मार्ग बडा विकट है। वह ग्रहण करने का मार्ग नही है किन्तु त्याग करने का मार्ग है। बनियावृत्ति से धर्माराधन नही हो सकता। कामना मे लगे हुए मनुष्य ईश्वर भक्ति या धर्म सेवा नही कर सकते। कामना करने से कामना पूरी नही होती और कामना न करने की क्रिया का फल व्यर्थ नहीं

ढता ने उसका क्रोध शांत कर दिया और वापस देव बना दिया। धर्म में इतनी
ाक्ति है। फिर भी आप लोग संसार की तुच्छ वासनाओं की पूर्ति के लिए
र्म करणी बेच देने पर उतारू हो जाते हो, यह कितनी गैर समझ है। भोले
ोग ऐसी प्रार्थना करते हैं–

शांतिनाथ सोलमा, लाडू देवे गोल मा।
कृपा करे तो कंसार का, दया करे तो दाल का।
ले रे मूंडा लट, उतर जाय गट।।

इसी प्रकार लोग अपनी रक्षा के लिए 'वज्रपिंजर स्तोत्र' आदि भी
पते हैं। संसार के मोहजाल में फंसकर जैसे छोटा बालक मिठाई के लोभ
ा अपना बहुमूल्य जेवर उतार कर दे देता है, वैसे ही भोले लोग उत्कृष्ट
र्म करणी करके भी उसके बदले में धन स्त्री पुत्र आदि की तुच्छ कामना
रते हैं। यह बाल बुद्धि ही कही जायगी। पंडित जन ऐसा नहीं कर सकते।
ीतलनाथ की प्रार्थना संसार की तुच्छ ऋद्धि प्राप्त करने की दृष्टि से न
रके अपनी आत्मा में रहे हुए विकारों को दूर करने की दृष्टि से करोगे तो
ल्याण है।

आप कहेंगे कि आज कल पंचम आरा है। धर्म में दृढ रहना कठिन
ै। पद पद पर विघ्न आते हैं आदि। किन्तु यदि विचार पूर्वक सोचेंगे तो ज्ञात
ोगा कि अधिकांश विघ्न या दुःख अपने मन की निर्बलता में से ही पैदा होते
ैं। यदि मनुष्य स्वयं वीर है तो विघ्न दुःख देने के बजाय सहायकर्ता बन जाते
ैं। कामदेव का उदाहरण आपके सामने है। भगवान् वर्धमान का नाम देवों
ने महावीर क्यों रखा था? उपसर्ग और परिषह सहन करने के कारण ही वे
महावीर कहलाये।

आप लोगों को डोरे गंडे पर विश्वास है। मगर धर्म करणी के फल
र उतना विश्वास नहीं होता, यह खेद की बात है। धर्म में बड़ी शक्ति है।
ाहे कितनी ही बाधायें आयें भगवान् का शासन इक्कीस हजार वर्ष तक
लेगा। मगर आपका कल्याण दृढता धारण करने से ही होगा। दृढता
िश्वास से पैदा होती है। इसलिए भगवान् और धर्म पर विश्वास रखो।
्रतिकार की शक्ति होते हुए कष्ट सहन करना बहादुरी है।

गदा पर पडा और अर्जुन का गांडीव पर वे कहने लगे, हमारे देखते हमारी स्त्री की लाज जा रही है ओर हम ताकते रहें। हमारी वीरता किस वक्त काम आयेगी ! किन्तु उसी वक्त युधिष्ठर बोले कि भीम ! तुम्हारी गदा मुझ पर चलाओ और अर्जुन ! तुम्हारा गांडीव मुझ पर तानो। इस अनर्थ का मैं मूल हूं। मैंने जुआ खेल कर यह विषम परिस्थिति उत्पन्न की है। मैंने ही राज्य और द्रौपदी को दांव पर रख दिया था और हार गया। अतः दण्ड का पात्र मैं हूं। मुझे दण्ड दो।

यह हृदय की बात है। हृदय की आवाज ऐसी ही हुआ करती है। इसे आप युधिष्ठिर की वीरता कहेंगे या कायरता ? आज तो इसे कायरता ही कहा जाता है। मगर युधिष्ठर को कायर कहने की कौन धृष्टता करेगा ? वे संसार प्रसिद्ध बहादुर माने जाते हैं। उनमें शक्ति थी, किन्तु सत्य के खातिर उसका प्रयोग नहीं किया। युधिष्ठर का कथन सुनकर भीम और अर्जुन बैठ गये। अपने बडे भाई का ये कितना आदर रखते थे। इस कठिन संकट के प्रसंग पर वाद विवाद में न उतर कर आज्ञाकारिता का उत्कृष्ट परिचय दिया। यह साधारण बात नहीं है। अपने हृदय के आवेग को रोकना महान् हृदय का ही काम है। उन्हें अपने बड़े भाई पर पूर्ण विश्वास था। भीम और अर्जुन ने अपने बडे भाई पर विश्वास रखा। क्या आप लोग धर्म पर विश्वास रख सकते है ? धर्म हमारा बडा भाई है।

जब भीम और अर्जुन निष्क्रिय होकर बैठ गये तब द्रौपदी ने उन पर अनेक तीक्ष्ण वाग्बाण छोडे फिर भी वे टस से मस न हुए। अपने भाई के आज्ञाकारी बने रहे। अत मे द्रौपदी को ध्यान आया कि मैं भूल कर रही हूं। मै अपने पति और भीष्म आदि श्वसुर की सहायता की भिक्षा माग रही हू इसमें मेरा अभिमान काम कर रहा है। यह सारा कौटुम्बिक या भौतिक बल व्यर्थ है। मुझे परमात्मा का बल प्राप्त करना चाहिये। इस स्थूल बल को छोडकर निर्बल बनना चाहिये। निर्बल का अर्थ कायर बनना नही, किन्तु अभिमान के बल को त्याग कर अन्तर्बल परमात्मबल की प्राप्ति करना है, इस बल का

दूसरों से रक्षण की आकांक्षा की और ये मांस के लोभी कुत्ते मेरा शरीर चाहते हैं तो लो मैं अपना शरीर ही त्यागती हूं और अन्तर्यामी की शरण में जाती हूं।'

द्रुपद सुता निर्बल भई ता दिन गहि लाये निज धाम।
दुःशासन की भुजा थकित भई बसन रूप भये श्याम।। सुनेरी.।।

द्रोपदी के द्वारा प्रभुशरण स्वीकारते ही ईश्वरीय शक्ति प्रकट हो गई। दुःशासन की भुजायें उसका चीर हरण करते करते थक गईं, मगर वह नग्न न हुई।

अब आप लोग विचार करिये कि कौनसा बल बडा है। धन, कुटुम्ब और शरीर का बल या आत्मिक बल ! अन्त में हाथ में तलवार लेकर धृतराष्ट्र आये। वे कहने लगे कि यह मेरे कुल का कलंक है और वंश नाशक है, दुःशासन भाग गया। धृतराष्ट्र ने द्रौपदी से अपने पुत्रों को क्षमा करने की प्रार्थना की और इच्छित वरदान मांगने की बात कही। द्रौपदी ने विचार किया कि मांगना कोई अच्छी बात नहीं है। किन्तु ये वृद्ध हैं और इनका सत्कार करना आवश्यक है, इनकी बात टालना अच्छा नहीं, अतः कुछ मांगना चाहिये। उसने धृतराष्ट्र से कहा कि मुझे और कुछ नहीं चाहिये इतना चाहती हूं कि मैं और मेरे पति स्वतंत्र हो जावें। हमारी परतंत्रता मिट जानी चाहिये। धृतराष्ट्र ने कहा तथास्तु। तुम और तुम्हारे पति स्वतंत्र हैं और कुछ मांगो। मगर द्रौपदी ने कहा अब कुछ नहीं चाहिये। मेरे पति स्वतंत्र होकर सब कुछ कर सकते हैं।

आज कल लोग पैसों के गुलाम बने हुए हैं। उन्हें धन जितना प्यारा है, स्वतंत्रता उतनी प्यारी नहीं। गुलाम लोग स्वतंत्रता का मूल्यांकन नहीं कर सकते। उनको यदि कुछ मांगने के लिए कहा जाये तो वे स्वतंत्रता न मांगकर धन दौलत पसन्द करेंगे। यह गुलामी की निशानी है।

अन्त में धर्मराज युधिष्ठिर की विजय हुई, यह सर्वविदित है। जो धर्म पर आस्था रखता है उसकी सदा विजय होती है, यह निश्चित बात है। आप श्रोताजन भी यदि धर्म पर विश्वास रखेंगे तो आपका कल्याण है। इतना भाग कहा, जिसे हृदयंगम करना आपका कर्तव्य है।

कन्या और पुत्र का समानाधिकार

श्रेयांस जिनंद सुमर रे।

प्रार्थना—यह ग्यारहवें तीर्थंकर भगवान् श्री श्रेयांसनाथ की प्रार्थना है। इस प्रार्थना में भक्त कवि, जगत् के जीवों को मोह की निद्रा त्यागकर ईश्वर भजन की प्रेरणा प्रदान करता है। भक्त कहता है कि हे प्राणियों ! तुम्हे अपने आप का भान नहीं है, तुम अपने को नहीं पहचानते हो अतः मोह नीद में सोये हुए हो, मुझे अपना भान है। मै जानता हूं कि मै कौन हू, मेरा खरा स्वरूप क्या है, अतः मै सदा जाग्रत रहता हूं। तुम को भी प्रेरणा करता हू कि भाई जागो। कब तक इस गहरी नीद में सोये रहोगे। जागकर परमात्मा का ध्यान करो, स्मरण करो यह सुन्दर सहयोग मिला हुआ है। मनुष्य जन्म और सद् बुद्धि प्राप्त हुई है।

चेतन जान कल्याण करन को आन मिल्यो अवसर रे।
शास्त्र प्रमाण पिछान प्रभु—गुण मन चंचल थिर रे।।

'कैसे करू और क्या करूं' इस उधेड बुन को त्याग दे। स्थिर चित्त होकर प्रभु का भजन कर। शास्त्र—आगम को प्रमाण भूत मानकर उसने जैसा मार्ग बताया है तदनुसार आचरण कर। तेरी छोटी बुद्धि हर बात की तह तक नही पहुच सकती तो शास्त्र को प्रमाण मानकर उनमें वर्णित महापुरुषो की चर्या के अनुसार तू भी आचरण कर।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन.।

शास्त्र स्वयं प्रमाण हैं। उसके लिए किसी दूसरे प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। आजकल लोग अपनी बुद्धि से शास्त्र को तौलने लगते हैं। अपनी बुद्धि के प्रमाण से शास्त्र को स्वीकार करते हैं। किन्तु यह नहीं देखते कि शास्त्र महाज्ञानियों के द्वारा बनाये हुए हैं। तुम्हारी छोटी सी बुद्धि उनके सामने समुद्र में बिन्दु के समान है। ज्ञानियों ने अपने ज्ञान और अनुभव से हर बात को तौलकर शास्त्र में रखी है। ज्ञान और क्रिया से जो बात ठीक सिद्ध है वही शास्त्र में प्रतिपादित है। कदाचित् कोई कहे कि यदि शास्त्र प्रतिपादित बातें सत्य हैं, तो उनमे किसी किसी को भ्रान्ति क्यों पैदा होती है ? भ्राति का कारण समझने वाले की बुद्धि में रहा हुआ है। मनुष्य अपनी अपूर्णता के कारण अभ्रान्ति के स्थान में भ्रांति पैदा कर लेता है। यदि शास्त्र की किसी बात में संदेह पैदा हो तो भी यह वीतराग की वाणी है ऐसा मानकर उस पर विश्वारा रखोगे तो आपको लाभ ही होगा। यदि शास्त्रकथित किसी बात में विकार मालूम दे तो उरो वीतराग वाणी नहीं मानना चाहिये। किन्तु निर्विकारी बात को मानने में तनिक भी देरी न करनी चाहिये। यह सुन्दर अवरार मिला है। इराका सदुपयोग करो। मानव भव कितनी कठिनाई रो प्राप्त हुआ है, इरा विपग में महावीर भगवान् ने गोतम रो कहा है—

> वणस्साइ कायमइगओ, उक्कोरां जीवों रांवरो।
> कालमणंतं दुरंतयं, रामयं गोयम! मा पमायए।।

हे गोतम ! संसार की स्थिति बड़ी विकट है। यह आत्मा उस वनस्पति काय में भी रह आया है जिसका अन्त आना महाकठिन है। उसमें अनन्त काल बिताकर अनेक योनियों में होता हुआ यह मानव शरीर प्राप्त

स्वामी। कहा है–

जीव नहीं पुग्गली नैव पुग्गल कदा, पोग्गलाधार नहीं तासरंगी।

ऐसी दशा में पुद्गलों की चाहना मिटा देना क्या कठिन है। यदि पुद्गल चाह मिटाना असंभव कार्य होता तो भगवान् ऐसी चाह मिटाने का कभी उपदेश न देते। जीव ने अपने अज्ञान के कारण इस कार्य को कठिन मान रखा है। जैसे कोई मनुष्य अपनी अज्ञानता के कारण विषधर सर्प को पुष्प की माला मान लेता है या सीप को चांदी मानकर पकड़े रहता है। यदि कोई हितैषी उसे समझाता है कि अरे यह तो विषधर सर्प है। यदि काट खायेगा तो तेरा जीवन नष्ट हो जायगा। इसको छोड़ दे। और जिसे तू चांदी मानकर बोझा ढोये हुए है वह चांदी नहीं किन्तु सीप है। इसे छोड़ दे। किन्तु अपने अज्ञान के कारण वह मूर्ख हितैषी मित्र की बात नहीं मानता और अहितकर आचरण करता है। वैसे ही अज्ञानता के कारण संसार में मनुष्य, स्त्री पुत्र धन वैभव आदि को अपना समझता है और उनमें चिपटा रहता है। परमज्ञानियों के उपदेश पर ध्यान नहीं देता। वह समझता है कि मेरे सारे कार्य पुद्गलों से ही चलते हैं। खाना पीना पहनना ओढ़ना उपवास करना आदि सारे कार्य पुद्गलों से होते हैं। उनको कैसे छोड़ा जा सकता है। जव तक समझ में अंतर न पडे तव तक छोड़ना असंभव है। जब मनुष्य समझ जाये कि अहो ! यह तो विषधर है, तव क्या एक क्षण के लिए भी वह उसे छोडने में रुकेगा ? नहीं। इसी प्रकार जव जीव को विवेक हो जाता है तब पुद्गल चाह मिटाना सवसे सरल काम है। पुद्गलों का उपयोग करना दूसरी बात है और पुद्गलों की चाह करना दूसरी। किसी वस्तु की आसक्ति बंधन का कारण है।

सांप को छोडकर मनुष्य बड़ा प्रसन्न होता है कि अच्छा हुआ जो मैंने उसे छोड दिया, नही तो काट खाता। छोड़ने का उसे अफसोस नहीं होता। कारण कि अब उसको सांप का वास्तविक ज्ञान हो गया है। इसी प्रकार ज्ञानीजनों को अपनी छोड़ी हुई ऋद्धि सिद्धि के लिए दुःख नहीं होता। वल्कि वे यह विचार करते है कि जो हमारी वस्तु न थी उसे अपनी मानकर इतने काल तक वड़े दुःख उठाये। अब इससे छुटकारा हो गया है अतः निज आनन्द और निज गुण मे विचरण करने का अच्छा अवसर हाथ लगा है। सांप का डंक एक जीवन बिगाडता है किन्तु पुद्गलो का डंक अनेक जीवन बिगाडता है। इस प्रकार विचार कर पुद्गल चाह मिटाकर प्रभु का भजन करो।

क्या स्वीकार किया। आपको किसने भरमा दिया था। इस पर मुनि ने कहा कि राजन् ! मुझे किसी ने नहीं भरमाया। मेरी आत्मा के भीतर से ही यह आवाज आई कि ये बाह्य पदार्थ तेरे नहीं हैं। तू इनको अपना मानकर भूल कर रहा है। मेरी आत्मा ने संसार के पदार्थों का सच्चा रूप जानकर, उन्हें त्यागा है। जब राजा ने यह पूछा कि मुनिवर ! आपने संसार का सच्चा रूप किस प्रकार जाना। तब मुनि ने अपनी पूर्वावस्था का सारा हाल सुनाकर साधु बनने का कारण समझाया। यहां अभी न तो राजा श्रेणिक हैं और न मुनि। अभी आप और मैं हूं। इस कथा का रस तभी मिल सकता है जब आप और मैं श्रेणिक और मुनि की तरह बनकर सुनें सुनावें। भाडे के टट्टू कहने वाले हों और भाड़े के टट्टू ही यदि सुनने वाले हों तो वह रस कैसे उत्पन्न हो सकता है, जो मूल कथा में भरा पड़ा है। महाज्ञानी ही इस कथा का रस प्रकट कर सकते हैं। किन्तु अभी तो यहां मैं हूं अतः मुझे ही अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार इसका विवरण कहना होगा।

अनाथी मुनि ने राजा से कहा कि मेरे शरीर में उज्ज्वल वेदना उत्पन्न हुई। लोग वेदना को अनिष्ट का कारण मानते हैं। किन्तु मेरे लिये वह वेदना संयम का कारण बन गई। मेरी वेदना को मिटाने के लिये मेरे कुटुम्बियों ने अनेक प्रकार के उपाय किये। मगर कोई उपाय कारगर न हुआ। अंत में मैं इस निर्णय पर पहुंचा कि बाहर के साधन मेरी वेदना मिटाने में सर्वथा असमर्थ हैं। राजन् यही मेरी अनाथता है।

भइणी ओ में महाराय! सगा जिट्ठ कणिट्ठगा।
न य दुक्खा विमोयन्ति एसा मज्झ अणाहया।।

राजन् मेरे छोटी और बड़ी बहिनें भी थीं। वैसे तो धर्म के नाते संसार की किसी भी स्त्री को बहन कहा जा सकता है। किन्तु मेरे सगी बहनें थीं। सहोदरा अर्थात् मेरी माता के उदर से जन्मी हुई बहनें थीं। वे मेरा रोग मिटाने के लिए जो कुछ कर सकती थीं, किया। किन्तु मेरा रोग न मिटा।

हुए देखे जाते हैं। बड़ी शक्ति से जो नहीं बन पाता वह छोटी से हो जाता है। उदाहरण के तौर पर समझियेगा कि सुनार सोने चांदी की झलाई का काम सूर्य के प्रकाश से नहीं कर सकता। उसके लिए दीपक का प्रकाश उपयोगी होता है। सूर्य का अधिक प्रकाश क्या काम का। इसी प्रकार कई स्त्रियां सूर्य के रहते हुए भी दीपक जलाकर उसे नमस्कार करती हैं। वे ऐसा क्यों करती है इसका कारण खोजने का अभी अवसर नहीं है किन्तु यह बात सत्य है कि संसार में बड़ी विचित्रता है। मेरी समझ के अनुसार संसार की विचित्रता बतलाने के लिए ही बहन का वर्णन किया जाना संभव है। विचित्रता के कारण ही संसार संसार कहलाता है।

तथा जैसा भाई का भाई से सम्बन्ध है वैसा ही बहन का भाई के साथ है। यदि संसार में भाई हों और बहनें न हों तो क्या संसार चल सकता है ? कदापि नहीं। फिर भी कई लोग इस महत्वपूर्ण मुद्दे पर विचार नहीं करते। और लडकी होने पर प्रसन्न होने के स्थान पर अप्रसन्न होते हैं। कई श्राविका नाम धराने वाली बाइयां भी लड़की होने पर जापे (सुवावड) में वह सामग्री नहीं खातीं जो लडका होने पर खाती हैं। कहती है, क्या करे लडका होता तो बादाम आदि खातीं। लड़की हुई है अतः खाने का मन नही होता। क्या इस प्रकार लडके लड़कियों मे भेदभाव करना उचित है ? जिनको आप अनार्यदेश वासी कहते हो वे यूरोपियन लोग भी लडके लडकियो मे पक्षपात नहीं करते तो क्या श्रावक नाम धराने वाले लोग ऐसा करेंगे ? यूरोपियन देशवासी लडके और लडकियो में भेद नहीं मानते हैं। वहा लडका न होने पर लडकी अपने पिता की सम्पत्ति की अधिकारिणी मानी जाती हैं। माता पिता के नाते भी यह अनुचित है कि अपनी संतान में भेदभाव रखा जाय। भेदभाव न होना चाहिये। समभाव होना चाहिये। पुत्र और पुत्री दोनों के होने से यह संसार रूपी गाडी चल रही है। संसार रूपी गाडी के ये दोनो पहिये हैं। बहिन को लेकर स्त्री जाति का महत्व बताना भी शास्त्रकार का उद्देश्य हो सकता है।

किसी की जरूरत नहीं है। भारत की आवादी बहुत बढ़ चुकी है अतः सतानोत्पत्ति करना इस वक्त उचित नहीं है। ऐसे लोगों से मैं पूछता हूं कि आवादी क्यों बढ़ गई ? क्या आसमान में से मनुष्य टपक पड़े ? ऐसा तो नहीं होता। तो फिर मानना पडेगा कि विषय वासना के सेवन से सन्तान वृद्धि होती है और आवादी बढ़ती है। यदि संतानोत्पत्ति रोकना है तो विषय वासना को रोकना चाहिये। विषय वासना तो नहीं छूटती और गर्भाशय कटवा डालना आदि जैसे कृत्रिम उपाय काम में लिए जाते हैं। यह कितना दुष्कर्म है। इस दुष्कर्म के विषय में इस विचार से दुःख होता है कि हे प्रभो ! पराधीन भारत की जनता किस प्रकार निर्वल बनाई जा रही है। इसका कितना पतन किया जा रहा है। जब तक स्त्री को संतति होती रहती है तब तक तो कम से कम संतान होने के कुछ मास पूर्व और पश्चात् ब्रह्मचर्य पालने का प्रसंग रहता है और मन या बेमन ब्रह्मचर्य का पालन करना पडता है। किन्तु जब बच्चादानी निकलवा दी जाती है तब अब्रह्मचर्य से रोकने के लिए क्या साधन बच जाता है ! स्त्री और पुरुष दोनों स्वच्छन्द बन जाते हैं। उनको किसी प्रकार का नियम नहीं रहता। हां, सन्तान के पालन पोषण की जिम्मेवारी से वे बच जाते हैं किन्तु अपना स्वास्थ्य और धर्म नष्ट करने से कैसे बचेंगे। संतति निरोध से विषय वासना कम हो जाती हो ऐसा नहीं देखा जाता। बल्कि विषय वासना की वृद्धि देखी जाती है। जिन स्त्रियों को संतान नहीं होती उनकी भोगेच्छा विषय वासना बढ़ी हुई रहती है, कम नहीं होती। संतति निरोध से भोगेच्छा बढ़ेगी और पानी की तरह वीर्य बहाया जायगा। इससे निर्बलता आयेगी और निर्बलता से अन्य अनेक दुर्गुण पैदा होंगे।

जिस प्रकार मोती की कीमत पानी से और हीरे की कीमत उसके तेज से है, उसी प्रकार पुरुष की कीमत उसके वीर्य से है। वीर्य से ही तीर्थंकरादि महापुरुष बने हैं और आपका शरीर भी वीर्य से ही पैदा हुआ है। अतः वीर्य नाश से बचना चाहिये। यदि संतति-निरोध करना है तो भोगेच्छा

वे मेरे सुख में सुखी और दुःख में दुःखी थीं। भाई का कर्त्तव्य है कि वह बहिन को कुछ देवे, उससे कुछ लेने की आशा न करे। उसे दुःखी न रहने दे, सुखी बनावे। उस वक्त यदि उनको कुछ जेवर दिये जाते तो भी वे खुश न होतीं। वे कहती थीं कि हम जेवर आदि के लिए बहनें नहीं बनी हैं किन्तु भाई के सुख दुःख में साथ देने के लिए बहनें बनी है। राजन्, उस वक्त मेरा कर्त्तव्य था कि मैं उनको सुखी करता। किन्तु मैं स्वयं दुःखी था अतः उनका दुःख न मिटा सका यह देखकर मुझे ज्ञान हुआ कि यह शरीर ही दुःख का कारण है। इसलिए इस शरीर से सदा के लिए छुटकारा पाने का प्रयत्न करना चाहिये। मैं स्वयं मेरा दुःख मिटा सकता हूं। दूसरे की कोई ताकत नहीं जो मेरे दुःख मिटा सके।

मुनि ने राजा से भी पूछा कि क्या तुम्हारी बहनें तुम्हारा दुःख मिटा सकती हैं ? यह सुनकर राजा विचार में पड गया कि बेचारी बहने किसी का दुःख कैसे मिटा सकती हैं। कोई दूसरा कुछ नहीं कर सकता। जो कुछ कर सकता है वह अपनी आत्मा ही अपने लिए कर सकती है।

सुदर्शन चरित्र— सुदर्शन की कथा कहते हुए कुछ विषय छूट गया है। दूसरी तरह से विवेचन कर दिया गया था। मैंने अभी तक जो कुछ कहा है उसमें एक उत्सव की बात कही है। किन्तु कथा देखने से ज्ञात हुआ कि दो उत्सव हुए थे और दोनों का इस कथा से सम्बन्ध है। अतः जहा से इस विषय में सुधार करने की जरूरत है, वहा से पुनः कथा कहता हू।

कपिला सुदर्शन की दृढता और महत्त्व समझ चुकी थी। वह जान गई कि यह पुरुष किसी के हाथ मे आने वाला नही हैं। कुछ दिन बाद इन्द्रोत्सव का समय आया। राजा ने प्रजा के लिए घोषणा करवाई कि सब लोग मेरे साथ नगर के बाहर उत्सव मनाने आवे। जिन लोगो को आमोद प्रमोद और उत्सव प्रिय होते हैं उनके लिए ऐसी घोषणा वरदान सिद्ध होती है। प्रकृति के स्वभावानुसार कार्य कराने मे अधिक प्रयत्न की आवश्यकता नही होती। प्रकृति विरुद्ध कार्य कराने मे अधिक जोर लगाना पडता है। पानी को नीचे की ओर ले जाने मे विशेष प्रयत्न की अपेक्षा नही रहती। किन्तु उसे ऊपर चढाने मे बड़े बड़े एन्जिनो की आवश्यकता होती है।

के समक्ष यह प्रतिज्ञा की थी कि वह किसी के सामने उस काण्ड का जिक्र न करेगी और सुदर्शन ने भी वचन दिया था कि वह भी इसे गुप्त रखेगा। किन्तु कपिला अपनी प्रतिज्ञा पर कायम न रह सकी और उसने सारा हाल रानी के सामने प्रकट कर दिया।

सुदर्शन का अब क्या कर्त्तव्य है इसका हम खयाल करें। कपिला अपनी बात पर कायम न रह सकी और उसने रानी के समक्ष सारा काण्ड कह सुनाया, क्या सुदर्शन भी कपिला की तरह उसकी बात प्रकट कर दे? सुदर्शन को अपनी प्रतिज्ञा पालनी चाहिये या नहीं? कई लोग यह कह कर अपना वचन पालने से छूटना चाहते हैं कि जब सामने वाला अपनी बात पर टिका न रहा तो हम क्यों अपनी बात पर दृढ रहें। किन्तु यह दलील पोची है। दूसरा वचन भंग करता है तो हमें भी करना चाहिये यह कहां का नियम है! ज्ञानी और सत्पुरुष अपना वचन नहीं तोड़ा करते। वे प्राण छोड़ना पसंद करते हैं किन्तु वचन छोडना नहीं चाहते। यदि सुदर्शन की तरह कपिला भी अपनी बात पर कायम रहती और किसी के सामने अपना आपसी काण्ड न कहती तो आगे घटने वाली अनर्थ परंपरा न घटती। प्रतिज्ञा पालन से बडा लाभ होता है।

कई लोग यह कहकर छूट जाना चाहते हैं कि हमने तो बात भर कही थी। किन्तु बात का बतगड बन जाता है इसका खयाल रखकर कोई बात कहना चाहिये। इसी बात को ध्यान में रखकर स्त्रीकथा राजकथा आदि को रोका गया है। धर्म कथा का जितना सहारा लिया जाय उतना अच्छा है।

कपिला ने कहा था कि सुदर्शन नपुंसक है, उसके पुत्र कैसे हो सकते हैं। इस पर अभया ने उत्तर दिया था कि यह तेरी भूल है। वह तुझे भ्रम में डालकर बच निकला है। उसके पांचों पुत्र ही इस बात की साक्षी हैं कि वह

पराभव करने में लगाते है। इस नियम के अनुसार कपिला अपने आपको न रोक सकी और दुष्टता करने लगी। उसने अभया रानी से कहना शुरू किया कि मैने सुदर्शन की बड़ी परीक्षा की है। वह बड़ा दृढ़ और अडिग पुरुष है सुरनारी भी उसे डिगाने में समर्थ नहीं हो सकती।

अभया कहने लगी– कपिला ! तू अपने मन के अनुसार दूसरों की शक्ति का माप करती है, यह तेरी भूल है। स्त्रियां क्या नहीं कर सकतीं। पुरुष लोग स्त्रियों के आंख के इशारे पर नाचते हैं। बडे बडे राजाओं को अपने आंख के इशारे से मौत के घाट पहुंचा सकती हैं। बेचारा सुदर्शन किस बाग की मूली है, बड़े बड़े योगी त्रिया चरित्र के सामने फैल हो गये हैं। कपिला अभया का जोश बढ़ाने लगी कि रानी जी ! अभिमान मत करो। मैं आपकी बात तब मानूंगी जब आप सुदर्शन को अपने काबू में कर दिखायेंगी।

अभया कहने लगी कि कपिला ! तू मेरे कारनामें देखती रहना। मैं किस प्रकार सुदर्शन को फांसती हूं और अपने काबू में करती हूं। मै यह प्रतिज्ञा करती हूं कि यदि मै सुदर्शन को अपने वश न कर सकी तो तेरे सामने अपना मुख न दिखाऊंगी।

कपिला और ताव देने लगी । मै ब्राह्मणी हू, ब्राह्मण ढीले ढाले होते है। और आप क्षत्रियाणी है, क्षत्रिय बड़े वीर और तेजस्वी होते है। आप अपनी प्रतिज्ञा किस प्रकार निभाती है यह मै देखना चाहती हू। आपकी प्रतिज्ञा पूरी होने पर मै आपको अपना गुरु मान लूंगी।

लोग झूठी प्रशंसा मे बहुत फूल जाते हैं। दूसरे लोग ऐसे चालाक रहते हैं जो व्यर्थ की प्रशंसा करके किसी सीधे सादे व्यक्ति से अनर्थ करवा डालते हैं। उसका फल उस मूर्ख को भोगना पडता है। अत: झूठी प्रशसा के चक्कर मे न फसना चाहिये। झूठी प्रशसा मे फसकर किसी का अहित किया तो अभया का सा काम गिना जायगा। चाहे साधु हो चाहे गृहस्थ, झूठी प्रशसा में फसकर दूसरो को गलत मार्ग मे न घसीटना चाहिये। हम साधु भी झूठी प्रशंसा मे फसकर आप लोगो को ठगने लगे तो हमारा घोर पतन है।

झूठी प्रशंसा मे फसकर अभयारानी ने सुदर्शन को वश करने की प्रतिज्ञा की है। यह सारी बात इन्द्रोत्सव के समय की है। कौमुदी महोत्सव के समय क्या हुआ तथा इन्द्रोत्सव और कौमुदी महोत्सव मे क्या अन्तर है यह यथावसर आगे बताया जायगा।

शत्रु को मित्र बनाने की कला

प्रणमूं वासु पूज्य जिन नायक! सदा सहायक तू मेरो।

प्रार्थना—यह बारहवें तीर्थकर वासुपूज्य स्वामी की प्रार्थना है। प्रार्थना मे प्रतिपादित सब भावों पर नजर डालने से अनेक पहलू सामने उपस्थित होते हैं। किन्तु उन सब पर प्रकाश डालना मेरी शक्ति के बाहर की बात है। जिस विषय का विचार मेरी बुद्धि हृदय और विवेक में अभी उपस्थित है, उस पर थोड़ा वक्तव्य है, जो आपके सामने रखता हूं।

परमात्मा की प्रार्थना परमात्मा में विलीन होने के लिए अनन्य भाव से की जाती है। यह आत्मा भय का मारा अनेक लोगों का आसरा लेता फिरता है। भटकते भटकते जब उसे कहीं सुरक्षित सहारा न मिलता तो वह इस परिणाम पर पहुंचता है कि जिसकी शरण में जाता हूं वह स्वयं भयभीत है। जो स्वय भयभीत है वह दूसरों को निर्भय कैसे रख सकता है ? भूखा व्यक्ति दूसरों को क्या खिला सकता है, और प्यासा दूसरों की क्या प्यास बुझायेगा। जो खुद अनाथ है वह दूसरों को क्या शरण देगा ? संसार के जिन जिन लोगों की शरन में मैं गया वे सब मुझे अनाथ ही मालूम हुए। अतः ऐसे व्यक्ति की शरन में जाऊं जो स्वय नाथ हो—निर्भय हो। इस प्रकार विचार कर भक्त कहता है

हैं या नहीं ? वैसे जवाब से कौन इन्कार करेगा कि मैं प्रभु शरण में नहीं जाना चाहता। किन्तु उसके साथ जो शर्त लगी हुई है उसे पूरा करना सरल काम नहीं है। अनन्य भाव प्राप्त करना संसार की झंझटों में फंसे हुए व्यवहारी व्यक्ति के लिए कठिन है। वह सोचता है कि यह मार्ग बडा विकट है। कहीं ऐसा न हो कि मैं बीच ही में अटक जाऊं। संसार के पदार्थ भी छूट जायं और परमात्मा भी न मिले ऐसे विचार आना साधारण बात है। किन्तु ज्ञानी जन कहते हैं कि जीव ! तू परमात्मा की शरण में जाने का एक बार पक्का निश्चय करले। फिर सारे विघ्न अपने आप नष्ट हो जायंगे। अनन्य भाव से शरण गहने पर विघ्नों का क्या काम है।

खल दल प्रबल दुष्ट अति दारुण जो चौतरफ करे घेरो।
तदपि कृपा तुम्हारी प्रभुजी अरियन होय प्रगटे चेरो।।

भक्त कहते हैं कि हे प्रभो ! हमें ज्ञानियों से तेरी महिमा सुनकर विश्वास होता है कि जो तेरी शरण गहता है वह निर्भय बन जाता है। तलवार लेकर मारने के लिए समक्ष उपस्थित शत्रु भी तेरा शरण लेने से मित्र बन जाता है। मौत के घाट उतारे जाने के वक्त तिनके का सहारा मिल जाय तो उसे भी जीव स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाता है। प्रभु का सहारा सदा तैयार है किन्तु अपनी अज्ञानता से जीव उसे भूल जाता है। और छोटे मोटे सहारे ढूंढता फिरता है। अन्य लोगों का सहारा लेने से शत्रु अधिक शत्रुता धारण करता है। किन्तु वीतराग भगवान् का सहारा लेने से शत्रु भी शत्रुता छोड कर मित्र भाव धारण कर लेता है। भक्षक, रक्षक बन जाता है।

श्रद्धालु लोग बिना तर्क वितर्क किये इस बात पर विश्वास कर लेंगे। किन्तु यह जमाना तो तर्कवाद का है। यह वैज्ञानिक युग है। इसमें हर बात तर्क पर कसी जाती है। यदि वह उसमें ठीक उतरे तब मानी जाती है। अतः इस विषय में थोडा और विचार किया जाता है।

क्या यह बात पूर्ण सत्य है कि परमात्मा की शरण में जाने से शत्रु भी मित्र बन जाते हैं ? यदि ऐसा है तब तो राजा लोगों को सेना रखने की आवश्यकता नहीं। देश पर किसी विरोधी राजा के आक्रमण करने पर परमात्मा का शरण ग्रहण करने से काम चल जायगा। आक्रमण कारी स्वयं मित्र बनकर सामने आ जायगा। कितना सस्ता सौदा है यह ! किन्तु बात ऐसी

नहीं है। यह तो कोरी कल्पना है कि शत्रु मित्र बन जाता है। इस उपदेश से न मालूम देश किस स्थिति में पहुंच जायगा। सारा संसार अंधा धुन्धी में फंस जायगा।

इस तर्क का समाधान यह है। परमात्मा की शरण का जो विचार किया जा रहा है वह आध्यात्मिक दृष्टि से किया जा रहा है। आध्यात्मिक विचार को भौतिक कार्य से तोलना अनुचित है। लोग भौतिक बात को देखते हैं। किन्तु हमारी आत्मा का भला कैसे हो, इस आध्यात्मिक तत्त्व को नहीं देखते। शत्रु और मित्र तुम्हारी वृत्ति में रहे हुए हैं। यदि परमात्मा की शरण लेकर, जिसे तुमने शत्रु मान रखा है, मित्र बना लोगे तो भौतिक युद्ध की आवश्यकता न पडेगी। आध्यात्मिक शत्रु है इसलिए भौतिक शत्रु भी है। यदि मन में रागद्वेष और लोभ मोह की भावना नहीं है तो बाहरी शत्रु कैसे टिक सकता है, वह मित्र बन जायगा ! हमारे स्वार्थ के कारण ही किसी को शत्रु या मित्र माना जाता है ! जब स्वार्थ ही न रहेगा तो शत्रु कैसे रह सकता है! लोग केवल भौतिक बात को देखते हैं आध्यात्मिक को नहीं ! यह चालबाजी है ! यह अनन्य भाव से प्रभुशरण जाना नहीं है ! अनन्य भाव से शरण जाने का अर्थ है पहले आध्यात्मिक शत्रुओं– काम क्रोध लोभ भय मोह आदि को मिटाओ ! फिर भौतिक शत्रु नहीं रह सकते ! एक भक्त कहता है–

ताही ते आयो शरण तिहारी।
काम क्रोध मद लोभ मोह रिपु, फिरत रैन दिन घेरी।
तिनही मिलत मन भयो कुपथ रत, फिरइ तिहारे हु फेरी।।

दबाकर भाग जायेंगे।

इस तरह आध्यात्मिक शत्रुओं को हटाने के लिए प्रभु की शरण ली जाती है। जब आध्यात्मिक शत्रु न रहेंगे तो बाहर के भौतिक शत्रु कैसे रह सकते हैं। आप लोग अपने लिए विचार करो कि आप काम क्रोध आदि को बढ़ाने के लिए प्रार्थना करते हो या घटाने के लिए ? ज्यादातर लोग काम क्रोधादि की वृद्धि के लिए भगवान् का आसरा लेते हैं। यह तो काम क्रोधादि की शरण जाना हुआ, न कि परमात्मा की शरण गहना। विषयवासना मन में रखकर प्रभु की शरण लेना प्रभु का अपमान करना है। यदि प्रभु से वास्तविक प्रेम है तब तो मन में से अन्य सब वासनाओं को निकाल कर शुद्ध अनन्य भाव से भगवान् को स्थान देना चाहिए। कहना मेरा काम है किन्तु उस पर अमल करना आपका काम है। मैं अमल करूंगा तो मुझे लाभ होगा और आप अमल करेंगे तो आपको। जिसका काम जो करता है तभी लाभ होता है। प्रभु भी उसी की मदद करता है जो अपनी मदद आप करता है। गीता में भी स्पष्ट कहा है कि 'उद्धरेदात्मनात्मानम्' आत्मा का आत्मा से उद्धार करो। दूसरा कोई किसी का उद्धार करने में समर्थ नहीं है। आत्मा ही आत्मा का शत्रु मित्र है।

ऊपर से लोग यह कहा करते हैं कि हम अंतरंग शत्रुओं का नाश करने के लिए ईश्वर की शरण ग्रहण करते हैं। किन्तु ईमानदारी के साथ विचार करेंगे तो उन्हें पता लगेगा कि भीतर ही भीतर वे अंतरंग शत्रुओं का पोषण कर रहे है। भीतर में अनेक कामनायें छिपी पड़ी हैं। मन के अनन्त पटों के भीतर सूक्ष्म वासनाएं और इच्छाएं दबी पड़ी हैं। कभी वे छिपी रहती हैं और कभी निमित्त मिलने पर विकराल रूप धारण करके सामने आकर खड़ी हो जाती है। अतः तहमन तहचित्त से इन भीतरी शत्रुओं को बाहर निकाल फेंकने का प्रयत्न होना चाहिये। हम शत्रुओं से बचना चाहेंगे तो परमात्मा भी हमारी मदद करेगा। जो व्यक्ति कुछ काम ही नहीं करता है तो उसका मित्र उसकी क्या सहायता करेगा और किस काम में करेगा। परमात्मा आपको काम क्रोध आदि से बचाने के लिए सदा तत्पर बैठा है। आप अपना स्वार्थ त्यागकर दूसरो का हित साधन में लग जाओ। परमात्मा आपकी मदद पर दौंडा आयेगा। यदि आप से यह उत्कृष्ट मार्ग न अपनाया जा सके तो मध्यम श्रेणी के पुरुष बनकर अपने स्वार्थ के साथ दूसरे का हित करो। यह तो मत करो कि अपने हित के लिए दूसरे की हानि करो।

आचरण उसके विपरीत देखा जाता है। एक मनुष्य ने अपने शरीर पर पांच वस्त्र लाद रखें है। कोट कुर्त्ता बनियान जाकेट आदि बड़ी चुस्ती से पहन रखे हैं। उनसे उसको गर्मी हो रही है, तकलीफ हो रही है फिर भी फैशन के लिये समझिये या रिवाज के लिए समझिये वस्त्र पहने हुए हैं। उधर एक दूसरा आदमी वस्त्र के अभाव में नंगे बदन फिर रहा है। ठंड से सिकुड़ रहा है। उसे वस्त्र की परम आवश्यकता है। क्या उस वस्त्रहीन व्यक्ति को देखकर व्यर्थ बोझा लादे हुए उस मनुष्य का चित्त अपना बोझा हल्का करके उसकी मदद करने का होता है ? ऐसा बहुत विरल देखा जाता है। पास में भरी हुई वस्त्र की पेटियों में दीमक भले लग जाय मगर वे वस्त्र जरूरत मंदों के उपयोग में न आ सकेंगे। इस प्रकार की भावना और आचरण वाले व्यक्ति क्या यह कह सकते है कि हम काम, क्रोधादि मिटाने के लिए प्रभु की शरण ग्रहण करते हे। यदि वे ऐसा कहते हैं तो अपने आप को ठगते हैं।

एक आदमी तीन दिन से भूखा है। दूसरा भोजन कर रहा है। उसके पास भोजन की प्रचुर सामग्री है। उसके खाने के उपरांत ऐसी बहुतसी सामग्री है जिसे रख छोड़ने से उसके खराब हो जाने की संभावना है। फिर भी वह जीमने वाला आदमी भूखे को भोजन नहीं देता है। क्या ऐसी हाल में उस बुभुक्षु की भावना उस पेट भरे के प्रति अच्छी रहेगी ? क्या उसको क्रोध न आवेगा। क्या उसके मन में यह प्रतिक्रिया न होगी कि राक्षस इतना लेकर बैठा है फिर भी मुझ भूखे को कुछ नहीं देता है ? इस प्रकार वह जीमने वाला उस भूखे का शत्रु बन जाता हे और भूखा भी मन में उसके लिए विरुद्ध विचारणा बांध लेता है। इस स्वार्थपरता ने शत्रु पैदा कर लिया। यदि जीमने वाला भूखे को देखकर प्रसन्न हो और उसे बड़े आदर ओर प्रेम से जिमाये तो वह उसका मित्र बन जाता हे। भगवान् ने देने वाले को दाता का पद प्रदान किया है और मांगने वाले को याचक का। याचक सदा दाता का ऋणी रहता हे और उसका उपकार स्वीकार करता है। यह शत्रु ओर मित्र बनाने का रास्ता है। जिसे जो अच्छा लगे वह करे।

है तब दूसरों को देने की बडी कठिनाई से हिम्मत होती है। किन्तु वे वस्त्र किसी के उपयोग लायक नहीं रह जाते। यह मनुष्य के मन की कितनी विडंबना है। इसी प्रकार मिठाई या अन्य खाद्य पदार्थ सड जाते हैं, उनमें बदबू या फूलन आ जाती है, जब वे खाने लायक नहीं रह जाते तब दूसरों को देने का मन होता है। यदि वे पदार्थ पहले ही दिये गये होते तो किसी की आत्मा उनसे तृप्त होती और उससे शुभ आशीर्वाद प्राप्त होता। किन्तु इतना उदार मन हो तब न ? इस प्रकार की विषमवृत्ति शत्रु पैदा करती है। स्वयं भूखे रहकर दूसरों को तृप्त न कर सको तो कम से कम अपने खा लेने के उपरान्त बचा हुआ अन्न तो दूसरों के लिए दे सकने का उदाहरण धारण करो।

इस संसार में ऐसे लोगों की भी नास्ति नहीं है जिन्होनें स्वयं भूखे रहकर दूसरों की आत्मा को शान्ति पहुंचाई है। पुराण में एक कथा है। एक चालीस दिनों से भूखे परिवार ने इकतालीसवें दिन भोजन मिलने पर भी स्वयं भूखे रहकर उससे अतिथि का सत्कार किया था। इतना न कर सको तो बढिया भोजन के बदले सादा भोजन बनाकर एक की जगह चार पेट पाला जा सकता है। मन में दूसरे की भलाई करने की वृत्ति होनी चाहिये। सादा भोजन करने से स्वयं भी अनेक बुराइयों से बचा जा सकता है। इससे अपनी भलाई भी साथ साथ हो जाती है। यह दुष्काल का समय है एक और अनेक लोग भूखों मर रहे हैं और दूसरी ओर जाति भोज के नाम पर माल उड़ाया जा रहा है। यह कैसे ठीक माना जा सकता है ? कदाचित् कोई कहे कि जाति भोजन तो होना चाहिये। उनसे मैं पूछता हूं कि क्या जाति वालों को सादा भोजन नहीं दिया जा सकता ? जाति को लड्डू देने की क्या जरूरत है।

जो लोग यह कहते हैं कि हम लड्डू लिखाकर लाये हैं अतः लड्डू खाते है और भूखों मरने वाले भूखों मरना लिखाकर लाये हैं अतः भूखों मरते है। जिसने पूर्वजन्म में जैसा बोया है वह वैसा पाता है। यह ठीक है लेकिन भूखों मरने वालो की जगह यदि आप होते तो माल उडाने वालों को क्या कहते। माना कि आप लड्डू लिखाकर लाये है और पुण्य से आपको लड्डू मिलते हैं किन्तु पुण्य से पुण्य बढाना है या घटाना है। ठाणांग सूत्र के नवमें ठाणे मे कहा है–

नव विहे पुण्णे पण्णत्ते तं जहा–अन्नपुन्ने पाण पन्ने लयणपन्ने आदि

'पुनातीति पुण्यम्' जो स्वयं को पवित्र बनाता है और जग का भी भला करता है वह पुण्य कहलाता है। उन सब बातों को नव बातों में संग्रहीत करके शास्त्रकार ने नव प्रकार का पुण्य बताया है। उनमें सबसे प्रथम अन्न पुन्ने है।

क्या अन्न पुण्य का मतलब ठूंस ठूंसकर खाना है ? अधिक खाना अन्न पुण्य नहीं है। किन्तु अन्न को व्यर्थ न जाने देकर दूसरे को देना अन्न पुण्य है। मनुष्य खाने में भी पुण्य उपार्जन कर सकता है। उदाहरण के लिए समझिये कि एक आदमी यह सोचता है कि मैं भारी भोजन करके शरीर की हानि न करूं। किन्तु शरीर निभाना है अतः हल्का भोजन करके निभा लूं। तथा जो बचत का भोजन है उसे किसी भूखे को देकर उसे शान्ति पहुंचाऊं।' तो ऐसा करने से वह पुण्य उपार्जन करता है। इस प्रकार अन्न से पुण्य कमाया जा सकता है। लेकिन जो मनुष्य दूसरों का ख्याल न करके खुद पेट भर लेता है वह पाप पैदा करता है। जो पुण्य लेकर आया है उसे क्या पाप नहीं लग सकता ? एक आदमी को सुनहरी हीरा जटित म्यान वाली तलवार मिल गई। यद्यपि यह तलवार पुण्य से मिली है किन्तु क्या उसका दुरुपयोग पाप बंध का कारण नहीं हो जाता ? अवश्य होता है। उस तलवार से मनुष्य अपने व दूसरों के बंधन भी काट सकता है और अपना तथा दूसरों का गला भी। इस प्रकार पुण्य से प्राप्त वस्तु द्वारा पाप भी हो सकता है। कहावत है कि 'आ पत्थर मेरे पैर पर गिर' अथवा 'आ बैल मुझे मार'। यदि दोनों बातें सचमुच बन जाय तो कैसा रहे। पत्थर से भलाई भी की जा सकती है और बुराई भी। पत्थर का उसमें कोई दोष नहीं होता। दोष तो प्रयोक्ता की बुद्धि में रहा हुआ है। पाप से पुण्य और पुण्य से पाप उत्पन्न किया जा सकता है।

आपको मुफ्त में जहर खाने को मिल जाय तो क्या आप खाना पसन्द करेंगे? वस्तु मुफ्त मिली है या कीमतन यह न देखो। मगर उससे आपको हानि होती है या लाभ, यह देखो।

जब वारनिश का रंग चला था तब के लिए यह कहा जाता है कि कम्पनी वाले मुफ्त में मकान रंग दिया करते थे और चाय वाले मुफ्त में चाय पिलाते थे। आपका मकान कैसा अच्छा बन जाता है कह कर रंग चढ़ा देते थे। किन्तु जब रंग उतर जाता और मकान की सुन्दरता चली जाती तब जाकर लोग कहते कि एक बार और रंग लगा दो। मगर कम्पनी वाले कहने लगते अब तो पैसा खर्च करो तब रंग मिल सकता है। चाय के पीने वालों को भी जब पीने की आदत लग गई तब पैसे लिए जाने लगे। शुरू में लोगों की आदत बिगाड़ने के लिए मुफ्त में चीजें दी जाती हैं। बाद में जब लोग उस वस्तु के आदी बन जाते हैं, मुफ्त में देना बंद कर दिया जाता है। मुफ्त में रंग लगाकर भारतवासियों को ऐसा शौक पैदा कर दिया कि अब करोड़ों रुपये इस निमित्त विदेश खींचे चले जाते हैं। इसी प्रकार फ्री नाटक सिनेमा दिखाकर आपकी आदत नाटक सिनेमा देखने की बना दी जाती है और आप गरीबों को चूस कर पैदा किया हुआ या चोरी डाका डाल कर लाया हुआ पैसा देकर नाटक सिनेमा देखने लग जाते हो।

स्त्रियां भी आज कल यह कहने लगी हैं कि नाटक सिनेमा न देखा तो हमारा मनुष्य जन्म किस काम का ? किसी मेहमान के आने पर उसे सिनेमा देखने के लिए ले जाने का आग्रह किया जाता है, गांठ से पैसे देकर उसको ले जाया जाता है। मेहमान की खातिरदारी का यह नया तरीका चालू हुआ है। कितने भद्दे रिवाज दिनों दिन चालू हो रहे हैं। मानव समाज पतन की तरफ प्रयाण कर रहा है। यह अमूल्य मानव जन्म दूसरों की सेवा करने और काम क्रोधादि अंतरंग शत्रुओं को जीतने के लिए मिला है न कि अपनी आदतें और बिगाड़ने के लिए। अब आपकी समझ में यह बात बैठ गई होगी कि बाहर के शत्रु ईश्वर भक्ति से कैसे दूर हो सकते हैं। राजनीति में और धर्म नीति में थोड़ा अंतर है। आध्यात्मिक शिक्षा को बाहरी बातों से तोलना ठीक नहीं है। जो राजा धर्म शिक्षा के अनुसार आचरण करता है उसे सेना रखने की जरूरत न होगी। उसके लिए चक्रवर्ती की ऋद्धि भी व्यर्थ है, तुच्छ है। उसके लिए बाह्य संपत्ति त्याग का मल है। आप लोग त्याग का महत्त्व समझकर उसे अपनाओ तो कल्याण है।

कई लोग यह बात कहते है कि हम किसी पर उपकार क्या करें।

आज कल लोग उपकार के बदले अपकार करने लगते है। उपकार का बदला चुकाना तो दूर रहा उपकार स्वीकार भी नहीं करते हैं। ऐसी दशा में किसी पर उपकार करने से क्या लाभ ? इसका मतलब तो यह हुआ कि जिस पर आपने उपकार किया है उसमें बुराई है। अपनी बुराई के कारण वह उपकार स्वीकार न करके अपकार करता है। किन्तु आपमें भी तो अभिमान भरा पड़ा है जिससे किसी पर उपकार करके उसे गिनाते हो और बदला चाहते हो। आपकी भी यह बुराई है। आप और वह दोनों बराबर रहे। जब आप में यह भावना हो कि दूसरा कुछ भी करे उससे मुझे क्या मतलब, मुझे मेरा काम करना चाहिये तब आप किसी का दोष न देखेंगे और न उपकार का बदला चाहेंगे। उपकार को अहंकार खा जाता है। अतः अहंकार रहित होकर उपकार करना चाहिये। यदि कोई उपकार के बदले अपकार करे तो प्रसन्न होकर अधिक उपकार करना चाहिये। ऐसा नहीं हो सकता कि हमारी सच्चाई का सताने वाले पर कभी असर ही न हो। देरी से ही सही किन्तु उसका हृदय परिवर्तन जरूर होता है। अपना काम अपने को न छोडना चाहिये। तीन बार बिच्छू द्वारा काटे जाने पर भी उसे पानी के बाहर निकालने वाले सेठ का दृष्टान्त आप लोगों ने सुना हुआ है। सेठ ने कितना अच्छा सोचा था कि जब यह बिच्छू भी काटने का अपना स्वभाव नहीं छोडता है तो दूसरे की रक्षा करने का अपना स्वभाव मैं कैसे छोड दूं। यह है परोपकार का आदर्श। ऐसे परोपकारी आदर्श सज्जन का जीवन चरित्र आपको कथा द्वारा सुनाता हूं।

सुदर्शन चरित्र...

करी प्रतिज्ञा हो निर्लज्जा, क्रीडा कर घर आई।
धाय पंडिता से बात सुनाई, लोभ से वह ललचाई ।। रे धन.।।
घाट घडा नानाविध जब मन इक उपाय मन आया।
कौमुदी महोत्सव निकट आवे तब काम करुं मन भाया। रे धन.।।

शंभु अर्थात् परमात्मा का विस्मरण करना सबसे बड़ी विपत्ति है। ईश्वर भक्त लोग विपत्ति उपस्थित होने पर उसे धर्माराधन में बाधक न मानकर साधक मानते हैं। संतों का या महापुरुषों का मार्ग कुछ जुदा है।

कपिला की संगति से अभया रानी का मन कुछ का कुछ हो गया। वह अपना पद और मर्यादा भूल गई। मैं कौन हूं और मेरा पति कौन है तथा इस नीच कार्य से हमारी कितनी बदनामी होगी आदि सब बातें वह भूल गई। सच है, बुरे व्यक्ति की संगति से मनुष्य में बुराई आ जाती है। बुरी सोहबत से बचकर रहना चाहिये।

अभया ने कपिला से कहा कि मैं किसी भी उपाय से सुदर्शन को काबू में करके रहूंगी। बेचारा सुदर्शन क्या है, तिरियाचरित्र से इन्द्र नरेन्द्र भी वश में किये जा सकते हैं।

कपिला के सामने प्रतिज्ञा करके अभया अपने मकान में आकर बैठ गई। वह उदास बैठी है। किसी गहरी चिन्ता में निमग्न है। उसके एक पंडिता नाम की धाय है। धाय दूध पिलाने वाली स्त्री को कहते हैं जो माता के समान गिनी जाती है। पंडिता को अपना मातृपक्ष सुरक्षित रखना चाहिये था। उसे लज्जित न करना था। माता का कर्त्तव्य है कि संतान को चरित्रशील बनावे किन्तु उसने इसके विपरीत कार्य किया। अपनी पुत्री समान अभया की दुश्चरित्रता में वह मददगार बनी। माता पिता भी संतान के शत्रु बन जाते हैं यह बात इस कथा से ज्ञात होती है। कदाचित् यह कहा जाय कि यह कथा तो पुरानी हो गई क्या आजकल भी ऐसा होता है ? हां, आजकल भी अपने अज्ञान के कारण माता पिता संतान के लिए शत्रु का काम करते दिखाई देते है। माता सांपनी भी होती है और पिंता बंदर भी होते हैं। किन्तु क्या वे अपनी संतान को खाने के लिए माता–पिता है ! सर्पिणी अपने बच्चों को भूख के मारे खा भी जाती है और बन्दर तथा बिलाड़े अपने बच्चों को गुस्से के मारे मार भी डालते हैं। तो ये पशु है इनमें विवेक की बडी कमी है। मगर विवेकी कहा जाने वाला मनुष्य भी संतान का शत्रु बन जाता है। ये पशु तो एक भव के लिए अनिष्ट करते है किन्तु मनुष्य अपनी मूर्खता से संतान के अनेक भव बिगाड डालता है।

उदाहरणार्थ समझिये कि बालक यह नही जानता कि उसे जेवर पहनना चाहिये या नही। उसे न तो सोना चादी के जेवर पहनने का शौक है और न वह उसकी कीमत ही जानता है। फिर भी माता पिता बच्चो को पहन

पहनाते हैं या नहीं ? गहनों के कारण बच्चों की जान चली जाती है फिर भी लोग गहने पहनाना नहीं छोडते। इसी प्रकार अन्य आदतें भी ऐसी डाल दी जाती हैं कि जन्म भर बच्चे दुःख पाते हैं। ऐसी भद्दी और कुसंस्कारी बातें बच्चों के दिमाग में बैठा दी जाती हैं कि वे मां बाप कहलाने वाले भी बालक के शत्रु बन जाते हैं। नीति का यह पद आपने सुना होगा।

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।

वह माता शत्रु है और पिता वैरी है जिसने अपने बच्चे को नहीं पढ़ाया है। किन्तु संतान के झूठे प्रेम में फंसकर कितने माता–पिता अपने बच्चों को मूर्ख रख देते हैं। क्या ऐसे माता–पिता पंडिता धाय से कुछ कम हैं ?

पंडिता, अभया के दुश्चरित्र में मददगार बनने के लिए जाती है। अभया को उदासीन बैठी देखकर वह कहने लगी कि आज इतनी अन्यमनस्का रहती हो। मैं सदा आपकी हर प्रकार की सेवा करने के लिए तैयार हूं। अभया ने कहा, क्या बताऊं पंडिता ! मैं बडी अभागिन हूं। पंडिता बोली– राजा तेरे इशारों पर नाचता है। फिर तू अभागिन कैसी ? अभया कहने लगी कि जब मेरे मन की कामना पूरी न हो तब तक अभागिन ही हूं। पंडिता बोली– मेरे रहते तेरी मनोकामना अपूर्ण रहे तब तो मेरा जन्म व्यर्थ है। अभया बोली– मेरे सद्भाग्य से तुम जैसी चतुर धाय माता और सहायिका मिली हो। किन्तु क्या कहूं ? तुम्हारे सामने मन की बात कहने में भी लज्जा और दुःख होता है।

प्रत्येक बुरा काम करते वक्त एक बार आत्मा हिचकिचाती है। वह वह विवेक देता है कि यह काम अच्छा नहीं है। किन्तु आदत से लाचार होकर इन्सान बुरी प्रवृत्ति में फंसता है और आत्मा की आवाज को सुनी अनसुनी कर देता है।

बड़ा धर्म ढोंगी है। वैसे तो मैं यह चाहती हूं कि संसार से धर्म का नाम ही उठ जाय ताकि 'न रहे बांस न बजे बांसुरी'। किन्तु इस वक्त पहला काम है सुदर्शन को काबू में करना। मैं कपिला के सामने इस बनिये को काबू में करने की प्रतिज्ञा करके आई हूं। यह बनिया उसके वश में न आया। उसकी इज्जत भी गई और काम न बना। मैंने उससे कह दिया है कि मैं उसे वश में किये बिना तेरे को मुख न दिखाऊंगी।

पंडिता कहने लगी कि बस, इस साधारण सी बात के लिए तू इतनी उदास हो गई और चिन्ता करने लगी। बड़े बड़े इन्द्र धरेन्द्रों को भी तेरे वश में करा सकती हूं। बेचारा वह बनिया क्या चीज है। तुम चिन्ता छोड़ो। मैं उसे लाकर तेरे चरणों में छोड़ दूंगी। मगर एक बात है। मैं उसे लाकर एकान्त में तुझसे मिला दूंगी। फिर तुम जानो और तुम्हारा काम जाने। आगे का सारा काम तुमको खुद करना होगा।

अभया बोली– पण्डिता ! इससे अधिक और क्या चाहिये। तुम तो उसे लाकर मुझसे एकान्त में भेंट करा दो। फिर सारा काम मैं निपट लूंगी।

पंडिता ने कुछ दिनों में कार्य कर दिखाने की बात कही। अब अभया प्रसन्न मन हो गई। उसके दिल में हौंस आ गया। मगर पंडिता चिन्ता में पड गई कि इस काम को कैसे पार लगाना। सुदर्शन बड़ी धर्मनिष्ठा वाला व्यक्ति है। वह पर घर प्रवेश नहीं करता। इसलिए उसे लाना तो कैसे लाना।

विपरीत ज्ञान में भी बहुत शक्ति होती है। जो उल्टी दिशा में सोचता है उसका ज्ञान विपरीत गिना जाता है। है तो वह भी ज्ञान ही। किन्तु उसका प्रयोग यदि उल्टा हुआ तो अत्मा नीचे गिर जाती है।

पण्डित सुदर्शन को फांसने के लिए अपने ज्ञान के घोडे दौडाने लगी। वह अपने तरीकों के हानि लाभ और सुविधा असुविधाओं का ध्यान करने लगी। मन मे अनेक घात घड़े और उन्हें बिखेर दिया। वह सोचती थी यदि ऐसा करूंगी तो ऐसा हो जायगा और वैसा करूगी तो कैसा रहेगा आदि। अंत में एक युक्ति उसे सूझ आई। देव पूजन के बहाने सुदर्शन को रानी के पास महल में लाना ठीक रहेगा।

पूजा से तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा। क्या देव को बुलाओगी ? पूछने पर पंडिता बोली कि देव तो न आते है और न जाते हैं। यह तो बहाना मात्र है। हमें इस बहाने से अपना प्रयोजन सिद्ध करना है। कौमुदी महोत्सव मनाया जाय। उत्सव को सिपाही या राजा कोई नहीं रोक सकता। उस उत्सव पर कामदेव की मूर्ति बनाकर बाहर ले जाना और भीतर लाना। कार्तिकी पूर्णिमा के दिन सेठ सुदर्शन पौषधशाला में बैठता है। उस समय उसको महल में तुम्हारे पास ले आऊगी।

पंडिता द्वारा बताया गया उपाय सुनकर अभया बहुत खुश हुई। उसने उसकी प्रशंसा की और इनाम के तौर पर एक हार दिया। साथ में यह भी कह दिया कि यह हार तो उपाय सोचने का उपहार है। कार्य पूरा कर देने पर विशेष पुरस्कार दूंगी।

लोभ क्या नहीं कराता। लोभ के वश होकर पिता पुत्र को, पुत्र पिता को, पत्नी पति को और पति पत्नी को मार डालते हैं। बच्चों को पढ़ाई जाने [illegible] पोथी में लिखा है कि *लोभ पाप का बाप है* / साथ ही लिखा है, सब अनर्थों की जड़ लोभ है। पंडिता लोभ के वश होकर इस अनीति पूर्ण कार्य में जुटी है। संसार में अनेक पक्ष हैं। एक पक्ष सेठ सुदर्शन का है और [illegible] पक्ष कपिला अभया और पंडिता का भी है। हमें यह सोचना चाहिये कि हम [illegible] पक्ष ग्रहण करें। यदि हमें सेठ सुदर्शन का पक्ष ग्रहण करना है तो [illegible]–

धन सेठ सुदर्शन शियल शुद्ध पाली तारी आतमा।

सुदर्शन ने कष्ट में पड़कर भी शील भंग नहीं किया। किन्तु वर्तमान

दुःख में उत्थान और सुख में पतन

अनन्त जिनेश्वर नित नमूं।

प्रार्थना– यह भगवान् अनन्त नाथ चौदहवें तीर्थंकर की प्रार्थना है। आत्मा को परमात्मा का साक्षात्कार करना चाहिये। उसके पुरुषार्थ की यही चरम सीमा है। परमात्मा के साक्षात्कार के लिये जो प्रयत्न है वही परम पुरुषार्थ कहा जाता है। इस मानव जीवन में जितने क्षण प्रभु का साक्षात्कार करने के प्रयत्न में लगाये जाते हैं वे क्षण सार्थक गिने जाते है। बाकी का सारा समय निरर्थक है। परमात्मा से साक्षात्कार करने के लिए जितने उपाय शास्त्र में बताये गये हैं वे सब एक साथ न तो कहे जा सकते हैं और न उनका प्रयोग ही किया जा सकता है। किन्तु एक उपाय ऐसा है जो सब के लिये सुसाध्य है। वह है परमात्मा की प्रार्थना। यदि तन्मयता पूर्वक प्रार्थना की जा सके तो तत्त्व अन्य उपायों से प्राप्त किये जा सकते हैं वे प्रार्थना से भी मिल सकते है। ज्ञानियों का कथन है कि ऐसा भूतकाल में हुआ है, वर्तमान मे होता है और भविष्य में होता रहेगा। ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग और भक्ति मार्ग मे से प्रार्थना द्वारा प्रभु का साक्षात्कार करना भक्ति मार्ग है। जो कम पढ़े लिखो के लिये भी बड़ा उपयोग और सुलभ है।

शुद्ध अन्तःकरण से परमात्मा की प्रार्थना करने के लिये सबसे पहला काम है–उपासक द्वारा अपने उपास्य की पहचान करना। उपास्य का स्वरूप समझे विना की गई प्रार्थना से इष्ट–सिद्धि नहीं होती। कहा है–

यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः।

भावशून्य क्रिया फलदायी नही होती। अत परमात्मा का स्वरूप जानना सब से प्रथम और आवश्यक काम है।

अब प्रश्न यह खडा होता है कि परमात्मा को पहचाना किस प्रकार जाय? उसे पहचानने का क्या तरीका है? यदि सूक्ष्मता से विचार किया जाय तो परमात्मा को पहचानना कोई कठिन काम नहीं है। बडा सरल काम है। उसको पहचानने के लिए कहीं जाने की जरूरत नहीं है। वह हमारे निकटतम है किन्तु है वह अत्यन्त सूक्ष्म। सूक्ष्म वस्तु को जानने के लिए औजार भी सूक्ष्म चाहियें। बुद्धि के बिना वह नहीं जाना जा सकता। सूक्ष्म बुद्धि उसके जानने के लिए अपेक्षित है। उसके स्वरूप का वर्णन करते हुए भक्त ने कहा है–

सूक्ष्म थी सूक्ष्म प्रभु चिदानन्द चिद्रूप।
पवन शब्द आकाश थी सूक्ष्म ज्ञान स्वरूप।।

जो वस्तु दूर होती है उसे ढूंढने के लिए इधर–उधर भटकना पडता है। किन्तु जो हमारे पास है उसे कहां ढूंढने जाना? जो सूक्ष्म वस्तु होती है वह दूर नहीं हो सकती।

ब्रह्मचारी की शंका सुनकर अग्निदेव ने उससे कहा कि तू मेरे कथन का आशय नहीं समझा है। आशय न समझने से तूने प्राण, सुख और आकाश में भेद किया है।

सुन–

स होवाच विजानाम्यहं यत्प्राणो ब्रह्म कं व तु खं च न विजानमिति ते होचुर्यद्वा व कं तदेव खं यदेव खं तदेव कमिति प्राणं च हास्मै तदाकाशं चोचुः।

अग्निदेव ने कहा–हम जिसे सुख कहते हैं उसी को आकाश भी कहते हैं और जिसको आकाश कहते हैं उसको सुख भी। सुख विशेष्य है और आकाश विशेषण है। जिस प्रकार आकाश अनन्त और अविनाशी है उसी प्रकार जो सुख अनन्त और अविनाशी हो वही सच्चा सुख है। जो सुख अल्प और विनाशी हो वह वस्तुतः सुख नहीं किन्तु दुःख ही है। नाशवान् और क्षणिक सुख को हम सुख नहीं कहते। अतः हे ब्रह्मचारी! तू उस अविनाशी और अनन्त सुख की तलाश कर! इसी प्रकार खाली जगह(पोलार) को हम आकाश नहीं कहते किन्तु जो अनन्त और अविनाशी सुख है उसको हम आकाश कहते हैं।

कं ब्रह्म और खं ब्रह्म की बात हो चुकी। अब प्राण ब्रह्म की बात बताते हैं। अन्तःकरण को कं ब्रह्म और खं ब्रह्म का ज्ञान होता है। जो सुख रूप आकाश है, प्राण उसका स्थूल रूप है। प्राण की सहायता के बिना उस सुख की उपासना नहीं की जा सकती। उपासक के लिए उपास्य की उपासना करने के लिए कोई साधन अपेक्षित होता है। बिना साधन के उपासना नहीं हो सकती। श्वास उच्छ्वास और इन्द्रियां आदि जो प्राण हैं वे उस सुख की उपासना करने में साधन हैं। जब तक आत्मा प्राणों को व्यर्थ नहीं मानता तब तक वह इन इन्द्रियादि प्राणो को ईश्वरीय देन मानकर उनको उसके समर्पण करता रहता है। अर्थात् हाथ, पैर, आंख, कान, नाक, वाणी आदि सब साधनों से जन कल्याण के कार्य करता है और निरभिमानी रहता है। इस तरह प्राणों को ईश्वरार्पण करता है।

भटको। अपने भीतर उसकी खोज करो। तुम में प्राण, सुख और आकाश तीनों विद्यमान हैं।

आत्मा और परमात्मा को एक कैसे मानना? इसका क्या तरीका है? इसका सबसे सुगम और सरल तरीका यह है कि आकाश की तरह अनन्त और अविनाशी आत्मा को सान्त और नाशवान् मानना छोड दो।

आत्मा और परमात्मा की एकता साधने का उपाय अब जैन शास्त्रानुसार बताता हूं।

शास्त्र–

अनाथीमुनि राजा श्रेणिक के समक्ष यह बात रख रहे हैं कि हे राजन्! यह आत्मा दूसरे लोगों की शरण में जाकर अनाथ बन रहा है। जब यह आत्मा अपनी चिद्शक्ति और ज्ञान शक्ति को पहचान कर उनकी शरण में जायगा तब नाथ बन जायेगा। उस शक्ति को देखने के लिये हृदयमन्थन की जरूरत है। हृदयमंथन करने रो उसमें रो ज्ञानशक्तिरूप मक्खन हाथ लगेगा। वर्तमान में लोग उरा शक्तिरूप मक्खन को भूल कर बाहरी साधन रूप छाछ के पीछे भागादौड़ी मचा रहे हैं। यही भूल है। जब छाछ का ध्यान छोड़कर मक्खन का ध्यान किया जायेगा तब पता लगेगा कि हम कौन हैं और हमारे में कितनी शक्ति भरी पड़ी है।

हे राजन्! जो स्त्री सुख का साधन समझी जाती है वह किस प्रकार अनाथता में वृद्धि करती है यह मैं तुम को बताता हूं। तुम मुझे निमंत्रण देते हो कि चलो मेरे राज्य में, मैं सुन्दर स्त्रियो से आपका लग्न करा दूंगा तथा सुख के अन्य सारे साधन जुटा दूंगा। लेकिन इस कथन का उत्तर सुनो।

मेरे भार्या थी। वह पतिव्रता और मुझ पर बहुत अनुरक्ता भी थी। वह पति को सर्वस्व समझती थी। उसके लिए पति ही धर्म और नियम था। इसके सिवाय कुछ जानती न थी। वह अपने सुख को सुख नहीं समझती थी किन्तु पति के सुख को अपना सुख मानती थी। जब युवावस्था में रोग के कारण मैं पीड़ित था तब वह बहुत दुःखी रहती थी कि मेरे पति स्वस्थ और सुखी बने रहें। किन्तु उसका वश न चलता था। मुझे दुःखी देखकर उसकी आंखों में गंगा–यमुना बहती रहती थी। जब वह मेरे समीप बैठती तो उसके आंसुओं से मेरा हृदय–स्थल भींग जाता था। मेरे घर में भोजनादि सामग्री की कमी न थी। किन्तु मेरे दुःख के कारण वे सब वस्तुएं उसके लिए विष के समान बनी हुई थी। अनेक प्रकार के शक्तिदायक पेय पदार्थ भी मेरे यहां विद्यमान थे किन्तु वह किसी का उपयोग न करती थी। सब प्रकार के सुगन्धित द्रव्यो का भी उसने त्याग कर दिया था। सुवर्ण–मोती आदि के दागीने मेरे यहा थे। इनसे भी पुष्प की माला बढकर मानी जाती है। पुष्पमाला पहनना भी मेरी स्त्री ने छोड़ दिया था। मस्तक पर बिन्दी लगाना आदि सर्व प्रकार का शृंगार उसने मेरे दुःख के कारण त्यागा हुआ था।

कई स्त्रियां ऐसी भी होती हैं जो पति के देखते खाना–पीना आदि छोड़ देती है। उसे यह बताना चाहती है कि तुम्हारे दुःख मे हम कितनी दुःखी है। परन्तु पति की नजर बचा कर खा–पी लेती है मगर मेरी स्त्री ऐसी मिथ्याचारिणी न थी। वह मेरी जान और अजान में न खाती थी न पीती थी।

प्रश्न होता है कि उनकी जान में वह खाती–पीती, पहनती–ओढती न थी यह मालूम हो सकता है। किन्तु इनकी अजान मे भी न खाती–पीती, यह कैसे ज्ञात हो सकता है? इसका समाधान करने के लिए बहुत समय चाहिए। किन्तु संक्षेप में थोड़ा कहता हूं। यदि कोई स्त्री अजान में खान–पान और शृंगारादि करती है तो उनका असर शरीर पर हुए बिना नहीं रहता। अनाथी मुनि का आशय यह है कि मेरी स्त्री का शरीर देखने से पता लगता था कि वह समक्ष या पीठ पीछे खान–पान, शृंगारादि न करती थी।

भटको। अपने भीतर उसकी खोज करो। तुम में प्राण, सुख और आकाश तीनों विद्यमान हैं।

आत्मा और परमात्मा को एक कैसे मानना? इसका क्या तरीका है? इसका सबसे सुगम और सरल तरीका यह है कि आकाश की तरह अनन्त और अविनाशी आत्मा को सान्त और नाशवान् मानना छोड़ दो।

आत्मा और परमात्मा की एकता साधने का उपाय अब जैन शास्त्रानुसार बताता हूं।

शास्त्र–

अनाथीमुनि राजा श्रेणिक के समक्ष यह बात रख रहे हैं कि हे राजन्! यह आत्मा दूसरे लोगों की शरण में जाकर अनाथ बन रहा है। जब यह आत्मा अपनी चिद्शक्ति और ज्ञान शक्ति को पहचान कर उनकी शरण में जायगा तब नाथ बन जायेगा। उस शक्ति को देखने के लिये हृदयमन्थन की जरूरत है। हृदयमंथन करने से उसमें से ज्ञानशक्तिरूप मक्खन हाथ लगेगा। वर्तमान में लोग उस शक्तिरूप मक्खन को भूल कर बाहरी साधन रूप छाछ के पीछे भागादौड़ी मचा रहे हैं। यही भूल है। जब छाछ का ध्यान छोड़कर मक्खन का ध्यान किया जायेगा तब पता लगेगा कि हम कौन हैं और हमारे में कितनी शक्ति भरी पड़ी है।

अनाथी मुनि श्रेणिक को बता रहे हैं कि मेरे यहां सांसारिक ऋद्धि की किसी प्रकार कमी न थी। मेरे कुटुम्बियों ने सब उपायों से मेरी व्याधि मिटाने के लिए भरसक प्रयत्न किये मगर वे सफल न हुए। मुझे उनके उपायों से शान्ति न मिली। तब मुझे ज्ञान हुआ कि यह सारा दुःख मेरी अनाथता से है। जितना–जितना मैं संसार के पदार्थों के निकट जाता हूं उतना–उतना वे मुझसे दूर भागते हैं। जितना मैं उनमें ममत्व धारण करता हूं उतना पराधीन–अनाथ होता जाता हूं।

राजन्! इस संसार में स्त्री का संबंध बहुत निकट का माना जाता है। स्त्री सुख का साधन मानी जाती है। स्त्री अपने पति की बडी सेवा करती है। उनके सुख में सुखी और दुःख में दुःखी रहती है। लेकिन मैं अपने अनुभव से कहता हूं कि यह समझ भी भूल भरी है। सुनो–

भारिया मे महाराय अणुरत्ता अणुव्वया। अंसुपुण्णेहिं नयणेहिं उरं मे परिसिंचइ। अन्न पाणं च न्हाणं च गन्धमल्लं विलेवणं। मए णायमणायं वा सा बालां नोवभुंजइ। खणं पि मे महाराय पासाओ मे न फिट्टइ न या दुक्खा विमोयन्ति एसा मज्झ अणाहया।

हे राजन्! जो स्त्री सुख का साधन समझी जाती है वह किस प्रकार अनाथता में वृद्धि करती है यह मैं तुम को बताता हूं। तुम मुझे निमंत्रण देते हो कि चलो मेरे राज्य में, मैं सुन्दर स्त्रियों से आपका लग्न करा दूंगा तथा सुख के अन्य सारे साधन जुटा दूंगा। लेकिन इस कथन का उत्तर सुनो।

मेरे भार्या थी। वह पतिव्रता और मुझ पर बहुत अनुरक्ता भी थी। वह पति को सर्वस्व समझती थी। उसके लिए पति ही धर्म और नियम था। इसके सिवाय कुछ जानती न थी। वह अपने सुख को सुख नहीं समझती थी किन्तु पति के सुख को अपना सुख मानती थी। जब युवावस्था में रोग के कारण मैं पीडित था तब वह बहुत दुःखी रहती थी कि मेरे पति स्वस्थ और सुखी बने रहें। किन्तु उसका वश न चलता था। मुझे दुःखी देखकर उसकी आंखों में गंगा–यमुना बहती रहती थी। जब वह मेरे समीप बैठती तो उसके आंसुओं से मेरा हृदय–स्थल भींग जाता था। मेरे घर में भोजनादि सामग्री की कमी न थी। किन्तु मेरे दुःख के कारण वे सब वस्तुएं उसके लिए विष के समान बनी हुई थी। अनेक प्रकार के शक्तिदायक पेय पदार्थ भी मेरे यहां विद्यमान थे किन्तु वह किसी का उपयोग न करती थी। सब प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों का भी उसने त्याग कर दिया था। सुवर्ण–मोती आदि के दागीने मेरे यहा थे। इनसे भी पुष्प की माला बढ़कर मानी जाती है। पुष्पमाला पहनना भी मेरी स्त्री ने छोड़ दिया था। मस्तक पर बिन्दी लगाना आदि सर्व प्रकार का शृंगार उसने मेरे दुःख के कारण त्यागा हुआ था।

कई स्त्रियां ऐसी भी होती हैं जो पति के देखते खाना–पीना आदि छोड देती हैं। उसे यह बताना चाहती है कि तुम्हारे दुःख मे हम कितनी दुःखी हैं। परन्तु पति की नजर बचा कर खा–पी लेती है मगर मेरी स्त्री ऐसी मिथ्याचारिणी न थी। वह मेरी जान और अजान में न खाती थी न पीती थी।

प्रश्न होता है कि उनकी जान में वह खाती–पीती, पहनती–ओढती न थी यह मालूम हो सकता है। किन्तु इनकी अजान मे भी न खाती–पीती, यह कैसे ज्ञात हो सकता है? इसका समाधान करने के लिए बहुत समय चाहिए। किन्तु संक्षेप में थोडा कहता हूं। यदि कोई स्त्री अजान मे खान–पान और शृंगारादि करती हैं तो उनका असर शरीर पर हुए बिना नहीं रहता। अनाथी मुनि का आशय यह है कि मेरी स्त्री का शरीर देखने से पता लगता था कि वह समक्ष या पीठ पीछे खान–पान, शृंगारादि न करती थी।

रोग के कारण जिस प्रकार मेरी निद्रा चली गई थी उसी प्रकार मेरे दुःख से दुःखी होकर वह भी रात दिन जागती रहती थी। उसकी निद्रा भी हवा हो गई थी। मैं सोया–सोया विचार करता रहता कि यह पीड़ा मुझको है या इसको। और वह यह सोचा करती थी कि मै पति की अर्धांगिनी हूं। जव आधा अंग दुःखी है तो मैं सुखी कैसे? काच के सामने जैसी वस्तु होती है वैसा उसमें प्रतिबिम्ब पड़ता है। मेरे दुःख की छाया उसमें स्पष्ट दिखाई देती थी। स्त्रियों की प्रशंसा के लिए जितने गुण आवश्यक होते हैं वे सब उसमें विद्यमान थे। इतनी गुणसम्पन्ना होने पर भी मेरी स्त्री मेरी अनाथता न मिटा सकी। उसका सारा प्रयत्न निष्फल रहा।

स्त्री के प्रयत्न से भी अनाथी मुनि का रोग न मिटा यह अच्छा हुआ या बुरा? ऊपर–ऊपर से सोचने पर तो यही मालूम होता है कि अनाथी मुनि को महान् वेदनीय कर्म का उदय था अतः उनका रोग न मिटा, न शान्त हुआ। किन्तु अनाथी मुनि के कथन पर बारीकी से सोचने पर मालूम होता है कि भार्या के प्रयत्न से भी रोग न मिटा –यह अच्छा ही हुआ। यदि स्त्री–प्रयत्न से रोग मिट जाता तो मैं स्त्री गुलाम वन जाता। मैं समझने लगता कि यह मेरी नाथ है। मेरी उस पर श्रद्धा जम जाती। और मैं आज जिस मुनिपद पर आरूढ़ हूं वहां तक न पहुंच पाता।

श्रीमन्तों के लड़के कितने व्यसनों में फंसे रहते हैं। मैं भी उसी श्रेणी का होता। किन्तु विधिका विधान मेरे लिए कुछ और ही था। रोग न मिटना मेरे लिए गुणकारी हो गया।

ज्ञानी लोग कहते हैं कि–

सुख के माथे शिला पड़ो जो प्रभु से दूर ले जाय।
बलिहारी उस दुःख की जो प्रभु से देत मिलाय।।

वह सुख क्या काम का जो परमात्मा से दूर पटक देता है। वह दुःख ही अच्छा है जो परमात्मा से मिला देता है। यदि मनुष्य के पीछे दुःख न हो तो न मालूम वह क्या–क्या न कर डाले। आज संसार में जितनी बुराइयां दृष्टिगोचर होती हैं वे सब सुखी लोगों की उत्पन्न की हुई हैं। बुराइयों पर गौर से विचार करेंगे तो निश्चय मानना पडेगा कि इनके उत्पादक और प्रचारक सुखी लोग हैं।

कुदरत के कानून का जितना सुखी लोग उल्लंघन करते हैं उतना पशुपक्षी भी नही करते। सुखी लोग दुर्व्यसनों में पडकर मर्यादा छोड़ देते हैं

और हानिकारक पदार्थो का सेवन करते हैं। उदाहरणार्थ एक बीडी को ही लीजिये। धर्म और स्वास्थ्य दोनों खराब होते हैं। फिर भी बीडी पीने वाले लोग कहते हैं कि हम सुखी हैं अतः यदि हम न पियेंगे तो कौन पियेगा? अपने को सुखी मानने वाले लोग गादीतकियों के साहरे बैठकर हुक्का गुड़गुड़ाया करते हैं। बिना भूख के अनेक प्रकार की मिठाइयां खाते हैं फिर उनको पचाने के लिए कई प्रकार के चूर्णो का उपयोग करते हैं। यह शरीर और हाथ पैर कुछ काम करने के लिए हैं। किन्तु सुखी लोग हाथ–पैरों से काम लेने में अपना अपमान समझते हैं। इस प्रकार सुखी लोगों ने व्यसन और आलस्य से संबंध रखने वाली अनेक बुराइयां इस संसार में फैलाई हैं। वे इन बुरी बातों को अपना कर और अधिक सुखी होने की कल्पना करते हैं।

इसी से अनाथी मुनि कहते हैं कि अच्छा हुआ जो मेरा रोग न मिटा। मेरे आत्मोत्था के लिए वह रोग बड़ा साधक हुआ। उसने मुझको जगा दिया। मैं मोह निद्रा में सोया हुआ था। रोग ने मेरी बांह पकडकर मुझे उठा दिया। उठकर मैं अविनाशी पथ का पथिक बन गया।

कोई किसी का दुःख मिटाने में समर्थ नहीं हो सकता। फिर भी यदि स्त्री की परिचर्या से दुःख मिट जाता तो मैं इस भ्रम का शिकारी बन जाता कि मेरी स्त्री ने मेरा दुःख मिटा दिया। वह निमित्त मात्र बनती। और मैं उसे दुःख नाश करने वाली मान बैठता। अनाथी मुनि के इस कथन पर आप लोग विचार करो। आपको कितनी भी सुन्दरी और अनुकूल प्रकृति वाली स्त्री मिले फिर भी यह मत मान बैठना कि वह आपके दुःख दर्द को मिटाने में समर्थ बन सकेगी। हां, कुछ निमित्त मात्र बन जायेगी। किन्तु आपका किया कर्म आपको भुगतना पड़ेगा। यह याद रखना। इसलिए अपने पर ऐसा नाथ रखो जो आपकी अनाथता मिटा सके। प्रभु के सिवा अन्य कौन ऐसा नाथ हो सकता है? भक्त कहता है–

मैं प्रभु पतित–पावन सुने।
हों पतित तुम पतित–पावन,
उभय बानक बने।।मैं प्रभु.।।

भक्त अपनी अनाथता को पतित अवस्था के रूप में चित्रित करके कहता है कि मुझको कौन पवित्र बना सकता है? मुझे कौन नाथ बना सकता है? क्या धन दौलत, राजा, रईस, माता पिता, कुटुम्ब परिवार और मित्र दोस्त मेरी पतितावस्था को मिटा सकते हैं? वे स्वयं इसी दशा में हैं [illegible]

उद्धार करेंगे? केवल परमात्मा परमेश्वर ही एकमात्र पतितपावन हैं और वही मेरी आत्मा को नीचे से ऊपर उठा सकते हैं। मैंने पुराने संतों से सुना है कि वह पतितपावन है। मैं पतित हूं और वह पतितपावन है फिर क्या चाहिए। दोनों की जोड़ी अच्छी बनी है। रोग भी है और डॉक्टर भी है। अब क्या चाहिए? तेरा सहारा पकड़ने से मेरा अनादि कालीन जीर्ण रोग अवश्य मिट जायेगा। यह भक्त का विचार है।

आप लोग मेरे पास आये हैं। क्या लेने आये हैं? और मैं क्या दे सकता हूं! मैं साधु ठहरा। जो कुछ था वह भी छोड़कर भिक्षु बन गया। अब आप सोचो कि मेरे पास किस आशा से आये हो। क्या इस आशा से आये हो कि कुछ सम्पत्ति प्राप्त हो जायेगी? यदि यह आशा लेकर आये हो तो शायद आपको निराश होना पड़ेगा। मेरे पास सिवा आशीर्वाद के और कुछ नहीं है। मगर साधु का आशीर्वाद प्राप्त करना भी सस्ता सौदा नहीं है। मैं किसको आशीर्वाद दूं। क्या बीड़ी पीने को आशीर्वाद दूं या अन्य बुराइयों को? यदि ऐसी वस्तुओं के लिए आप आशीर्वाद चाहते हैं तब तो आपके साथ मैं भी पाप का भागी बनूं और अपना साधुपद खो बैठूं। ऐसा आशीर्वाद लेने आना भूल है। हम साधु लोग यह आशीर्वाद दे सकते हैं कि आप में धर्म के जो अंकुर हैं वे वृद्धि पावें, फलें और फूलें। आपमें सद्गुणों की वृद्धि हो और दुर्गुणों की हानि हो, यह आशीर्वाद यदि चाहिए तो हम दे सकते हैं। फकीर के पास यही आशीर्वाद हो सकता है।

आप लोग फकीर शब्द सुनकर चौंकियेगा नहीं। फकीर और साधु में शब्दों का अन्तर है। दोनों का अर्थ एक है। एक शायर फकीर का अर्थ इस प्रकार लगाता है– फे से फ.ख काफ से कुदरत र से रहीम और ये से याद। चार हरुफ हैं फकीर के जो पढ़े तो हो दिल शाद।। फकीर होना बहुत कठिन है जिसमें फिकर की हो न बू। और कुदरत भी न हो तो ऐसी फकीरी पर है थू।। रहम नहीं दिल मांहे तो दुनिया छोड़ होना फकीर तू। याद इलाही जो कोई करे जो तू उसके चरणों को छू।।

यह फकीर या साधु का लक्षण है। शब्द दोनों बहुत छोटे हैं किन्तु इनमें गंभीर अर्थ छिपा हुआ है। फकीर शब्द उर्दू के चार अक्षरों से बना है। उन चारों का अलग अलग अर्थ ऊपर की कविता में बताया गया है। संस्कृत भाषा में इस प्रकार अक्षरों के अर्थ बताने को पद भंजन निरुक्ति कहा जाता है।

फकीर शब्द में पहला अक्षर फ है। फे का अर्थ है, कि फकीर! तेरे

में फिक्र न होना चाहिये। जो फिक्र या चिन्ता करता है वह क्या फकीर है।

फिकर सभी को खात है फिकर सभी का पीर।
फिकर का जो फाका करे ताको नाम फकीर।।

चिन्ता और चिता दोनों समान गुणवाली हैं। चिता मरे हुए को जलाती है और चिन्ता जिन्दे मनुष्य को। बस यही दोनों में अन्तर है। बाकी मनुष्य को जलाने का काम दोनों समान रूप से करती हैं। चिन्ता में घुल घुल कर मनुष्य सूखकर कांटा बन जाता है। यह चिन्ता सब को खा जाती है। किन्तु साधु या फकीर ऐसे उस्ताद हैं जो चिन्ता को भी खा जाते हैं। उनके निकट चिन्ता फटकने नहीं पाती।

फकीर शब्द में दूसरा हरुफ काफ है। काफ का अर्थ कुदरत होता है। कीड़ों मकोड़ों में भी कुदरत का नियम देखा जाता है तो क्या मनुष्य में वह नियम नहीं है? मनुष्य में कुदरत (प्रकृति) है तथा कुदरत मनुष्य का साथ भी देती है। मगर जो लोग कुदरत पर विश्वास नहीं रखते या कुदरत के कानूनों का उल्लंघन करते हैं वे दुःख पाते हैं और हाय हाय करते हैं। रामचन्द्र जब वनवास के लिए गये थे तब अपने साथ क्या क्या सामग्री ले गये थे? फिर भी क्या वे भूखों मरे थे? साधु लोग जब घर छोडते हैं तब अपने साथ क्या लेकर निकलते हैं? कुछ नहीं। कुदरत पर उनको भरोसा रहा है। अतः दुखी नहीं होते। आजकल लोग कुदरत से लड़ाई करते है। यदि कुदरत के नियमानुसार मनुष्य रहने लगें तो भ्रष्ट चीजों के खाने की नौबत न आये। फकीर कुदरत के भरोसे रहता है।

तीसरा अक्षर फकीर में र है। र का अर्थ रहम या दया है। जिसमें दया नहीं वह साधु नहीं। जो अपने प्राणों की बलि देकर भी दूसरो को कष्ट नहीं होने देता किन्तु उन पर दया करता है वही फकीर है। जो यह समझता है कि दुःखी के दुःख को जितने अंशों में मै दूर कर सकूं उतने अंशो में परमात्मा के समीप हूं, वह फकीर है!

आप लोग फकीर का अर्थ सुनकर इस कान से उस कान की ओर ले जाकर निकाल मत देना किन्तु इस पर विचार करना और बने उतना आचरण करना। दया करने के लिए आपको अपने रहन–सहन और खान–पान मे परिवर्तन करना पडेगा। दया से आपको अनन्त और अविनाशी सुख मिलेगा।

परमात्मा की याद बनी रहे। जिस क्षण उसकी याद नहीं रहती उस क्षण बड़े अनर्थ होने की संभावना रहती है। उसकी स्मृति जितनी देर बनी रहती है उतनी देर मनुष्य ईश्वर ही है। अनुयोग द्वार सूत्र में कहा है कि जितनी देर जीव ईश्वर में उपयुक्त रहता है, उसमें तन्मयता धारण करता है उतनी देर के लिए वह ईश्वर कहा जाता है। कई महात्मा लोग ईश्वर में इतने तन्मय हो जाते हैं कि यदि कोई उनके शरीर पर घाव करता है तब भी उनका ध्यान विचलित नहीं होता। ऐसे महात्मा ईश्वर ही हैं।

कहने का सारांश यह है कि साधु वह है जो ऊपर बताये गुण अपनाता है। साधु के पास शुभाशीर्वाद होता है और वह उसको मिलता है जो धर्मकार्य में प्रवृत्त होता है। पापवृद्धि के लिए साधु आशीर्वाद नहीं दे सकते।

अब मैं आपको एक ऐसे व्यक्ति का जीवन–चरित सुनाता हूं जो गृहस्थावास में रहता हुआ भी फकीर की तरह रहता था।

सुदर्शन चरित्र–

सुदर्शन की एक बार कपिला द्वारा परीक्षा हो चुकी है। उसमें वह उत्तीर्ण हुआ है। अब दूसरी बार परीक्षा होती है।

कामदेव की करी प्रतिमा महोत्सव खूब मंडाया।
बाहर जावे अन्दर आवे सब जन को भरमाया।।रे धन.।।
कार्तिकी पूर्णिमा कौमुदी उत्सव नृप पुर बाहर जावे।
सुदर्शनजी नृप आज्ञा से पौषध व्रत को ठावे।।रे धन.।।

दुष्ट लोग धर्म के विषय में सदा उल्टा सोचते हैं। वे धर्म को ढोंग मानते हैं। अभया रानी सुदर्शन की धर्मचर्या को ढोंग कहती हैं। थोड़ी देर के लिए मान लिया जाय कि सुदर्शन जो कुछ धर्म क्रियाएं कर रहा है वे सब ढोंग हैं–दिखावटी हैं। किन्तु वह परस्त्रीगमन न करने का जो नियम पालता था वह क्या बुरा था जिसे तुड़वाने के लिए रानी कटिबद्ध बनी हुई है? किन्तु यह दुष्टता का लक्षण है। दुष्ट को दूसरों के गुण अच्छे नहीं लगते। वे अपने को अच्छा मानते हैं बाकी जगत् को ढोंगी और दुर्गुणी मानते हैं। जब स्वयं में चंचलता होती है तो सारे जगत् में चंचलता नजर आती है। पानी में गिरा हुआ चन्द्र बिम्ब, पानी के हिलने से चंचल दिखाई देता है। यदि पानी में काला, पीला, नीला आदि रंग मिला हुआ हो तो चन्द्र बिम्ब भी उसी रंग का मालूम देगा। इसी प्रकार जिसका मन जिस रंग में रंगा हुआ होता है उसे सारा जगत् भी वैसा ही दिखाई देता है। वह अपने मन से सारे जगत् को मापता है। अपना हृदय कलुषित होता है तब दूसरों का हृदय भी कलुषित होगा ऐसी कल्पना

करली जाती है। अपना दिल साफ है तो दूसरे भी भले मालूम होंगे।

ज्ञानी लोग दूसरों में बुराई नहीं देखते। 'अमुक में वह' इस प्रकार कहकर वे किसी का अपमान नहीं करते। जिस प्रकार डॉक्टर किसी रोग को देखकर उसकी निन्दा या अपमान नहीं करता। बल्कि उसके रोग की जांच करके रोग मिटाने का प्रयत्न करता है। उसी प्रकार ज्ञानी लोग भी दूसरे की बुराई देखकर ही नहीं रह जाते मगर उस बुराई की पहचान करके उसको जड मूल से उखाड़ फेंकने की कोशिश करते हैं। दुर्जनों और सज्जनों में यही अन्तर है।

रानी अभया को किसी भी भोग्य पदार्थ की कमी न थी। किन्तु उसमें एक शैतान प्रवेश किया हुआ था जिससे वह सुदर्शन को शील से भ्रष्ट करना चाहती थी। रानी का बोझा हल्का करने का भार पण्डिताने अपने ऊपर ले लिया है। वह जाल रचने में और दूसरों को उसमें फंसाने में अपने को बड़ी होशियार मानती थी। अपनी चतुराई का उपयोग करके उसने सुदर्शन के आकार की कामदेव की एक मूर्ति बनाई। यह कामदेव की मूर्ति है। ऐसा सर्वत्र प्रसिद्ध कर दिया गया। रानी अपनी मनोकामना पूरी करने के लिए इस मूर्ति की पूजा करती है।

बुतपूजा को विकार कहा जाता है। लेकिन विकारी मनुष्य को सर्वत्र विकार ही विकार नजर आते हैं। यदि अपनी बुराई त्याग कर किसी से भी अच्छाई ग्रहण की जावे तो किसी प्रकार की बुराई नहीं है। मगर होता यह है कि मनुष्य दिखाव कुछ और करते हैं और काम कुछ और।

पण्डिता शाम के वक्त अन्य दासियों को साथ लेकर उस मूर्ति को महल से बाहर निकालती और गाजे–बाजे के साथ उसे शहर में घुमाती। रात पडने पर वापस उसे महल में ले आती। ऐसा उसने कई दिनों तक किया। पहरेदार तथा अन्य लोग यह समझते थे कि कोई उत्सव चल रहा है जिससे प्रतिदिन दासियां महल से बाहर आती है और मूर्ति को घुमा ले जाती है। इस प्रकार वे भ्रम में थे। पण्डिता ने उस कामदेव की मूर्ति को ठीक वैसे ही वस्त्र पहनाये थे जैसे सुदर्शन पहना करते हैं। कभी कभी वह मूर्ति को धर्मकार्य के वक्त पहनने लायक वेष भी पहनाती थी। यदि कोई कुछ पूछता तो कह देती कि धर्म कार्य के मामले में तुम क्या समझो। लोग चुप हो जाते। आजकल भी धर्म के नाम से लोग बहुत ठगे जाते हैं। पण्डिता ने भी धर्म के नाम से ठगाई शुरू की है।

पण्डिता विचार करने लगी कि यहां तक तो कार्य ठीक हुआ

निकला। किन्तु अब सेठ सुदर्शन को कैसे लाना? वह इस चिन्ता में थी कि कार्तिकी पूर्णिमा का महोत्सव निकट आ गया। राजा ने नगर के सब मनुष्यों को आज्ञा दी कि सब लोग मेरे साथ बाहर चलें। यह हुक्म सुनकर सुदर्शन विचार करने लगा कि राजा के लिए यह दिन आमोद–प्रमोद करके उत्सव मनाने का है। किन्तु कार्तिकी पूर्णिमा होने से मेरे लिए विशेष धर्माराधन का दिन है। मुझे पौषध करना है।

पौषध का अर्थ है–धर्म का पोषण करना, आत्मिक गुणों की वृद्धि करना। श्रावक के चार विश्राम स्थल कहे गये हैं, उनमें पौषध भी एक है। कई लोग कहते हैं कि पौषध करना अच्छा है। किन्तु भूखों मरना किस काम का? ऐसा कहने वाले भूल करते हैं। उपवास शरीर और आत्मा दोनों के लिए लाभप्रद है। इंजन को कोयला पानी दिया जाता है और कभी कभी उसे विश्राम भी दिया जाता है। विश्राम दिये बिना इंजन के भीतर की खराबी ठीक नहीं हो सकती। वैसे ही पेट रूपी इंजन में नित्य भोजन पान करने से खराबी उत्पन्न हो जाती है। कभी कभी उपवास कर लेने से इस मशीन को आराम मिल जाता है। तथा भीतरी खराबी साफ हो जाती है। जठराग्नि पेट के अन्दर रहे हुए कूड़े कचरे को भस्म कर देती है। यह विज्ञानसिद्ध सत्य है। फिर भी रस लोलुपी और जबान के चटोरे लोग उपरा ऊपरी खाये जाते हैं। भूख न होने पर भी स्वाद के कारण वस्तुएं पेट में भरे जाते हैं। ऐसा करने से कितनी बुराइयां और बीमारियां पैदा होती हैं इसका उनको ज्ञान नहीं है। उपवास करने से आंतों को विश्राम मिल जाता है जिससे उनमें नई शक्ति पैदा हो जाती है और वे अधिक तेजी से काम देने लगती हैं।

इस बात की परीक्षा करनी हो कि उपवास करने से शरीर घटता है या बढ़ता है तो उपवास के पहले दिन नियमित भोजन करके शरीर का वजन कर लिया जाय। फिर उपवास किया जाय। तथा उपवास के बाद पारणा करके दूसरे दिन वापस शरीर को तोला जाय। तब पता लग जायेगा कि वस्तुतः वजन बढ़ता है या घटता है। यदि शरीर का वजन घटने के बजाय बढ़ जाय तब तो मानना चाहिये कि शरीर के लिए उपवास आवश्यक है। उपवास न करना शरीर पर अत्याचार है। आजकल वैद्य डॉक्टरों और रोगों की बहुलता देखी जाती है वह उपवास न करने के कारण है। शरीर स्वस्थ रहने से आत्मा भी हल्का और प्रसन्न रहता है।

राजा की आज्ञा सुनकर सुदर्शन विचार में पड गया कि क्या करना चाहिये। उसने निर्णय कर लिया कि राजा के पास जाकर इजाजत ले आना

चाहिये। वह राजा के पास जाकर कहने लगा कि महाराज! आपकी आज्ञा उत्सव में शामिल होने की है। मगर कार्तिकी पूर्णिमा होने से मैं पौषधोपवास व्रत करना चाहता हूं। इसके लिए आपकी इजाजत चाहता हूं। उस समय के राजा लोग धर्मप्रिय और न्यायनिष्ठ होते थे। सुदर्शन का कथन सुनकर राजा कहने लगा कि सेठ! तुम धन्य हो। लोग आमोद–प्रमोद के अवसर की ताक में रहते हैं और तुम धर्माराधन के अवसर को खोजते हो। जो लोग धर्म में रहते है उनको मैं धन्यवाद देता हूं। तुम आनन्दपूर्वक धर्म सेवा करो। मेरी आज्ञा है।

राजा की आज्ञा पाकर सुदर्शन पौषधशाला में आया। उसने अपने हाथ से पौषधशाला की सफाई की। क्या आप लोग अपने हाथों से कभी पौषधशाला की सफाई करते हो? आप लोग नौकर रख देते हो। वह पौषधशाला में बुहारी निकाला करे। मगर निज हाथों से यतना का यह काम नहीं करते हो। नौकर यतनापूर्वक पौषधशाला पूंजता है या अयतना से यह आप नहीं जानते। जो लोग अपने हाथों से काम करते हैं वे उस कार्य में बड़ी यतना और सावधानी रख सकते है। नौकरों के काम में वह सावधानी और विवेक कहां हो सकता है! नौकर तो सुदर्शन के भी रहे होंगे। किन्तु धर्मस्थानक में अभियान का पोषण करना उन्हें उचित न जंचा होगा। अतः निज हाथों से पौषधशाला को पूंजा। पौषधशाला में यदि गंदगी पडी रहे तो व्रत में दूषण लगता है।

पौषधशाला को सब करके उसमें घास का संथारा(बिस्तर) किया। क्या सेठ सुदर्शन के यहां कीमती शय्याएं न थीं जो घास का बिस्तर बिछाया? किन्तु बात यह है कि घास में बड़ा गुण है। कच्चे आम के फल यदि घास में रखे जाय तो वे चार छह दिन में पक जाते हैं। किन्तु उन्हीं कच्चे आमों को यदि मखमल के गद्दों में चार छह दिन रखा जाय तो वे सड़ जायेंगे। अन्य भी घास में कई गुण है। घास का बिछौना नम्रता और सादगी का भी प्रतीक है। साधारण लोग गुण न देखकर शोभा देखते हैं। छोटी वस्तु पर ध्यान न देकर बड़ी वस्तु खोजते हैं। बड़ी और कीमतन वस्तुओं से अमीर लोगो का काम चल सकता है। किन्तु करोड़ों की संख्या में विद्यमान गरीब लोगो का काम घास जैसी तुच्छ वस्तु से चलता है। यदि घास न हो तो अन्न भी नही हो सकता।

सुदर्शन घास के संथारे पर बैठकर धर्माराधन करने लगा। पण्डिता ने सोचा कि सुदर्शन को महल में लाने का आज सुवर्ण अवसर है। किस प्रकार पण्डिता सुदर्शन को लाती है और किस प्रकार सुदर्शन इस परीक्षा से गुजरता है, आदि बातों का विवेचन आगे देखा जायेगा।

राजकोट

2.9.36

नीतिमय जीवन आध्यात्मिक जीवन की नींव है।

धर्म जिनेश्वर! मुझ हिवड़े बसो, प्यारा प्राण समान।

प्रार्थना— यह भगवान् धर्मनाथ की प्रार्थना है। इसमें प्रार्थना करने की रीति बताई गई है। जिस भक्त को जैसा अनुभव होता है वह उसी तरीके से संसार के समक्ष अपने अनुभव रख सकता है। हर व्यक्ति का यह अधिकार है कि वह अपने तरीके से दुनिया के समक्ष आए। वैसे ईश्वरीय रूप पूर्णतया शब्दों से प्रकट नहीं किया जा सकता। कारण कि शब्द अपूर्ण हैं और वह पूर्ण। किन्तु आत्मा का ध्येय उस पूर्ण तत्त्व तक पहुंचना है। अतः अपूर्णता के द्वारा पूर्णता तक पहुंचने का प्रयत्न किया जाता है।

इस प्रार्थना में इसी बात का संकेत है कि अपूर्णता के सहारे पूर्णता तक कैसे पहुंचा जाता है। भक्त ने प्रार्थना करते हुए कहा है कि हे धर्म जिनेश्वर! मेरे हृदय में आकर बस जा।

भक्तों की अभिलाषा कितनी बड़ी है! कोई दरिद्री व्यक्ति यह अभिलाषा करे कि वादशाह आकर मेरे टूटे फूटे झोंपड़े में आकर बस जाय तो लोग उसकी मजाक किये विना न रहेंगे। क्या भगवान् बादशाह से कम है? नहीं, अनेक वादशाहों की वादशाहत उनके सामने तुच्छ है। और क्या भक्त का हृदय दरिद्री के टूटे झोंपड़े से बढ़कर है? जो वह भगवान् को उसमें आकर वस जाने की कामना और प्रार्थना करता है। भक्तों की कामना बहुत उच्च है। जब कोई सयाना आदमी किसी प्रतिष्ठित मेहमान को अपने यहां निमंत्रित

करता है तो वह अपने घर का खयाल करता है कि अतिथि के योग्य व्यवस्था मेरे यहां पर है या नहीं। मेहमान के योग्य मेरे घर में सफाई और सुव्यवस्था है या नहीं। इसी प्रकार परमात्मा को अपने क्षुद्र हृदय में बसाने की कामना करने वाले भक्त भूल तो नहीं कर रहे हैं? नहीं, परमात्मा को अपने दिल में बसाने की भावना वाला मनुष्य कुछ भी भूल नहीं करता। वह दीन–दयालु है। उसके लिए भौतिक सामग्रियां अपेक्षित नहीं होतीं। केवल हृदय की शुद्धि अपेक्षित है। चाहे कोई अमीर हो चाहे गरीब जिसका दिल पाक है उसको परमात्मा को निमंत्रण देने का अधिकार है। और परमात्मा भी दिल को देखकर निमंत्रण स्वीकार कर लेता है। पिता कितना भी बड़ा आदमी क्यों न हो उसका बालक उसका हाथ पकड़ कर अपने घर में खींच लाने में कतई नहीं हिचकता। और न पिता पुत्र के घर को क्षुद्र समझकर उसमें जाने से परहेज करता है। सच्चा प्रेम होना आवश्यक है। इसके बिना न पिता आता है और न परमेश्वर। विलायत में पिता के आगमन पर भी अपने घर में न ठहरा कर होटल बता दिया जाता है। किन्तु अभी तक भारत का सद्भाग्य है कि उसमे ऐसा रिवाज दाखिल नहीं हुआ है। यहां कौटुम्बिक जीवन में प्रेम व भक्ति संमिश्रित हैं।

पुत्र के समान भक्त भी भगवान् पर अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानकर अपनी योग्यता अयोग्यता का खयाल न कर उनको हृदय मे दस जाने की प्रार्थना करता है। कहता है कि मुझे मेरे प्राण जितने प्रिय हैं उतने आप भी प्रिय हैं। प्राणों के बिना मैं जिन्दा नहीं रह सकता और आपके बिना भी।

इस विषय में थोड़ा विचार करना है कि क्या परमात्मा हमसे अलग है जो उसको आने के लिए आह्वान किया जाता है। सब शास्त्र तो यह बात बताते है कि आत्मा को पहचानने से परमात्मा सन्निकट मालूम देता है। कुरान शरीफ में भी कहा है कि अल्लाह मियां श्वासोच्छवास से भी समीप है। जब कि परमात्मा पास ही है तब भक्तों ने पास बुलाने का आमंत्रण क्यो दिया?

यह एक प्रश्न है। इसका समाधान यह है कि यद्यपि परमात्मा निकट से भी निकटतर है। परन्तु आत्मा की थोड़ी भूल हो रही है। वह उसको दूर मान रही है। निकट को दूर मानने की आत्मा भूल कर रही हैं। तथा विषय–कषायों का रंग चढा हुआ होने से आत्मा अपना भान भूला हुआ है। इस बात का विवेक करने के लिए भक्त भगवान् को निमत्रण देते है। तुम प्रभु! निकटतम हो फिर भी बीच में बडी खाइयां है। उनको तुम्हारे सहारे के बिना पार करना कठिन है।

काम क्रोध मद मत्सर लोभ थी कपटी कुटिल कठोर।

इत्यादिक अवगुण करी हूं भर्यो उदय कर्म के जोर।।

हे प्रभो! मुझे कभी काम सताता है और कभी क्रोध। कभी लोभ और मोह सताते हैं। ये मेरा सर्वस्व हरण कर लेते हैं। मेरा सारा सार खींच लेते हैं। जैसे सामने परोसी हुई थाल को कुत्ते खींच ले जाते हैं वैसे मेरे सद्गुणों और शक्तियों को ये काम क्रोधादि खींच ले जाते हैं। इस बात की शिकायत तेरे सिवा किसके सामने करूं? तू ही मेरा एकमात्र आधार है।

तेज प्रताप तुम्हारे प्रकटे मुझ हिरदा में आय।
तो हूं आतम निज गुण संभाल ने अनन्त बली कहाऊं।।

भगवान्! तेरे प्रकाश की एक किरण भी प्राप्त हो जाय तो मेरे ये सारे शत्रु दुम दबा कर भाग जायं। मेरे पराक्रम से इन शत्रुओं का भागना असम्भव मालूम होता है। अतः तेरी शरण में आया हूं। तू मेरे हृदय में बस जा। फिर ये काम क्रोधादि एक क्षण भर के लिए भी नहीं ठहरेंगे। राजा स्वयं घर में आकर बस जाय फिर चोरों का क्या डर है?

इस प्रार्थना में भक्त ने जो कामना की है वह उसके अकेले के लिए नहीं है किन्तु सबके लिए है। प्रार्थना पर सबका समान अधिकार है। समान अधिकार होते हुए भी जो उसका उपयोग करता है उसको लाभ होता है। सूर्य बिना भेदभाव के सबको समान रूप से प्रकाश प्रदान करता है किन्तु यदि कोई व्यक्ति अपनी आंखें बन्द कर ले तो इसमें सूर्य का क्या दोष है? पानी पर सबका अधिकार है। जो कि आजकल लोग पानी पर भी अधिकार करने लग गये हैं। पानी पीने से प्यास बुझ जाती है। किन्तु यदि कोई व्यक्ति पानी पीने की विधि से पानी न पीकर कान से पानी पीने लगे तो क्या उसकी प्यास शान्त होगी? कदापि नहीं। कुदरत की सारी वस्तुओं पर सब मनुष्यों का समान अधिकार है। मगर उनका उपयोग नियम पूर्वक हो तो वे लाभदायी होती हैं। इसी प्रकार प्रार्थना करने का सबको समानाधिकार है। किन्तु प्रार्थना की विधि मालूम होनी चाहिये। परमात्मा भी सबका है किन्तु उसे अपने पास बुलाने का तरीका मालूम होना चाहिये। यह नहीं हो सकता कि परमात्मा को निमंत्रण दे दो और हृदय को अशुद्ध बनाये रखो। माया और राम का परस्पर विरोध है। एक तरफ काम क्रोधाद को निमंत्रण दे आये और दूसरी तरफ परमात्मा को। जब दोनों आये तो एक दूसरे को देखकर चौंक गये। जो भला आदमी होता है वह ऐसे झंझट के कार्य में खडा नहीं रहता वह पहले दूर चला जाता है। काम क्रोधादि को दूर से देखकर परमात्मा दूर हट जाता है।

तब यह प्रश्न खडा होता है कि जो गृहस्थ व्यक्ति हैं उनके लिए

परमात्मा को हृदय में बसाना असंभव कार्य हो जायेगा। कारण कि कुटुम्ब को लेकर बैठे हैं। उनका भरण–पोषण आदि करना पड़ता है जिसमें अल्प आरम्भ समारम्भ और लोभ मोह आदि होते ही हैं। यह ठीक है कि आप घरबारी हैं। किन्तु यदि आप घर द्वार नहीं छोड़ सकते तो कम से कम उन पर जो आपका अहंकार है वह तो छोड़ दीजिये। घर–बार में रहते हुए निरभिमानी बन कर परमात्मा का ध्यान रखो। कोई भी काम या क्रिया मात्र बंधन कर्त्ता नहीं है किन्तु उसके पीछे जो भली बुरी भावना होती है वह बंधन का कारण है। गृहस्थावास में रहकर अपना जीवन इस प्रकार व्यतीत करना कि उसमें किसी को कष्ट न हो। सदा मन में ईश्वर का ध्यान रखते हुए जो अपना गृहस्थी का कार्य करता है वह संसार में निर्लिप्त रह सकता है। निर्लिप्त रहकर दुनियादारी का काम चलाना सरल काम नहीं है। किन्तु जिसे परमात्मा से भी भेंट करनी है और संसार व्यवहार भी साधना है उसके लिए एकमात्र यही मार्ग है जो इस प्रार्थना में भक्त ने बताया है–

ज्यों पनिहारी कुम्भ न विसरे, नटवो नृत्तविहार।
पलक न विसरे पदमणि पिऊ भणी चकवी विसरे न मान।।

जैसे होशियार पनिहारी सिर पर मटका रखकर चलती है। मार्ग में उसे उसकी सखियां मिल जाती हैं। उनको देखकर वह बड़ी प्रसन्न होती है। उनसे बातचीत किये बिना उससे रहा नहीं जाता। मस्तक पर पानी से भरा हुआ घड़ा रखा हुआ है। फिर भी बातें करने का मन है। संसार में किसी से बोले बिना नहीं रहा जाता और न निर्वाह ही होता है। अतः बोलना पडता है। उस पनिहारी को अपनी सखियों से वार्तालाप भी करना है और मस्तक पर रखे घड़े का भी ध्यान रखना है। वह चलती जाती है। सखियों से वार्तालाप भी करती जाती है। और मस्तक पर घड़े का भी पूरा ध्यान रखती है, कही पर गिर न पड़े। लक्ष्य भी साधना और व्यवहार भी रखना। पनिहारी मे दोनो बातें पाई जाती हैं। इस कला में पनिहारी–पानी लाने वाली बडी चतुर हैं।

मैंने स्वयं अपनी आंखों से देखा है कि एक बार एक बाई ने अपने पैर में लगा हुआ कांटा निकाल लिया। कांटा निकाल लेना साधारण बात है। किन्तु विशेष परिस्थिति में इतना छोटा काम भी महत्वपूर्ण बन जाता है। उस बाई के सिर पर ऊपरा ऊपरी दो घड़े रखे हुए थे। एक छोटा मटका उसकी बगल में था। इतने में चलते–चलते पैर मे कांटा लग गया। वह ठहर गई और बडी चतुराई से पैर को ऊंचा उठाकर एक हाथ से कांटा खींच लिया। उस वक्त उसको अपने घडे का कितना ध्यान था यह भुक्त भोगी व्यक्ति ही जान

सकता है। उसने तीनों घड़ों में से किसी को न गिरने दिया।

इसी प्रकार कई स्त्रियां सिर पर मटका रखे हुए बातें करती जाती हैं। किन्तु उनका ध्यान मटके में होता है। कोई दर्शक यह कह सकता है कि यह पनिहारी है या बतोकड़ी(बातूनी) स्त्री है। पर यदि बातें करते हुए भी वह अपने सिर पर के घड़े को नहीं गिरने देती है तो लोग कुछ भी कहते रहें, वह कुशल पनिहारी मानी जाती है। और उसके काम में किसी प्रकार का हर्ज नहीं होता। यदि बातों से लगकर वह घड़े को भूल जाय और असावधानी से उसे गिरा दे तथा फोड डाले तो वह कुशल पनिहारी नहीं कही जा सकती। लोगों का अधिकार है कि वे ऐसों की टीका टिप्पणी किया करते हैं।

पनिहारी के दृष्टान्त से आप लोग आगे का विचार समझ लो। दो पैसे के घड़े के लिए यदि पनिहारी सावधानी न रखे तो वह फूहड़ स्त्री गिनी जाती है। लोग उसकी निन्दा करते हैं कि कैसी बातूनी स्त्री है जो बातों-बातों में अपना घड़ा फोड़ बैठी है।

अब आप लोग ईश्वर का विचार करो। ईश्वर की महत्ता पनिहारी के घड़े के बराबर भी आंकते हो या नहीं? आप लोग घर बार को संभालते हो किन्तु ईश्वर को भी संभालते हो या नहीं? कहने को तो सभी यह कहते हैं कि हम ईश्वर को याद करते हैं। सदा उसका ध्यान रखते हैं। किन्तु उसका पता कैसे लगे कि आप उसे संभालते हो या नहीं। घड़ा या दुनियादारी के काम प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं किन्तु हृदय में निवास करने वाला प्रभु प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देता। आपके हृदय की बात कौन जान सकता है कि आप ईश्वर को भूल हुए हैं कि याद किए हुए हैं। अतः अपना-अपना हृदय स्वयं ही तपासना चाहिये।

घर धन्धे के काम में लगकर सिर पर रखा हुआ ईश्वर रूपी घट किस प्रकार फूट सकता है और किस प्रकार उसका रक्षण किया जा सकता है यह बात बड़ी गहरी और लम्बी है। संक्षेप में इतना कहता हूं कि आप अपने नैतिक जीवन की रक्षा भी करते हैं या नहीं? आपका अपने माता-पिता, भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्रादि के साथ जो नैतिक संबंध है उसका पालन करते हो या नहीं?

आप कह सकते हैं कि हम मां बाप को मां बाप मानते हैं। किन्तु मानने के साथ साथ आपकी उनके प्रति कोई जिम्मेदारी भी है या नहीं? उस जिम्मेवारी को आप निभाते हैं या नहीं? माता-पिता का पुत्र की रग-रग पर आधिपत्य हैं। चाहे शास्त्रीय दृष्टि से देखें चाहे वैज्ञानिक दृष्टि से इस शरीर

पर माता–पिता का अधिकार है। अतः माता पिता यदि शरीर की मांग करें तो भी पुत्र का कर्त्तव्य है कि वह उनको अपना शरीर सौंप दे। वैसे पिता अपनी सन्तान का किंचित् भी कष्ट नहीं देख सकते और न कष्ट देते हैं किन्तु उनका यह अधिकार अवश्य है। क्या आप लोग पिता का यह अधिकार स्वीकार करते हो कि वे शरीर भी मांग सकते हैं? यह अधिकार स्वीकार करना ही सच्ची कर्तव्य निष्ठा है।

इसी प्रकार जिस कुटुम्बी के साथ जैसा सम्बन्ध है उसका खयाल करके नैतिक जीवन की परिपुष्टि करते हैं या नहीं इस बात पर ध्यान दीजिये। यदि नैतिक जीवन की भी रक्षा नहीं की जा सकती तो आध्यात्मिक जीवन की बातें करना व्यर्थ है। जो व्यक्ति जीवन के प्रत्यक्ष संबंध का यथावत् निर्वाह और पालन नहीं कर सकता अथवा उस संबंध को स्वीकार भी नहीं करता वह अनुमान और आगम प्रमाण से कही गई आध्यात्मिक जीवन की बात को क्या समझेगा और मानेगा। आध्यात्मिक जीवन के लिए नैतिक जीवन होना आवश्यक है। जो नैतिक जीवन की रक्षा करता है उसके लिए कहा जा सकता है कि वह मार्ग पर है।

घर–बार में रहते हुए भी यदि मनुष्य नीतिमय जीवन बिताता है तो वह ईश्वर स्मरणरूपी घडे की भी रक्षा करता है और व्यवहार भी चलाता है। संसार में रहकर संसार के कामों में अनासक्त रहना–गृद्धि भाव न आने देना जीवन की एक विशिष्ट कला है। प्रार्थना में बताये हुए चारो दृष्टातो पर शाति से विचार करना चाहिये।

नट रस्सी पर चलता है और लोगों को प्रसन्न करता है। किन्तु इसका ध्यान अपने आपको बचाने की तरफ रहता है। सती स्त्री पति के वियोग में सब प्रकार के काम करती हुई भी उसका सदा ध्यान रखती है। चकवी भी सूर्य को नहीं भूलती। इसी प्रकार कुटुम्ब में रहकर व्यापार धन्धा और गृहस्थी का संचालन करते हुए भी जो पुरुष परमेश्वर को नही भूलता हर क्षण उसका ध्यान रखता है वह जीवन की कला समझता है। उसका जीवन आदर्श जीवन है। ऐसे व्यक्ति को पूर्ण त्याग मार्ग स्वीकार करने मे कठिनाई नही होती। उसका मन पहले ही तैयार रहता है। वह जो कुछ करता है जलकमलवत रहकर करता है। ऐसे ही एक महापुरुष का जीवन चरित्र मैं आपको कई दिनो से सुना रहा हूं।

शास्त्र–

अनाथी मुनि गृहस्थावास मे रहकर अपने नैतिक जीवन को [illegible]

से दूर नहीं भागे थे। उनका विशेष आध्यात्मिक मार्ग पर आरूढ़ होना था अतः उस जीवन से अधिक उच्चतर जीवन की ओर प्रयाण किया था।

अनाथी मुनि ने राजा श्रेणिक को यह वात वताई कि मेरे माता–पिता आदि मेरे वड़े हितचिंतक थे। वे मेरे लिए सदा यत्नशील थे। सुख के साथी वहुत होते हैं किन्तु दुःख के साथी कम। मेरे माता–पिता, पत्नी आदि दुःख में भी साथ न छोड़ने वाले थे।

यदि अनाथी मुनि का अपने कुटुम्बियों के प्रति नैतिकता पूर्ण व्यवहार न होता तो क्या मां–वाप और भाई आदि उनके लिए इतना कष्ट भोगने और आर्थिक हानि सहन करने के लिए तैयार होते? कदापि नही। अनाथी मुनि ने रुग्णावस्था से पूर्व अपने सम्वन्धियों की वड़ी लगन से सेवा की थी और उनके प्रति अपने कर्त्तव्यों को अच्छी तरह निभाया था अतः कुटुम्वीजन भी उनके लिए हर प्रकार का भोग देने के लिए तैयार थे। अगर पहले उन्होंने अपना कर्तव्य न निभाया होता तो माता–पिता कहते कि हम क्या करें अपना किया कर्म भोगो। तुमने हमारा कहना कहां माना था? तुम वड़े स्वेच्छाचारी थे। अव अपने हाथ का किया कर्म भोगो। भाई के प्रति कर्तव्य न निभाया होता तो भाई भी दुःख के समय पूर्व की वातें याद कराकर और दुःखी करते। इसी प्रकार, खुद का चरित्र निर्मल न रखा होता तो स्त्री भी कहती कि मुझे क्या सुख दिया जो मैं सेवा करूं, वह सच्चा प्रेम न दिखलाती।

अनाथी मुनि कहते हैं कि मैंने गृहस्थ अवस्था में सवके साथ यथायोग्य सम्वन्ध निभाया था अतः सव लोग मेरे दुःख में दुःखी थे और दुःख मिटाने के लिए वड़े आतुर थे। इतना होने पर भी मेरा रोग न मिटा। जिससे मैं इस परिणाम पर पहुंचा कि आध्यात्मिक जीवन के विना नैतिक जीवन भी अपूर्ण है। जिस प्रकार नैतिक जीवन के विना आध्यात्मिक जीवन अपूर्ण है उसी प्रकार आध्यात्मिक जीवन के विना नैतिक जीवन भी अपूर्ण है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

कई लोग कहते हैं कि आध्यात्मिक वात हमारी समझ में नहीं आती। उनका कहना ठीक है। नैतिक जीवन के अभाव में आध्यात्मिक वात कैसे आ सकती है? जिस मनुष्य के सिर पर कर्ज हो वह दुकान लगाकर शांतिपूर्वक व्यापार कैसे कर सकता है? यदि वह दुकान पर वैठता है तो कर्जदार लोग आकर खडे हो जाते हैं और उसे तंग करते हैं। किन्तु यदि वही मनुष्य कर्जदारों से पिण्ड छुडाने के लिए सामायिक या पौषध लेकर वैठ जाय तो क्या वह सचमुच आध्यात्मिकता में शामिल गिने जायेंगे। जो नैतिक जिम्मेवारी

नहीं निभाता वह आध्यात्मिकता को क्या निभायेगा? यह तो कर्जदारी के कष्ट से निवृत्ति प्राप्त करने का एक तरीका हुआ। मगर अध्यात्म मार्ग में तो इन कष्टों से भी अधिक कष्ट आते हैं। जो छोटे कष्टों से डर कर जीव छिपाया करता है वह बड़े कष्टों को कैसे सहन कर सकता है? अतः नैतिक जीवन अच्छी तरह बिताने की जिसकी तैयारी नहीं है वह आध्यात्मिकता के मार्ग में गमन करने लायक नहीं है। शास्त्रकारों ने भी नैतिक जीवन की उपेक्षा करके आध्यात्मिक जीवन की बात नहीं बताई। जब नैतिक जीवन शुद्ध हो, सिर पर कर्ज न हो तब पूर्ण आध्यात्मिक जीवन बिताया जा सकता है। और तभी अध्यात्म की बात समझ में आती है।

पनिहारी के घड़े परसे यह बात समझ लो। जैसे पनिहारी के सिर पर पानी का घड़ा है। वैसे ही मनुष्य के सिर पर आध्यात्मिक जीवन का घड़ा है। पनिहारी अपनी सखियों से बातें करके व्यवहार साधती है और घड़े का भी ध्यान रखती है। उसी प्रकार नैतिक जीवन की बातें हैं। जो कुशल गृहस्थ है वह घड़े की संभाल की तरह अपने आध्यात्मिक जीवन का पूरा ध्यान रखता है और साथ में अपने कुटुम्बीजनों, ग्रामवासियों और देशवासियों के प्रति अपने कर्तव्यों को भी निभाता है। जो कोरी आध्यात्मिक बातें करता रहे या कुछ क्रियाकाण्ड भी करता रहे और नैतिक फर्ज अदा करे तो उसकी लोग निन्दा करेंगे। कहेंगे कि श्रावक या साधु होकर इसने ऐसा व्यवहार किया। इसलिए मित्रों! पहले नैतिक जीवन की तरफ देखो! उसे सुधारने का प्रयत्न करो फिर आध्यात्मिक जीवन की तरफ लक्ष्य करो कि मैं कौन हूं, कहां से आया हूं, मेरा वास्तविक स्वरूप क्या है आदि। मैं की पहचान के लिए एक कवि कहता है—

मैं जिस्म जिगर और जहां नहीं, जाना ना।
फिर क्यों नहीं कहता खुदा अगर है दाना।
किसने तुझ को बांधा बना जो बन्दा।
कौन पेच का पड़ा है तुझ पर फन्दा।
तू अपने आप को देख न हो मतिमन्दा।
है कौनसी वह बदबू जो हुआ तू गन्दा।
गर तूने अपने को जिस्म नहीं जाना ना।।फिर।।
ये हाथ-पांव और सिर भी नहीं कुछ तू है।
सीना और बाजू पर भी नहीं कुछ तू है।
जनखा और नर भी नहीं कुछ तू है।
तू अपने बीच में आप ही समाना।।फिर।।

किसी ज्ञानी ने किसी मनुष्य से पूछा कि तू कौन है? उसने उत्तर दिया कि अमुक मेरा नाम है, अमुक का पुत्र हूं। आदि। पूछने वाले ने कहा कि ये बातें मैं नहीं पूछता। मैं तो पूछता हूं कि तू कौन है? क्या तू आंख नाक कान शरीर आदि है? कहने को तो वह यह कह देता है कि मैं जिस्म–शरीर नहीं हूं। किन्तु परीक्षा करने पर वह खरा नहीं उतरता। कई लोग लोक लज्जा के भय से भी अपने को देह नहीं बताते। नास्तिक कहे जाने के डर से लोग ऊपर से आध्यात्मिक उतर दे देते हैं कि हम आत्मा हैं जो अजर अमर अविनाशी हैं। मगर दिल में उनको आत्मा की अमरता पर विश्वास नहीं होता।

वस्तुतः हाथ पांव शरीरादि "मैं" नहीं हूं। इन सबको जो जानने वाला है वही मैं हूं। जीव! तू इस बात पर विचार कर कि जब तू माता के पेट में था तब कैसा था? जब जन्मा तब कैसा था और अब कैसा है? गर्भावस्था से लेकर अब तक की सारी अवस्थाओं पर विचार कर। अन्न, जल, दूध, शाक हवा आदि से यह शरीर बना हुआ है।

भू जल अग्नि पवन नभ मेल। पांचों भये चेतना खेल।।

पृथ्वी, पानी, अग्नि, पवन और आकाश इन पंचभूतों के संयोग से यह शरीर बना हुआ है। चेतना इसमें निवास करने वाला कुछ और ही है। विविध अवस्थाओं में घूमने वाला आत्मा शरीर से भिन्न है। गर्भावस्था, बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था ये सब बातें शरीर पर लागू होती हैं। आत्मा की अवस्था सदा एक प्रकार की रहती है। वह जवान और बूढ़ी नहीं होती।

मैंने वजीर वीरजी भाई की दी हुई पुस्तक का कुछ अंश पढ़ा है। जितना अंश पढ़ लिया है उसमें लिखा है कि 'मालिक ने हुक्म दिया है कि तू तेरी किताब वांच। तेरे को सब हाल मालूम हो जावेंगे।'

दुनिया में अनेक पुस्तक और ग्रंथ हैं। आजकल यंत्र–युग है। छापेखाने का प्रचार बढ़ जाने से पुस्तकों की कमी नहीं रही है। किन्तु इस पुस्तक में लिखे वाक्य का भावार्थ यह है कि ऐ मनुष्य! तू अपने शरीर रूपी किताब को पढ़! इस किताब को बारीकी से देख कि इसके भीतर क्या–क्या हैं। इस शरीर का संचालक कौन है, इस पर विचार कर।

आप लोग घड़ी को चलती हुई देख रहे हो। किन्तु यदि इसमें कमानी न हो तो क्या यह चल सकती है? इसी प्रकार यह शरीर रूपी घडी भी आत्मा रूपी कमानी के बिना नहीं चल सकती। आत्मा रूपी कमानी अलग है और शरीर रूप घडी अलग। आप उसको आंखों से देखना और शरीर से स्पर्श करना चाहते हो किन्तु वह देखने व छूने योग्य नहीं है। वह न देखा जा

सकता है और न छुआ जा सकता है। फिर भी वह है अवश्य। एक उदाहरण रखकर यह बात आपको समझाता हूं। जरा ध्यान देना।

एक स्त्री अपने पति से कहती है कि आप सदा आत्मा की बात किया करते हो किन्तु आत्मा कहां है यह मुझे भी बताओ। पति ने कहा—अच्छा बताता हूं। थोड़ा नमक का डला ले आ। पत्नी नमक का एक ढेला ले आई। पति ने उस ढेले को पानी के एक गिलास में डाल दिया और हिला दिया जिससे वह नमक पानी में मिल गया। उसकी अलग हस्ती नहीं रही। पति ने पत्नी से कहा कि उस नमक की डली को वापस निकाल। पत्नी ने उत्तर दिया कि अब वह वापस कैसे निकाली जा सकती है। पति ने कहा—तू इस पानी को चखकर देख कि इसमें नमक है या नहीं। पत्नी ने पानी को सब तरफ से चखकर कहा कि इसमें नमक है। तब पति ने कहा कि जैसे नमक पानी में घुला—मिला हुआ है वैसे ही आत्मा भी शरीर में मिला हुआ है। यदि पैर में कांटा लग जाय तब भी आत्मा को कष्ट होता है और सिर के बाल उखड़ जाएं तब भी। यदि शरीर में आत्मा न हो तो वह मिट्टी के समान है, उसमें बदबू आने लगती है। आत्मा के निकल जाने पर शरीर को जला दिया जाता है फिर भी उसे कुछ वेदना नहीं होती। वेदना आत्मा के रहते अनुभव होती है। आत्मा अनुभव से ज्ञात होती है। आंखों से या हाथों से नही मालूम पड़ती। उसका स्वरूप ही इस प्रकार का है। उसका कोई रूप नहीं होता अत हाथ में लेकर देखने की इच्छा करना व्यर्थ है।

इसके उपरान्त आत्मा की सिद्धि के लिए एक और प्रमाण है। संसार में किसी भी वस्तु का सर्वथा नाश नहीं होता। वस्तु का रूपान्तरण होता रहता है। एक पर्याय बदल कर दूसरी पर्याय बन जाती है। जब छोटी से छोटी वस्तु पर भी यह नियम लागू होता है जो आत्मा सौ वर्षो तक एक शरीर मे निवास करके बडे—बड़े कार्य सम्पन्न करता है वह सर्वथा नष्ट कैसे हो सकता है? इतने पर भी कोई शरीरनाश के साथ आत्मनाश की कल्पना कर लेते हैं तो इसका क्या उपाय? उनकी यह भूल है। अगर किसी को अपने अनुभव से यह बात समझ में न आये तो आगम प्रमाण से इसको मानना और समझना चाहिये। मै शरीर नहीं हूं किन्तु आत्मा हूं। तथा शरीर मेरा है, मैं शरीर का नहीं हूं।' इस बात पर गौर करियेगा। आप अशरूफुल मखलूकात हैं अर्थात् दुनिया के बादशाह है।

दुनिया के बादशाह होकर आप कही हीन आचरण तो नहीं करते हैं इसका ध्यान रखियेगा। बीडी जैसी तुच्छ और स्वास्थ्यनाशक वस्तु न [illegible]

नहीं काम में लाते हैं न? गांधीजी ने अपनी आत्म–कथा में लिखा है कि काका को बीड़ी पीते देखकर मुझे बीड़ी पीने का शौक उत्पन्न हुआ। मैंने सोचा इसमें कुछ मजा आता होगा तब तो काका पीते हैं। इस प्रकार सोचकर मैने बीड़ी पीना आरम्भ किया। बीड़ी के लिए पैसें की जरूरत होती है। मैंने चोरी करना शुरू किया। पहले नौकरों के पैसों की चोरी करने लगा। किन्तु जब उसमें कुछ न मिलने लगा तब घर में चोरी करने लगा। जब घर में से भी कुछ न मिलने लगा तब विचार आया कि इस जीवन से तो मर जाना अच्छा है। गांधीजी ने इस व्यसन को छोड़ दिया और महापुरुष बन गये। आप लोग भी बादशाह हैं। देखादेखी बुराई में न गिरकर अपना जीवन उच्च बनाइये। आपको यह सोचना चाहिए कि मैं शरीर नहीं हूं आत्मा हूं। आत्मा के गुणों का जिस प्रकार विकास हो उस प्रकार सदाचरण सेवन करूंगा तथा मस्तक चले जाने पर भी दुर्व्यसनों में न गिरूंगा। यह नैतिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन की भूमिका है। सुदर्शन के चरित्र से इस बात को पुष्ट करता हूं। सुदर्शन चरित्र–

कर प्रपंच अमया मूर्छानी नृप बोले यों वाणी।
कौन उपाधि तुम तन बाधी कहो–कहो महारानी।।रे धन।।
ऊं हूंकार करे नृपरानी शब्द न एक उचारे।
धाय पण्डिता कपट चरित्रा खोटी जाल पसारे।।रे धन।।
महाराज तुम युद्ध सिधाये रानी देव मनाये।
जो आवे सुख से महाराजा तो प्रतीति तुम पाये।।रे धन।।
कार्तिकी पूर्णिमा महोत्सव पूजा बिन बहार नहीं जाऊं।
बिसर गई यह नाथ साथ तुम ताके फल दरसाऊं।।रे धन।।

सुदर्शन ने उत्सव की धमाल के समय में पौषध किया। जब संसार विष लालसा के तूफान पर चढ़ता है तब बुद्धिमानों और भक्तों को धर्म कार्य और प्रभु भक्ति करने का जोश चढ़ता है। वे सोचते हैं कि जब संसार लोग अपना कार्य नहीं भूलते तो हम अपना काम क्यों भूलें? धर्मी धर्म पर आरूढ़ होते हैं और पापी पाप मार्ग पर। दोनों अपना–अपना काम करते हैं।

इस नियम के अनुसार साधारण जनता कौमुदी महोत्सव मनाने में लगी और सुदर्शन पौषध व्रत में लगे।

राजा, रानी तथा नगर के लोग बाहर उत्सव मनाने गये हैं। अभया ने पण्डिता से पूछा कि धाय! क्या आज भी मेरी मनोकामना पूरी न होगी?

पण्डिता ने कहा–अवश्य पूर्ण होगी।

अभया और पण्डिता का आपस में मां बेटी का सम्बन्ध है फिर भी पण्डिता अभया को कैसी बुराई की तरफ घसीट रही है। आजकल तो कोई माता ऐसा नहीं करती है न? संभव है ऐसा काम माताएं न करती हों किन्तु अपनी अज्ञानता से बेटियों को फैशनेबल बनाकर इसी बुराई की तरफ आकर्षित करती हैं। लाड़ प्यार में फैशन का पोषण करके उनके भावी जीवन को खतरनाक बनाने में कई मातायें निमित्त बनती हैं। यह लाड़ प्यार है या उनकी मौत को निकट लाना है।

अभया को पण्डिता ने कहा कि तू शरीर में देव आने का बहाना कर नीचे गिर पड़। फिर आगे का काम मैं संभाल लूंगी। रानी स्त्री चरित्र में चतुर थी अतः वह शरीर कंपा कर नीचे गिर पड़ी। रानी के गिरते ही दासियां दौड़कर राजा के पास पहुंचीं। राजा से कहा—महाराज! शीघ्र चलिये। न मालूम रानी को क्या हो गया है? राजा कामवासना से पराजित था। अतः तुरन्त भागा हुआ रानी के पास आया। आकर रानी के मुख पर वस्त्र हटाकर पूछने लगा कि महारानी जी क्या बात हुई है? रानी और अधिक कपड़ा तान कर हा हा हूं हूं करने लगी। रानी की यह दशा देखकर राजा पूछने लगा कि यह क्या हो गया है? तब अच्छा अवसर हाथ लगा है ऐसा मानकर पंडिता कहने लगी—महाराज! वैसे तो यह बडी विनीत है। कभी आपकी आज्ञा का लोप नहीं करती आपके आने पर आदर देती और प्रसन्नवदना होती है। किन्तु आज यह परवशा है। यह सदा आपकी कुशलता का यत्न करती रहती है। आप बाहर रहकर प्रजा की रक्षा करते हैं और यह भीतर रहकर आपकी रक्षा करती है।

जब आप युद्ध के लिए बाहर गये थे तब इसने देव की यह मनौती की थी कि यदि मेरे पतिदेव सुरक्षित लौट आये तो मैं तुम्हारी पूजा करुगी। जब तक पूजा न करूंगी तब तक महल के बाहर पैर न धरूंगी। यह रानी की प्रतिज्ञा थी। किन्तु आज आपका हुक्म शहर के बाहर जाने का हुआ। आपके हुक्म को पालने में यह अपनी प्रतिज्ञा भूल गई। यह बडी आज्ञाकारिणी है। इसी आज्ञाकारिता में देव की पूजा करने की बात ध्यान में न रही और यहां चली आई है। यह देव को भूल गई मगर देव इसको कैसे भूल सकता है? मेरा ख्याल है कि देव प्रकोप के कारण यह कांपकर नीचे गिर पडी है।

तब राजा बोले कि अब क्या करना चाहिये। वह उपाय बताओ जिससे देव प्रकोप शांत होकर रानी स्वस्थ हो जाय। पण्डिता ने कहा कि महाराज! आप हाथ जोडकर सिर नमाकर देव से प्रार्थना करो कि रानी का

नहीं काम में लाते हैं न? गांधीजी ने अपनी आत्म–कथा में लिखा है कि काका को बीड़ी पीते देखकर मुझे बीड़ी पीने का शौक उत्पन्न हुआ। मैंने सोचा इसमें कुछ मजा आता होगा तब तो काका पीते हैं। इस प्रकार सोचकर मैने बीड़ी पीना आरम्भ किया। बीड़ी के लिए पैसें की जरूरत होती है। मैंने चोरी करना शुरू किया। पहले नौकरों के पैसों की चोरी करने लगा। किन्तु जब उसमें कुछ न मिलने लगा तब घर में चोरी करने लगा। जब घर में से भी कुछ न मिलने लगा तब विचार आया कि इस जीवन से तो मर जाना अच्छा है। गांधीजी ने इस व्यसन को छोड़ दिया और महापुरुष बन गये। आप लोग भी वादशाह हैं। देखादेखी बुराई में न गिरकर अपना जीवन उच्च बनाइये। आपको यह सोचना चाहिए कि मैं शरीर नहीं हूं आत्मा हूं। आत्मा के गुणों का जिस प्रकार विकास हो उस प्रकार सदाचरण सेवन करूंगा तथा मस्तक चले जाने पर भी दुर्व्यसनों में न गिरूंगा। यह नैतिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन की भूमिका है। सुदर्शन के चरित्र से इस बात को पुष्ट करता हूं।

सुदर्शन चरित्र–

कर प्रपंच अभया मूर्छानी नृप बोले यों वाणी।
कौन उपाधि तुम तन बाधी कहो–कहो महारानी।।रे धन।।
ऊं हूंकार करे नृपरानी शब्द न एक उचारे।
धाय पण्डिता कपट चरित्रा खोटी जाल पसारे।।रे धन।।
महाराज तुम युद्ध सिधाये रानी देव मनाये।
जो आवे सुख से महाराजा तो प्रतीति तुम पाये।।रे धन।।
कार्तिकी पूर्णिमा महोत्सव पूजा बिन बहार नहीं जाऊं।
बिसर गई यह नाथ साथ तुम ताके फल दरसाऊं।।रे धन।।

सुदर्शन ने उत्सव की धमाल के समय में पौषध किया। जव संसार विष लालसा के तूफान पर चढ़ता है तव वुद्धिमानों और भक्तों को धर्म कार्य और प्रभु भक्ति करने का जोश चढ़ता है। वे सोचते हैं कि जव संसार लोग अपना कार्य नहीं भूलते तो हम अपना काम क्यों भूलें? धर्मी धर्म पर आरूढ होते हैं और पापी पाप मार्ग पर। दोनों अपना–अपना काम करते हैं।

इस नियम के अनुसार साधारण जनता कौमुदी महोत्सव मनाने में लगी और सुदर्शन पौषध व्रत में लगे।

राजा, रानी तथा नगर के लोग वाहर उत्सव मनाने गये हैं। अभया ने पण्डिता से पूछा कि धाय! क्या आज भी मेरी मनोकामना पूरी न होगी?

पण्डिता ने कहा–अवश्य पूर्ण होगी।

अभया और पण्डिता का आपस में मां बेटी का सम्बन्ध है फिर भी पण्डिता अभया को कैसी बुराई की तरफ घसीट रही है। आजकल तो कोई माता ऐसा नहीं करती है न? संभव है ऐसा काम माताएं न करती हों किन्तु अपनी अज्ञानता से बेटियों को फैशनेबल बनाकर इसी बुराई की तरफ आकर्षित करती हैं। लाड़ प्यार में फैशन का पोषण करके उनके भावी जीवन को खतरनाक बनाने में कई मातायें निमित्त बनती हैं। यह लाड़ प्यार है या उनकी मौत को निकट लाना है।

अभया को पण्डिता ने कहा कि तू शरीर में देव आने का बहाना कर नीचे गिर पड़। फिर आगे का काम मैं संभाल लूंगी। रानी स्त्री चरित्र में चतुर थी अतः वह शरीर कंपा कर नीचे गिर पड़ी। रानी के गिरते ही दासियां दौड़कर राजा के पास पहुंचीं। राजा से कहा—महाराज! शीघ्र चलिये। न मालूम रानी को क्या हो गया है? राजा कामवासना से पराजित था। अतः तुरन्त भागा हुआ रानी के पास आया। आकर रानी के मुख पर वस्त्र हटाकर पूछने लगा कि महारानी जी क्या बात हुई है? रानी और अधिक कपडा तान कर हा हा हूं हूं करने लगी। रानी की यह दशा देखकर राजा पूछने लगा कि यह क्या हो गया है? तब अच्छा अवसर हाथ लगा है ऐसा मानकर पंडिता कहने लगी—महाराज! वैसे तो यह बडी विनीत है। कभी आपकी आज्ञा का लोप नहीं करती आपके आने पर आदर देती और प्रसन्नवदना होती है। किन्तु आज यह परवशा है। यह सदा आपकी कुशलता का यत्न करती रहती है। आप बाहर रहकर प्रजा की रक्षा करते हैं और यह भीतर रहकर आपकी रक्षा करती है।

जब आप युद्ध के लिए बाहर गये थे तब इसने देव की यह मनौती की थी कि यदि मेरे पतिदेव सुरक्षित लौट आये तो मैं तुम्हारी पूजा करूंगी। जब तक पूजा न करूंगी तब तक महल के बाहर पैर न धरूंगी। यह रानी की प्रतिज्ञा थी। किन्तु आज आपका हुक्म शहर के बाहर जाने का हुआ। आपके हुक्म को पालने में यह अपनी प्रतिज्ञा भूल गई। यह बडी आज्ञाकारिणी है। इसी आज्ञाकारिता में देव की पूजा करने की बात ध्यान में न रही और यहां चली आई है। यह देव को भूल गई मगर देव इसको कैसे भूल सकता है? मेरा ख्याल है कि देव प्रकोप के कारण यह कांपकर नीचे गिर पड़ी है

इसमें कोई दोप न था। दोप मेरा था। मैंने ही रानी को महल के वाहर जाने की आज्ञा दी थी। मैं वापस रानी को महल में भेज देता हूं। जब तक आपकी पूजा करके मनौती पूरी न कर लेगी तव तक वह राजमहल से वाहर न निकलेगी। इस प्रार्थना के बाद आप देव का चमत्कार देखिये कि क्या होता है।

राजा चक्कर में आ गया। भुलावे में फंस गया। स्त्री–चरित्र के लिए यह प्रसिद्ध है कि **'देवो न जानाति कुतः मनुष्यः।'** स्त्री का पड़यन्त्र देव भी नहीं जान सकता तो बेचारा मनुष्य क्या जाने। पण्डिता की सलाह के अनुसार राजा ने देव के हाथ जोड़े, सिर नमाया और प्रार्थना की। इतने में पण्डिता ने रानी की तरफ आंख का इशारा किया। रानी चट से खड़ी हुई। पण्डिता राजा से वोली कि देखिये महाराज! देव का कैसा चमत्कार है। राजा आश्चर्यान्वित होकर स्तम्भित रह गया। मन ही मन देव का महत्व स्वीकारने लगा।

मित्रों! आजकल भी इस प्रकार की ठगाई बहुत चलती है। धूर्तता द्वारा लोगों से देव पूजा या यज्ञ तथा कुर्वानी के नाम से अनेक जीवों की हिंसा कराई जाती है। देव पूजा, यज्ञ या कुर्वानी का सच्चा अर्थ लोग नहीं जानते।

रानी के खड़े होने पर राजा ने कहा कि अच्छा हुआ जो पण्डिता ने देव के रुष्ट होने की वात बता दी। नहीं तो आज तुम्हारी खैर न थी। अव तुम राजमहल में चली जाओ और सवसे प्रथम देव की पूजा करो। इस विपय में पण्डिता जैसा कहे वैसा करना। अन्यथा मेरा और तुम्हारा जीवन विगड़ जायेगा। हमारा तुम्हारा सांसारिक सुख नप्ट हो जायेगा।

लोग सांसारिक सुख को पकड़ कर रखना चाहते हैं। किन्तु प्रकृति का कुछ ऐसा नियम है कि ज्यों–ज्यों सुख के साधनों की तरफ मन आकर्पित होता है त्यों–त्यों वे दूर भागते जाते हैं। पुरुप की छाया का दृप्टान्त यहां ठीक लागू होता है।

राजा की आज्ञा सुनकर रानी ने कहा–महाराज! आपकी आज्ञा मेरे सिर पर है। जो हुक्म हुआ है उसका पालन करती हूं। इतना कहकर वह म्याने में वैठकर दासियों के साथ राजमहल में चली गई।

पण्डिता अपनी प्रशंसा करने लगी कि देख री, मैंने राजा को किस प्रकार चकमा दिया। और रानी भी कहने लगी कि मैं कितनी होशियार रही। मैंने कितनी कुशलता से पार्ट अदा किया। इस प्रकार दोनों अपनी–अपनी

मैंने कितनी कुशलता से पार्ट अदा किया। इस प्रकार दोनों अपनी–अपनी चतुराई पर फूली न समाती थीं। रानी के मन में वासना की भावना बडी तीव्रता से कार्य कर रही थी। उसका मन सुदर्शन पर अटका हुआ था। उसने पण्डिता से कहा कि यह सब तो ठीक हो गया। अधिक खुशी की बात तो तब होगी जब मूल काम सिद्ध हो जाय। सुदर्शन को राजमहल में लाने का खास काम तो अभी बाकी है। पण्डिता–बोली–रानी! उतावली मत होओ। सब कार्य पूरा हुआ जाता है। पवन बड़े–बड़े झाड़ों को भी उखाड़ कर फेंक देता है। उसके सामने साधारण तिनके की क्या वकत है? जब राजा भी हमारे दांव में फंस गया तो सुदर्शन क्या वस्तु है? तू सावधान हो जा। मैं अभी सेठ को तेरी सेवा में लाकर उपस्थित करती हूं।

पण्डिता की हिदायत सुनकर रानी रूपी तलवार पैनी हो गई। इस तलवार का घाव कोई विरला ही सहन कर सकता है। बड़े–बड़े ज्ञानी और योगी कहलाने वाले व्यक्ति भी इस चोट को सहन न कर सके और इसके सामने हार खा गये। पण्डितों की पण्डिताई और योगियों की योग विद्या काम के बाणों के सामने कुण्ठित हो जाती है। आइये, जरा ध्यान से देखिये कि सुदर्शन इस पैनी असिधारा की चोट में किस प्रकार अपना बचाव करता है।

एक तरफ अभया और पण्डिता ने सेठ को फंसाने के लिए जाल बिछा रखा है और दूसरी तरफ सेठ पौषधोपवास व्रत लेकर आत्म चिंतवना कर रहा है। दोनों तरफ पूरी तैयारी है, पूरा मनोबल है। एक तरफ ईश्वर का बन्दा है। दूसरी तरफ शैतान का। इन दोनों की कैसी टक्कर होती है, कौन हारता है और कौन जीतता है, यह देखना है।

पण्डिता अभया को विशेष सावधान करती है कि ऐसा न हो कि मैं सेठ को यहां ले आऊं और तू ताकती ही रह जाय तेरा काम तू पूरा करना। यदि अवसर चूक गई तो कपिला के सामने नीचा देखना पडेगा।

कभी कभी लोगों को झूठा भ्रम हो जाता है। वे नीचा नहीं देखने लायक कार्य को नीचा देखने लायक मान बैठते है। और इस भ्रम मे पडकर बडा अनर्थ कर डालते है। संसार मे ऐसा चलता है, किन्तु धर्म पथ पर आरूढ होने वाले लोग कैसी भी दशा में अपने पथ से विचलित नहीं होते। वे प्रत्येक दशा मे दृढ रहते है।

पण्डिता सुदर्शन को राजमहल मे लाने का क्या प्रयत्न करती है यह विचार आगे देखा जायेगा।

राजकोट

3.9.36

दृढ़तम संकल्प

शान्ति जिनेश्वर सायब सोलहवां

प्रार्थना—परमात्मा की प्रार्थना अनेकविध की गई है और अनेक विध ही उसमें शक्ति बताई गई है। जिस प्रकार किसी सांकल की एक कड़ी पकड़ कर खींचने से सारी सांकल खींची हुई चली आती है उसी प्रकार परमात्मा के किसी एक गुण की स्तुति या प्रार्थना करने से सारे गुण उपलब्ध हो जाते हैं।

सांकल की कड़ियां जिस तरह आपस में एक दूसरी से जुड़ी रहती हैं उसी प्रकार आत्मा या परमात्मा के गुण भी एक दूसरे से जुडे हुए हैं। किसी एक गुण की पूर्णता प्राप्त होने पर अन्य सारे गुण स्वतः प्राप्त हो जाते हैं। यदि किसी ने सत्य को पूर्ण रूप से अपना लिया तो अन्य सारे गुण अपने आप प्राप्त हो जायेंगे। जो पूर्ण सत्यवादी होगा वह पूर्ण अहिंसक, पूर्ण सन्तोषी और पूर्ण नम्र आदि होगा। ऐसा ज्ञानियों और अनुभवियों का कथन है।

मैं प्रतिदिन नई–नई प्रार्थना बोलता हूं और ईश्वर की नई–नई शक्तियों की महिमा बताता हूं। इससे कोई इस भ्रम में न पड़ जाय कि क्या ग्रहण किया जाय और क्या नहीं। किसी एक गुण को अपना लेने से अन्य सारे गुण स्वतः प्राप्त हो जाते हैं। यह मैं अभी बता चुका हूं!

भक्त कहता है कि भगवन्! तेरे नाम की महिमा का वर्णन करना मेरी शक्ति से बाहर की बात है। तेरा नामोच्चारण करना मेरी शक्ति से बाहर की बात है। कोई व्यक्ति किसी रत्न की कीमत नहीं आंक सकता। किन्तु मुफ्त से मिलने पर वह रत्न ग्रहण तो कर सकता है। इसी प्रकार तेरे गुणों की महिमा न जानने पर भी गुणकीर्तन करने से लाभ ही है। तेरे नाम–गुण का

महत्व जानकर उच्चारण किया जाय तब तो विशेष लाभ है।

परमात्मा के गुणों का महत्व वर्णन करने की क्षमता न होने पर भी उसके नामोच्चारण से शक्ति प्राप्त होती है। किन्तु उसके पहले तन–मन और वचन की शुद्धि आवश्यक है। जिसका तन वचन और मन शुद्ध है वह परमात्मा का नाम लेने का पूर्ण अधिकारी है। अधिकारी बने बिना लिया गया नाम पूरी तरह लाभदायक नहीं होता। अधिकार और अनाधिकार से लिए गये नाम में बड़ा अन्तर है।

कोई कन्या किसी युवक का किसी कारण से नाम उच्चारण करती है। उसके वाद उस युवक के साथ उसकी सगाई हो जाती है। अब भी वह उसका नाम लेती है। किन्तु तब और अब नाम लेने में कितना अन्तर पड़ गया। पहले वह निस्पृह भाव से उसका नाम बोलती थी कि उसके साथ उसका संबंध तय हो जाने पर वह बड़ी ममता और आदर से नाम उच्चारण करती है। पुरुष वही है। किन्तु सम्बन्ध बदल गया। इसी प्रकार अनधिकार और अधिकारी के नाम लेने में फर्क है। मन, वचन और कर्म शुद्ध बनाकर परमात्मा का नाम लेने वाला अधिकारी गिना जाता है। उसका परमात्मा के साथ गाढ संबंध हो जाता है। तब नाम लेने में बडा अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है। और अनुपम शक्ति मिलती है।

अनुपम शक्ति प्राप्त करने के लिए मन, वचन और काय की शुद्धि करके ' ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः" इस प्रकार तीन बार उच्चारण किया जाता है। भगवान् शांतिनाथ का नामोच्चारण शान्ति प्राप्त करने के लिए किया जाता है न कि सांसारिक उपाधि बढाने के लिए। सांसारिक उपाधि बढाकर जो शान्ति चाहने की कामना करते है वे शान्तिनाथ के नाम का महत्व नही समझते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।

और दूसरी तरफ संसार के भोग विलास हैं, जो झंगड़ों से भी हीनतर है। दोनों वस्तुओं में से क्या मांगना अधिक लाभदायी है यह स्वयं निर्णय करना चाहिये।
जे लोकोत्तर देव नमूं लौकिक थी, दुर्लभ सिद्ध स्वरूप प्रभु तेकिक थी।

यदि लौकिक वस्तुओं की कामना से लोकोत्तर देव को नमन करता हूं तो निश्चय ही सिद्ध स्वरूप की प्राप्ति होना दुर्लभ है। जो पूर्णता प्रदान करने वाला लोकोत्तर देव हैं उनसे संसार की तुच्छ वस्तुओं की मांगणी करना प्रसन्न हुए चक्रवर्ती राजा से सिके हुए चने मांगने के समान है। पूर्ण पुरुष से पूर्णता की मांग करने में ही उसकी सार्थकता है।

शास्त्र–

आत्मा को पूर्णता किस प्रकार प्राप्त होती है, या बात अनाथी मुनि के चरित्र से स्पष्ट करता हूं।

अनाथी मुनि राजा श्रेणिक से कह रहे हैं कि राजन्! तू कहता था कि मेरे यहां हाथी घोड़े रथ पैदल सेना आदि हैं, खजाना है, अंतःपुर है, ग्राम नगर मेरे अधिकार में हैं, और सब लोग मेरी आज्ञा का पालन करते हैं, आज्ञा का ईश्वर हूं आदि। मगर यह सब तेरा निरा अभिमान मात्र है, और कुछ नहीं है। इन सब वस्तुओं के कारण तू नाथ नहीं बन सकता वल्कि इनके कारण तू अनाथ है–पराधीन है। सव पदार्थों की सम्मिलित शक्ति से भी तू अनाथ ही है। और मनुष्यों की वात छोड़कर पहले यह तो देख कि तेरे शरीर पर तेरी आज्ञा चलती है या नहीं? मैं अपने अनुभव से वताता हूं कि इस धन वैभव और स्वजन परिजन के कारण अपने को नाथ मान वैठना वड़ी भारी भूल है। मैं भी पहले ऐसा मानता था किन्तु अब इस वात का विवेक हो गया है कि वह मेरा मनोभ्रम मात्र था। राजन्! जिन पदार्थो को तू अपना मानता है वे कभी तुझे छोड़कर तो नहीं जायेंगे? या तू ही उनको छोडकर तो नहीं चला जायेगा? क्या ये पदार्थ सदा तेरे पास वने रहेंगे? यदि नहीं तो इन पर अभिमान करना और इनके कारण अपने को महान् समझना नितान्त भूल है।

श्रोताजनों! आप लोग भी अनाथी मुनि की कही हुई वात पर थोड़ा ध्यान दो। जिन पदार्थों का आप अभिमान करते हो वे क्या सदा स्थिर रहेंगे? क्या वे आपकी आज्ञा मानते हैं? पदार्थ की वात एक तरफ रख कर यह भी तो विचार करो कि वड़े प्यार से पाले–पोसे इस शरीर पर आपका अधिकार चलता है या नहीं? यदि शरीर पर आपका अधिकार चलता होता तो काले घुंघराले वालों को सफेद न होने देते। दांतों को गिरने न देते। कभी–कभी दांतों की पीडा के कारण खुद ही दांत निकलवाने पडते हैं। इस पर से सिद्ध होता है कि शरीर पर भी मनुष्य का काबू नहीं है। भला जो शरीर हमारा

निकटतम साथी है, जन्म का साथी है, वह भी हमारा हुक्म नहीं मानता तो अन्य पदार्थों पर अपना स्वत्व स्वीकार करना कितनी अज्ञानता है। सब बात पर विचार करके अपना अभिमान दूर करो।

पदार्थों से संबंध जोडकर मनुष्य किस प्रकार अनाथ बन रहे हैं यह बात और स्पष्ट करता हूं। एक बार मैंने देखा कि कुछ कैदियों के साथ सिपाही जा रहे थे। वे सिपाही शायद अपने मन में समझते रहे होंगे कि हम स्वतन्त्र हैं, हम कैदी नहीं हैं। किन्तु विचार पूर्वक सोचने से मालूम होता है कि वे सिपाही भी कैदियों के साथ कैदी थे। क्या वे सिपाही कैदियों को छोडकर कहीं जा सकते हैं? इस प्रकार वे भी कैदी थे। इसी प्रकार एक आदमी ने एक चंचल घोड़े को पकड़ रखा था। वह समझता था कि मैं घोडे का स्वामी हूं। किन्तु जब दूसरे आदमी ने उसको बुलाया तब वह न जा सका। कारण कि घोड़े को छोड़ देता तो वह कहीं भाग जाता जिसे पकडना कठिन था। इससे ज्ञात होता है कि मनुष्य ने ही घोड़ा नहीं पकड रखा है किन्तु घोडे ने भी मनुष्य को पकड रखा है।

मनुष्य ने संसार को और संसार ने मनुष्य को परस्पर पकड रखा है। यही अनाथता है—पराश्रयता है। पराश्रयी अपने को नाथ मानने की उच्छृंखलता करता है तो वह हंसी का पात्र बनता है।

श्रेणिक राजा को यही बात अनाथी अनगार समझा रहे हैं कि राजन्! तू स्वयं अनाथ है तो मेरा या किसी का नाथ कैसे बन सकता है? इस पर राजा ने कहा कि सांसारिक पदार्थों के मोह मे फसकर मनुष्य अनाथ बन जाता है, यह बात मैं समझ गया। किन्तु नाथ किस किस प्रकार बना जाता यह भी बताइये। अनाथी मुनि आप बीती सुनाकर राजा को यह बात समझाते हैं। तथा यह भी बता रहे हैं कि सनाथ में कैसी शक्ति होती है।

तओ हं एवमाहंसु दुक्खमा हु पुणो पुणो।
वेयणा अणुभविउं जे संसारम्मि अणन्तए।
सइं च जइ मुच्चेज्जा वेयणा विउला इतो।
खंतो दंतो निरारंभो पव्वइए अणगारियं।।
एवं च चिन्तइत्ताणं पसुत्तो मि नराहिवा।
परियत्तंतीइ राईए वेयणा मे खयं गया।।

और किस प्रकार दुःखी यह बात इन गाथाओं में समझना चाहिये।

अनाथी मुनि कहते हैं कि राजन्! जब मेरे माता–पिता भाई–बहन और स्त्री आदि सब कुटुम्बीजन मेरा दुःख मिटाने में समर्थ न हुए तब मैंने सोचा कि ये सब लोग मेरे नहीं है और न मैं इनका नाथ हूं। ये मेरी रक्षा नहीं कर सकते और मैं इनकी रक्षा नहीं कर सकता। मैंने सोचा कि इस प्रकार की वेदना मैं पहली बार ही नहीं भोग रहा हूं किन्तु अनेक भवों में अनेक बार भोग चुका हूं। अबकी बार इस वेदना से शिक्षा ग्रहण करके आत्मकल्याण साधना चाहिये।

साधारण लोग दुःख से घबड़ाते हैं और दूर भागना चाहते हैं किन्तु महापुरुष दुःख के कूड़े कचरे में से भी रत्न ढूंढ निकालते हैं। दुःख भी सुख की तरह अनित्य है। ये तो छाया और बादल हैं जो आते रहते हैं और जाते रहते हैं। सातवीं नरक के घोर कष्ट और तैंतीस सागरोपम की आयु भी यह आत्मा पूरी कर चुका है। आत्मा वैसा का वैसा ही है। उसमें कोई अन्तर नहीं हुआ। काल समाप्त हो जाता है किन्तु उस काल और दुःख–सुख को सहन करने वाला आत्मा सदा अमर है। जब से यह सृष्टि है तब से आत्मा है। मैं भी अनादि हूं और संसार भी अनादिकालीन है! संसार में और आत्मा में पूर्व पश्चात् का कोई क्रम नहीं है। जैसे दो आंख और दो कान में से कौन पहले बना और कौन पीछे यह क्रम नहीं होता–दोनों एक साथ बनते हैं–वैसे ही आत्मा और सृष्टि दोनों युगपत् हैं। जैसे गाय के दोनों सींगों में पहले पीछे का क्रम नहीं है वैसे आत्मा और संसार में भी क्रम नहीं है। इस प्रकार यह आत्मा सदा से संसार में है। इसने अनन्त भवों में अनन्त बार घोर वेदनाएं सही हैं। आत्मा को दुःख क्यों होते हैं? इन दुःखों का स्रोत कहा है? आदि बातों का गहन चिंतन मनन किया जाय तो इसी परिणाम पर पहुंचना पड़ता है कि आत्मा ने अपने संकल्प–विकल्प से स्वतः दुःख पैदा किये हैं। जैसा संकल्प करता है वैसा सुख दुःख भोगता है।

यहां थोड़ी दार्शनिक चर्चा खड़ी होती है। कोई दार्शनिक कहते हैं कि आत्मा अज्ञानी है अतः स्वयं अपना नियामक नहीं बन सकता। आत्मा अज्ञान वश कर्म कर डालता है किन्तु फल नहीं भोगना चाहता। फल भोगाने वाला नियामक ईश्वर है। आत्मा कर्म करने में स्वतन्त्र है, फल भोगने में स्वतन्त्र नहीं हैं, ईश्वराधीन है। फल ईश्वर भुगताता है।

इस दार्शनिक विचारधारा पर विचार करने से मालूम होता है कि इस विषय में कितनी पोची दलील दी गई है। कर्म करके जीवात्मा उसके फल

से दूर भागना चाहता है इसलिए ईश्वर फल भुगतवाता है– यह है दलील। कोई मनुष्य गर्म भोजन करके धूप में बैठे और इच्छा करे कि प्यास न लगे तो क्या उसके इच्छा करने मात्र से प्यास रुक सकती है? प्यास अवश्य लगेगी। जैसा कर्म कर लिया उसका फल इच्छा या बिना इच्छा के भुगतना ही पड़ेगा। इसमें ईश्वर क्या करेगा? किसी भी क्रिया कर्म का परिणाम उसके कर्ता को भोगना पड़ता है।

कुरान शरीफ में कहा है कि हे मोहम्मद! जो खुद से नहीं बिगड़ता उसको मैं नहीं बिगाड़ सकता। और जो स्वयं नहीं सुधरता उसको मैं भी नहीं सुधार सकता। इसका अर्थ यह हुआ कि कुरान शरीफ भी खुदा को नियामक नहीं मानता किन्तु आत्मा को ही सुख दुःख का कर्ता और भोक्ता मानता है।

एक प्रमाण और देता हूं। एक मनुष्य ने किसी के यहां चोरी की। अब विचार करिये कि जिसके यहां चोरी हुई उसने नया कर्म बांधा या पूर्व कृत कर्म भोगा? यदि यह कहा जावे कि उसने पूर्वकृत पाप का फल भोगा तो जिसने चोरी की उसको चोरी में प्रेरणा देने वाला ईश्वर ठहरा। क्योंकि ईश्वर ने जिसके यहां चोरी कराकर फल भुगतवाना था उसके यहां चोरी करवाई है। किसी को उसके पूर्वजन्म के फल भुगताने के लिए ईश्वर किसी के द्वारा चोरी करवाता है यह इससे सिद्ध होता है। किन्तु यह बात संगत नहीं बैठती। ईश्वर न फल देता है और न किसी प्रकार की प्रेरणा। वह निरजन निराकार है। जीव स्वयं अपने संकल्प से जाल बनाता है और उसी मे फंसता है। और जब उसे सद्ज्ञान होता है तब उस जाल को तोड़ फैंकता है।

अनाथी मुनि राजा श्रेणिक से कह रहे है कि उस वेदना के अवसर पर मुझे यह विवेक हो गया कि मैं अपने सकल्पों से सुखी या दुःखी हू।

पुनः प्रश्न खड़ा होता है कि आत्मा सुखी बनने का सकल्प तो कर सकता है मगर दुःखी होने का संकल्प कैसे कर सकता है? तथा आत्मा अज्ञानी है अतः खुद का नियमन कैसे कर सकता है? यदि यह कहा जाय कि प्रकृति यह व्यवस्था करती है तो भी ठीक नही है क्योंकि प्रकृति स्वयं जड है। जो अपने आपको नहीं जानती वह दूसरों की क्या व्यवस्था करेगी?

यह ठीक है कि आत्मा दुःख की इच्छा नही करती। किन्तु यह देखिये कि वह कृत्य कैसा करती है। आम का पेड लगाती है या बबूल का? बबूल का पेड लगाकर आम खाने की इच्छा करना अज्ञानता ही है। जो आत्मा दुराचरण का सेवन करती है वह यदि सुख की कामना करती है तो यह उसकी अज्ञानता है। उसके चाहने न चाहने से फल नही रुक सकता। [illegible]

गर्भ धारण किया है उसके न चाहने से प्रसव पीड़ा रुक नहीं जाती। प्रकृति जड है किन्तु वह अपना काम करती है। जैसे दूध को इस बात का ज्ञान नहीं होता कि मुझ में इतना रस भाग है और इतना खल भाग। मुझ में पुरुष के पेट में पहुंच कर इतनी शक्ति पैदा करने का सामर्थ्य है आदि वह नहीं जानता। तथा पुरुष भी यह नहीं जानता कि जो दूध मैंने पिया है वह पेट में पहुंच कर इस रूप में परिणत होता है। किन्तु दूध पेट में पहुंच कर अपना काम करता है। दूध को उदरस्थ करने पर जठराग्नि के ताप से वह खल भाग और रस भाग में विभक्त हो जाता है। रस–भाग में से जितना भाग आंख को मिलना चाहिए उतना आंख को, जितना मस्तिक को मिलना चाहिए उतना मस्तिष्क को और जितना शरीर के अन्य हिस्सों को मिलना चाहिये उतना अन्य हिस्सों को मिल जाता है। इस प्रक्रिया में किसी दूसरे को कुछ नहीं करना पड़ता। अपने आप सब हो जाता है।

इसी प्रकार शरीर की या आत्मा की जैसी प्रकृति होती है वैसे काम अपने आप हो जाते हैं। यदि आप प्रकृति द्वारा होने वाले सारे खलों को समझने लग जावें तब तो आप पूर्ण पुरुष बन जावें। आपके न जानने पर भी प्रकृति सारे खेल करती रहती है। प्रकृति के इस खेल के कारण आत्मा अपने किये कर्मों का फल भोगने के लिए विवश होती है। अतः ईश्वर या अन्य शक्ति द्वारा कर्मफल भुगताने की बात युक्तिसंगत नहीं है।

राजन्! मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि मेरे संकल्प से उत्पन्न दुःख व्यर्थ की हाय–हाय करने से नहीं मिट सकते। संकल्प से उत्पन्न दुःख संकल्प से ही मिटाये जा सकते हैं। यह बात निश्चित है कि दुःख मिट जाते हैं। पहले भी अनेक बार दुःख उत्पन्न हुए थे और वे मिट गये। इसलिए यह वेदना भी मिट सकती है। मेरे संकल्प से बुलाई गई वेदना को मैं स्वयं ही ठहरा रहा हूं।

संकल्प का अर्थ है निश्चय। सुख दुःख को आत्मा अपने निश्चय से ठहरा रखता है। किसी काम को दृढ़तापूर्वक करने न करने का विचार संकल्प या निश्चय कहा जाता है। उदाहरणार्थ समझिये कि किसी ने आपको अशुचि पदार्थ देने की बात कही। आप अशुचि पदार्थ किसी हालत में लेना पसन्द न करेंगे। क्योंकि अशुचि न लेने का आपका दृढ़तम निश्चय है। कई संकल्प स्वयंकृत होते हैं और कई पूर्वजों के संस्कारों से प्राप्त होते हैं। जैनकुल में उत्पन्न बालक किसी हालत में मांस खाना पसन्द न करेगा। यह वंशगत और जातिगत संस्कार है। जो मांस नहीं खाता उसे मांस खाने का स्वप्न भी नहीं

आता। क्योंकि मांस खाने का उसका संकल्प नहीं है। स्वप्न में पर–स्त्री गमन की बात देखी जाती होगी। किन्तु क्या स्व–माता के साथ संभोग करने का स्वप्न कोई देखता है? मेरा खयाल है ऐसा स्वप्न कोई नहीं देखता। इसका कारण है। माता के साथ सदा पवित्र सम्बन्ध रहता है और ऐसी दुष्ट कल्पना कोई मनुष्य नहीं करता।

अतः यह बात निश्चित होती है कि जो कुछ होता है वह इस जन्म के संकल्पों से या पूर्वजन्म के संकल्पों से। जो मनुष्य अच्छे विचार रखता है, अपनी माता के समान सब स्त्रियों को देखता है, त्याज्य वस्तुओं का सेवन नहीं करता, किसी का अनिष्ट चिन्तन नहीं करता वह उन्नत बन जाता है। उसका संकल्प पवित्र गिना जाता है।

सुदर्शन चरित्र–

संकल्प कैसा होना चाहिए इस बात को सुदर्शन के चरित्र में देखिये। उसका संकल्प है कि मैं मनोरमा को छोड़कर संसार की अन्य सब स्त्रियों को माता, बहिन और बेटी की दृष्टि से देखूंगा। इस संकल्प पर वह कितना दृढ रहा यह हमें देखना है।

मूर्ति लेकर गई बाहर को पहरेदार भरमाई।
पौषधशाला सेठ सुदर्शन मूर्ति फेंक ले आई।।रे धन.।।
पौषध मौन सेठ नहीं बोले बैठा ध्यान लगाई।
अभया कर श्रृंगार सेठ के खड़ी सामने आई।।रे धन.।।

सेठ का भी संकल्प है और रानी अभया का भी संकल्प है। संकल्प सुन्दर भी होते हैं और असुन्दर भी। सुदर्शन का संकल्प सुन्दर है। अभया का संकल्प निकृष्ट है। जिस संकल्प में अधिक दृढ़ता होती है वह विजय प्राप्त करता है। अभया और सुदर्शन के संकल्पो के बलाबल की परीक्षा है। चाहे संकल्प अच्छा हो चाहे बुरा, किन्तु जो अपने संकल्प पर दृढ रहता है उसकी जय होती है।

संकल्प के आधार से कर्म होता है या कर्म के आधार से संकल्प– यह विचारणीय बात है। कहा यह जाता है कि कर्मानुसारिणी बुद्धि होती है। किन्तु इस कथन में निर्बलता छिपी है। अनाथी मुनि ने कहा है –

अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य।

अर्थात् कर्म संकल्प के अधीन हैं। यदि मनुष्य का कर्म का [illegible] फैंकने का संकल्प हो तो वह कदापि नहीं ठहर सकता। यदि सुदर्शन यह मान बैठता कि मेरे कर्म ऐसे ही हैं कि मैं रानी के साथ संबंध कर लूं [illegible]

महापुरुष की श्रेणी मे गिना जाता और क्या आप हम इस प्रकार उसके गुण–गान करते। कई मनुष्य यह मानकर दुःख भोग रहे हैं कि क्या करें हमारे कर्म ऐसे ही हैं, हमारे नसीव में ऐसा ही लिखा है इसलिए कष्ट उठा रहे हैं। किन्तु वे यह नहीं सोचते कि दुःख भोग उनके संकल्प बल की कमी के कारण हैं। कर्म तुम्हारे खुद के किये हुए हैं उनको अपने संकल्प से दूर कर सकते हो। अतः कर्म का नाम लेकर कोई बुरा काम करना ठीक नहीं है। वीड़ी, तमाखू या गांजा–भांग पीने की आदत जिस मनुष्य ने डाल रखी है वह यदि चाहे तो संकल्प बल से इस आदत को मिटा सकता है। किसी भी प्रकार की वुरी आदत को संकल्प बल से जीता जा सकता है।

अभया ने पंडिता से कहा कि आज सुन्दर अवसर है। राजा आदि सर्व लोग वाहर उत्सव मना रहे हैं। महल में मैं अकेली हूं। सेठ सुदर्शन भी पौषधशाला में अकेला है ऐसा सुयोग हाथ आना कठिन है। पंडिता बोली यह सब मेरे ध्यान में है।

पण्डिता गाजे–बाजे के साथ सिर पर मूर्ति रखकर निकली। पौषधशाला के निकट जाकर साथ वाले लोगों को कहा कि तुम लोग जरा ठहरना, मैं आती हूं। मैं एक क्रिया पूरी करने जाती हूं। इस प्रकार सब को भ्रम में रखकर वह पौषधशाला में गई। वहां उस मूर्ति को तो कहीं पटक दी और उसके स्थान पर सुदर्शन को उठा लिया। सुदर्शन से कह दिया कि आप अपनी धर्म क्रिया मत छोड़ना। आप अपना व्रत नियम और मौन साधे रहना मैं अपना कार्य करती हूं। सेठ व्रत में था अतः उसके उठा ले जाने पर भी मौन नहीं तोड़ा। वह मूर्ति की जगह सुदर्शन को विठाकर सिर पर रखकर सबके साथ वापस हो गई।

यदि सुदर्शन वोलता तो क्या वह उसे उठाकर ले जा सकती? आजकल देखा जाता है कि पौषधव्रत में मौन रखने का रिवाज नहीं है। थोड़ा कोई कारण हो जाता है कि एकदम हलचल मच जाती है। उदयपुर (मेवाड) का जिक्र है कि एक वार संवत्सरी के दिन रात को एक कुत्ता इधर से उधर कूदता हुआ निकल गया। अनेक श्रावकों ने पौषध कर रखे थे। कुत्ते के कारण वड़ा होहल्ला मच गया। कोई कहने लगा अरे कोई चोर है, कोई कहने लगा भूत है। जितने मुख उतनी वातें होने लगीं। यह होहल्ला मैंने भी ऊपर सुना। अन्त में छानवीन करने पर ज्ञात हुआ कि एक कुत्ता इधर से उध र कूदता हुआ निकल गया है। इस प्रकार लोग एक कुते से भी डर जाते

है और हल्ला मचा देते हैं। इतनी भी दृढ़ता नहीं रखते। देव से जीतने की जिसमें शक्ति है वह साधारण वस्तुओं से भय खाये यह अच्छा नहीं गिना जाता। संकल्प बल की कमजोरी भय का कारण हैं।

पण्डिता के सिर पर सुदर्शन मूर्तिवत् निश्चल बैठा है। किसी भाई के मन में यह विचार उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि सुदर्शन इस प्रकार मिट्टी जैसा क्यों बन गया। वह बोला क्यों नहीं अथवा पंडिता को दूर क्यों नहीं हटा दिया। न बोलने या दूर न हटाने का कारण यह है कि सुदर्शन शरीर की प्रवृत्ति त्याग कर धर्म ध्यान में बैठा था। उसको इस शरीर से कोई मतलब न था। इस पर जो कुछ बीते बीतती रहे। वह शरीर से उदासीन था।

पण्डिता सुदर्शन को लेकर महल में चल दी। पहरे वाले सिपाही समझ रहे थे कि यह मूर्ति ही है। एकान्त स्थान में बिठा कर पंडिता अभया के पास दौड़ी गई। उसने कहा, मैंने अपना काम पूरा कर दिया है। अब तू जाने तेरा काम जाने। सुदर्शन जहां बिठाया गया वहां ध्यानस्थ बैठा है। सुदर्शन के लिए महल और पौषधशाला समान हैं।

दुःखे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे, योगे वियोगे भवने वने वा।
निराकृताशेषममत्वबुद्धेः, समं मनो मे ऽस्तु सदापि नाथ।।

सुख हो या दुःख हो, वैरी हो या बन्धु वर्ग हो, किसी का संयोग हो या विछोह हो, राजमहल हो या जंगल हो सब प्रकार ममत्व भाव मिटकर सब संयोगों में मेरा समान भाव बना रहे। प्रतिदिन ऐसी भावना करने वाले सुदर्शन के लिए राजमहल कुछ विशेषता नहीं रखते थे। उसके मन मे यह विचार था कि महल हो या जेल हो मुझे कही भी अपना व्रत पालना है। मेरा शरीर रहे या चला जाय किन्तु मेरी आत्मा में किसी प्रकार की हानि करने की किसी की शक्ति नहीं है।

अभया रमझम करती हुई सुदर्शन के सामने आकर खड़ी हो गई। वह मन में अभिमान करती हुई आ रही थी कि मेरे नेवरों की झंकार सुनकर सुदर्शन की हृत्तंत्री के तार हिल उठेंगे। किन्तु उसे उसी निश्चल भाव में बैठे देखकर उसका उत्साह कमजोर नहीं हुआ। उसने विचार किया कि मुझे अपना काम निकालना है अतः इस वक्त गुस्सा करने से कुछ लाभ न होगा। सामनीति से काम लेना चाहिए।

हाथ जोड़ अमृत सम मीठा बोले मुख से बोल।
मैं रानी तुम पुरजन मानी सरखी सरखी तोल।। रे धन.।।
कल्पवृक्ष सम काया तेरी मैं अमृत की बेल।
मौन खोल निरखो मुझ नयना ध्यान ढोंग दो मेल।। रेधन.।।

सुदर्शन के समीप जाकर अभया ने हाथ जोड़कर उसे नमस्कार किया। सुदर्शन के समक्ष हाथ जोड़कर खड़ी रानी अभया की दशा पर किंचित् गौर कीजिये। वह राजरानी है, इसलिए प्रजा की माता है। माता के पैरों पर पुत्र गिरा करते हैं न कि माताएं पुत्र के पैरों पर। किन्तु जब इन्सान पर कामवासना का भूत सवार हो जाता है तब वह गौरवमय पद भी विसर जाता है। आत्मा में जब नीच वासना प्रविष्ट हो जाती है तब मनुष्य नीचातिनीच काम करने के लिए भी तैयार हो जाता है।

वस्तुतः विष से भरे हुए किन्तु प्रकट में अमृत के समान मालूम देने वाले वचन रानी के मुख से निकले। वह कहने लगी–आप चुप क्यों बैठे हैं? जरा विचार करो कि आपकी और मेरी जोड़ी कितनी सुन्दर है। आप नगर सेठ हैं और मैं राजरानी हूं। आप नगर के नायक हैं और मैं राज्य की नायिका। इतना अच्छा संयोग मिलने पर भी आप मौन धारण करके बैठे हैं। आंखें खोलकर मेरी ओर निहारिये। इस ढोंग को छोड़ दीजिये और अपनी आंखों को सार्थक कीजिये।

सेठ रानी के वचन चुपचाप सुन रहे थे। वे रानी के कथन के मूलभूत रूप पर विचार कर रहे थे। मुझे भगवान् महावीर से जो ज्ञान मिला है उसकी आज कसौटी है। आज मेरी अग्नि परीक्षा है। इसमें तपकर मैं खरा निकलता हूं या इसमें जलकर भस्म होता हूं इस बात की परीक्षा है।

जो ज्ञानी होते हैं वे किसी बात को केवल ऊपरी दृष्टि से नहीं देखते किन्तु वस्तु के मूल को खोजने की कोशिश करते हैं। सम्यग्ज्ञानी या आध्यात्मिक दृष्टि सम्पन्न पुरुष वस्तु के मूलरूप पर ध्यान लगाते हैं।

सुदर्शन विचारने लगे कि यह नारी इतना तो जानती है कि वह राजा की रानी हैं। किन्तु यह नहीं सोचती कि जब वह राजा की रानी हे तो राजा

की आज्ञा बिना किसी पर पुरुष की गुलामी क्यों स्वीकार करना चाहती है। रानी होते हुए भी अज्ञान और वासना के कारण यह ऐसा कह रही है। यदि मैं इन वचनों पर लुभाया तो मेरे लिए ये वचन अमृतमय सिद्ध होंगे। यह रानी अपने बड़प्पन को समझती है किन्तु यह नहीं समझती कि बडप्पन को सुरक्षित रखना चाहिए या हीन काम करके उस पर धब्बा लगाना चाहिए। यदि हम दोनों माता–पुत्र का संबंध छोड़कर पतित हो जावें तो क्या मेरा नगर सेठ का पद और क्या रानी का राजमाता का पद सुरक्षित रह सकेंगे? हम लोगों द्वारा मर्यादा पालन होने से ही इन पदों की शोभा है। यह है सेठ सुदर्शन का मानसिक चिंतन।

इधर रानी कहती है कि सेठजी! तुम्हारी और मेरी योग्य जोडी है। तुम कल्पवृक्ष हो और मैं अमृत वेल। कल्पवृक्ष का सहारा पाकर अमृत वेल सुन्दर विकास कर सकती है। इसलिए मौन खोल दो।

किन्तु इस कथन पर सुदर्शन यह सोचते है कि इसने मुझे कल्पवृक्ष कहा है अतः मैं कल्पवृक्ष के योग्य अपना कर्तव्य निभाऊं तभी मेरी शोभा है। मुझ कल्पवृक्ष का सहारा लेकर रानी अमृत बेल के बजाय विष बेल बन जाय, यह मेरे योग्य कार्य नहीं है। फिर मैं कल्पवृक्ष कैसा? सुदर्शन आत्मा को दृढ रखने का विचार कर रहे हैं। किन्तु रानी उनके मौन से परेशान होकर और विनय भाव धारण करके विनती करती है।

करूं जतन मैं जावजीव लग प्राण बरोबर मान।
तन धन जीवन तुम पर अर्पण आज से है लो जान।।रे घन.।।
व्यर्थ जन्म मुझ गया आज लग खबर न तुमरी पाई।
आज सुदिन यह हुआ सेठजी धाय पण्डिता लाई।।रे घन.।।

सुदर्शन को चुप देखकर रानी विचारने लगी कि मैं भूलती हूं। यह बनिया है। बनिया लोग डरपोक होते हैं। जरा जरा–सी बात का उनको बड़ा भय लगता है। संभव है मुझे रानी समझकर राजा के डर से यह मौन न

एकान्त स्थान, सुन्दरी स्त्री, स्वेच्छा से भोग का निमंत्रण और युवावस्था, सबका योग है, फिर भी सुदर्शन अपने संकल्प पर दृढ़ है। वर्तमान युग के महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी का संकल्प बल भी बड़ा दृढ़ था। वे जैन मुनि श्री बेचरजी स्वामी से विलायत जाने से पूर्व मांस, मदिरा और पर–स्त्री गमन का त्याग लेकर रवाना हुए थे, यदि वे इन बातों को छोड़ने का संकल्प किये बिना विलायत चले जाते तो न मालूम उनकी क्या दशा होती। वे अपने आपको दृढ़ रख सकते या नहीं? इसमें संदेह को स्थान था। किन्तु जाने के पूर्व किये हुए दृढ़ संकल्प का ही यह फल था कि वे अनुकूल संयोग उपस्थित होने पर भी ब्रह्मचर्य व्रत पर दृढ़ बने रहे। संकल्प बल में ऐसी शक्ति है कि वह प्रसंग पर मनुष्य को पतन के गड्ढे में गिरने से बचा लेता है।

सुदर्शन रानी का वक्तव्य सुनकर विचार कर रहा है कि जीवन पर्यन्त सम्बन्ध निभाने की बात रानी कह रही है सो ठीक ही है। माता का कर्तव्य है कि वह पुत्र के साथ अपना स्नेह संबंध यावज्जीवन तक निभाये। मगर इसके मन में संबंध निभाने की जो बात है वह बुरी है। जिस रूप और यौवन पर यह अभियान कर रही है उन पर राजा का अधिकार है। यह विवाह के अवसर पर संकल्प कर चुकी है कि इस रूप–यौवन पर राजा दधिवाहन का अधिकार है। प्रथम राजा के साथ किये हुए संकल्प को यह तोड़ रही है तो मेरे साथ जो संकल्प करती है उसे क्या निभायेगी। जो एक बार अपना संकल्प तोड़ता है क्या पता कि दूसरी बार वह न तोड़ेगा? जो एक बार भ्रष्ट होता है दूसरी बार भी हो सकता है।

विवेक–भ्रष्टानाम् भवति विनिपातः शतमुखः।

जो एक बार विवेक भ्रष्ट हो जाता है उसका अनेक बार पतन हो सकता है। एक सीढी चूकने पर अनेक सीढ़ियां चूकनी पड़ती हैं। जब राजा दधिवाहन के साथ किये हुए वचन को यह नहीं निभाती तो मेरे साथ क्या निभायेगी? आप लोगों ने भी लग्न सम्बन्ध किया है। पति पत्नी ने परस्पर एक दूसरे के होकर रहने का संकल्प किया होगा। आप लोग उस संकल्प को तोड़ते तो नहीं? आपने यह प्रतिज्ञा की हुई है कि स्वस्त्री के सिवा अन्य स्त्रियां मां–बहिन के समान हैं। उस प्रतिज्ञा का पालन करते हैं न? धर्म का पालन कराने के लिए राजकानून की तरह कोई हथियार लेकर आपके पीछे नहीं चल सकता। इसके लिए आत्मा खुद अपनी निगरानी रखे यही संभव उपाय है। जो स्वयं धर्म पालन की इच्छा रखता हो वही सुदर्शन के समान अपने धर्म की रक्षा कर सकता है।

राजकोट

4 9 36

धर्म–श्रद्धा की परीक्षा

कुन्थुजिनराज तू ऐसो नहीं देव तो जैसो।

प्रार्थना–उच्चकोटि की प्रार्थना में आत्मा और परमात्मा की एकता की भावना होती है। इस पर से शंका होती है कि कहां तो विकारों से भरा हुआ आत्मा और कहां शुद्ध निर्मल स्वरूपी भगवान् कुंथुनाथ? दोनों मे वृहदन्तर है। इनमें एकता की बात कैसी? शेख चिल्ली द्वारा बादशाह बनने की कल्पना के समान यह कल्पना है। सकर्म आत्मा को कर्म रहित परमात्मा से समानता कैसी?

ऐसी शंका उत्पन्न होना स्वाभाविक है। यद्यपि आत्मा और परमात्मा में बडा अन्तर है किन्तु मूल रूप दोनों का एक है। उस मूल रूप को ध्यान में रखकर ज्ञानीजन कहते हैं कि दोनों समान है। भेद जो मालूम देता है वह स्वाभाविक नहीं है किन्तु वैभाविक है।

शास्त्रों में भगवान् ने जहां उच्च तत्वों का विवेचन किया हैं वहीं स्पष्ट इस बात का प्रतिपादन किया है कि मेरी आत्मा और तुम्हारी आत्मा समान है। इस विषयक कई प्रमाण शास्त्रो मे भी मौजूद हैं। अभी मैं इतना कहता हूं कि यदि लक्ष्यार्थ और वाच्यार्थ को अच्छी तरह समझ लिया जाय तो यह शंका स्वतः हल हो जायेगी।

वाले ने केवल वाच्यार्थ को ध्यान में रखकर तर्क की है। मनुष्य सिंह नहीं बन सकता क्योंकि एक भव में दूसरी खोली धारण नहीं की जा सकती। यह बात वाजिब है। किन्तु मनुष्य को सिंह कहने वाले का लक्ष्यार्थ समझना चाहिए। वह किस दृष्टि से मनुष्य को सिंह कहता है इस पर विचार करना चाहिये। मनुष्य और सिंह में किस बात की–किस गुण की एकता है यह देखना चाहिये। सिंह में शूरता का गुण है उस गुण को लक्ष्य में लेकर मनुष्य को सिंह कहा जाता है। अतः लक्ष्यार्थ की दृष्टि से इस कथन में कोई बाधा नहीं आती। इसी प्रकार आत्मा और परमात्मा में वाच्यार्थ की दृष्टि से भेद होने पर भी लक्ष्यार्थ की दृष्टि से अभेद है। एक चैतन्य नामक गुण ऐसा है जो आत्मा में भी है और परमात्मा में भी। इस गुण को ध्यान में लेकर आत्मा परमात्मा की एकता प्रतिपादित की जाती है। कर्म और अज्ञान हटाये जा सकते हैं। ये आत्मा की स्वाभाविक अवस्था नहीं है। ये तो आ लगते हैं सो वापस भगाये भी जा सकते हैं। यद्यपि कर्म और आत्मा का अनादिकालीन संबंध है किन्तु वह प्रवाह की अपेक्षा से अनादिकालीन माना जाता है। न किसी एक प्रकार की कर्मवर्गणा की अपेक्षा से। सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम के बाद कर्मवर्गणा से आत्मा का संबंध छूट जाता है। इसलिए कर्म और आत्मा का संबंध स्थायी नहीं है। चैतन्यगुण आत्मा परमात्मा में स्थायी है। उसको लक्ष्य में लेकर कहा है–

तुम्ही हम एकता जानूं द्वैतभ्रम कल्पना मानूं।

हे प्रभो! चैतन्य की दृष्टि से तू और मैं एक हैं। यह जो भेद दृष्टिगोचर होता हैं वह वास्तविक नहीं है।

इस कथन से आप लोगों को विश्वास हो जाना चाहिए कि हमारी आत्मा परमात्मा के समान है। किन्तु केवल विश्वास करके बैठ जाने मात्र से काम न चलेगा। जब तक आत्मा और परमात्मा की एकता में बाधक कारणों को मिटाने के लिए पुरुषार्थ न किया जायेगा तब तक परमात्मा के समान होने पर भी आत्मा संसार–सागर में गोता लगाता रहेगा और अपने अज्ञान से दुःखी होता रहेगा।

उद्योग को क्रिया भी कहा जाता है। वैसे मनुष्य किसी न किसी प्रकार की क्रिया करता रहता है। मन से, वचन से, काया से कुछ न कुछ करता रहता हैं। एक क्षण के लिए भी चुप नहीं रहता।

न जातुचित् तिष्ठत्यकर्मकृत्।

गीता में भी कहा है कि जीवात्मा एक क्षण के लिए भी कर्मशून्य नहीं रहता। किन्तु अज्ञानपूर्वक की गई क्रिया से मुक्ति रूपी लाभ नहीं होता।

ज्ञानपूर्वक की गई क्रिया से मुक्ति में सहायता मिलती है।
शास्त्र–

अनाथी मुनि राजा श्रेणिक से यही बात कर रहे हैं कि राजन्! अनादिकाल से मेरी आत्मा अज्ञान कष्ट सहन कर रही थी किन्तु उससे मेरी आत्मा का कुछ भला न हुआ। इस वेदना में मुझे सम्यग्ज्ञान प्राप्त हुआ और मैंने ज्ञानपूर्वक वेदना को सहा। इस तत्त्व तक मैं पहुंच गया कि वेदना मेरी उपार्जन की हुई है अतः मैं ही उसको मिटा सकता हूं। दूसरे किसी का सामर्थ्य नहीं है कि वह मेरी वेदना मिटा सके। अतः मैंने वेदना मिटाने और सनाथ बनने का संकल्प कर लिया।

प्रश्न होता है कि क्या दुःख मिटाने का संकल्प कर लेने से दुःख चला जाता है? हां, ज्ञानियों का ऐसा कथन और अनुभव है कि संकल्पशक्ति से दुःख दूर हो जाता है। संकल्प करना यानी आत्मा को जागृत करना है। जो जागृत होता है उसे कोई दुःख नहीं हो सकता। जागते हुए व्यक्ति के घर मे प्रवेश करके चोरी करने की चोर की हिम्मत नहीं हो सकती। जो गाफिल हो, डरपोक हो और सोया हुआ हो वहां चोर का दाव लगता है। इसी प्रकार आत्मा जागृत हो, सावधान हो, और सचेष्ट हो तो कर्मों की क्या शक्ति है जो टिक सकें?

आप कहेंगे कि चोर की बात हम प्रत्यक्ष देखते हैं। हमारे चिल्लाने से वे भाग जाते हैं। किन्तु कर्मों को किसने देखा है। आत्मा के सजग रहने से हट जाते है या नहीं इसमें सन्देह बना रहता है। कर्मों को आप नही देखते है किन्तु कर्मों का परिणाम–फल देखकर क्या कर्म का आपको ज्ञान नहीं होता? बहुत–सी बातें स्वयं नहीं जानी जातीं किन्तु उनका परिणाम देखकर उनके होने का निश्चय होता है। जब किसी प्रकार की बीमारी हो जाती है तब यह मानना पड़ता है कि हमारे स्वास्थ्य सम्बन्धी किसी गफलत के कारण यह हुई है। बिना कारण कोई कार्य नहीं हो सकता। कार्य मौजूद है तो कारण मानना ही पडेगा। चाहे हम जान सकें या न जान सके परन्तु कारण अवश्य होता है। यदि स्वास्थ्य सम्बन्धी कोई भूल न हुई हो और फिर भी कोई बीमारी लागू हुई तो समझना चाहिए पूर्वजन्म का कोई अस्वास्थ्यकर बीज आत्मा में मौजूद है जो निमित्त पाकर अंकुरित हुआ है।

बिना छुटकारा नहीं होता। तथा प्रत्यक्ष में भी देखा जाता है कि अनेक लोग रोग मिटाने के लिए चिल्लाते रहते हैं फिर भी रोग नहीं मिटते। किसी के विचार कर लेने मात्र से कृतकर्म का फल कैसे टल सकता है? कोई भी जीवात्मा अपने किये का फल भोगना नहीं चाहता। अतः दुःख के वक्त वह यही विचार करता रहता है कि रोग चला जाय। यदि चाहने मात्र से रोग चला जाता हो तब तो वैद्य डॉक्टर और दवाइयां व्यर्थ सिद्ध होंगी। इसलिए यह कहना कि सजग रहने पर या संकल्प करने पर रोग या वेदना हट जाते हैं कुछ अर्थ नहीं रखता।

समाधान–

किये हुए कर्म भोगे बिना नहीं छूटते और संकल्प बल से कृतकर्म छूट जाते हैं ये दोनों बातें अपने स्थान पर ठीक हैं। यदि कहा जाय कि रोने चिल्लाने पर भी तो रोग नहीं मिटते फिर संकल्प की बात कहां ठीक रही? तो इसका उत्तर यह है कि नींद में चिल्लाने या बड़बड़ाने से क्या नतीजा निकलता है। नींद में मनुष्य कितना ही चिल्लाता या बड़बड़ाता रहे चोर उसकी परवाह नहीं करता। यह जानता है कि वह चिल्लाना व्यर्थ है। मोह निद्रा में सोया हुआ व्यक्ति रोग मिटाने के लिए कितना ही प्रयत्न करे व्यर्थ है। यदि वह भाव निद्रा त्याग कर आत्म–जागृति प्राप्त करता है तो रोग मिटा सकता है किसी प्रकार का संदेह नहीं है। इसमें भोगावली और निकाचित कर्म का थोड़ा अपवाद है।

मोह निद्रा में सोया हुआ मनुष्य रोग मिटाकर संसार के मौज–मजा करना चाहता है। अतः रोग मिटाने के लिए उसका चिल्लाना कुछ मूल्य नहीं रखता। यदि शरीर और आत्मा को भिन्न मानकर ही नहीं किन्तु अनुभव करके दृढ़तम संकल्प किया जाय तो रोग की शक्ति नहीं कि वह ठहर सके। आत्मिक तेज के सामने रोग के परमाणुओं की क्या ताकत जो ठहर सके। आत्मिक शांति के प्रभाव से शरीर में चमत्कारिक परिवर्तन हो सकता है।

अनाथी मुनि राजा श्रेणिक के समक्ष यह बात रख रहे हैं कि राजन्! मुझे विवेक हुआ मैंने मोहनिद्रा त्याग दी और नाथ बनने का सच्चा मार्ग अंगीकार किया। अधिकारी बनकर सच्ची लगन से काम किये बिना इष्ट सिद्धि नहीं हो सकती। अज्ञान अवस्था में वेदना मिटाने के लिए मैं बहुत चिल्लाया। मैंने माता पिता स्त्री भाई आदि से आशा रखी कि वे मेरा रोग मिटा देंगे। फिर वैद्यों और दवाइयों पर मदार बांधा कि वे मेरा रोग मिटा देंगे। किन्तु यह सब निष्फल प्रयत्न रहा। जब अधिकारी बनकर दृढ संकल्प से मैंने रोग मिटाने का प्रयत्न किया, वह मिट गया। मैंने रात्रि में निश्चय किया कि मुझे

'खंतो दंतो निरा रंभो' बनना है। रोग! तू चला जा। क्षण भर के लिए भी मत ठहर। मैं क्षमाशील, इन्द्रियविजेता और अहिंसक बनना चाहता हूं अतः मेरे मार्ग में बाधक होकर रोग तू अंतराय मत कर। मेरे निश्चय से आत्मा में कुछ ऐसा चमत्कार पूर्ण प्रभाव प्रकट हुआ कि सचमुच रोग मिट गया।

अनाथी मुनि ने रोग मिटाने के वक्त यह विचार किया कि मैं क्षमाशील होकर मुनि बनना चाहता हूं। किन्तु यह विचार नहीं किया कि यदि मेरा रोग मिट जायेगा तो मैं स्त्री के साथ आनन्दोपभोग करूंगा या अमुक काम अधूरा पड़ा है उसे पूरा करूंगा। उन्होंने यही भावना की कि यदि एक बार रोग मुक्त हो जाऊं तो अनाथता के जितने कारण बार बार ये रोग मुझे सताते हैं उसका मूलोच्छेद कर डालूं। असली रोग तो पर वस्तु को स्ववस्तु समझना है। जो शरीर और धन सम्पत्ति मेरे नहीं हैं उनको अपना समझने की भूल कर रहा हूं। रोग की जड़ यही है।

मित्रों! अनाथी मुनि नाथ बनने की कला समझ गये। किन्तु आप लोग अपने विषय में थोड़ा विचार करो। मैं यह नहीं कहता कि आज ही घर बार और कुटुम्ब परिवार त्याग कर आप उन मुनि की तरह दीक्षा अंगीकार कर लो। यह तो अपनी अपनी शक्ति की बात है। कोई तत्काल दीक्षा अंगीकार करे तो मनाही नहीं है। मैं यह देखकर प्रसन्न होऊंगा। मेरे कहने का सारांश यह है कि इस तत्त्व को समझकर हृदय में स्थान दो। भक्त लोग इस तत्त्व को समझते हैं अतः कहते हैं–

जलचर वृन्द जाल अन्तर्गत होत सिमिट एक पासा।
एकहि एक खात परस्पर, नहिं देखत निज नासा।।
माधवजू मो सम मंद न कोऊ।
यद्यपि मीन पतंग हीन मति मोहित न पूजे ओऊ।
महामोह सरिता अपार में संतत फिर्यो बह्यौऊ।।माधव.।।
श्री प्रभु चरण कमल नौका तजि फिर 2 फेन गह्यो।।माधव.।।

भक्त कहते है कि हे भगवन्! हम व्यर्थ दूसरों को दोष देते हैं। हम निष्कारण यह कहते है कि रोग, दुःख, नरक या कर्म हमे सताते है। यह तो सब हमारी मूर्खता का फल है।

के मुखारविन्द से या शास्त्र वचन से यह जानते हुए भी कि भोगों से आत्मा का पतन होता है, भोगों में लिप्त रहता है।

रुचिररूप आहार बस उन्ह पावक न जान्यो।
देखत विपति विषय न तजत हों ताते अधिक अयान्यो।।माधव।।

मछली को यदि ज्ञान हो कि इस मांस के भीतर लोहे का कांटा है जिसे खाने से मेरा गला फंस जायेगा और पतंग को यह भान हो कि यह आग है तो वे कभी न फंसते वे बेचारे सुन्दर आहार और सुन्दर रूप के लोभ से फंस जाते हैं। किन्तु मनुष्य कितना अज्ञानी है जो जानते हुए भी विषयों में फंस जाता है।

अनाथी मुनि कहते हैं—मैं अंज्ञानवश अनादिकाल से दुःख भोग रहा था। मैं यह जानता हुआ भी कि विषयों का सेवन करने से दुःख उत्पन्न होते हैं फिर भी विषयों का त्याग नहीं करता था और विशेष उनमें गिरता था। किन्तु जव इस पिछली वेदना के वक्त मुझे सच्चा विवेक उत्पन्न हुआ है मैं चेत गया। इसके पहले महापुरुषों द्वारा संसार समुंद्र से पार पहुंचाने वाली नोका लाकर मेरे सामने खड़ी की गई थी किन्तु मैं उस पर सवार न हुआ। मैं विषयों के कीचड़ में फंसा रहा। प्रभु रूप नौका का सहारा न पकड़ कर धन जन और कुटुम्ब परिवार रूप फेन का सहारा लेकर दुःख मिटाने की व्यर्थ चेष्टा करता था। अतः राजन्! मेरे कथन पर से विचार कर कि जिनको तू अपना मानता है उनमें से कौन–कौन तेरा रक्षण कर सकते हैं? कौन तेरा दुःख छुड़ा सकते हैं यह सोच।

अनाथी मुनि का कथन सुनकर राजा श्रेणिक यह वात समझ गया कि वस्तुतः मैं अनाथ हूं और जिनको मैं अपना सहायक मानता हूं वे मेरी और अधिक अनाथता वढ़ाने वाले हैं। राजा श्रेणिक साधु व्रत अंगीकार न कर सका मगर शनैः शनैः उसने अपना विकास किया। जो कुछ समझकर उसने स्वीकार किया उससे पीछे कदम नहीं हटाया। ग्रंथकारों का कथन है कि अनाथी मुनि के उपदेश से उसको क्षायिक समकित उत्पन्न हो गया। एक ग्रंथ में यह वात भी उल्लिखित है कि नाथ अनाथ का भेद जान लेने पर उसको दृढ श्रद्धान हो गया।

श्रेणिक राजा की धर्मश्रद्धा इतनी मजवूत थी कि एक वार देव सभा मे स्वयं इन्द्र महाराज ने उसकी श्रद्धा की प्रशंसा की। सभा मे सव प्रकार के व्यक्ति होते हैं। इन्द्र द्वारा राजा श्रेणिक की की गई प्रशंसा सुनकर एक देव से न रहा गया। वह सोचने लगा कि हम देवों के मुकावले में मनुष्य क्या चीज

है? हम वैक्रिय शरीरधारी है और मनुष्य ओदारिक शरीरधारी। मैं राजा श्रेणिक को धर्मसभा से डिगा सकता हूं। यह सोचकर एक दिन अनुकूल अवसर देखकर उसने जैन–साध्वी का रूप बनाया। साधारण साध्वी का रूप न बनाया मगर गर्भवती साध्वी का रूप बनाया। जिका पेट बढ़ा हुआ था। ऐसा रूप बनाकर बाजार में किसी पंसारी की दुकान पर सोंठ पिपलामूल आदि वस्तुएं खरीदने लगा। इधर राजा श्रेणिक की बाजार में सवारी निकली। राजा के मुंह लगे मसखरे लोगों ने कहा कि महाराज! जरा इधर नजर करिये, आपकी गुराणी जी यह क्या खरीद रही हैं! राजा ने उस साध्वी को अपने पास बुलाकर पूछा कि दुर्भागिनी यह क्या किया? उसने उत्तर दिया, महाराज, आप अपने रास्ते जाइये। आप इन बातों पर कहां–कहां ध्यान देंगे। संसार में अनेक बातें होती रहती हैं। जवानी के जोश में काम–विकार पर काबू रखना बडा कठिन होता है। जवानी दीवानी में ऐसा बनाव बन जाता है।

राजा ने उस साध्वी से कहा कि तू इस तरह धर्म को कलंकित मत कर। मेरे राजमहल में चली चल वहां एकान्त में रहना। किन्तु साध्वी ने उत्तर दिया कि राजन्! इस तरह तू किस–किस को रखेगा। भगवान् महावीर के शासन में छत्तीस हजार साध्वियां हैं उनमें बहुतेरी ऐसी ही हैं। छोटी–छोटी उम्र में दीक्षा लेने से जवानी में ऐसे काण्ड बन जाते हैं। तू किस–किस को राजमहल में स्थान देगा।

साध्वी का कथन सुनकर राजा सोचने लगा कि यह महावीर की साध्वियों पर तथा स्वयं महावीर पर कलंक लगाती है। यह मेरे मन में महावीर और उनके साधुसाध्वियों के विषय में शंका उत्पन्न करना चाहती हैं। यदि शंका मेरे मन में घर कर गई तो भविष्य के लिए यह अच्छी बात न होगी। भगवान् महावीर सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं उनके यहां ऐसी साध्वी नही रह सकती। मै उन के ज्ञान से ही किसी को साध्वी मानता हू।

राजा ने उस साध्वी को डांटकर कहा कि मैं तेरे दुराचार से इतना नाराज नहीं हूं जितना भगवान् महावीर और उनकी साध्वियों पर कलंक लगाने से हूं। राजा की डांट से देव कांप गया।

रहे हैं। राजा ने उस साधु को समीप बुलाकर पूछा कि यह क्या दशा है? साधु ने कहा कि महाराज! साधु का भेष ग्रहण कर लेने से भावना नहीं बदल जाती। हम क्षत्रिय हैं अतः पूर्व अभ्यस्त मांस खाने की आदत कैसे छूट सकती हैं? हम सदा ऐसा किया करते हैं। तेरे ध्यान में यह बात आज आई है। राजा ने कहा, यदि तुम अपनी आदत नहीं छोड़ सकते तो मेरे राज्य में आ जाओ मैं तुमको यथेष्ट खाद्य वस्तुएं दूंगा। साधु बोला कि राजन्! भगवान् महावीर के शिष्यों में अनेक क्षत्रिय हैं वे सब ऐसा किया करते हैं तुम किस-किस को अपने यहां रखोगे?

यह सुनकर राजा कुपित हो गया। उसने कहा कि साधु! तू तेरी निवेड़। दूसरों की बात क्यों करता है? दूसरों पर कलंक क्यों लगाता है? दुष्ट! धर्म पर कलंक लगाकर पाप क्यों करता है। मैं महावीर की बताई पहचान के अनुसार साधुओं को मानता हूं। कोई भी साधु तेरे जैसा हो नहीं सकता।

अन्त में देव हार गया। उसने अपना असली रूप प्रकट करके कहा कि धन्य है आपको और आपकी धर्म श्रद्धा को! इन्द्र ने आपकी जैसी प्रशंसा की है, आप वैसे ही हैं। आपकी धर्म पर दृढ़ता ने मेरा सुधार कर दिया। इन्द्र की बात मैंने नहीं मानी किन्तु आपकी दृढ़ता ने मनवा दी।

कहने का मतलब यह है कि राजा श्रेणिक की ऐसी दृढ़ श्रद्धा थी। यह अनाथी मुनि के उपदेश श्रवण का फल था। जैन धर्म पर श्रद्धा करने का मतलब है निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा रखना। प्रवचन प्रतिपादित बातों को आचरण में ला सकना या न ला सकना यह तो आत्मा के सामर्थ्य पर अवलम्बित है किन्तु श्रद्धा और तत्त्व जिज्ञासा में कमी न रहनी चाहिये। तत्वों को समझ कर यथाशक्ति सत् संकल्प करना चाहिए। सत्संकल्प से रोग निवारण किस प्रकार होता है। यह बात आगे और बताई जायेगी। यह निर्विवाद बात है कि स्वर्ग या नरक मनुष्य के संकल्प का परिणम है। दुर्गुण या गुण भी संकल्प के अनुसार होते हैं। अतः अपना संकल्प सुन्दर रखना चाहिये।

सुदर्शन चरित्र–

संकल्प अभया रानी ने भी कर रखा है और सुदर्शन ने भी। किन्तु दोनों में जमीन आसमान जितना फर्क है। एक का आसुरी संकल्प है और दूसरे का दैवी। मानो देवासुर संग्राम है। हम यह देखें कि किसकी विजय होती है।

बोले नहीं जब सेठ रानी ने लिया नेत्र चढाय।
नयन बाण को मार खींचकर पाय घुंघर धमकाय।।रे धन.।।

पहना शलि सनाह सेठ ने धीरज मन में ठाय।
ज्ञान खड्ग से छेदे बाण को रानी गई घबराय।।रे धन.।।

रानी ने मीठे वचनों के द्वारा सेठ को अपने जाल में फंसाना चाहा किन्तु उसका यह प्रयत्न असफल रहा। सेठ के विवेक के सामने उसका जाल न टिक सका।

सेठ मन में विचार कर रहे थे कि इसने मेरे साथ जन्म भर स्नेह सम्बन्ध रखने की बात कही है। किन्तु यही प्रतिज्ञा एक बार राजा दधिवाहन के साथ भी यह कर चुकी है। और उसका पालन न करके मेरे साथ स्नेह जोड़ना चाहती है। जब वह पहली प्रतिज्ञा नहीं पालती है तो दूसरी प्रतिज्ञा क्या पालेगी?

विवाह एक पवित्र बंधन है। स्त्री और पुरुष एक दूसरे को इस प्रतिज्ञा में बांध लेते हैं कि हम एक-दूसरे को छोडकर अन्य स्त्री पुरुष को भाई-बहन समझेंगे। अमर्यादित वासना बुद्धि मर्यादित बन जाती है। इस बात को छोटी उम्र के बालक-बालिका नहीं समझ सकते। अतः शास्त्रकारो ने बताया है कि जिनके सोते हुए सात अंग जागृत हो गये हों तथा द्रव्य और भाव से जिनकी जोडी मिलती हो उनका लग्न सम्बन्ध हो सकता है। इससे पूर्व लग्न सम्बन्ध करना भयंकर भूल है। जिस पवित्र प्रतिज्ञा मे वर कन्या आबद्ध होना चाहते हैं वह छोटी उम्र में समझी नही जा सकती।

लग्न के प्रसंग पर जाति के लोगों को क्यों बुलाया जाता है? क्या इस बात पर आपने कभी विचार किया है? वस्तुतः लग्न और संकल्प की साक्षी के लिए जाति बन्धु निमंत्रित किये जाते हैं। आज तो जाति वालो को मिष्टान्न खिलादो कि लग्न हो गया। अच्छा भोजन कराया जाय तो अच्छा लग्न जाना जायेगा और कुछ कसर रह गई तो बुरा लग्न गिना जायेगा। भोजन पर लग्न का भार माना जाने लगा है। मुकदमों में पंचों की साक्षी प्रमाण भूत मानी जाती है। किन्तु जो पंच खाने में ही रह गये वे क्या साक्षी देंगे। पूर्वकाल मे लोग इतने प्रामाणिक होते थे। वे अपनी जिम्मेवारी महसूस करते थे।

विवाह के वक्त की गई प्रतिज्ञा को इतनी दृढता से पालना चाहिए कि देवता आकर डिगाने लगे तब भी नही डिगना चाहिए।

सुदर्शन मनोरमा के साथ विवाह के प्रसंग पर की गई प्रतिज्ञा को याद करता है। मैंने मनोरमा के साथ यह प्रतिज्ञा की है कि इसके सिवा किसी स्त्री से संबंध न जोड़ूंगा। अब यदि मैं इस रानी से विषय संबंध जोड़ता हूं तो अपनी स्त्री के साथ विश्वासघात होता है। विश्वासघात महापाप है। दूसरी बात दधिवाहन की अपनाई हुई इस रानी को मैं अपनाऊं तो दूसरा पाप [illegible]

वरावर होगा। इस प्रकार अनेक दृष्टियों से सोचकर सुदर्शन ब्रह्मचर्यव्रत को अखंडित रखने के निर्णय पर ही पहुंचे। उनके एक रोम में भी रानी के वचनों से ढिलाई नहीं आई।

सुदर्शन को मौन देखकर अभया विचारने लगी कि सचमुच यह पुतला ही है। मेरे द्वारा इतना अनुनय विनय करने पर भी यह मौन बैठा हुआ है। चाहे यह जड़ बुद्धि हो किन्तु मुझे साम दाम दण्ड और नीति में से किसी के द्वारा इसे काबू में लाना है। मेरी साम नीति सफल नहीं हुई। इसलिए अब भय दिखाकर काम निकालना चाहिये।

यह सोचकर वह आंखें चढ़ाकर पैर पटक कर पैरों के नूपूर की आवाज करती हुई कहने लगी कि सेठ! मैंने इतना अनुनय किया मगर तुमने उसे सुना अनसुना कर दिया। यह न समझो कि ये शब्द किसी साधारण स्त्री के हैं। ये शब्द शेरनी के हैं। सिंहनी के शब्द व्यर्थ नहीं होते।

रानी इस प्रकार पैर पटकती हुई गुस्से में भी उसे स्वीकार कर लेने की प्रार्थना कर रही थी। ऐसे अवसर पर किसी पुरुष का मान स्थिर रहना कितना कठिन होता है, यह कोई अनुभवी ही समझ सकता है। ब्रह्मचर्य व्रत सब व्रतों में कठिन है। इस पर दृढ़ रहना तलवार की धार पर चलने के समान है। शास्त्रकार ने कहा है–

देव–दाणव–गन्धव्वा जक्ख रक्खस किन्नरा।
वंभयारिं नमसन्ति दुक्करं ते करन्ति णं।।

ऐसे प्रसंग पर देव दानव गनधर्व यज्ञ राक्षस और किन्नर भी हार खा जाते हैं। और इसलिए शास्त्रकार ने कहा है कि ब्रह्मचारी पुरुष को देवादि भी नमन करते हैं क्योंकि वह दुष्कर व्रत का पालन करता है।

कई वार देखा गया है कि लोहे के वाण सहन करने वाले मिल जाते हैं। परन्तु वचन वाण सहन करने वाले विरले होते हैं। ज्ञानीजन गाली को प्रसाद मानकर पचा जाते हैं। ज्ञानी पुरुष असत्य को सत्य से काटकर सच्ची वीरता हासिल करते हैं। गाली से सत्य की खोज करने की वात नीचे के उदाहरण से वताता हूं।

एक अविनीत पुत्र अपने पिता को गालियां दे रहा था। उसे गालियां देते देख एक तटस्थ व्यक्ति कहने लगा कि भले आदमी! अपने पिता को क्या गालियां देता है। इनका तेरे पर महान् उपकार है। यह सुनकर पिता वोला कि भाई! इसको आप क्या कह रहे हैं, जो कुछ कहना हो मुझसे कहो। यह

लड़का मुझको गालियां दे रहा है वह मेरे हाड़ों को दे रहा है या आत्मा को? यदि हाड़ों को दे रहा है तब बुरा मानने की क्या बात है? एक दिन हाड़ों को यह जला आयेगा। गाली बड़ी है या हाड़ों को जला देना। और यदि मेरी आत्मा को गाली दे रहा है तो यह व्यर्थ प्रयत्न है। क्योंकि आत्मा को गाली लगती नहीं है।

पिता के मुख से इस प्रकार का ज्ञान पूर्ण विवेचन सुनकर पुत्र शर्मिन्दा हो गया। और अपनी उद्धनता के लिए क्षमा मांगने लगा। यह है ज्ञानियों का मार्ग! गाली में से सार निकाल लिया किन्तु ज्ञान मार्ग को अपनाना बड़ा कठिन है। कोई धर्मवीर और क्षमाशील पुरुष ही इस मार्ग पर चल सकते हैं।

अभया के वचन रूपी बाण भी बड़े तीखे हैं। किन्तु सुदर्शन उन बाणों को ज्ञान की तलवार से काटता जाता था। एक भी बाण का असर अपने पर न होने दिया।

मित्रों! आप लोग भी सोचिये कि आप वचन बाणो को सहन कर सकते हैं या नहीं। यदि नहीं कर सकते तो दूसरों को वैसे शब्द मत कहिये जिनसे उनका हृदय छिल जाता हो। कठोर शब्द कहने से सामने वाले की आत्मा पीड़ित होती है। और जिसको कठोर शब्द कहे जाते है उसके साथ वैर का सम्बन्ध बढ़ता है।

वैरानुबंधीनि महाभयानि

कठोर शब्द वैर का अनुबंध करते हैं और बडे भयकारी होते हैं। अत किसी को अपशब्द या गाली देकर वैर न बांधो।

क्षमावीर सुदर्शन अभया के कठोर शब्द सुनकर भी निश्चल आसन से बैठे है। उनके मन में भी किसी प्रकार की हलचल नही है।

राजकोट

5.9.36

मुनि पृथ्वी के समान क्षमाशील हो

अरहनाथ अविनाशी शिव सुख लीधो।

प्रार्थना—परमात्मा की प्रार्थना से किस मार्ग को प्राप्त किया जा सकता है और उसके द्वारा किस स्थिति तक पहुंचा जा सकता है यह बात प्रार्थना करने वाले भक्त ने प्रार्थना की कड़ियों मे स्पष्ट बता दी है। किन्तु उनकी बताई हुई कड़ियों को गा देने मात्र से हमारा प्रयोजन सिद्ध नहीं हो जाता।

भक्तों ने हमारा मार्गदर्शन करने के लिए पद बनाये हैं किन्तु उनके अनुसार आचरण करके उनके द्वारा निर्दिष्ट पथ पर चलना हमारा काम है। हम उस पर चलेंगे तब लक्ष्य सिद्ध होगा। किसी मार्ग दर्शक के इतना बता देने पर अमुक नगर का रास्ता इधर होकर गया है। हमारे चले बिना उस तक कैसे पहुंचा जा सकता है? चलना तो हमें पड़ेगा। मार्ग बताने वाले का बड़ा उपकार है कि उसने हमको सीधा मार्ग बता दिया अन्यथा हम इधर—उधर भटकते रहते। ज्ञानियों ने प्रभु का पथ बता दिया है और उस पर चलने के लिए कहते हैं कि:—

भज चेतन तू अरहनाथ ने ते प्रभु त्रिभुवन राया।

यह मार्ग दर्शन कराया है। भक्त अपनी आत्मा से कहता है कि हे चेतन! तू भगवान् का भजन कर। भक्त दूसरों को उपदेश नहीं देते किन्तु स्वय आचरण करके उसके द्वारा लोगों को सन्मार्ग पर लगाते हैं। भक्त कहता है कि हे मेरे चेतन! जब कि संसार के द्रव्य अपना—अपना कार्य करने में संलग्न है तब तू क्यों सुस्त बैठा है! तू भी अपने चैतन्य धर्म के अनुसार अपने काम

में लगजा। चैतन्य का जो धर्म है उस पर चलना ही चैतन्य का मार्ग पर लग जाना है। चैतन्य को अपने धर्म पर लगाने के लिए परमात्मा की प्रार्थना की जाती है।

यदि आत्मा में चैतन्य शक्ति न होती तो उसे धर्म मार्ग पर लगने के लिए न कहा जाता। ज्ञानियों ने आत्मा में चैतन्य के दर्शन किये हैं अतः कहते हैं कि अयि आत्मा! तू भूल क्यों कर रहा है, अपने मार्ग पर क्यों नहीं चलता? जान बूझकर अपने पैरों पर कुल्हाड़ा क्यों मार रहा है। चेत और प्रभु भजन कर। चैतन्य का धर्म, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख आदि है। उसका प्राप्त कर। पर पदार्थ में आत्म–बुद्धि त्याग।

आप कहेंगे कि परमात्मा का भजन करना अच्छा है किन्तु उसमें कठिनाई जान पड़ती है। किन्तु यह केवल मन का भ्रम मात्र हैं। पृथ्वी का धर्म स्थिर रहना है। यह बात दूसरी है कि कभी भूकम्प आदि के निमित्त से वह कांप जाती है किन्तु उसका असली स्वभाव स्थिर रहना है। जल का स्वभाव शीतल रहना और अग्नि का उष्ण रहना है। आकाश का स्वभाव अवकाश देना है और वायु का स्वभाव चलते रहना या जीवन प्रदान करना है। ये पांचों भूत अपना–अपना कार्य करते रहते है, कभी अपना स्वभाव नहीं छोड़ते। ये अपना–अपना कार्य करते है इसलिए संसार भी चल रहा है। यदि पृथ्वी चलायमान हो जावे तो कितना गजब हो जाता है। वायु चलना बन्द कर दे तो एक क्षण के लिए जिन्दा रहना भी हमारे लिए दूभर हो जाय। इन अनर्थों से बचने के लिए मनुष्य कामना करते है कि ये पांच भूत अपने स्वभावानुसार कार्य करते रहें। दुःख इस बात का है कि मनुष्य अन्य सारी सृष्टि से तो स्व–स्व स्वभावानुसार कार्य करते रहने की इच्छा रखता है किन्तु स्वयं अपना धर्म पालना करना नहीं चाहता। यह कैसी विचित्रता है?

ज्ञानीजन कहते है कि ऐ मनुष्यो! तुम्हारी चंचलता से यह सारी सृष्टि चंचल है और तुम्हारी स्थिरता से स्थिर है। हमारी चंचलता से सृष्टि चंचल और स्थिर किस प्रकार है यह बात मै अपने अनुभव से बताता हू।

लेने से बाहर के पदार्थ दौड़ते हुए मालूम होते हैं।

इस प्रकार आत्मा में चंचलता होने से संसार के पदार्थ चंचल दिखाई देते हैं। आत्मा स्थिर हो तो संसार भी स्थिर हो जाये।

स्व उपयोग सरूप चिदानन्द जिनवर ने तू एक।
द्वैत अविद्या विभ्रम मेटो बाधे शुद्ध विवेक।।

वस्तु स्वच्छ है। निर्मल है। किन्तु उस पर कर्म का स्तर जमा हुआ है। उस कर्मस्तर के कारण ऐसा मालूम देता है मानो सारा संसार चंचल है। कर्म का स्तर हटाकर देखा जाय तो ज्ञात होगा कि आत्मा परमात्मा ही है। आत्मा को स्थिर किस प्रकार करना चाहिये यह बात आपके अनुभव पर से बताता हूं। वस्तु बहुत समीप और निज अनुभव की है। किन्तु भूल से अनुभव की हुई बात से लाभ नहीं उठाया जा रहा है। मैं जो बात कहना चाहता हूं उससे आपके जीवन का गहरा सम्बन्ध है।

आप प्रतिदिन रात को शयन करते हैं। यदि किसी दिन रात को निद्रा न आये तो कितनी बेचैनी का अनुभव होता है। नींद लाने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। जीवन के लिए निद्रा परम आवश्यक वस्तु है। निद्रा के दो भेद हैं, सुपुप्ति और दूसरा स्वप्नावस्था। निद्रा में सुपुप्ति अवस्था अधिक अनावश्यक है। यदि किसी को रात भर स्वप्न ही आते रहें और सुषुप्ति न आवे तो जीवन खराब हो जाता है। कई प्रकार की बीमारियां हो जाती हैं। सुपुप्ति अवस्था में इन्द्रियों के साथ मन भी सो जाता है। केवल आत्मा जागता रहता है। ऐसी निद्रा से उठे हुए किसी मनुष्य से पूछा जावे कि तुम क्या करते थे तो वह यह उत्तर देगा कि आनन्द से सोकर उठा हूं। उस वक्त उसको क्या आनन्द था जबकि वह गाढ़ निद्रा में डूबा था। क्या उस वक्त कुछ खाना–पीना या अन्य विनोद की सामग्री उपस्थित थी! कुछ न था। केवल आत्मा अपने स्थिर स्वभाव में लीन था। यही आनन्द था। सुपुप्ति अवस्था में भी पूर्व के संस्कार और कर्म आत्मा में लगे रहते हैं अतः आनन्द में करार रहती है। किन्तु यदि आत्मा सर्वथा प्रकार से कर्म मल से रहित हो जाय तो तब जो अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता है वह कुछ और ही है। ऐसा स्थायी आनन्द चैतन्य में विद्यमान है। यह चेतन वास्तविक धर्म है। इस धर्म को प्रकट करने के लिए सावधान होकर प्रयत्न करना चाहिये।

यह आनन्द कैसे प्रकट किया जा सकता है और चैतन्य अपने धर्म से किस प्रकार लग सकता है यह बात अनाथी मुनि के चरित्र से बताता हूं।

शास्त्र–

अनाथी मुनि का यह अध्ययन न मालूम कितने सोए हुए चैतन्य में जागृति प्रदान करने वाला सिद्ध होगा। इस अध्ययन से कइयों ने आत्म-जागृति साधी है और कई भविष्य में साधेंगे।

अनाथी मुनि राजा श्रेणिक को समझा रहे हैं कि मैंने वेदना के समय ऐसा संकल्प कर लिया कि यदि वेदना मिट गई तो मैं अनगार बन जाऊंगा, यह वेदना मुक्ति साधना में बाधक है अतः इस बाधक कारण के मिटने पर से विशेष आत्म साधना कर सकूंगा। मुनि ने 'खंतो दंतो और निरारंभो' शब्दों का प्रयोग किया है। इन शब्दों का आपस में क्या सम्बन्ध है इस पर थोडा विचार किया जाता है।

खंतो-क्षमाशील, दंतो-इन्द्रिय दमन करने वाला, निरारंभो-आरम्भ रहित होना।

क्षमाशील का अर्थ है सब कुछ सहन कर लेना। कैसी भी परिस्थिति हो और कैसा भी जुल्म गुजरता हो किन्तु अपना स्वरूप न त्यागना, सहनशील बने रहना क्षमा कहलाती है। शास्त्र में कहा है-

पुढवी समे मुणी हविज्जा

हे मुने! तू पृथिवी के समान सर्वसह बन। जिस प्रकार पृथ्वी गंदगी और स्वच्छ वस्तुएं दोनों को समान रूप से धारण करती है वैसे तू भी सुख और दुःख को समभाव से सहन कर। अनुकूल और प्रतिकूल साधनों मे समता रख। कोई गाली दे या स्तुति करे दोनों अवस्थाओं मे आत्मा एक समान बना रहे ऐसा आचरण कर।

कोई पृथिवी की पूजा करते हैं और कोई उस पर अशुचि पदार्थ डालते हैं। कोई उस पर लात मारता है, कोई उसे खोदता है, और कोई उस पर छिड़काव करता है। किन्तु वह किसी के लिए अवगुण नही करती। पृथ्वी की स्थिरता और सहायता से संसार चल रहा है। मनुष्य पृथ्वी के उपकारों को याद नहीं करता किन्तु वह मनुष्य को नही भूलती। किसी पर प्रसन्न होना और किसी पर नाराज होना यह द्वन्द्व पृथ्वी को पसन्द नही है। अतः शास्त्रकार कहते है कि मुनि! तुम पृथ्वी के समान सहन शील बनो।

लाभालाभे सुहु दुक्खे, जीविए मरणे तहा।
संमो निन्दापसंसासु, तहा माणावमाणओ।।

साधु के पास धन नहीं होता अतः लक्ष्मी की प्राप्ति और अप्राप्ति से होने वाले मनोमालिन्य का प्रसंग ही उपस्थित नहीं होता। शरीर निभाने के लिए लूखा–सूखा रोटी का टुकडा चाहिए सो मिल जाया करता है। यदि न मिले तब भी आनन्द मानना चाहिये। 'अच्छा हुआ आज रोटी न मिली। चलो सहज ही कर्म निर्जरा करने का अवसर हाथ लग गया' ऐसा सोचकर आनन्द मनाना चाहिए। महाजन लोग हानि–लाभ का विचार करके व्यापार करते हैं। किन्तु मुनियों! तुम व्यापारियों के समान हानि–लाभ के पचड़े में मत पड़ो। अपना कर्त्तव्य निभाये जाओ। हानि–लाभ के द्वन्द्व में न पड़कर दोनों अवस्थाओं में एकरस बने रहो। यह संयम का मूल लक्षण है। दस प्रकार के यति धर्मो में क्षमा प्रथम धर्म है।

क्षमा धारण करने के साथ–साथ सुख और दुःख में भी समान रहो। सुख दुःख में इतने सम बन जाओ कि 'जीवन आस मरण भय विमुक्का' जीवन की आशा और मरण के भय से विप्रमुक्त हो जाओ। इसी प्रकार निन्दा और स्तुति में एकभाव रखो। कोई तुम्हारी प्रशंसा करेगा कि 'कितनी उत्कृष्ट चर्या का यह मुनि पालन कर रहा है और कोई तुम्हारी निन्दा करेगा कि यह कितना धर्मढोंगी है।' दोनों प्रकार की बातें करने वाले लोग मिलेंगे। किन्तु तुम किसी की बात पर ध्यान मत दो। अपने मार्ग पर चलते रहो। गाली देने वाले का भी भला करो और भलाई की कामना करो।

धोबी यदि बिना कुछ लिए कपड़े धो दे तो कौन नाराज होगा? इसी प्रकार बेचारा निन्दक बिना कुछ लिए तुम्हारे दुर्गुणों को प्रकट करके तुम्हारी आत्मा के मैल को साफ करता है तो इसमें नाराजी की क्या बात है? सच्चा साधु निंदक को अपना उपकारी मानता है।

जो महात्मा इस स्थिति का अनुभव करते हैं वे लाख–लाख धन्य हैं।

मित्रों! आप लोग श्रमणोपासक हैं और ये बहिनें श्रमणोपासिकाए हैं। भगवान् ने आपको अरिहन्तोपासक न कहकर श्रमणोपासक कहा है इसमें कुछ रहस्य है। श्रमण में अरिहंत का भी समावेश हो जाता है। श्रमण का अर्थ होता है जो निशिदिन अपनी आत्मा को तपावे। आप श्रमणों के उपासक हैं। आप उनकी क्या उपासना–सेवा करते हैं। क्या उनके हाथ पैर दबाते हैं या उनका वजन उठाकर चलते हैं? यह तो कर नहीं सकते। क्योंकि साधुओं का ऐसा आचार नहीं है। वे आपकी ये सेवायें नहीं ग्रहण कर सकते। उनकी उपासना का अर्थ इतना ही है कि उनकी तरह आप लोग भी व्यापार में यदि हानि लाभ हो तो दुःखी मत होओ। अनुचित लालच में मत पड़ो। श्रमणों का

आंशिक अनुगमन करो। क्या लोभ के वशीभूत होकर झूठ बोलना श्रमणोपासक का कर्त्तव्य है? चार छः आनों के लिए असत्य बोल देना क्या श्रमणोपासक के लिए शोभनीय बात है?

यहां के लिए मैंने सुना है कि किसी के मरने के बाद पीटनी करने का रिवाज है। अनेक स्त्रियां लाइन–बद्ध खडी हो जाती हैं और एक साथ मिलकर रोना तथा छाती कूटना शुरु करती हैं। क्या यह बात जैन श्राविकाओं को शोभा देती है? क्या उनके ऐसा करने से मरा हुआ व्यक्ति वापस लौटकर चला आता है? जैन श्राविका को छाजने लेकर रोती हुई देखकर मेरे हृदय में क्या विचार होगा? यह मेरी कमी है या बाइयों की? मेरी श्राविकाएं ऐसा करें यह मेरे लिए खेदजनक बात है। आप लोगों को ऐसा रोना त्याग देना चाहिये। यदि एकदम इस रिवाज को न मिटा सकें तो धीरे–धीरे आगे बढना चाहिये। अमुक दिन बाद न रोएंगे ऐसा नियम करना चाहिये। इन बुरे रिवाजों से धर्म निन्दित होता है।

दूसरी बात यह है कि रोने के विषय में थोडा खयाल तो कीजिये। आप शरीर के लिए रोते हैं या आत्मा के लिए? यदि शरीर के वास्ते रोया जाता है तव उसे जलाते क्यों हो? शरीर आपके सामने रहता हैं उसको रोक क्यों नहीं रखते। और यदि आत्मा के लिए रोते हो तो इसका अर्थ हुआ कि आत्मा की अविनश्वरता के विषय में आपको विश्वास नहीं है। आत्मा अमर है। वह कभी नहीं मरता। सिर्फ चोले बदलता रहता है। यदि कहो कि श्वासोच्छ्वास के लिए रोते हैं तो आज तक रो कर किन–किन ने पुनः श्वासोच्छ्वास चालू करवा लिया। ऐसी हालत में मरने पर रोना किसी के लिए लाभदायक नहीं है। आप श्रमणोपासकों को तो किसी की मृत्यु होने पर यह विचार आना चाहिए कि एक दिन इस नश्वर शरीर को अवश्य छोडना पडता हैं। अतः मैं इस उदाहरण को सामने रख कर अपना मरण सुधारू। मैं पडित मरण करू ऐसी भावना करनी चाहिये। मयणरेहा ने अपने पति का मरण सुधारा था यह आप जानते ही है। उसने अपने पति की धर्म सहायता की थी। किन्तु रोकर धर्म को कलंकित नहीं किया।

अपने साथी के लिए रोते हो यह ठीक नहीं है। मयणरेखा के पेट में गर्भ था और बडी मुसीबत में फंसी हुई थी तब भी वह न रोई इसलिए आज तक उसके गुण गाये जाते हैं। आप लोग रोना त्याग कर आर्त्तध्यान हटाकर धर्मध्यान स्वीकार करो। यदि राजकोट का श्री संघ न रोने का नियम बना ले तो काठियावाड के अन्य शहरों व गांवों में कुछ कहने का अवसर मिले।

मतलब कहने का यह है कि क्षमाशील या सहनशील होने से खुद का भी कल्याण होता है और जगत् का भी। अनाथी मुनि कहते हैं कि राजन्! मैंने निश्चय कर लिया कि यदि एक वार मेरी यह वेदना मिट जाय तो मैं क्षमाशील वन जाऊंगा।

सत्संकल्प का असर जड़ सृष्टि पर भी पड़ता है। सत्संकल्प के प्रभाव से तलवार का घेरा फूल की तरह सरल बन जाता है। विष अमृत बन जाता है और अग्नि शीतल हो जाती है। मुनि कहते हैं कि मैंने पृथ्वी की तरह क्षमा धारण करने का संकल्प कर लिया। इन्द्रिय विजेता बनकर निरारंभी होकर प्रव्रज्या अंगीकार करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। ज्यों ही मैंने यह संकल्प किया कि मुझे निद्रा आ गई। मुझे कई दिनों से निद्रा न आई थी। निद्रा आने से रोग में शान्ति मानी जाती है। मेरे घर के लोग मुझे निद्रा आ जाने से वड़े प्रसन्न हुए।

उनकी प्रसन्नता का कारण कुछ और ही था। पिता सोचते होंगे कि अव मेरा पुत्र अच्छा हो जायेगा। अचछा होकर घर के कार्य में मेरा मददगार बनेगा। माता सोचती होगी कि मेरा पुत्र अच्छा होकर मेरी वृद्धावस्था में सहायक होगा। भाई सोचते होंगे कि चलो बरावरी का भाई अच्छा हो गया सो कभी काम आयेगा। वहिन अपने पीयर की आवादी और खुशाली से प्रसन्न थी। स्त्री भी न मालूम अपने मन में क्या-क्या घाट घड़ रही थी। किन्तु मेरे मन में कुछ दूसरी प्रकार की विचार धारा काम कर रही थी।

सुदर्शन चरित्र-

सुदर्शन सेठ एकान्त स्थान में अभया के हाव भाव देखकर और उसकी चिकनी चुपड़ी बातें सुनकर भी अपने व्रत पर दृढ़ बने रहे। मानों उन्होंने शील की रक्षा करके सारे श्रावक समाज और साधु समाज की इज्जत रख ली है। ऐसे श्रावक के लिए ही हम लोग गरज कर कहते हैं कि-

धन सेठ सुदर्शन संयम पाली तारी आतमा।
वर्षा ऋतुसम बनी भागिनी अम्बर पटल बनाय।
अहंकार की ध्वन गाज सम तन दामिनी दमकाय।।रे धन.।।

अमोघधारा वचन बरसाती चाह भूमि भिंजाइ।
मूंगसरिया सम सेठ सुदर्शन न सकी रानी भिगाई। ।रे धन.।

सुदर्शन को कोटि–कोटि धन्य है जो शीलव्रत पर आरूढ रहा। डिगा नहीं। वह पौषधशाला को निरापद समझकर धर्म आराधना कर रहा था। किन्तु पण्डिता ने उसका वह स्थान छुड़ा दिया और राजमहल में ला रखा। यहां साक्षात कामिनी बनी हुई रानी विघ्न कर रही है। कामवासना की उत्तेजना देने वाला राज प्रासाद और वर्षाऋतु बनी हुई रानी उपस्थित है। रानी के वस्त्र वर्षऋतु के रंगीन बादलों के समान थे। जैसे बादल इधर उधर गति करते रहते हैं वैसे वे वस्त्र भी रानी द्वारा इधर–उधर हिलाये जा रहे थे। वर्षा के बादलों में जिस प्रकार बिजली चमकती है उसी प्रकार उन वस्त्रों में रानी का गौर शरीर और आंखें चमक रही थीं। उस समय रानी वर्षा ऋतु बनी हुई थी और सुदर्शन के शरीर को काम के जल से भिगोने का प्रयत्न कर रही थी। बादलों में चमकने वाली बिजली के वक्त धैर्य रखा जा सकता है किन्तु रानी रूपी वर्षा की बिजली से देवों का भी धैर्य छूट जाता है तो मनुष्यों की क्या बात करें। रानी का अहंकार युक्त हुंकार मानो बादलों की गरज थी। रानी पानी की धारा के समान वचन रूपी धारा बरसा रही थी।

पानी का जोश कम नहीं होता है। वह पहाडो को फोडकर नदियों के रूप में बह निकलता है। पानी की धारा बडे–बडे पत्थरो को तोड देती है। जब पानी नदी के रूप में पूर बनकर निकलता है तब कैसा विचित्र दृश्य बन जाता है। पानी के इस वेग को कोई सहन भी कर सकता है किन्तु काम के वेग को सहन करना बड़ा कठिन काम है।

काम के वेग के सामने रथनेमी भी राजमती को एकान्त स्थान में देखकर हिल गये थे। किन्तु सुदर्शन सेठ इस वेग को सहन कर गये। वे महान पहाड़ के समान न थे किन्तु मूंगसलिया पत्थर के समान थे।

है। नारद बोले यदि ऐसी बात है तब उसको भिगो न? मेघ सात दिन-रात बिना नागा बरसता रहा किन्तु मूंगसलिया पत्थर न भीगा। बल्कि पानी से उसके आसपास का कचरा साफ हो गया जिससे और अधिक चमकने लगा। नारद मेघ से बोले कि यह पत्थर चमक दिखाकर तेरी हंसी कर रहा कि तेरे जैसे मैंने कई देखे हैं। मेघ! तू इसके सामने अपनी हार स्वीकार करले।

इस उदाहरण को जिस तरफ चाहो उस तरफ लागू कर सकते हो यहां तो सुदर्शन और रानी अभया हैं। सुदर्शन मूंगसलियां पत्थर के समान है और रानी सव्वसमत्थाई मेघ के समान है। रानी की वर्षा का सुदर्शन पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। सुदर्शन का एक रोम भी उसके वचन बाणों से न हिला। रानी विचार करने लगी कि हाय! यह किसी तरह नहीं पसीजता है। अब मैं कपिला और पण्डिता के सामने मुंह कैसे दिखाऊंगी।

कई मनुष्य और कई साधु इसलिए अनर्थ कर डालते हैं कि ऐसा न करने से उनकी बात हल्की लगेगी। रावण ने इसी भय से अपना विनाश करवाया था।

अभया इसी भय के कारण दुःखी है कि वह अपनी सखी के सामने अपमानित होगी कि बस इतना भी न कर सकी! ड़ींगें तो बड़ी-बड़ी हांकी थीं और कार्य के नाम पर कुछ नहीं किया। वह रह रहकर विचार कर रही है कि अब क्या उपाय काम में लाऊं? मेरी बुद्धि में जितनी बातें थी सब आजमा ली। अब क्या करूं? यह तो पत्थर की मूर्ति के माफिक अडोल बैठा है। हां, एक अस्त्र और रह गया है। स्त्रियों का सबसे बड़ा बल रोना है। उसका प्रयोग करके भी देख लूं। शायद इसका चित्त दयालु है और रोने से पिघल जाय।

करुणस्वर से रोवे कामिनी पूरो हमारी आश।
शरणागत मैं हुई तुम्हारे मानो मम अरदास।।रेधन.।।
अवसर देख सेठ तब बोला सुनो सुनो बड़ मात।
पंच मात में तुम अग्रेसर तज दो खोटी बात।।रे धन.।।

तुम दयाधर्मी हो, करुणासागर हो अतः मुझ पर भी करुणा करो। मै आपसे प्रेम करने के लिए उस प्रकार तड़प रही हूं, जिस प्रकार पानी के बिना मछली तड़पती है। आप मुझको शरण में लेकर मेरी रक्षा करो।

शास्त्र में जिन ऋषि जिनपाल की कथा वर्णित है। जिनपाल रयणा देवी की मीठी–मीठी बातों और प्रलोभनों से न डिगा किन्तु अन्त में उसका रुदन सुनकर चलायमान हो गया। वह उसके फंदे में फंस गया। उसकी कैसी दुर्दशा हुई है यह सबको मालूम है।

अभया का रोना सुनकर सुदर्शन सोचने लगा कि पुत्र माता के सामने रोते हुए देखे गये हैं किन्तु यह माता होकर पुत्र के समक्ष रुदन करती है यह विचित्र बात है। इसको किसी प्रकार सन्तुष्ट करना चाहिये। अभी तक इसके मन में दूसरी भावना थी किन्तु अब भावना बदली मालूम देती है अतः इसके मन को सान्त्वना देनी चाहिये। मुझे यह दयाधर्मी कह रही है इसलिए मेरा कर्त्तव्य है कि इस पर दया करूं।

स्त्रियों के रुदन से लोग यहां तक कांप उठे कि उन्होंने अपने शास्त्र में करुण रुदन करती हुई स्त्री की वासना पूर्ति न करने में पाप होने तक का विधान कर डाला है। किन्तु जैन शास्त्र सूत्रकृतांग सूत्र में मुनियो के लिए कहा गया है कि हे मुने! तेरे सामने कोई स्त्री चाहे किसी भी तरह का रुदन या विलाप करे, किन्तु तू ब्रह्मचर्य से मत डिगना।

मुनि तो नहीं डिगते किन्तु उनका उपासक श्रावक सुदर्शन भी नही डिगता है। माता का रुदन सुनकर सुदर्शन उसको संतोष देता है। कौन ऐसा पुत्र होगा जिसका हृदय माता के रुदन से भी न पसीजे? सुदर्शन रानी अभया से पूछता है कि बड़ी माता! आपको क्या दुःख है?

सुदर्शन द्वारा माता शब्द से संबोधन सुनकर रानी विचार मे पड गई। यह किसको माता कह रहा है? यह अब तक तो कुछ बोला नही और बोला तो माता कहकर मुझे पुकार रहा है। मुझे यह विशेषण पसन्द नहीं है। रानी को माता विशेषण कब अच्छा लग सकता है? इस वक्त इसके मन मे शैतान का निवास है। वैसे स्त्रियों को माता शब्द से पुकारा जाना पसन्द होता है। मगर काम–वासना का उन पर भूत सवार हो जाता है तब वे अपनी मर्यादा भूल जाती है।

पालने' धातु से माता शब्द बनता है। मेरे एक नहीं किन्तु पांच माताएं हैं।

श्रोताजनों! आपकी भी पांच माताएं हैं या नहीं? यदि हैं तो उनके प्रति आपका क्या कर्तव्य है यह सोचो।

अभया इतनी उचटी हुई थी कि उसे माता शब्द से पुकारा जाना भी पसन्द नहीं आया। इस वक्त यह विशेषण उसे बड़ा बुरा लगा।

धर्म का पालन एकांगी होता है। धर्म पालन के विषय में यह नियम लागू नहीं होता कि अमुक व्यक्ति ऐसा करे तब मैं भी ऐसा करूं। दूसरा व्यक्ति अपना धर्म निभाता है या नहीं निभाता है इस झंझट में न पड़कर अपना क्या धर्म है, यह देखना चाहिये। मान लीजिये कि दो मनुष्यों में किसी बात को लेकर मनमुटाव हो गया है। अब प्रश्न खड़ा होता है कि पहले कौन क्षमा मांगे? क्षमा मांगना या क्षमा करना धर्म है। दोनों व्यक्ति यदि यह सोचते रहें कि पहले क्षमाचाचना कौन करे तब तो आपसी द्वेष या आंटी निकलना संभव नहीं है। किन्तु उन में से कोई एक यह विचार करे कि मैं अपना धर्म निभाऊं, मुझे सामने वाले के धर्म पर विचार करने का क्या अधिकार है, मुझे मेरे कर्तव्य पर सोचने का अधिकार है। मैं उससे क्षमा मांग लूं और आपसी मनोमालिन्य को साफ कर लूं। तब द्वेष धुल सकता है। जो व्यक्ति ऐसा करता है वह धर्म का पालन करता है। किन्तु जो दूसरों पर बात को अड़ा देते हैं वे धर्म मार्ग को नहीं पहचानते।

सुदर्शन अपना कर्तव्य देख रहा है। वह यह नहीं सोचता कि रानी मुझे किस निगाह से देख रही है। वह यही सोचता है कि मुझे रानी को किस निगाह से देखना चाहिये। धर्म का पालन आत्मसाक्षी से किया जाता है। जो आत्मसाक्षी से धर्म का पालन करता है उसे इन्द्र भी हिला नहीं सकते। दूसरे पाप करते हैं या धर्म करते हैं यह न देखकर हमें क्या करना चाहिये, यह देखो। दूसरा चाहे पाप भी करता हो, हमें धर्म करना चाहिये।

पांच माताएं कौन–कौन सी हैं, यह बात आगे यथावसर बताई जायेगी।

राजकोट

6.9.36

संकल्प शक्ति का शारीरिक प्रभाव

मल्ली जिन बाल–ब्रह्मचारी

प्रार्थना– परमात्मा की प्रार्थना करते हुए भक्त यह भावना करता है कि हे भगवन्! तेरी भक्ति मैं करना चाहता हूं फिर भी शास्त्र में जैसी भक्ति बतलाई गई है वैसी भक्ति मैं क्यों नहीं कर पाता हूं। उसमें विघ्न क्यो आते हैं? विघ्न उपस्थित होने से मैं इस नतीजे पर पहुंचता हूं कि तेरी कृपा के बिना तेरी भक्ति भी शक्य नहीं है। तेरी भक्ति करते हुए क्या विघ्न आते हैं उसके संबंध में भक्तिसूत्र में कहा है।

सा न कामायमाना निरोधरूपत्वात्

प्रभु भक्ति करते हुए किसी भी बात की किंचित् भी कामना न होनी चाहिये। कामना भक्ति में विरोध पैदा करती है। जब मै अपना हृदय टटोलता हूं तब उसमें असंख्य इच्छाएं पाता हूं। अतः हे परमात्मन्! मैं तेरी शरण मे आया हूं कि तेरी कृपा होने पर मुझसे निष्काम भक्ति हो सकती है। यद्यपि कामनाए मुझे सतायेंगी किन्तु तेरे चरणों की शरण पकडे रहने से वे मिट जायेगी और मै शास्त्रानुसार भक्ति कर सकूंगा।

हे भगवन् मल्लीनाथ! मैंने आपका चरित्र सुना है। छह कामान्ध राजा आपके साथ विवाह करने के लिए एक साथ चढकर आये थे। आपने उनका तिरस्कार नही किया किन्तु प्रतिबोध देकर सन्मार्ग पर लगाया था। आप में उन राजाओं को परास्त करने की शक्ति थी। आपमे सारी पृथ्वी को मेरु पर रख उठा लेने की ताकत थी। आपके पिता को उन राजाओं पर क्रोध आ गया था और इसलिए उन्होंने ससैन्य सामना भी किया था। किन्तु छह राजाओं की संगठित शक्ति के सामने वे न टिक सके और हार खा गये।

फिर भी भगवन्! आपको उन राजाओं पर गुस्सा न आया। आपने अपने पिता से कहा कि छह राजा चढ़ाई करके आये हैं इसमें क्या नवीनता है? वे मुझको कन्या समझते हैं अतः विवाह करने की इच्छा से चढ़कर आये हैं। आप उनसे कह दीजिये कि आपको मेरी कन्या मिलेगी।

हे भगवन्! आपके ऐसा कहने पर भी आपके पिता कुंभ राजा ने इस विषय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया। वे यह जानते थे कि आप महापुरुष हैं और जो कुछ कहते हैं वह उचित ही होगा। शास्त्र में 'मल्ली रायवर कन्ना' पाठ है। अर्थात् मल्लीनाथ एक राजा की कन्या थे। आपको राजकन्या मानते हुए भी आपके पिता ने आपका वचन नहीं टाला और छहों राजाओं को विवाह का आमंत्रण दे दिया। हम लोग मल्लीनाथ को सिद्ध बुद्ध और मुक्त मानते हैं अतः उनके वचनों पर किसी प्रकार सन्देह नहीं करना चाहिये। छहों राजा आये और आपने उनको किस खूबी से समझाया यह कथा सर्वविदित है। भगवन्! अपने उन राजाओं की वासनाएं छुड़ाकर उनको आवरूप में मिला लिया। ऐसे मल्लीनाथ भगवान् की शरण को छोड़कर हम लोग अन्य किसकी शरण ग्रहण करें। हमारी कामनाएं भी आपकी भक्ति से मिट जायेंगी। आप हमारी कामना न मिटायेंगे तो और कौन मिटायेगा? कवि आनन्दघन जी कहते हैं कि– ये तुम शोभा सारी मल्लिजिन! सेवक किम अवगणिये।

हे भगवन्! आपने उन छह राजाओं की भी अवगणना नहीं की जो आपसे विवाह करने के लिए आपके पिता पर चढ़ाई करके आये थे। मैं आपका भक्त हूं मेरी अवगणना कैसे करते हैं! और क्या यह बात आपके लिए शोभाजनक है कि आपका एक भक्त दुःखी है।

संसार में यह देखा जाता है कि ऋद्धिशाली स्वामी अपने सेवक का दारिद्र्य दूर कर देता है। आप भी अनन्त चतुष्टय के धारक हैं अतः मुझ पर भी कुछ कृपा करिये नाथ! आप अठारह दोषों से रहित हैं अतः मैंने आपका सेवक होना स्वीकार किया है। आपने आशा और तृष्णा का नाश कर दिया है अतः मैं आपका दास बना हूं। आपने स्वयं अपनी आशा तृष्णा को मिटा दिया है तो क्या सेवक की आशा को न मिटायेंगे। प्रभु! मुझे केवल एक ही कामना है और वह है आशा तृष्णा मिटाने की कामना है। आपके सेवक की इच्छा पूरी न हो इसमें आपकी शोभा नहीं है।

सांसारिक पदार्थों की आशा रखकर भगवान की भक्ति करने वाले लोग भक्ति का स्वरूप नहीं समझते। संसार में जो दुःख या बुराई देखी जाती है वह आशा के कारण ही है। किसी को धन की, किसी को पुत्र की और किसी को कामिनी की आशा लगी हुई है। यदि कोई साधु बन गया है तो उसे कीर्ति की आशा लगी रहती है। किन्तु जब तक आशा लगी रहती है तब तक सत्य का आचरण करना तो दूर की बात है सत्य भाषण करना भी उसके लिए कठिन कार्य है।

एक ग्रन्थ में पढ़ी हुई कथा के आधार से यह बात विशेष रूप से बताता हूं।

अद्वैताचार्य नामक एक विद्वान थे। उनके पिता बंगाल के किसी राजा के गुरु थे। अद्वैताचार्य को यह विचार उत्पन्न हुआ कि जो बात सत्य हो उसे अवश्य प्रकट करना चाहिये। चाहे उसके लिए कोई मार भी क्यों न डाले। वहां का राजा शाक्त था। देवी का उपासक था। यह लगभग पन्द्रह सौ सोलह सौ शके की बात है। उस वक्त देवी पूजा के नाम पर बहुत अधिक पशु वध होता था। पंडित लोग भी उस पशु–वध का समर्थन करते थे।

एक दिन राजा देवी की पूजा कर रहा था कि इतने मे अद्वैताचार्य मन्दिर में आये और देवी को नमस्कार किये बिना ही देवी के सामने आकर बैठ गये। राजा को यह गुस्ताखी अच्छी न लगी। मेरे गुरु का पुत्र इस प्रकार मेरे सामने देवी का अपमान करता है! राजा ने अद्वैताचार्य से पूछा कि तुम्हारा मस्तिष्क ठिकाने सर है न? अद्वैताचार्य ने कहा कि मेरा मन स्थिर है। कहिये, क्या बात है? राजा ने कहा कि माता को नमस्कार किये बिना कैसे बैठ गये? अद्वैताचार्य बोले कि यदि यह देवी माता है और सचमुच इसे माता होना ही चाहिये तो यह इन मूक पशुओं की बलि क्यों लेती है? पशु भी तो देवी के पुत्र ही है। माता का काम पुत्रों का पालन पोषण करना है। नाश करना माता का काम नहीं है।

अद्वैताचार्य का कथन सुनकर राजा चुप हो गया। कुछ उतर न दे पाया। तब अद्वैताचार्य के पिता बोले कि पुत्र! तू धर्मभ्रष्ट हो गया है। तुझे धर्म का कुछ पता नही है। माता भोग मांगती है, बलिदान मांगती है। पुत्र कुछ अजीब सा था। उसने कहा–पिताजी! यदि माता बलिदान मांगती है तो मेरी माता मेरा बलिदान क्यों नही मांगती? आपकी बात ठीक हो सकती है जब मेरी माता मेरा वध कर डाले। पिताजी! आप भय और लोभ के कारण ऐसी बात कर रहे है। पिता भी चुप हो गया।

कहने का भावार्थ यह है कि अद्वैताचार्य को किसी वात की कामना न थी अतः वे सत्य वात कह सके। किन्तु उनका पिता वैसा न कर सका। आप लोग आशा तृष्णा के भंवर जाल में फंसे हुए हैं। अतः ऐसे देव की उपासना करते हैं जो स्वयं आशावान और तृष्णावान हैं। यदि आशा तृष्णा मिटानी है तो निरीह भगवान् मल्लिनाथ की शरण अंगीकार करिये। कामना रहित होकर भगवान की शरण अंगीकार करने से सर्व शक्ति प्राप्त होती है। अनाथी मुनि भी कामना रहित होने का प्रयत्न कर रहे हैं।

शास्त्र–

भगवती सूत्र में गौतम स्वामी ने प्रश्न किया है कि हे भगवन्! जीव स्वयं का किया हुआ दुःख भोगता है या दूसरे का किया हुआ भोगता है? भगवान् ने उत्तर दिया कि गौतम! जीव अपना किया हुआ दुःख भोगता, है न कि दूसरे का किया हुआ। इस पर से समझना चाहिये कि 'सुख दुःख सब मेरा खुद का किया हुआ है। मैं कर्म को दोष देता हूं किन्तु कर्म क्या करे? कर्म भी तो मेरा ही किया हुआ है। कर्म को मैंने स्थान दे रखा है इसलिए ठहरा हुआ है। यदि मैं चाहूं तो कर्म को भगा सकता हूं।' इस प्रकार अनाथी मुनि राजा से कह रहे हैं कि मैंने आत्म–चिंतन करके दुःख का मूल कारण ढूंढ निकाला। मैं समझ गया कि यदि दुःख मेरा किया हुआ है तो क्या सुख नहीं किया जा सकता?

ज्ञान दो प्रकार से उत्पन्न होता है। एक स्वतः विचार करते–करते या किसी घटना को देखकर और दूसरा किसी ज्ञानी से। अनाथ मुनि को किस प्रकार ज्ञान उत्पन्न हुआ इसका शास्त्र में कुछ जिक्र नहीं है। उनको स्वतः बोध हुआ हो या किसी विशिष्ट ज्ञानी के मुख से उपदेश श्रवण कर हुआ हो किन्तु यह निश्चित वात है कि उनको सुख दुःख का ज्ञान हो गया। आपको स्वतः ज्ञान पैदा न हो तो यह उपदेश आपके सामने है। इस पर मनन और चिंतन करने से आपको भी ज्ञान हो सकता है। यह उपदेश श्रवण कर आप भी अपना दुःख मिटाने का संकल्प करिये।

अनाथी मुनि राजा से कहते हैं कि हे राजन्! मैंने दुःख मिटाने का दृढतम संकल्प किया कि तुरन्त मुझे निद्रा आ गई। निद्रा भी ऐसी आई कि मानों सब दिनों की कसर निकल गई। जैसे विवाह शादी की थकान के बाद कैसी गाढ निद्रा आती है वैसी निद्रा मुझे भी आ गई। लोग समझ रहे थे कि मैं सो रहा था किन्तु मैं दुःख को सदा के लिए विदा कर रहा था। मेरे दुःख की वह अन्तिम रात थी।

यदि मनुष्य का संकल्प सत् और स्थिर हो तो दुःख नहीं हो सकता। दृढ संकल्प और सत्संकल्प से दुःखमुक्ति हो सकती है इसमें संदेह करने की कोई बात नहीं है। किन्तु फिर भी कई लोगों को इस बात पर विश्वास नहीं होता कि संकल्प मात्र से दुःख कैसे मिट जाता है। जो लोग मानस शास्त्र के ज्ञाता हैं उनको इसमें तनिक भी संदेह नहीं होता। किन्तु जो मानस–शास्त्र से अनभिज्ञ हैं उनको इसमें संदेह होता है। ऐसे लोगों को समझाने के लिए मै कहता हूं कि क्या विचारों के कारण मनुष्य दुःखी नहीं होते? क्या अपनी अज्ञानता के कारण मनुष्य दुःखों का पहाड़ खड़ा नहीं कर लेता है? डाकिन लग गई, भूत लग गया आदि विचारों के कारण कितनी स्त्रियां और पुरुष दुःख पाते हैं, यह आप लोगों से छिपी हुई बात नहीं है। डाकिन और भूत की बातें सुनकर मन में भय का संचार हो जाता है। और भय से मनुष्य महान् दुःख पाता है। यदि आपको यह बत्ता दिया जाय कि अमुक स्थान में भूत रहता है तो क्या आप उस तरफ जाते हुए हिचकिचायेंगे या नहीं? उस मकान में जाते हुए आपके पैर कांपने लगेंगे या नहीं? और खास कर रात्रि में जब अंधेरा हो तब क्या उसी हिम्मत और निडरता से उस मकान में जा सकते हैं जिसमें आपको भूत होने की शंका है। यह सब मानसिक कल्पना का डर है।

मानसिक भय के कारण मैंने अपने जीवन के संयम जीवन के प्राथमिक पांच मास अकारथ खो दिये थे। दीक्षा लेने के पूर्व मैंने भूत आदि की कई बातें सुन रखी थीं। उन बातों का मेरे मन पर असर था। दीक्षा लेने पर भी वह असर न मिटा और मैं यह समझता था कि अमुक मनुष्य मुझ पर जादू कर रहा है। रात के समय गश्त लगाने वाले लोग चिल्लाते थे तो मैं यही समझता था कि वे मुझ पर जादू कर रहे हैं। यह सब संसार पक्ष का दोष था। छोटे–छोटे बच्चों के दिमाग में ऐसी भद्दी और गंदी बातें भर दी जाती हैं कि कभी–कभी जन्म भर उनका असर नहीं मिटता। मैं अपने विचारों से स्वयं दुःखी था। जब वे गलत विचार दूर हो गये तब मेरा दुःख भी मिट गया।

कहने का सारांश यह है कि संकल्प से दुःख होता है और यह बात आप लोगों के अनुभव की भी है। संसार में हजारों मनुष्य ऐसे हैं जो स्वयं अपने उत्पन्न किये हुए दुःखों से महा दुःखी रहते है और उनका दायित्व दूसरों पर लादते है। दुःखो को उन्होंने स्वयं आह्वान किया है किन्तु जवाबदारी अपने सिर पर लेना नही चाहते। हर एक मनुष्य को यह विचार करना चाहिये कि मैं अपना जीवन किस प्रकार चला रहा हूं। वास्तव मे जो मनुष्य सच्चे प्रकार से जीवन बिता रहा है वह अपने वर्तमान जीवन की ही चिन्ता करेगा, वह

निकम्मे संतापमय जीवन की सृष्टि नहीं करेगा, और न मृत्यु से डरने की चिन्ता करेगा। वह तो अपने मन को, अपने विचारों को, अपनी इन्द्रियों को तथा अपनी इच्छाओं को वर्तमान में ही एकाग्र करेगा। अज्ञानता या झूठी आशंका को क्षण भर भी अपने पास न टिकने देगा।

किन्तु हम देख रहे हैं कि असंख्य मनुष्य मानसिक परतंत्रता से सदा भयभीत रहते हैं, अपने मस्तिष्क और हृदय पर बड़ा भारी बोझ उठाये रहते हैं और व्यर्थ तडपते हैं। एक सेठजी थे जो 'मेरा हार्ट फैल हो जायेगा, हृदय की धड़कन रुक जायेगी' की भावना के उद्वेग से निरन्तर परेशान रहते थे। बायें हाथ से हमेशा हृदय को संभाले रहते थे और मानसिक वेदना और उद्वेग से दाहिना हाथ जोरों से हिलाते रहते थे।

किन्तु जब उन सेठजी का भ्रम दूर हो गया और उन्होंने शुद्ध अंतःकरण से उन दूषित और संकीर्ण विचारों को भगा दिया वे सुखी हो गये।

हम प्रयत्न करके क्षण–क्षण में उठने वाले व्यर्थ के भावोद्वेगों को रोकें; झूठी भावनाओं को रोकें। यह शक्ति हमारे भीतर विद्यमान है। क्योंकि हमारा जीवन हमारे विचारों का फल है। जो दुःख भोगना पड़ता है, उसका उत्पन्न करने वाला प्रत्येक मनुष्य स्वयं है। जब मनुष्य का यह सिद्धान्त समझ में आ जायेगा तो वह मस्तिष्क के द्वार को व्यर्थ के क्षणभंगुर विचारों और उद्देश्यों के लिए बन्द रख सकता है। वह प्रतिक्षण आत्मनिरीक्षण करके सुविचारों का ही स्वागत करेगा।

अनाथी मुनि राजा श्रेणिक के सामने अपने दुःख मिटाने की प्रक्रिया बता रहे हैं कि राजन्! जब मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया कि मैं स्वस्थ हूं, मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं है, रोग नहीं है, तब एकदम मुझे निद्रा आ गई।

विचारों को उत्पन्न करने का अत्यन्त सूक्ष्म सामर्थ्य मन में रहता है। जो संस्कार हमारे अन्तःकरण के गर्भ भाग में किसी भी विषय के अंकित हो गये हों, चाहे वे भय के हों या अन्य किसी दुःख के, उन्हीं विचारों की सृष्टि हमारा मन करता है। उपनिषद् विचारधारा के अनुसार मनोमय कोष में उत्पन्न हुए विचार वहां से निकल कर प्राणमय कोष में हलचल करते हैं और फिर अन्नमय कोष में अर्थात् शरीर में रासायनिक परिवर्तन करते हैं।

मन के भय या व्याकुलता के विचार प्राण में क्षोभ उत्पन्न करते हैं और हृदय की व्यथा को–हृदय की धडकन को एकदम तीव्र वेग से बढ़ा देते हैं और फिर शरीर को अत्यन्त व्यथित और दुःखी कर देते हैं। जब असद् विचारों के वेग से दुःख उत्पन्न होता है तो यह सीधी सी बात है कि सद्

विचारों के वेग से दुःख मिटाया भी जा सकता है। अनाथी मुनि दुःख मिटाने की इस कला को जान गये थे। वे इस तत्त्व तक पहुंच गये कि यह दुःख मेरा उत्पन्न किया हुआ है अतः मैं ही उसे मिटा सकता हूं। संसार के दूसरे किसी मनुष्य की शक्ति नहीं है कि वह मेरा दुःख मिटा दे।

अपने दुःख, पीड़ाओं और क्लेशों को शमन करने के लिए समाधान और सांत्वना तथा आश्वासन के लिए दूसरों से आशा मत करो। दूसरों की सहानुभूति और दया पर आधार रखने से हम अधिक दुर्बल होते हैं, हमारी परवशता बढ़ती है और इस प्रकार अनाथ बन जाते हैं।

स्त्री–समाज में मानसिक विचारों की बदौलत दुःख पैदा करने की पद्धति अधिक देखी जाती हैं। वे मंत्र तंत्रादि पर भी अधिक विश्वास करती है। कई स्त्रियां हम साधु लोगों से यह कहने में भी नहीं चूकतीं कि महाराज! इस बच्चे पर ओघा फेर दो, अमुक मंत्र सुना दो आदि। हम यदि जैन साधु मंत्र तंत्र और टोने आदि करने लगें तो न मालूम कितने लोग हमारे पास दौडे आवें। आप लोगों की अंध विश्वास की पद्धति ने हम साधुओं को भी गिराने का काम किया है। आपका अधःपात तो हुआ ही किन्तु साथ में साधुओं का भी पतन हुआ है। कई साधु लोग भी आप लोगों को प्रसन्न रखने के लिए मंत्र तंत्र के पचड़े में पड़ गये हैं और अपनी आत्म–साधना भूल बैठे हैं। वस्तुतः हम साधुओं के पास परमात्मा के नाम के सिवा आपको देने के लिए कुछ न होना चाहिए। किन्तु साधु और श्रावक दोनों अपने पद से गिर रहे हैं।

तात्पर्य यह है कि विचारों के द्वारा दुःख उत्पन्न किये जाते हैं और विचारों से ही नष्ट भी किये जा सकते हैं। हां, यह बात ध्यान देने योग्य है कि बुरे विचार बिना बुलाये आ जाते हैं और भले विचार प्रयत्न करने पर भी कठिनाई से आते हैं। विचारों या संकल्पों के द्वारा बुरी परिस्थिति का निर्माण शीघ्रता से हो सकता है किन्तु भली परिस्थिति का निर्माण बहुत अभ्यास के बाद होता है। इसका कारण है–अनादिकालीन वासना का जोर। जीव चिरकाल से दुःखमय वातावरण का सर्जन करता आ रहा है। अतः इस प्रवाह को रोककर नवीन प्रवाह चालू करना सहज काम नहीं है।

अनाथी मुनि जैसे समर्थ व्यक्ति ही चिर कालीन वासना के पहाड़ को गिरा कर उसके स्थान मे नूतन सुख के भावों की सृष्टि कर सकते हैं। अनाथी मुनि के उस प्रयत्न की क्या प्रशंसा की जाय जो उन्होंने दुःख विदाई की

अन्तिम रात्रि में किया था। सद्ज्ञान, सद्विवेक और शुभ अध्यवसायों के उत्कृष्ट रसायन के द्वारा उन्होंने शारीरिक वेदना में ऐसा रासायनिक परिवर्तन किया कि असह्य वेदना मिट गई और उनको निद्रा आ गई।

आधुनिक विज्ञान के युग में लोगों को संकल्प के बल पर उतना विश्वास नहीं है। किन्तु उनके विश्वास न होने से संकल्प की शक्ति कम नहीं आंकी जा सकती। जो लोग अनुभवी हैं और सत्संकल्प का जिनको अभ्यास है वे इस बात की साक्षी देते हैं कि संकल्प में अनन्त शक्ति है। आजकल भी कई वैदेशिक विद्वान विल पावर(इच्छा शक्ति) का महत्व स्वीकार करते हैं।

गांधीजी के संबंध में यह सुनने व पढ़ने में आया है कि एक बार रात्रि में जब डॉक्टरों ने उनके रक्त प्रवाह का परीक्षण किया तो वे चिन्तित हो गये और आपस में कानाफूसी करने लगे। उनकी चेष्टा से गांधीजी बात ताड़ गये और कहा कि आप लोग प्रातःकाल पुनः मेरी परीक्षा करियेगा। रात्रि का समय मुझे दीजिये। महरबानी करके रात भर मुझे रामनाम के सहारे छोड़ जाइये। डाक्टरी विद्या और भौतिक गणना पर विश्वास रखने वाले डाक्टर लोगों को रामनाम के सहारे पर गांधीजी जैसी विभूति को छोड़ना अच्छा न लगा। वे इंजेक्शन आदि द्वारा रात्रि में ही इलाज करना चाहते थे। किन्तु हम सब जानते हैं कि गांधीजी अपने संकल्प बल पर अड़ने वाले व्यक्ति हैं। वे कब डाक्टरों की बात मानने वाले थे। उन्होंने कह दिया कि अभी क्षमा करो, कल आप मेरी पुनः परीक्षा करियेगा। डाक्टर लोग चले गये।

रात्रि में गाधीजी ने न मालूम क्या प्रयोग किया कि प्रातःकाल परीक्षण करके डाक्टर लोग दंग रह गये। वे बड़े हैरान थे। उनके दिमाग में इस परिवर्तन का कारण अज्ञात था। गांधीजी ने बताया कि प्रिय डाक्टरों! आपके इलाज के सिवा भी एक इलाज है जिसे रामनाम की दवा कहते हैं, वह अचूक है। हां, उसका प्रयोग करने की कला मालूम होनी चाहिये और ईश्वर पर पूर्ण विश्वास होना चाहिये।

मित्रों! अनाथी मुनि ने जिस शक्ति के जरिये अपना रोग मुक्त किया था वैसा ही कुछ प्रयोग गांधीजी ने भी किया होगा ऐसा अनुमान होता है। गांधीजी संकल्प शक्ति पर विश्वास करते हैं। इसी बात को कई लोग ईश्वरीय शक्ति भी कहते हैं।

उपनिषद् में भी संकल्प की बहुत महिमा बताई गई है। उसमें कहा—स य संकल्पं ब्रह्मेत्युपास्ते क्लृप्तान् वै स लोकान् ध्रुवान् ध्रुवः। आदि।

जब आत्मा अपने संकल्प को ईश्वर का रूप प्रदान करता है और उसकी दृढ़तापूर्वक उपासना करता है तब उस संकल्प के आधार से उत्पाद, व्यय और ध्रौव्या होते हैं। अर्थात् आत्मा में परिवर्तन होता है। पूर्व बद्ध कर्म वर्गणा में हलचल मच जाती है। भारी कर्म वर्गणा को हल्की बना देता है। देव, गति, मनुष्य गति तिर्यंचगति और नरक गति संकल्प से ही प्राप्त होती है और संकल्प से ही मुक्ति भी मिलती है।

यहां पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि संकल्प से मनुष्य बनता हैं तो मनुष्य लोक को किसने बनाया है? मनुष्य लोक की रचना भी आत्मिक संकल्प से ही हुई है। यह राजकोट तथा ये भवन मनुष्य के संकल्प से बने हुए हैं। आत्मा के संकल्प से सारी रचना है।

इस प्रकार यह आत्मा रातदिन कुछ न कुछ संकल्प करता रहता है किन्तु यदि उसकी गति मुड़कर मोक्षाभिमुखी हो जाय तो ध्रुवत्व प्राप्त हो सकता है।

सत्संकल्प ही ईश्वर है, यह जानकर सत्संकल्प पर डटे रहो। जो मनुष्य इरादे का कच्चा होता है वह कोई काम पूरा नहीं कर सकता। भक्त तुकाराम ने कहा है कि–

निश्चयाचा बल तुका म्हणे तोच फल।

इच्छा शक्ति यदि प्रबल हो तो पत्थर के टुकड़े भी किये जा सकते है। संसार और जीवन का उद्गम विचार है। विचार ही संचालक और प्रबन्धक है। जीवन भी विचार है। तुम स्वयं विचार के सिवा क्या हो? मनुष्य को सुखी दुःखी, रोगी निरोगी, धनवान् निर्धन और भला बुरा रखना उसके विचारों पर आधारित है। यही स्वर्ण सिद्धान्त है जिसको समझने और पालने वाले सदा निरोग और बलिष्ठ रह सकते हैं।

आरोग्य और प्रसन्न रहने का रामबाण उपाय अपने ही विचारों में परिवर्तन करना है। विचारों में परिवर्तन का अर्थ भूतकाल और भविष्य काल पर से विचार हटा कर वर्तमान काल में केन्द्रित करना है। जिसके मन में भूतकालीन घटनाओं का विचार है वह भूतकाल में जीता है जहां उसने असंख्य दुःख और क्लेश भोगे हैं और जो सदा भविष्य के विचारों में डूबा रहता है वह भविष्य में जीता है जहां संकल्प सृष्टि के सिवा कुछ नहीं है। व्यर्थ की अनेक कल्पनायें करके मनुष्य दुःखी होता है। किन्तु वास्तव में मनुष्य वर्तमान काल मे जीता है जिसे वह भूल रहा है। जिसका वर्तमान काल अच्छा है उसकाभूत और भविष्य भी सुधर जाता है। मनुष्य का अधिकार भी तो वर्तमान काल पर ही है। भूतकाल हाथ से निकल गया और भविष्यकाल अभी हाथ

आया नहीं है। वर्तमान काल हाथ में है। यदि मनुष्य चाहे तो सत्संकल्प के द्वारा उसका सदुपयोग कर सकता है।

नहीं भूत की गम कछु, ना भविष्य को ज्ञान।
अम्मर ताहि सराहिए, जो वरते वर्तमान।।

अव कोई शंका करे कि भूतकाल की चिन्ता न करना तो ठीक है परन्तु भविष्य को न सोचना, यह समझ में नहीं आता। भविष्य का विचार जरूर करना चाहिये अर्थात एक वार अपने जीवन का उद्देश्य नक्की करके फिर तदनुकूल प्रवृत्ति करनी चाहिये। वार वार भविष्य की कल्पना करते रहना अच्छा नहीं है। भविष्य की चिन्ता में शक्ति व्यर्थ नष्ट होती है। उतना समय यदि वर्तमान को सुधारने के लिए लगाया जाय तो भविष्य अपने आप सुन्दर वनता जाता है।

अनाथी मुनि राजा श्रेणिक के सामने अपना पूर्व इतिहास वताकर यह वता रहे हैं कि हे राजन्! सुख और दुःख हमारे विचारों की उपज है। जीव स्वयं सुख दुःख का कर्ता है और उनका फल भी इसे ही भोगना पडता है। संकल्प वल से मेरी वेदना विनष्ट हुई। मैंने क्षमावान् और निरारंभी वनने का सत्संकल्प कर लिया। पूर्व का असत्संकल्प वर्तमान के प्रवल सत्संकल्प से वाधित हो गया, असत् सत् रूप में वदल गया। राजन्! मुझे निद्रा आ गई।

अव एक ऐसे ही सत्संकल्पी और दृढ निश्चयी पुरुष का आपको चरित्र सुनाता हूं जिसे सुनकर आप लोग भी स्थिर विचारवान् वनें। चाहे आंधी हो या तूफान आप अपने विचारों पर दृढ़ रहने का निश्चय करके जीवन सफल वनावें।

सुदर्शन चरित्र—

अवसर देख सेठजी वोले सुनो सुनो वड माय।
पंच मात में तुम अग्रेसर तज दो खोटी वात।। रे धन.।।
तज दे यह तूफान सुदर्शन! मैं नहीं तेरी माय।
मूर्खा कपिला को भरमाया मुझे छलन तू चाय।। रे धन।।

जव सेठ सुदर्शन किसी भी प्रकार से छले न गये तव अभया ने अपना अन्तिम अस्त्र फेंका। वह रोने लगी। रोना भी एक प्रकार का तूफान है। आजकल भी ऐसा तूफान देखा जाता है। किसी को हर्ष या स्वाभाविक प्रेम से आंसू आये यह दूसरी वात है किन्तु किसी के मरने पर जो रिवाजी रोना है वह अस्वाभाविक है, कृत्रिम है। इस तरह के रोने में एक स्त्री गाती है और दूसरी छाजना लेकर यानी छाती पीटकर रोती है। यह क्या एक प्रकार का तूफान नहीं है? यदि आप लोग इसे तूफान मानते हैं तो वन्द क्या नहीं कर देते? कई वहिनें कहती हैं कि सव मिलकर इस प्रथा पर प्रतिवन्ध लगा दें।

संघ प्रतिबंध भी लगा दे और बहिनें न मानें तब क्या हो? अतः स्वतः इस बुरी चीज को छोड़ना चाहिये। संघ प्रतिबंध लगा दे और कोई उसका उल्लंघन करे तो संघ किस–किस को उपालम्भ देता फिरे। सिंघीजी ने इस तरह रोने का और अपने घर में किसी को रोने देने का त्याग किया है तो क्या जाति वाले उनको जाति–बाहर कर देंगे? अतः संघबंधारण की प्रतीक्षा न करके स्वयं व्यक्तिगत इस प्रथा को बंद कर दिया जाय तो क्या हानि है?

मित्रों! रोना भी दो प्रकार का होता है। एक ऊपरी रोना जो केवल दिखावे के लिए होता है। दूसरा आन्तरिक, जो किसी निकटतम स्नेही की मृत्यु से आता है। जिसकी मृत्यु से मन में किंचित् भी क्षोभ, दुःख या समवेदना नहीं है उसके लिए भी केवल उसके सम्बन्धियों को दिखाने के लिए चिल्ला–चिल्ला कर या विचित्र प्रकार की स्वर लहरी निकाल कर रोना एक प्रकार का उपहास ही है।

ऊपर से रोकर क्या दिखाया जाता है, यह अभया के चरित्र से आपके सामने स्पष्ट है। अभया के हृदय में क्या बात है और बाहर क्या है, यह आप सुन रहे हैं। अभया कहती है कि सेठ! तुम बड़े निठुर हो। दयावान् कहलाते हो किन्तु मुझ पर दया क्यों नहीं करते? मैं तुम को अपना सर्वस्व सौंपने के लिए उद्यत हूं फिर भी तुम मुझे नहीं अपनाते हो? मैं इस प्रकार विलख रही हूं किन्तु फिर भी तुम मुझे अपनी शरण में नहीं लेते हो।

जब अभया रोने लगी और रोकर सुदर्शन को पुकारने लगी तब उन्होंने मौन भंग किया और कहने लगे कि माताजी! क्या बात है? आप मेरी पांच माताओं में सबसे बड़ी मां हैं। आप मुझसे किस इच्छा की पूर्ति करना चाहती हैं? पुत्र के लिए आपकी क्या आज्ञा है? मैं आपके सामने पुत्र जैसा हूं इस बात पर खयाल करियेगा।

सत्संकल्प के प्रभाव से सुदर्शन धर्म पर दृढ़ रह सका था। जो धर्म पर डटे रहते है उनके लिए शास्त्रकार ने कहा है कि–

देवा वि तं नमंसन्ति जस्स धम्मे सया मणो।

जिसका मन धर्म में लगा रहता है, जो किसी भी परिस्थिति में विचलित नही होता उस पुरुष को देवगण भी नमस्कार करते हैं।

आप लोग देव को बुलाने के लिए इधर–उधर भटकते फिरते हो किन्तु यह नहीं सोचते कि आपने खुद ने देव को दूर भगा रखा है। कल पानी बरसाने के लिए देव का आह्वान किया गया था किन्तु यह नहीं सोचते कि हमने अपने कर्तव्य भूलकर देवों को दूर भगा रखा है। एक तरफ लोग भूखों मर रहे है। और दूसरी तरफ नाटक सिनेमा मे पैसे बरबाद किये जा रहे हैं। पैसे बरबाद करके लोग दुर्व्यसन में गिर रहे हैं। क्या यह व्यवहार उचित है?

दुर्व्यसन में पड़े हुए लोग देव को बुलाना चाहते हैं और उसके जरिये पानी बरसाना चाहते हैं। यदि आप लोग अपना कर्तव्य अदा करते रहें तो देव आपको ढूंढता फिरेगा। देव को बुलाने के लिए आपको चिल्लाना नहीं पड़ेगा।

अभया से सुदर्शन कहता है कि मेरे पांच मातायें हैं उनमें तू प्रथम नम्बर की माता है। नीतिशास्त्र में कहा है–

राजपत्नी गुरुपत्नी मित्रपत्नी तथैव च।
पत्नीमाता स्वमाता च पंच मातर उच्यते।।

राजा की पत्नी प्रजा के लिए माता है। प्रजा की रक्षा राजसत्ता से होती है। यदि एक दिन के लिए राजा न रहे तो प्रजा में अराजकता फैल जावे और सर्वत्र अंधाधुन्धी मच जावे। यदि एक दिन के लिए भी घोषणा करवा दी जाय कि आज किसी की किसी प्रकार की शिकायत न सुनी जायेगी और आज के सब गुनाह माफ हैं तब पता लगे कि कितनी अव्यवस्था और अत्याचार होते हैं। राजसत्ता से अनेक पापी और जुल्म गुजारने वाले लोग दबे हुए हैं। मैं यह नहीं कहता कि सारे पाप या अत्याचार राजसत्ता के कारण रुके हुए हैं क्योंकि मैं जानता हूं कि राजसत्ता से भी बढ़कर एक धर्म सता है जिसके प्रभाव से भले आदमी अपने आपको पाप व अत्याचार से बचाते हैं। किन्तु फिर भी दुनिया में अधिकांश लोग ऐसे हैं जो राजसत्ता के कारण पाप व अत्याचार करने से रुके हुए हैं। ऐसे लोगों को एक दिन के लिए भी छूट मिल जाय तो अंधेर मच जाय।

मेरे कथन का कोई यह अर्थ न लगा ले कि राजा का गुलाम बने रहना। राजा यदि मर्यादा का पालन न करता हो और स्वयं प्रजा पर जुल्म करता हो तो भी उसका अन्याय सहते रहना यह मेरे कथन में से अर्थ मत लगाइयेगा। मेरा मतलब राज व्यवस्था से है। जो राजव्यवस्था चलाता हो या प्रजा की रक्षा करता हो उसकी पत्नी को माता मानना चाहिये।

दूसरी माता गुरु की पत्नी है। जिसने एक भी अक्षर सिखाया हो या कोई बात बताई हो वह गुरु है और उसकी पत्नी माता के समान है।

तीसरी माता मित्र की पत्नी है। जो सुख दुःख का साथी है वह मित्र है। ऐसे मित्र की स्त्री को मातावत् मानना चाहिये।

चौथी माता सास है। जब स्त्री–पुरुष संसार की गाड़ी में जुड़ते हैं तब एक दूसरे की माता को स्वमाता मानना चाहिये। यदि स्त्री पति की माता को अपनी माता के समान मानकर व्यवहार न करे तो गृहस्थ जीवन नरक बन जाता है। इसी प्रकार पुरुष भी पत्नी की माता को अपनी माता के समान माने। माता का स्थान प्रथम है और पत्नी का स्थान दूसरा है। यदि पत्नी अपने पति की माता को गाली देती है या अनुचित बर्ताव करती है तो क्या पति पत्नी का यह व्यवहार सहन कर सकता है? भला आदमी यह व्यवहार नहीं सह सकता। कारण कि वह माता को पत्नी से बढ़कर मानता है।

किन्तु आजकल इसके विपरीत भी आचरण देखा जाता है। कई लोग पत्नी के कारण निज माता की अवहेलना करते हैं। मेरा मतलब यह नहीं है कि माता के लिए पति पत्नी आपस में लड़ाई झगड़ा किया करें। किन्तु आपस में कुछ ऐसा सम्बन्ध होना चाहिये कि दोनों मिलकर माता का उचित सत्कार करें।

जो बात पत्नी पर लागू है वही पति पर भी है। पति भी स्त्री की माता को माता माने। जो लोग इस कर्तव्य का पालन नहीं करते हैं उनको लक्ष्य में रखकर ही किसी कवि ने कहा है कि 'जामाता दशमो ग्रहः' जमाई भी एक ग्रह है। नौ ग्रह तो आकाश में हैं ही और दसवां जमाई के रूप में पृथ्वी पर है। लोग ससुराल में जाकर ऐसे बदल जाते हैं मानों कहीं के राजा हैं। जरा किसी बात में खामी पड़ी कि पारा गरम हो जाता है। तथा जमाई को कितना भी माल दिया जावे वह सदा असंतुष्ट रहता है। कभी कुछ कमी रही कि मुंह चढ़ जाता है।

क्या इसी का नाम माता पुत्र का संबंध है? जो लोग इस कर्तव्य को नहीं निभाते वे विवाह के समय की गई प्रतिज्ञा को भूलते हैं।

चार माताएं ऊपर बताई गई हैं। पांचवीं जन्म देने वाली माता है।

सुदर्शन अभया से कहता है कि आप मेरी सब से बड़ी माता हैं। मेरे सामने मेरी माता दुःखी हो यह मेरे से नहीं देखा जाता। यद्यपि मैं पौषध व्रत में हूं तो भी आपका दुःख मिटाने के लिए जो उचित मार्ग है अपना सकता हूं। चुलनीपिता श्रावक पौषध व्रत में था। किन्तु माता का दुःख वह देख न सका और डिग गया था। मैं भी अपना कर्तव्य समझता हूं कि आपका दुःख मिटाऊं। माताजी! बताइये कि आपको क्या कष्ट है? आपका कष्ट वैसा होना चाहिये जिसे एक पुत्र मिटा सकता हो।

सुदर्शन की बात सुनकर रानी सोचती है कि इसका दिल पत्थर का बना हुआ मालूम देता है। मैं इसे पिघलाना चाहती थी किन्तु घी हो तब पिघले न? यह तो पत्थर का बना हुआ है।

अभया का रोना कृत्रिम था ही। उसने चट से रोना बन्द करके त्यौरी बदल दी। लाल-लाल आंखें दिखाकर कहने लगी कि सुदर्शन! यह तूफान छोड दे। तेरे इस तूफान से कपिला पुरोहिताइन ठगी गई थी। लेकिन मैं भ्रम में नहीं पड सकती।

अभया के द्वारा कपिला वाली घटना याद करके सुदर्शन विचारने लगा कि मैंने कपिला को क्या गलत उत्तर दिया था। मैंने ठीक ही कहा था कि मैं नपुंसक हूं। कारण कि मेरी स्त्री के सिवा अन्य स्त्रियों के लिए मेरे में पुंसत्व है ही नहीं। मैं अन्य स्त्रियों को मा बहिन मानता हूं। माता और बहिन के लिए सभी नपुंसक है ही। किन्तु मेरी यह राजमाता मेरे कथन को तूफान

मानती है। सचमुच, तूफान मैं कर रहा हूं या यह कर रही है। भगवान् ने जिस विपरीत ज्ञान का वर्णन किया है वह इस माता में जान पड़ता है। जब मनुष्य में विपर्यय ज्ञान होता है तब वह पदार्थों को अन्यथा रूप से देखने लगता है। इस माता में इस वक्त उल्टा ज्ञान छाया हुआ है अतः मुझे पुत्र रूप में न देखकर अन्य दृष्टि से देखती है।

यह मुझे तूफानी बता रही है और मैं इसे तूफान पर चढ़ी हुई मानता हूं। किन्तु इस बात का निर्णय कौन करे। इससे तर्क वितर्क न करके मेरा जो स्पष्ट निर्णय है वह इसे सुना दूं।

मेरु डिगे धरती धुजे या सूर्य करे अंधकार।
तो पिण शील छोडूं नहीं माता सच्चा है निरधार।रे धन।।

भगवान् महावीर को शरण पकड़ने वाले भगवान् महावीर के श्रावक कैसे होते हैं यह बात सुदर्शन के अटल निश्चय पर से देखिये। सुदर्शन ने विचार किया कि वाद–विवाद करके भी मैं इसी से जी सकता हूं किन्तु इस वक्त वाद–विवाद का अवसर नहीं है। इस वक्त 'निर्बल के बल राम' का सहारा लेकर निर्बल बनकर मेरा निश्चय इसे सुना दूं।

सुदर्शन ने कहा, माताजी! मेरु पर्वत कभी डिगता नहीं है, पृथ्वी चलती नहीं है और सूर्य अंधकार नहीं करता है फिर भी संभव है ये काम कदाचित् इनसे बन पडें। किन्तु सुदर्शन कभी शील का त्याग नहीं कर सकता। मैं निर्मल रहकर शीलव्रत का पालन करूंगा। दूसरा क्या करता है, यह मैं नहीं देखना चाहता। मैं अपना धर्म निभाऊंगा।

एकांगी मग अगम गमन कर विलमूं छिन छिन छांहे।

मैं उनका दास हूं जिन्होंने भूतकाल में शीलव्रत का पालन किया है, वर्तमान में करते हैं और भविष्य में करेंगे। बस, इतना कह कर मैं मौन धारण करता हूं। इससे अधिक मुझे कुछ नहीं कहना है।

मित्रों! सुदर्शन की अडिग वृति का क्या कारण है? वह कहता है कि मेरु, पृथ्वी और सूर्य अपनी मर्यादा छोड दें मगर मैं अपनी मर्यादा न त्यागूंगा। इस अटलता का कारण संकल्प शक्ति की दृढ़ता है। सुदर्शन का संकल्प कच्चा–पोचा न था। एक अटल निश्चय था।

शील पालन करने का अटल निश्चय हो तो मेरु पर नाचने कूदने वाले देव और इन्द्र भी खिंचकर पास चले आते हैं। शील पालने वाले में परमात्म–शक्ति आ जाती है।

आप लोग भी यदि सुदर्शन का आदर्श सामने रख कर शील का पालन करेंगे तो कल्याण है।

राजकोट
ता. 8.9.36

श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर
– एक परिचय –

स्थानकवासी जैन परम्परा में आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. एक महान् क्रांतिकारी संत हुए हैं। आषाढ़ शुक्ला संवत् 2000 को भीनासर में सेठ हमीरमलजी बांठिया स्थानकवासी जैन पौषधशाला में उन्होंने संथारापूर्वक अपनी देह का त्याग किया। उनकी महाप्रयाण यात्रा के बाद चतुर्विध संघ की एक श्रद्धांजलि सभा आयोजित की गई जिसमें उनके अनन्य भक्त भीनासर के सेठ श्री चम्पालाल जी बांठिया ने उनकी स्मृति में भीनासर में ज्ञान–दर्शन चारित्र की आराधना हेतु एक जीवन्त स्मारक बनाने की अपील की। तदन्तर दिनांक 29.4.1944 को श्री जवाहर विद्यापीठ के रूप में इस स्मारक ने मूर्त रूप लिया।

शिक्षा–ज्ञान एवं सेवा की त्रिवेणी प्रवाहित करते हुए संस्था ने अपने छह दशक पूर्ण कर लिए हैं। आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा. के व्याख्यानों से संकलित, सम्पादित ग्रंथों को 'श्री जवाहर किरणावली' के नाम से प्रकाशित किया जा रहा है। वर्तमान में इसकी 32 किरणों का प्रकाशन संस्था द्वारा किया जा रहा है इसमें गुंफित आचार्यश्री की वाणी को जन–जन तक पहुंचाने का यह कीर्तिमानीय कार्य है। आज गौरवन्वित है गंगाशहर–भीनासर की पुण्यभूमि जिसे दादा गुरु का धाम बनने का सुअवसर मिला और ज्योतिर्धर आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. की कालजयी वाणी जन–जन तक पहुंच सकी।

संस्था द्वारा एक पुस्तकालय का संचालन किया जाता है जिसमें लगभग 5000 पुस्तकें एवं लगभग 400 हस्तलिखित ग्रंथ हैं। इसी से सम्बद्ध वाचनालय में दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक– कुल 30 पत्र–पत्रिकायें उपलब्ध करवाई जाती हैं। प्रतिदिन करीब 50–60 पाठक इससे लाभान्वित होते हैं। ज्ञान–प्रसार के क्षेत्र में पुस्तकालय वाचनालय की सेवा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और क्षेत्र में अद्वितीय है।

महिलाओं को स्वावलम्वी वनाने हेतु संस्था द्वारा सिलाई, वुनाई, कढाई प्रशिक्षण केन्द्र का संचालन किया जाता है, जिसमें योग्य अध्यापिकाओं द्वारा महिलाओं व छात्राओं को सिलाई, वुनाई, कढ़ाई व पेन्टिंग कार्य का प्रशिक्षण दिया जाता है। इससे वे अपने गृहस्थी के कार्यों में योगदान दे सकती हैं और आवश्यकता पड़ने पर इस कार्य के सहारे जीवन में स्वावलम्वी भी वन सकती हैं।

संस्था के संस्थापक स्वर्गीय सेठ चम्पालाल जी वांठिया की जन्म जयन्ती पर प्रत्येक वर्ष उनकी स्मृति में एक व्याख्यानमाला का आयोजन किया जाता है जिसमें उच्च कोटि के विद्वानों को वुलाकर प्रत्येक वर्ष अलग–अलग धार्मिक, सामाजिक विषयों पर प्रवचन आयोजित किए जाते हैं।

उपरोक्त के अलावा प्रदीप कुमार जी रामपुरिया स्मृति पुरस्कार के अन्तर्गत भी प्रतिवर्ष स्नातकस्तरीय कला, विज्ञान एवं वाणिज्य संकाय में वीकानेर विश्वविद्यालय में प्रथम व द्वितीय स्थान प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को नकद राशि, प्रशस्ति–पत्र एवं प्रतीक–चिन्ह देकर सम्मानित किया जाता है एवं स्नातकोत्तर शिक्षा में वीकानेर विश्वविद्यालय में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले एक विद्यार्थी को विशेष योग्यता पुरस्कार के रूप में प्रशस्ति–पत्र एवं प्रतीक–चिन्ह देकर सम्मानित किया जाता है।

विद्यापीठ द्वारा ठण्ड़े मीठे जल की प्याऊ का संचालन किया जाता है। जनसाधारण के लिए इसकी उपयोगिता स्वयं–सिद्ध है। इस प्रकार अपने वहुआयामी कार्यों से श्री जवाहर विद्यापीठ निरन्तर प्रगति–पथ पर अग्रसर है।